श्री वीतरागाय नमः

आराधना कथा कोष

[हिन्दी]

मूल ग्रन्थकार :—

स्व० ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्तजी

हिन्दी लेखक :—

स्व० श्री उदयलालजी काशलीवाल

आराधना कथा कोष

[हिन्दी]

मूल्यः स्वाध्याय

मुद्रक: कमल प्रिंटर्स मदनगंज-किशनगढ़

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

आराधना कथा कोष

[हिन्दी]

मूल ग्रन्थकार :—

स्व० ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्तजी

हिन्दी लेखक :—

स्व० श्री उदयलालजी काशलीवाल

प्रकाशिका :—
श्री ब्र० मदीबाईजी जैन
नागौर (राज०)

प्रथमावृत्ति १००० | जून १९७३ | मूल्य स्वाध्याय

मुद्रक :—
नेमीचन्द बाकलीवाल
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)

अनुक्रमणिका

[प्रथम भाग]

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
१	पात्रकेसरी की कथा	३
२	भट्टाकलंकदेव की कथा	९
३	सनत्कुमार की कथा	२६
४	समन्तभद्राचार्य की कथा	३४
५	संजयन्त मुनि की कथा	४५
६	अंजनचोर की कथा	६४
७	अनन्तमती की कथा	७०
८	उद्दायन राजा की कथा	८२
९	रेवती रानी की कथा	८७
१०	जिनेन्द्रभक्त की कथा	९४
११	वारिषेण मुनि की कथा	९९
१२	विष्णुकुमार मुनि की कथा	११२
१३	वज्रकुमार की कथा	१२६
१४	नागदत्त मुनि की कथा	१४०
१५	शिवभूति पुरोहित की कथा	१४७
१६	पवित्र हृदयवाले एक बालक की कथा	१४९
१७	धनदत्त राजा की कथा	१५२
१८	ब्रह्मदत्त की कथा	१५६
१९	श्रेणिक राजा की कथा	१५९

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
२०	पद्मरथ राजा की कथा	१६५
२१	पंच नमस्कार मंत्र महात्म्य कथा	१६७
२२	यम मुनि की कथा	१७७
२३	दृढ़सूर्य की कथा	१८३
२४	यमपाल चांडाल की कथा	१८७

[दूसरा भाग]

२५	मृगसेन धीवर की कथा	१९३
२६	वसुराजा की कथा	२१५
२७	श्रीभूति-पुरोहित की कथा	२२४
२८	नीली की कथा	२३४
२९	कडारपिंग की कथा	२४३
३०	देवरति राजा की कथा	२४८
३१	गोपवती की कथा	२५६
३२	वीरवती की कथा	२५८
३३	सुरत राजा की कथा	२६३
३४	विषयों में फँसे हुए संसारी जीव की कथा	२६५
३५	चारुदत्त सेठ की कथा	२६७
३६	पाराशर मुनि की कथा	२८१
३७	सात्यकि और रुद्र की कथा	२८४
३८	लौकिक ब्रह्मा की कथा	२९२
३९	परिग्रह से डरे हुए दो भाईयों की कथा	२९६

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
४०	धन से डरे हुए सागरदत्त की कथा	२९८
४१	धन के लोभ से भ्रम में पड़े कुबेरदत्त की कथा	२९९
४२	पिण्याकगन्ध की कथा	३१५
४३	लुब्धक सेठ की कथा	३२०
४४	वशिष्ठ तापसी की कथा	३२४
४५	लक्ष्मीमती की कथा	३५०
४६	पुष्पदत्ता की कथा	३५३
४७	मरीचि की कथा	३५५
४८	गन्धमित्र की कथा	३५७
४९	गन्धर्वसेना की कथा	३५९
५०	भीमराज की कथा	३६२
५१	नागदत्ता की कथा	३६४
५२	द्वीपायन मुनि की कथा	३६७
५३	शराब पीनेवालों की कथा	३७२
५४	सागरचक्रवर्त्ती की कथा	३७५
५५	मृगध्वज की कथा	३८६
५६	परशुराम की कथा	३८८
५७	सुकुमाल मुनि की कथा	३९२
५८	सुकौशल मुनि की कथा	४१२
५९	गजकुमार मुनि की कथा	४१९
६०	पणिक मुनि की कथा	४२२

क्रम नं०
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
६१	भद्रबाहु मुनिराज की कथा	४२४
६२	बत्तीस सेठ पुत्रों की कथा	४२८
	[तीसरा भाग]	
६३	धर्मघोष मुनि की कथा	४३३
६४	श्रीदत्त मुनि की कथा	४३४
६५	वृषभसेन की कथा	४३७
६६	कार्त्तिकेय मुनि की कथा	४४१
६७	अभयघोष मुनि की कथा	४४६
६८	विद्युच्चर मुनि की कथा	४४९
६९	गुरुदत्त मुनि की कथा	४५५
७०	चिलात पुत्र की कथा	४६०
७१	धन्य मुनि की कथा	४६७
७२	पाँचसौ मुनियों की कथा	४६९
७३	चाणक्य की कथा	४७१
७४	वृषभसेन की कथा	४७७
७५	शालिसिक्थ मच्छ के भावों की कथा	४७९
७६	सुभौम चक्रवर्त्ती की कथा	४८१
७७	शुभराजा की कथा	४८४
७८	सुदृष्टि सुनार की कथा	४८७
७९	धर्मसिंह मुनि की कथा	४९०
८०	वृषभसेन की कथा	४९२

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
८१	जयसेन राजा की कथा	४९४
८२	शकटाल मुनि की कथा	४९८
८३	श्रद्धायुक्त मनुष्य की कथा	५०२
८४	आत्म निन्दा करने वाली की कथा	५०३
८५	आत्मनिन्दा की कथा	५०७
८६	सोमशर्म मुनि की कथा	५०८
८७	कालाध्ययन की कथा	५१२
८८	अकाल में शास्त्राभ्यास करने वाले की कथा	५१४
८९	विनयी पुरुष की कथा	५१५
९०	अवग्रह-नियम लेनेवाले की कथा	५२१
९१	अभिमान करने वाले की कथा	५२३
९२	निह्नव-असल बात को छुपानेवाले की कथा	५२५
९३	अक्षरहीन अर्थ की कथा	५२९
९४	अर्थहीन वाक्य की कथा	५३१
९५	व्यञ्जनहीन अर्थ की कथा	५३५
९६	धरसेनाचार्य की कथा	५३७
९७	सुव्रत मुनिराज की कथा	५४०
९८	हरिषेण चक्रवर्त्ती की कथा	५४३
९९	दूसरों के गुण ग्रहण करने की कथा	५४९
१००	मनुष्य जन्म की दुर्लभता के दस दृष्टान्त	५५१
१०१	भावानुराग-कथा	५६१

क्रम नं०	क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
२०	१०२	प्रेमानुराग-कथा	५६३
२१	१०३	जिनाभिषेक से प्रेम करनेवाले की कथा	५६४
२२	१०४	धर्मानुराग-कथा	५६८
२३	१०५	सम्यग्दर्शन पर दृढ़ रहने वाले की कथा	५७१
२४	१०६	सम्यक्त्व को न छोड़ने वाले की कथा	५७३
	१०७	सम्यग्दर्शन के प्रभाव की कथा	५७७
	१०८	रात्रिभोजन त्याग कथा	६०७
२५	१०९	दान करनेवालों की कथा	६१८
२६	११०	औषधिदान की कथा	६२७
२७	१११	शास्त्रदान की कथा	६४२
२८	११२	अभयदान की कथा	६४८
२९	११३	करकण्डु राजा की कथा	६५२
३०	११४	जिनपूजन-प्रभाव की कथा	६८०
३१	११५	कुंकुम-व्रत की कथा	६९०
३२	११६	जम्बू स्वामी की विनती	६९४
३३			
३४			
३५			
३६			
३७			
३८			
३९			

आराधना कथा कोष के

दान दाताओं की सूची

७२१)	सर्व समाज कलकत्ता की बाइयों से
५७५)	कानकी, दिनाजपुर की स्त्री समाज से
५००)	श्री अमराव बाई धर्म० डूंगरमलजी पांड्या, नागौर
५००)	श्री अंगूरीदेवी धर्म० कँवरीलालजी बाकलीवाल
५००)	गुप्त बाई द्वारा प्रदत्त
२५१)	श्री शान्ताबाई धर्म० लक्ष्मीनारायणजी तनसुखिया
२००)	श्री सुशीलाबाई धर्म० दौलतरामजी बाकलीवाल
२००)	श्री मोहनीबाई धर्म० नेमीचन्दजी बड़जात्या, नागौर
२००)	श्री सोहनीबाई धर्म० हरकचन्दजी सेठी, तनसुखिया
२०१)	श्री फूलीदेवी धर्म० मदनलालजी रामगंज मंडी
१११)	श्री रतनीबाई धर्म० रामनारायणजी काशलीवाल
१०१)	श्री कैलाशीबाई धर्म० रतनलालजी सेठी, मेड़ता रोड़
१००)	श्री धापीबाई धर्म० दुलीचन्दजी सबलावत, नागौर
१०१)	श्री भँवरीदेवी धर्म० मोहनलालजी रारा, तनसुखिया
१०१)	श्री कंचनदेवी धर्म० रामगोपालजी पाटनी "
१०१)	श्री गणेशीबाई धर्म० हीरालालजी बड़जात्या नागौर
६०)	श्री इन्द्रमणिबाई धर्म० श्रीनिवासजी बड़जात्या नागौर
५१)	श्री अमरावबाई धर्म० चन्दनमलजी पहाड़िया "

क्रम

२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९

५१)	श्री चन्द्रकान्तादेवी धर्म० कैलाशचन्दजी चूड़ीवाल नागौर
५१)	श्रीमती पूसराजजी पाटनी जोरहाट
५१)	श्री विमलाबाई धर्म० सुमेरमलजी जोरहाट
५१)	श्री गट्टूबाई मातेश्वरी अखेचन्दजी सेठी
५१)	श्री मनोरमाबाई धर्म० बुधमलजी बड़जात्या, नागौर
५०)	श्रीमती शांतादेवी धर्म० सम्पतलालजी सेठी "
५०)	श्रीमती मणिबाई धर्म० रतनलालजी बड़जात्या "
४७)	श्रीमती मैनाबाई धर्म० रखीलालजी पाटनी
३१)	श्रीमती सांझाबाई मातेश्वरी सौभागमलजी झांझरी तनसुखिया
३१)	श्रीमती बिदामीबाई धर्म० राजकुमारजी काशलीवाल तनसुखिया
३१)	श्रीमती इन्द्रमणी बाई धर्म० आनन्दीलालजी चूड़ीवाल लाडनू
३१)	श्री अमरचन्दजी पाटनी की मातेश्वरी
३१)	श्री कन्हैयालालजी पाटनी की धर्मपत्नी
३०)	श्री सिंगारीबाई धर्म० जीतमलजी सबलावत डेह
२५)	श्रीमती उगमाबाई धर्म० झूमरमलजी लुहाड़िया, नागौर
२५)	श्रीमती सोहनीबाई धर्म० मांगीलालजी पांड्या, सुजानगढ़
२१)	श्रीमती चैनीबाई धर्म० हरकचन्दजी चान्दुवाड़ तनसुखिया
२१)	श्रीमती सरस्वतीबाई धर्म० सम्पतलालजी सेठी "
२१)	श्रीमती चैनीदेवी धर्म० मदनलालजी सेठी "

२१)	श्री महावीरजी सेठी तनसुखिया
२१)	श्रीमती सोहनीदेवी धर्म० मदनलालजी बज, "
२१)	श्री फतेहचन्दजी काला की मातेश्वरी, नागौर
२१)	श्री सम्पतलालजी चूड़ीवाल की मातेश्वरी, मैनसर
२१)	श्री सागरमलजी की मातेश्वरी लालगढ़
२१)	श्रीमती कैलाशचन्दजी जयपुर वाले
२१)	श्रीमती भँवरीदेवी ध. प. सूरजमलजी बगड़ा नागौर
२१)	श्री ताराबाई
२१)	श्री किशनलालजी चूड़ीवाल की धर्मपत्नी
१५)	श्रीमती विमलादेवी ध. प. मिश्रीलालजी पाटनी तनसुखिया
१५)	श्रीमती रतनीदेवी ध. प. लूणकरणजी पाटनी "
१५)	श्री भँवरीदेवी ध. प. अमरचन्दजी पाटनी नागौर
१५)	श्री शांतिलालजी चौधरी की मातेश्वरी नागौर
१५)	श्री अनूपचन्दजी बड़जात्या नागौर
१५)	श्री चांदमलजी चूड़ीवाल की धर्मपत्नी
१५)	श्री शुभकरणजी चूड़ीवाल की "
११)	श्री सूरतादेवी ध. प. सुगनचन्दजी सेठी, तनसुखिया
११)	श्रीमती बसन्तीदेवी ध. प. मोहनलालजी रारा "
११)	श्रीमती शशिकला धर्म० भागचन्दजी पाटनी "
११)	श्री जयचन्द्रलालजी सेठी की मातेश्वरी, सुजानगढ़
११)	श्री सोहनीबाई ध. प. रतनलालजी बड़जात्या नागौर
११)	श्री शांतिलालजी मोहनलालजी पहाड़िया नागौर
११)	श्रीमती सोहनसिंहजी कानूगो नागौर
११)	श्री रूपचन्दजी बगड़ा की ध. प.
५)	श्रीमती कस्तूरीबाई तनसुखिया
५)	श्री गनपतलालजी की माताजी नागौर
५)	श्री मालचन्दजी पाटनी की ध. प.
५)	श्री प्रेमचन्दजी जैन की मातेश्वरी

।। आदिनाथ-स्तुति ।।

जय-जय श्री आदि जिन, तुम हो तारन-तरन,
भवि जन प्यारे । इन्द्र धरणेन्द्र स्तुतिधर तुम्हारे ।
प्रभु ! तुम सर्वार्थ सिद्धि से आये,
माता मरुदेवी के सुत कहाये,
नाभि नृप के नन्दन ! तुम को शत-शत वन्दन, हो हमारे ।।इन्द्र ध०।।
कर्म युग के प्रथम तुम विधाता,
लोक हित मार्ग के आदि ज्ञाता,
अंक अक्षर कला तुम से प्रकटे, प्रभो ! शिल्प सारे ।। इन्द्र ध० ।।
देख नीलांजना के निधन को,
राज छोड़ गये देव वन को,
योग साधा कठिन, कर्म बन्धन गहन तोड़ डाले ।। इन्द्र ध० ।।
सिद्ध परमात्मा पा गये तुम,
शम्भु ब्रह्मा जिनेश्वर हुए तुम,
सिर नवाते हुए, गुणगण गाते हुए, गणधर हारे ।। इन्द्र ध० ।।
नाथ ! अपनी चरण भक्ति दीजे,
आत्म गुण सिंधु में मग्न कीजे ।
छीजे आवागमन, शिवपुर में हो गमन, कर्म कारे ।। इन्द्र ध० ।।

।। इति समाप्त ।।

अराधना कथा कोष

आराधना-कथाकोश।

[हिन्दी]

मंगल और प्रस्तावना।

जो भव्य पुरुषरूपी कमलोंके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं और लोक तथा अलोकके प्रकाशक हैं-जिनके द्वारा संसारकी वस्तु-मात्रका ज्ञान होता है, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर मैं आराधना कथाकोश नामक ग्रन्थ लिखता हूँ।

उस सरस्वती-जिनवाणी-के लिये नमस्कार है, जो संसारके पदार्थोंका ज्ञान करानेके लिये नेत्र है और जिसके नाम ही से प्राणी ज्ञानरूपी समुद्रके पार पहुँच सकता है-सर्वज्ञ हो सकता है।

उन मुनिराजोंके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्ररूपी रत्नोंसे पवित्र हैं, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य आदि गुणोंसे युक्त हैं और ज्ञानके समुद्र हैं।

इस प्रकार देव, गुरु और भारती का स्मरण मेरे इस ग्रन्थरूपी महलपर कलशकी शोभा बढ़ावे। अर्थात् आरंभ से अन्तपर्यन्त यह ग्रन्थ निर्विघ्न पूर्ण हो जाय।

श्रीमूलसंघ-भारतीयगच्छ-बलात्कारगण और कुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमें श्रीप्रभाचन्द्र नामके मुनि हुए हैं। वे बड़े तपस्वी थे। उनकी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती-आदि सभी पूजा किया करते थे। उन्होंने संसारके उपकारार्थ सरल और सुबोध गद्य संस्कृतभाषामें एक आराधना कथाकोश बनाया है। उसीके आधारपर मैं यह ग्रन्थ हिंदी भाषामें लिखता हूँ। क्योंकि सूर्यके द्वारा प्रकाशित मार्ग में सभी चलते हैं।

कल्याणकी प्राप्तिके लिये आराधना शब्दका अर्थ जैन शास्त्रानुसार कहा जाता है। उसके सुननेसे सत्पुरुषों को भी सन्तोष होगा।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्त्व ये संसारबन्धनके नाश करनेवाले हैं, इनका स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक शक्तिके अनुसार उद्योत, उद्यमन, निर्वाहण, साधन, और निस्तरण करनेको आचार्य आराधना कहते हैं। इन पाँचोंका खुलासा अर्थ यों है :—

उद्योत:—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इनका संसारमें प्रकाश करना-लोगोंके हृदयपर इनका प्रभाव डालना-उद्योत है।

उद्यमन:—स्वीकार किये हुए उक्त सम्यग्दर्शनादिका पालन करनेके लिये निरालस होकर बाह्य और अन्तरंग में यत्न करना उद्यमन है।

निर्वाहण:—कभी कोई ऐसा बलवान कारण उपस्थित हो जाय, जिससे सम्यग्दर्शनादिके छोड़नेकी नौबत आ जाय तो

उस समय अनेक तरहके कष्ट उठाकर भी उन्हें न छोड़ना निर्वाहण है।

साधन:—तत्वार्थादि महाशास्त्रके पठनके समय जो मुनियोंके उक्त दर्शनादिकी राग रहित पूर्णता होना वह साधन है।

निस्तरण—इन दर्शनादिका मरणपर्यन्त निर्विघ्न पालन करना वह निस्तरण है।

इस प्रकार जैनाचार्योंने आराधनाका क्रम पाँच प्रकार बतलाया है। उसे हमने लिख दिया। अब हम उनकी क्रमसे कथा लिखते हैं।

१—पात्रकेसरीकी कथा।

पात्रकेसरी आचार्य ने सम्यग्दर्शनका उद्योत किया था। उनका चरित मैं लिखता हूँ, वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका कारण है।

भगवान्‌के पंचकल्याणोंसे पवित्र और सब जीवोंको सुखके देनेवाले इस भारतवर्षमें एक मगध नामका देश है। वह संसारके श्रेष्ठ वैभवका स्थान है। उसके अन्तर्गत एक अहिछत्र नामका सुन्दर शहर है। उसकी सुन्दरता संसारको चकित करनेवाली है।

नगरवासियोंके पुण्यसे उसका अवनिपाल नामका राजा बड़ा गुणी था, सब राजविद्याओंका पंडित था। अपने राज्यका पालन वह अच्छी नीतिके साथ करता था। उसके पास पाँचसौ अच्छे विद्वान् ब्राह्मण थे। वे वेद और वेदांगके जानकार थे। राजकार्यमें वे अवनिपालको अच्छी सहायता देते थे। उनमें एक

अवगुण था, वह यह कि-उन्हें अपने कुलका बड़ा घमण्डी था। उससे वे सबको नीची दृष्टिसे देखा करते थे। वे प्रातःकाल और सायंकाल नियमपूर्वक अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म करते थे। उनमें एक विशेष बात थी, वह यह कि वे जब राजकार्य करनेको राजसभामें जाते, तब उसके पहले कौतूहलसे पार्श्वनाथ जिनालयमें श्रीपार्श्वनाथकी पवित्र प्रतिमाका दर्शन कर जाया करते थे।

एक दिनकी बात है कि वे जब अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्य-कर्म करके जिनमन्दिर में आये तब उन्होंने एक चारित्रभूषण नामके मुनिराजको भगवान्के सम्मुख देवागम नामक स्तोत्रका पाठ करते देखा। उन सबमें प्रधान पात्रकेसरीने मुनिसे पूछा, क्या आप इस स्तोत्रका अर्थ भी जानते हैं? सुनकर मुनि बोले—मैं इसका अर्थ नहीं जानता। पात्रकेसरी फिर बोले—साधुराज, इस स्तोत्रको फिर तो एक बार पढ़ जाइये। मुनिराजने पात्रकेसरीके कहे अनुसार धीरे धीरे और पदान्तमें विश्रामपूर्वक फिर देवागमको पढ़ा, उसे सुनकर लोगोंका चित्त बड़ा प्रसन्न होता था।

पात्रकेसरीकी धारणाशक्ति बड़ी विलक्षण थी। उन्हें एक बारके सुननेसे ही सबका सब याद हो जाता था। देवागमको भी सुनते ही उन्होंने याद कर लिया। अब वे उसका अर्थ विचारने लगे। उस समय दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयोपशमसे उन्हें यह निश्चय हो गया कि जिन भगवान्ने जो जीवाजीवादिक पदार्थोंका स्वरूप कहा है, वही सत्य है और सत्य नहीं है। इसके बाद वे घरपर जाकर वस्तुका स्वरूप विचारने लगे। सब दिन उनका उसी तत्त्वविचार में बीता। रातको भी उनका यही हाल रहा। उन्होंने विचार किया—

जैनधर्ममें जीवादिक पदार्थोंको प्रमेय-जानने योग्य माना है और तत्त्वज्ञान—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण माना है। पर क्या आश्चर्य है कि अनुमान प्रमाणका लक्षण कहा ही नहीं गया। यह क्यों? जैन-धर्मके पदार्थोंमें उन्हें कुछ सन्देह हुआ, उससे उनका चित्त व्यग्र हो उठा। इतनेहीमें पद्मावती देवीका आसन कम्पायमान हुआ। वह उसी समय वहां आई और पात्रकेसरीसे उसने कहा—आपको जैन-धर्मके पदार्थोंमें कुछ सन्देह हुआ है, पर इसकी आप चिन्ता न करें। आप प्रातःकाल जब जिनभगवान्के दर्शन करनेको जाँयगे तब आपका सब सन्देह मिटकर आपको अनुमान प्रमाण का निश्चय हो जायगा। पात्रकेसरी से इस प्रकार कहकर पद्मावती जिनमन्दिर गई और वहां पार्श्वजिनकी प्रतिमाके फणपर एक श्लोक लिखकर वह अपने स्थानपर चली गई। वह श्लोक यह था—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अर्थात्—जहाँपर अन्यथानुपपत्ति है, वहाँ हेतुके दूसरे तीन रूप माननेसे क्या प्रयोजन है? तथा जहांपर अन्यथानुपपत्ति नहीं है, वहां हेतुके तीन रूप मानने से भी क्या फल है। भावार्थ-साध्यके अभाव में न मिलनेवालेको ही अन्यथानुपपन्न कहते हैं। इसलिये अन्यथानुपपत्ति हेतुका असाधारण रूप है। किन्तु बौद्ध इसको न मानकर हेतुके १-पक्षेसत्त्व, २-सपक्षेसत्त्व, ३-विपक्षाद्व्यावृत्ति ये तीन रूप मानता है, सो ठीक नहीं है। क्योंकि कहीं कहींपर त्रैरूप्य-के न होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके बलसे हेतु सद्धेतु होता है। और कहीं कहींपर त्रैरूप्यके होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके न होनेसे हेतु

सद्धेतु नहीं होता। जैसे एक मुहूर्तके अनन्तर शकटका उदय होगा, क्योंकि अभी कृत्तिकाका उदय है। यहाँपर पक्षसत्त्वके न होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके बलसे हेतु सद्धेतु है। और 'गर्भस्थ पुत्र श्याम होगा, क्योंकि यह मित्रका पुत्र है। यहांपर त्रैरूप्यके रहनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके न होनेसे हेतु सद्धेतु नहीं होता।' *

पात्रकेसरीने जब पद्मावतीको देखा तब ही उनकी श्रद्धा जैनधर्ममें खूब दृढ़ हो गई थी, जो कि सुख देनेवाली और संसारके परिवर्तनका नाश करनेवाली है। पश्चात् जब वे प्रातःकाल जिन-मन्दिर गये और श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमापर उन्हें अनुमान प्रमाणका लक्षण लिखा हुआ मिला तब तो उनके आनन्दका कुछ पार नहीं रहा। उसे देखकर उनका सब सन्देह दूर हो गया। जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है।

इसके बाद ब्राह्मण-प्रधान, पुण्यात्मा और जिनधर्मके परम श्रद्धालु पात्रकेसरी ने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने हृदयमें निश्चय कर लिया कि जिन भगवान् ही निर्दोष और संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले देव हो सकते हैं और जिनधर्म ही दोनों लोकमें सुख देनेवाला धर्म हो सकता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीकर्मके क्षयोपशमसे उन्हें सम्यक्त्वरूपी परम रत्नकी प्राप्ति हो गई—उससे उनका मन बहुत प्रसन्न रहने लगा।

अब उन्हें निरन्तर जिनधर्मके तत्त्वोंकी मीमांसाके सिवा कुछ सूझने ही न लगा—वे उनके विचारमें मग्न रहने लगे। उनकी

* इसका विशेष न्यायदीपिका आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिये।

यह हालत देखकर उनसे उन ब्राह्मणोंने पूछा—आज कल हम देखते हैं कि आपने मीमांसा, गौतमन्याय, वेदान्त आदिका पठन पाठन बिलकुल ही छोड़ दिया है और उनकी जगह जिनधर्मके तत्त्वोंका ही आप विचार किया करते हैं, यह क्यों? सुनकर पात्रकेसरीने उत्तर दिया—आप लोगोंको अपने वेदोंका अभिमान है—उनपर ही आपका विश्वास है, इसलिये आपकी दृष्टि सत्य बातकी ओर नहीं जाती। पर मेरा विश्वास आपसे उल्टा है-मुझे वेदोंपर विश्वास न होकर जैनधर्मपर विश्वास है, वही मुझे संसारमें सर्वोत्तम धर्म दिखता है। मैं आप लोगोंसे भी आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप विद्वान हैं—सच झूठकी परीक्षा कर सकते हैं, इसलिये जो मिथ्या हो—झूठा हो, उसे छोड़कर सत्यको ग्रहण कीजिये और ऐसा सत्य धर्म एक जिनधर्म ही है; इसलिये वह ग्रहण करने योग्य है।

पात्रकेसरी के इस उत्तरसे उन ब्राह्मणोंको सन्तोष नहीं हुआ। वे इसके विपरीत उनसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हो गये। राजाके पास जाकर उन्होंने पात्रकेसरीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की। राजाज्ञा के अनुसार पात्रकेसरी राजसभामें बुलवाये गये। उनका शास्त्रार्थ हुआ। उन्होंने वहाँ सब ब्राह्मणोंको पराजित कर संसारपूज्य और प्राणियोंको सुख देनेवाले जिनधर्मका खूब प्रभाव प्रगट किया और सम्यग्दर्शनकी महिमा प्रकाशित की।

उन्होंने एक जिनस्तोत्र बनाया, उसमें जिनधर्मके तत्त्वोंका विवेचन और अन्यमतोंके तत्त्वोंका बड़े पाण्डित्यके साथ खण्डन किया गया है। उसका पठन पाठन सबके लिये सुखका कारण है। पात्रकेसरी के श्रेष्ठ गुणों और अच्छे विद्वानों द्वारा उनका

आदर सम्मान देखकर अवनिपाल राजाने तथा उन ब्राह्मणोंने मिथ्यामतको छोड़ कर शुभ भावोंके साथ जैनमतको ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार पात्रकेसरीके उपदेशसे संसारसमुद्रसे पार करनेवाले सम्यग्दर्शनको और स्वर्ग तथा मोक्षके देनेवाले पवित्र जिनधर्मको स्वीकार कर अवनिपाल—आदिने पात्रकेसरीकी बड़ी श्रद्धाके साथ प्रशंसा की कि—द्विजोत्तम, तुमने जैनधर्मको बड़े पाण्डित्यके साथ खोज निकाला है, तुम्ही ने जिन भगवानके उपदेशित तत्त्वोंके मर्मको अच्छी तरह समझा है, तुम ही जिन भगवानके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले सच्चे भ्रमर हो, तुम्हारी जितनी स्तुति की जाय थोड़ी है। इस प्रकार—पात्रकेसरीके गुणों और पाण्डित्यकी हृदयसे प्रशंसा करके उन सबने उनका बड़ा आदर सम्मान किया।

जिस प्रकार पात्रकेसरीने सुखके कारण, परम पवित्र सम्यग्दर्शनका उद्योत कर—उसका संसारमें प्रकाश कर—राजाओंके द्वारा सम्मान प्राप्त किया, उसी प्रकार और भी जो जिन धर्मका श्रद्धानी होकर भक्तिपूर्वक सम्यग्दर्शनका उद्योत करेगा वह भी यशस्वी बनकर अन्तमें स्वर्ग या मोक्षका पात्र होगा।

कुन्दपुष्प, चन्द्र—आदिके समान निर्मल और कीर्तियुक्त श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। श्रुतसागर उनके गुरुभाई हैं। उन्हींकी आज्ञासे मैंने यह कथा श्रीसिंहनन्दी मुनिके पास रहकर बनाई है। वह इसलिये कि इसके द्वारा मुझे सम्यक्त्वरत्नकी प्राप्ति हो।

२—भट्टाकलंकदेवकी कथा

मैं जीवोंको सुखके देनेवाले जिनभगवानको नमस्कार कर, इस अध्याय में भट्टाकलंकदेवकी कथा लिखता हूँ जो कि सम्यग्ज्ञानका उद्योत करनेवाली है।

भारतवर्षमें एक मान्यखेट नामका नगर था। उसके राजा थे शुभतुंग और उनके मंत्रीका नाम पुरुषोत्तम था। पुरुषोत्तमकी गृहिणी पद्मावती थी। उसके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे अकलंक और निकलंक। वे दोनों भाई बड़े बुद्धिमान-गुणी थे।

एक दिनकी बात है कि अष्टाह्निका पर्वकी अष्टमीके दिन पुरुषोत्तम और उसकी गृहिणी बड़ी विभूतिके साथ चित्रगुप्त मुनिराजकी वन्दना करनेको गई। साथमें दोनों भाई भी गये। मुनिराजकी वन्दना कर इनके मातापिताने आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य लिया और साथ ही विनोदवश अपने दोनों पुत्रोंको भी उन्होंने ब्रह्मचर्य दे दिया।

कुछ दिनोंके बाद पुरुषोत्तमने अपने पुत्रोंके ब्याहकी आयोजना की। यह देख दोनों भाइयोंने मिलकर पितासे कहा—पिताजी! इतना भारी आयोजन, इतना परिश्रम आप किसलिये कर रहे हैं? अपने पुत्रोंकी भोली बात सुनकर पुरुषोत्तमने कहा—यह सब आयोजन तुम्हारे ब्याहके लिये है। पिताका उत्तर सुनकर दोनों भाइयोंने फिर कहा—पिताजी! अब हमारा ब्याह कैसा? आपने तो हमें ब्रह्मचर्य दे दिया था न? पिताने कहा नहीं, वह तो केवल विनोदसे दिया गया था। उन बुद्धिमान् भाइयोंने कहा—

पिताजी ! धर्म और व्रतमें विनोद कैसा ? यह हमारी समझमें नहीं आया। अच्छा आपने विनोदहीसे दिया सही, तो अब उसके पालन-करनेमें भी हमें लज्जा कैसी ? पुरुषोत्तमने फिर कहा—अस्तु। जैसा तुम कहते हो वही सही, पर तब तो केवल आठ ही दिनके लिये ब्रह्मचर्य दिया था न ? दोनों भाइयोंने कहा—पिताजी हमें आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य दिया गया था, इसका न तो आपने हमसे खुलासा कहा था और न आचार्य महाराजने ही। तब हम कैसे समझें कि वह व्रत आठ ही दिनके लिये था। इसलिये हम तो अब उसका आजन्म पालन करेंगे, ऐसी हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है। हम अब विवाह नहीं करेंगे। यह कह कर दोनों भाइयोंने घरका सब कारोबार छोड़कर और अपना चित्त शास्त्राभ्यासकी ओर लगाया। थोड़े ही दिनोंमें ये अच्छे विद्वान् बन गये। इनके समयमें बौद्धधर्मका बहुत जोर था। इसलिये इन्हें उसके तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई। उस समय मान्यखेटमें ऐसा कोई बौद्ध विद्वान् नहीं था, जिससे ये बौद्ध-धर्मका अभ्यास करते। इसलिये ये एक अज्ञ विद्यार्थीका वेश बना-कर महाबोधि नामक स्थानमें बौद्धधर्माचार्यके पास गये। आचार्यने इनकी अच्छी तरह परीक्षा करके कि—कहीं ये छली तो नहीं हैं, और जब उन्हें इनकी ओरसे विश्वास हो गया तब वे और और शिष्योंके साथ साथ इन्हें भी पढ़ाने लगे। ये भी अन्तरंगमें तो पक्के जिनधर्मी और बाहिर एक महामूर्ख बनकर स्वर व्यंजन सीखने लगे। निरन्तर बौद्धधर्म सुनते रहनेसे अकलंकदेवकी बुद्धि बड़ी विलक्षण हो गई। उन्हें एक ही बारके सुननेसे कठिनसे कठिन बात भी याद हो जाने लगी और निकलंकको दो बार सुननेसे। अर्थात्

अकलंक एक संस्थ और निकलंक दो संस्थ हो गये। इस प्रकार वहाँ रहते दोनों भाइयोंका बहुत समय बीत गया।

एक दिनकी बात है—बौद्धगुरु अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। उस समय प्रकरण था जैनधर्मके सप्तभंगी सिद्धान्तका। वहाँ कोई ऐसा अशुद्धपाठ आ गया जो बौद्धगुरुकी समझमें न आया, तब वे अपने व्याख्यानको वहीं समाप्तकर कुछ समयके लिये बाहर चले आये। अकलंक बुद्धिमान् थे, वे बौद्धगुरुके भाव समझ गये; इस-लिये उन्होंने बड़ी बुद्धिमानीके साथ उस पाठको शुद्ध कर दिया और उसकी खबर किसीको न होने दी। इतनेमें पीछे बौद्धगुरु आये। उन्होंने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। जो पाठ अशुद्ध था, वह अब देखते ही उनकी समझमें आ गया। यह देख उन्हें सन्देह हुआ कि अवश्य इस जगह कोई जिनधर्मरूप समुद्रका बढ़ानेवाला चन्द्रमा है और वह हमारे धर्मके नष्ट करनेकी इच्छासे बौद्धवेष धारणकर बौद्धशास्त्रका अभ्यास कर रहा है। उसका जल्दी ही पता लगाकर उसे मरवा डालना चाहिये। इस विचारके साथ ही बौद्धगुरुने सब विद्यार्थियोंको शपथ—प्रतिज्ञा आदि देकर पूछा, पर जैनधर्मीका पता उन्हें नहीं लगा। इसके बाद उन्होंने जिनप्रतिमा मँगवाकर उसे लाँघ जानेके लिये सबको कहा। सब विद्यार्थी तो लाँघ गये, अब अकलंककी बारी आई; उन्होंने अपने कपड़ेमेंसे एक सूतका सूक्ष्म धागा निकाल-कर उसे प्रतिमापर डाल दिया और उसे परिग्रही समझकर वे झटसे लाँघ गये। यह कार्य इतनी जल्दी किया गया कि किसीकी समझमें न आया। बौद्धगुरु इस युक्तिमें भी जब कृतकार्य नहीं हुए तब उन्होंने एक और नई युक्ति की। उन्होंने बहुतसे काँसीके बर्तन इकट्ठे

करवाये और उन्हें एक बड़ी भारी गौनमें भरकर वह बहुत गुप्त रीतिसे विद्यार्थियोंके सोनेकी जगहके पास रखवादी और विद्यार्थियों की देख रेखके लिये अपना एक एक गुप्तचर रख दिया।

आधी रातका समय था। सब विद्यार्थी निडर होकर निद्रा-देवीकी गोदमें सुखका अनुभव कर रहे थे। किसीको कुछ मालूम न था कि हमारे लिये क्या क्या षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं। एकाएक बड़ा विकराल शब्द हुआ। मानों आसमानसे बिजली टूटकर पड़ी। सब विद्यार्थी उस भयंकर आवाजसे काँप उठे। वे अपना जीवन बहुत थोड़े समयके लिये समझकर अपने उपास्य परमात्माका स्मरण कर उठे। अकलंक और निकलंक भी पंच नमस्कार मंत्रका ध्यान करने लग गये। पास ही बौद्धगुरुका जासूस खड़ा हुआ था। वह उन्हें बुद्ध भगवान्का स्मरण करनेकी जगह जिन भगवान्का स्मरण करते देखकर बौद्धगुरुके पास ले गया और गुरुसे उसने प्रार्थना की—प्रभो! आज्ञा कीजिये कि इन दोनों धूर्तोंका क्या किया जाय? ये ही जैनी हैं। सुनकर वह दुष्ट बौद्धगुरु बोला—इस समय रात थोड़ी बीती है, इसलिये इन्हें लेजाकर कैदखानेमें बन्द करदो, जब आधी-रात हो जाय तब इन्हें मार डालना। गुप्तचरने दोनों भाइयोंको लेजाकर कैदखानेमें बन्द कर दिया।

अपनेपर एक महाविपत्ति आई देखकर निकलंकने बड़े भाईसे कहा—भैया! हम लोगोंने इतना कष्ट उठाकर तो विद्या प्राप्त की, पर कष्ट है कि उसके द्वारा हम कुछ भी जिनधर्मकी सेवा न कर सके और एकाएक हमें मृत्युका सामना करना पड़ा। भाई की दुःखभरी बात सुनकर महा धीरवीर अकलंकने कहा—प्रिय! तुम बुद्धिमान् हो, तुम्हें भय करना उचित नहीं। घबराओ मत। अब भी हम अपने जीवनकी रक्षा कर सकेंगे। देखो, मेरे पास यह छत्री है, इसके द्वारा अपनेको छुपा कर हम लोग यहाँसे निकल चलते हैं और शीघ्र ही अपने स्थानपर जा पहुँचते हैं। यह विचार कर वे दोनों भाई दबे पाँव निकल गये और जल्दी जल्दी रास्ता तय करने लगे।

इधर जब आधी रात बीत चुकी, और बौद्धगुरुकी आज्ञा-नुसार उन दोनों भाइयोंके मारनेका समय आया; तब उन्हें पकड़ लानेके लिये नौकर लोग दौड़े गये, पर वे कैदखानेमें जाकर देखते हैं तो वहाँ उनका पता नहीं। उन्हें उनके एकाएक गायब हो जानेसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर कर क्या सकते थे। उन्हें उनके कहीं आस पास ही छुपे रहनेका सन्देह हुआ। उन्होंने आस पासके बन, जंगल, खंडहर, बावड़ी, कुँए, पहाड़, गुफायें—आदि सब एक एक करके ढूँढ डाले, पर उनका कहीं पता न चला। उन पापियोंको तब भी सन्तोष न हुआ सो उनके मारनेकी इच्छासे अश्व द्वारा उन्होंने यात्रा की। उनकी दयारूपी बेल क्रोधरूपी दावाग्निसे खूब ही झुलस गई थी, इसीलिये उन्हें ऐसा करनेको बाध्य होना पड़ा। दोनों भाई भागते जाते थे और पीछे फिर फिर कर देखते जाते थे, कि कहीं किसीने हमारा पीछा तो नहीं किया है। पर उनका सन्देह ठीक निकला। निकलंकने दूर तक देखा तो उसे आकाशमें धूल उठती हुई दीख पड़ी। उसने बड़े भाईसे कहा—भैया! हम लोग जितना कुछ करते हैं, वह सब निष्फल जाता है। जान पड़ता है दैवने अपनेसे पूर्ण शत्रुता बांधी है। खेद है—परम पवित्र जिनशासनकी

हम लोग कुछ भी सेवा न कर सके और मृत्युने बीचहीमें आकर धर दबाया। भैया! देखो, तो पापी लोग हमें मारनेके लिये पीछा किये चले आ रहे हैं। अब रक्षा होना असंभव है। हाँ मुझे एक उपाय सूझ पड़ा है और उसे आप करेंगे तो जैनधर्मका बड़ा उपकार होगा। आप बुद्धिमान हैं, एक संस्थ हैं। आपके द्वारा जैनधर्मका खूब प्रकाश होगा। देखते हैं—वह सरोवर है। उसमें बहुतसे कमल हैं। आप जल्दी जाइये और तालाब में उतरकर कमलोंमें अपनेको छुपा लीजिये। जाइये, जल्दी कीजिये; देरीका काम नहीं है। शत्रु पास पहुँचे आ रहे हैं। आप मेरी चिन्ता न कीजिये। मैं भी जहाँ तक बन पड़ेगा, जीवन की रक्षा करूँगा। और यदि मुझे अपना जीवन दे देना भी पड़े तो मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं, जब कि मेरे प्यारे भाई जीते रहकर पवित्र जिन शासनकी भरपूर सेवा करेंगे। आप जाइये, मैं भी अब यहाँ से भागता हूँ।

अकलंक की आँखोंसे आँसुओंकी धार बह चली। उनका गला भ्रातृ-प्रेमसे भर आया। वे भाई से एक अक्षर भी न कह पाये कि निकलंक वहाँ से भाग खड़ा हुआ। लाचार होकर अकलंकको अपने जीवनकी-नहीं, पवित्र जिनशासनकी रक्षाके लिये कमलोंमें छुपना पड़ा। उनके लिये कमलोंका आश्रय केवल दिखाऊ था। वास्तवमें तो उन्होंने जिसके बराबर संसारमें कोई आश्रय नहीं हो सकता, उस जिन शासनका आश्रय लिया था।

निकलंक भाईसे विदा हो जी छोड़कर भागा जा रहा था। रास्तेमें उसे एक धोबी कपड़े धोते हुये मिला। धोबीने आकाशमें धूल की घटा छाई हुई देखकर निकलंकसे पूछा, यह क्या हो रहा है? और तुम ऐसे जी छोड़कर क्यों भागे जा रहे हो? निकलंकने कहा—पीछे शत्रुओंकी सेना आरही है। उन्हें जो मिलता है उसे ही वह मार डालती है। इसीलिये मैं भागा जा रहा हूँ। ऐसा सुनतेही धोबी भी कपड़े वगैरह सब वैसे ही छोड़कर निकलक के साथ भाग खड़ा हुआ। वे दोनों बहुत भागे, पर आखिर कहाँ तक भाग सकते थे? सवारों ने उन्हें धर पकड़ा और उसी समय अपनी चमचमाती हुई तलवार से दोनोंका शिर काटकर वे अपने मालिक के पास ले गये। सच है-पवित्र जिनधर्म-अहिंसा धर्म-से रहित और मिथ्यात्व को अपनाये हुए पापी लोगोंके लिए ऐसा कौन महापाप बाकी रह जाता है, जिसे वे नहीं करते। जिनके हृदयमें जीव मात्रको सुख पहुँचाने वाले जिनधर्मका लेश भी नहीं है, उन्हें दूसरोंपर दया आ भी कैसे सकती है?

उधर शत्रु अपना कामकर वापिस लौटे और इधर अकलंक अपनेको निर्विघ्न समझ सरोवर से निकले और निडर होकर आगे बढ़े। वहाँसे चलते चलते वे कुछ दिनों बाद कलिंग देशान्तर्गत रत्नसंचयपुर नामक शहरमें पहुँचे। इसके बाद का हाल हम नीचे लिखते हैं—

उससमय रत्नसंचयपुरके राजा हिमशीतल थे। उनकी रानी का नाम मदनसुन्दरी था। वह जिन भगवान की बड़ी भक्त थी। उसने स्वर्ग और मोक्ष सुखके देने वाले पवित्र जिनधर्मकी प्रभावनाके लिये अपने बनवाये हुये जिनमन्दिरमें फाल्गुन शुक्ल अष्टमीके दिनसे रथ यात्रोत्सव का आरम्भ करवाया था। उसमें उसने बहुत द्रव्य व्यय किया था।

वहाँ संघश्री नामक बौद्धोंका प्रधान आचार्य रहता था। उसे महारानीका कार्य सहन नहीं हुआ। उसने महाराजसे कहकर रथ-यात्रोत्सव अटका दिया और साथ ही वहाँ जिनधर्मका प्रचार न देख-कर शास्त्रार्थके लिये घोषणा भी करवा दी। महाराज शुभतुंगने अपनी महारानीसे कहा—प्रिये, जबतक कोई जैन विद्वान बौद्धगुरुके साथ शास्त्रार्थ करके जिनधर्मका प्रभाव न फैलावेगा तबतक तुम्हारा उत्सव होना कठिन है। महाराजकी बातें सुनकर रानीको बड़ा खेद हुआ। पर वह कर ही क्या सकती थी। उस समय कौन उसकी आशा पूरी कर सकता था। वह उसी समय जिनमन्दिर गई और वहाँ मुनियोंको नमस्कार कर उनसे बोली—प्रभो, बौद्धगुरुने मेरा रथयात्रोत्सव रुकवा दिया है। वह कहता है कि—पहले मुझसे शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त करलो, फिर रथोत्सव करना। बिना ऐसा किये उत्सव न हो सकेगा। इसलिये मैं आपके पास आई हूं। बतलाइए जैनदर्शनका अच्छा विद्वान कौन है, जो बौद्धगुरुको जीत-कर मेरी इच्छा पूरी करे? सुनकर मुनि बोले—इधर आसपास तो ऐसा विद्वान नहीं दिखता जो बौद्धगुरुका सामना कर सके। हाँ मान्यखेट नगरमें ऐसे विद्वान् अवश्य हैं। उनके बुलवानेका आप प्रयत्न करें तो सफलता प्राप्त हो सकती है। रानीने कहा—वाह, आपने बहुत ठीक कहा, सर्प तो शिरके पास फुंकार कर रहा है और कहते हैं कि गारुड़ी दूर है। भला, इससे क्या सिद्धि हो सकती है? अस्तु। जान पड़ा कि आप लोग इस विपत्तिका सद्यः प्रतिकार नहीं कर सकते। दैवको जिनधर्मका पतन कराना ही इष्ट मालूम देता है। जब मेरे पवित्र धर्मकी दुर्दशा होगी तब मैं ही जीकर क्या

करूंगी? यह कहकर महारानी राजमहलसे अपना सम्बन्ध छोड़कर जिनमन्दिर गई और उसने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की—"जब संघश्रीका मिथ्याभिमान चूर्ण होकर मेरा रथोत्सव बड़े ठाठबाटके साथ निकलेगा और जिनधर्मकी खूब प्रभावना होगी, तब ही मैं भोजन करूंगी, नहीं तो वैसे ही निराहार रहकर मर मिटूंगी; पर अपनी आँखोंसे पवित्र जैनशासनकी दुर्दशा कभी नहीं देखूँगी।" ऐसा हृदय में निश्चय कर मदनसुन्दरी जिन भगवान्के सन्मुख कायोत्सर्ग धारण कर पंचनमस्कार मंत्रकी आराधना करने लगी। उस समय उसकी ध्यान-निश्चल अवस्था बड़ी ही मनोहर दीख पड़ती थी। मानों—सुमेरुगिरिकी श्रेष्ठ निश्चल चूलिका हो।

"भव्यजीवोंको जिनभक्तिका फल अवश्य मिलता है।" इस नीतिके अनुसार महारानी भी उससे वंचित नहीं रही। महारानीके निश्चल ध्यानके प्रभावसे पद्मावतीका आसन कंपित हुआ। वह आधीरातके समय आई और महारानीसे बोली—देवी, जब कि तुम्हारे हृदयमें जिनभगवान्के चरण कमल शोभित हैं, तब तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उनके प्रसादसे तुम्हारा मनोरथ नियमसे पूर्ण होगा। सुनो, कल प्रातःकाल ही अकलंकदेव इधर आवेंगे, वे जैनधर्मके बड़े भारी विद्वान हैं। वे ही संघश्रीका दर्प चूर्णकर जिनधर्मकी खूब प्रभावना करेंगे और तुम्हारा रथोत्सव-का कार्य निर्विघ्न समाप्त करेंगे। उन्हें अपने मनोरथोंके पूर्ण करने-वाले मूर्त्तिमान शरीर समझो। यह कहकर पद्मावती अपने स्थान चली गई।

देवीकी बात सुनकर महारानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने

बड़ी भक्तिके साथ जिनभगवान्‌की स्तुति की और प्रातःकाल होते ही महाभिषेक पूर्वक पूजा की। इसके बाद उसने अपने राजकीय प्रतिष्ठित पुरुषोंको अकलंकदेव के ढूंढनेको चारों ओर दौड़ाये। उनमें जो पूर्व दिशाकी ओर गये थे, उन्होंने एक बगीचेमें अशोक वृक्षके नीचे बहुतसे शिष्योंके साथ एक महात्माको बैठे देखा। उनके किसी एक शिष्यसे महात्माका परिचय और नाम धाम पूछकर वे अपनी मालकिनके पास आये और सब हाल उन्होंने उससे कह सुनाया। सुनकर ही वह धर्मवत्सला खानपान आदि सब सामग्री लेकर अपने सधर्मियोंके साथ बड़े वैभवसे महात्मा अकलंकके साम्हने गई, वहाँ पहुँचकर उसने बड़े प्रेम और भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया। उनके दर्शनसे रानीको अत्यन्त आनन्द हुआ। जैसे सूर्यको देखकर कमलिनीको और मुनियोंका तत्त्वज्ञान देखकर बुद्धिको आनन्द होता है।

इसके बाद रानीने धर्मप्रेमके वश होकर अकलंकदेवकी चन्दन, अगुरु, फल, फूल, वस्त्रादिसे बड़े विनयके साथ पूजा की और पुनः प्रणाम कर वह उनके साम्हने बैठ गई। उसे आशीर्वाद देकर पवित्रात्मा अकलंक बोले—देवी, तुम अच्छी तरह तो हो, और सब संघ भी अच्छी तरह है न? महात्माके वचनोंको सुनकर रानीकी आँखोंसे आँसू बह निकले, उसका गला भर आया। वह बड़ी कठिनतासे बोली—प्रभो, संघ है तो कुशल, पर इस समय उसका घोर अपमान हो रहा है; उसका मुझे बड़ा कष्ट है। यह कहकर उसने संघश्रीका सब हाल अकलंकसे कह सुनाया। पवित्र धर्मका अपमान अकलंक न सह सके। उन्हें क्रोध हो आया। वे बोले—वह वराक संघश्री मेरे पवित्र धर्मका अपमान करता है, पर वह मेरे साम्हने है

कितना, इसकी उसे खबर नहीं है। अच्छा देखूंगा उसके अभिमान को कि वह कितना पाण्डित्य रखता है। मेरे साथ खास बुद्ध तक तो शास्त्रार्थ करनेकी हिम्मत नहीं रखता, तब वह बेचारा किस गिनती में है? इस तरह रानीको सन्तुष्ट करके अकलंकने संघश्रीके शास्त्रार्थके विज्ञापनकी स्वीकारता उसके पास भेज दी और आप बड़े उत्सवके साथ जिनमन्दिर आ पहुँचे।

पत्र संघश्रीके पास पहुँचा। उसे देखकर और उसकी लेखन शैलीको पढ़कर उसका चित्त क्षुभित हो उठा। आखिर उसे शास्त्रार्थके लिये तैयार होना ही पड़ा।

अकलंकके आनेके समाचार महाराज हिमशीतलके पास पहुँचे। उन्होंने उसी समय बड़े आदर सम्मानके साथ उन्हें राजसभा में बुलवाकर संघश्रीके साथ उनका शास्त्रार्थ करवाया। संघश्री उनके साथ शास्त्रार्थ करनेको तो तैयार हो गया, पर जब उसने अकलंकके प्रश्नोत्तर करनेका पाण्डित्य देखा और उससे अपनी शक्तिकी तुलना की तब उसे ज्ञात हुआ कि मैं अकलंकके साथ शास्त्रार्थ करनेमें अशक्त हूँ; पर राजसभामें ऐसा कहना भी उसने उचित न समझा। क्योंकि उससे उसका अपमान होता। तब उसने एक नई युक्ति सोचकर राजासे कहा—महाराज, यह धार्मिक विषय है, इसका निकाल होना कठिन है। इसलिये मेरी इच्छा है कि यह शास्त्रार्थ सिलसिलेवार तबतक चलना चाहिये जबतक कि एक पक्ष पूर्ण निरुत्तर न हो जाय। राजाने अकलंककी अनुमति लेकर संघश्रीके कथनको मान लिया। उस दिनका शास्त्रार्थ बन्द हुआ। राजसभा भंग हुई।

अपने स्थानपर आकर संघश्रीने जहाँ जहाँ बौद्धधर्मके विद्वान् रहते थे, उनके बुलवानेको अपने शिष्योंको दौड़ाया और आपने रात्रिके समय अपने धर्मकी अधिष्ठात्री देवीकी आराधना की। देवी उपस्थित हुई। संघश्रीने उससे कहा—देखती हो, धर्मपर बड़ा संकट उपस्थित हुआ है। उसे दूर कर धर्मकी रक्षा करनी होगी। अकलंक बड़ा पंडित है। उसके साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त करना असंभव था। इसी लिये मैंने तुम्हें कष्ट दिया है। यह शास्त्रार्थ मेरे द्वारा तुम्हें करना होगा और अकलंकको पराजित कर बुद्धधर्मकी महिमा प्रगट करनी होगी। बोलो—क्या कहती हो? उत्तरमें देवीने कहा—हाँ मैं शास्त्रार्थ करूंगी सही, पर खुली सभामें नहीं; किन्तु पड़दे के भीतर घड़ेमें रहकर। 'तथास्तु' कहकर संघश्रीने देवीको विसर्जित किया और आप प्रसन्नताके साथ दूसरी निद्रा—देवीकी गोदमें जा लेटा।

प्रातःकाल हुआ। शौच, स्नान, देवपूजन—आदि नित्य कर्मसे छुट्टी पाकर संघश्री राजसभामें पहुंचा और राजासे बोला—महाराज, हम आजसे शास्त्रार्थ पड़देके भीतर रहकर करेंगे। हम शास्त्रार्थके समय किसीका मुँह नहीं देखेंगे। आप पूछेंगे क्यों? इसका उत्तर अभी न देकर शास्त्रार्थके अन्तमें दिया जायगा। राजा संघश्रीके कपट—जालको कुछ नहीं समझ सके। उसने जैसा कहा वैसा उन्होंने स्वीकार कर उसी समय वहाँ एक पड़दा लगवा दिया। संघश्रीने उसके भीतर जाकर बुद्धभगवान्की पूजा की और देवीकी पूजा कर उसका एक घड़ेमें आह्वान किया। धूर्त लोग बहुत कुछ छल

कपट करते हैं, पर अन्तमें उसका फल अच्छा न होकर बुरा ही होता है।

इसके बाद घड़ेकी देवी अपनेमें जितनी शक्ति थी उसे प्रगट कर अकलंकके साथ शास्त्रार्थ करने लगी। इधर अकलंकदेव भी देवीके प्रतिपादन किये हुए विषयका अपनी दिव्य भारती द्वारा खण्डन और अपने पक्षका समर्थन तथा परपक्षका खण्डन करनेवाले परम पवित्र अनेकान्त–स्याद्वादमतका समर्थन बड़ेही पाण्डित्यके साथ निडर होकर करने लगे। इस प्रकार शास्त्रार्थ होते होते छह महिना बीत गये, पर किसीकी विजय न हो पाई। यह देखकर अकलंकदेवको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा—संघश्री साधारण पढ़ा लिखा और जो पहले ही दिन मेरे सम्मुख थोड़ी देर भी न ठहर सका था, वह आज बराबर छह महिनासे शास्त्रार्थ करता चला आता है; इसका क्या कारण है, सो नहीं जान पड़ता। उन्हें इसकी बड़ी चिन्ता हुई। पर वे कर ही क्या सकते थे। एक दिन इसी चिन्तामें वे डूबे हुए थे कि इतनेमें जिनशासनकी अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी आई और अकलंकदेवसे बोली—प्रभो! आपके साथ शास्त्रार्थ करनेकी मनुष्य-मात्रमें शक्ति नहीं है और बेचारा संघश्री भी तो मनुष्य है तब उसकी क्या मजाल जो वह आपसे शास्त्रार्थ करे? पर यहाँ तो बात कुछ और ही है। आपके साथ जो शास्त्रार्थ करता है वह संघश्री नहीं है, किन्तु बुद्धधर्मकी अधिष्ठात्री तारा नामकी देवी है। इतने दिनोंसे वही शास्त्रार्थ कर रही है। संघश्रीने उसकी आराधना कर यहाँ उसे बुलाया है। इसलिये कल जब शास्त्रार्थ होने लगे और देवी उस समय जो कुछ प्रतिपादन करे तब आप उससे उसी विषयका फिरसे

प्रतिपादन करनेके लिये कहिये। वह उसे फिर न कह सकेगी और तब उसे अवश्य नीचा देखना पड़ेगा। यह कहकर देवी अपने स्थान-पर चली गई। अकलंकदेवकी चिन्ता दूर हुई। वे बड़े प्रसन्न हुए।

प्रातःकाल हुआ। अकलंकदेव अपने नित्यकर्मसे मुक्त होकर जिनमन्दिर गये। बड़े भक्तिभावसे उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। इसके बाद वे वहाँसे सीधे राजसभामें आये। उन्होंने महाराज शुभतुंगको सम्बोधन करके कहा—राजन्! इतने दिनोंतक मैंने जो शास्त्रार्थ किया, उसका यह मतलब नहीं था कि मैं संघश्रीको पराजित नहीं कर सका। परन्तु ऐसा करनेसे मेरा अभिप्राय जिनधर्मका प्रभाव बतलानेका था। वह मैंने बतलाया। पर अब मैं इस वादका अन्त करना चाहता हूँ। मैंने आज निश्चय कर लिया है कि मैं आज इस वादकी समाप्ति करके ही भोजन करूंगा। ऐसा कहकर उन्होंने पड़देकी ओर देखकर कहा—क्या जैनधर्मके सम्बन्धमें कुछ और कहना बाकी है या मैं शास्त्रार्थ समाप्त करूं? वे कहकर जैसे ही चुप रहे कि पड़देकी ओरसे फिर वक्तव्य आरंभ हुआ। देवी अपना पक्ष समर्थन करके चुप हुई कि अकलंकदेवने उसी समय कहा—जो विषय अभी कहा गया है, उसे फिरसे कहो? वह मुझे ठीक नहीं सुन पड़ा। आज अकलंकका यह नया ही प्रश्न सुनकर देवीका साहस एक साथ ही न जाने कहाँ चला गया। देवता जो कुछ बोलते वे एक ही बार बोलते हैं—उसी बातको वे पुनः नहीं बोल पाते। तारा देवीका भी यही हाल हुआ। वह अकलंकदेवके प्रश्नका उत्तर न दे सकी। आखिर उसे अपमानित होकर भाग जाना पड़ा। जैसे सूर्यो-दयसे रात्रि भाग जाती है।

इसके बाद ही अकलंकदेव उठे और पड़देको फाड़कर उसके भीतर घुस गये। वहाँ जिस घड़ेमें देवीका आह्वान किया गया था, उसे उन्होंने पाँवकी ठोकरसे फोड़ डाला-संघश्री सरीखे जिनशासनके शत्रुओंका-मिथ्यात्वियोंका-अभिमान चूर्ण किया। अकलंकके इस विजय और जिनधर्मकी प्रभावनासे मदनसुन्दरी और सर्वसाधारणको बड़ा आनन्द हुआ। अकलंकने सब लोगोंके सामने जोर देकर कहा—सज्जनो! मैंने इस धर्मशून्य संघश्रीको पहले ही दिन पराजित कर दिया था; किन्तु इतने दिन जो मैंने देवीके साथ शास्त्रार्थ किया, वह जिनधर्मका माहात्म्य प्रगट करनेके लिये और सम्यग्ज्ञानका लोगोंके हृदयपर प्रकाश डालनेके लिये था। यह कहकर अकलंकदेव ने इस श्लोकको पढ़ा—

> नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
> नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुध्या मया।
> राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
> बौद्धौघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फालितः॥

अर्थात्—महाराज, हिमशीतलकी सभामें मैंने सब बौद्ध-विद्वानोंको पराजित कर सुगतको ठुकराया, यह न तो अभिमानके वश होकर किया गया और न किसी प्रकारके द्वेषभावसे, किन्तु नास्तिक बनकर नष्ट होते हुए जनोंपर मुझे बड़ी दया आई, इसलिये उनकी दयासे बाध्य होकर मुझे ऐसा करना पड़ा।

उस दिनसे बौद्धोंका राजा और प्रजाके द्वारा चारों ओर अपमान होने लगा। किसीकी बुद्धधर्मपर श्रद्धा नहीं रही। सब उसे

घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। यही कारण है—बौद्ध लोग यहाँसे भागकर विदेशोंमें जा बसे।

महाराज हिमशीतल और प्रजाके लोग जिनशासनकी प्रभावना देखकर बड़े खुश हुए। सबने मिथ्यात्वमत छोड़कर जिनधर्म स्वीकार किया और अकलंकदेवका सोने, रत्न आदिके अलंकारोंसे खूब आदर सम्मान किया, खूब उनकी प्रशंसा की। सच बात है—जिनभगवान्‌के पवित्र सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे कौन सत्कारका पात्र नहीं होता।

अकलंकदेवके प्रभावसे जिनशासनका उपद्रव टला देखकर महारानी मदनसुन्दरीने पहलेसे भी कई गुणे उत्साहसे रथ निकलवाया। रथ बड़ी सुन्दरताके साथ सजाया गया था। उसकी शोभा देखते ही बन पड़ती थी। वह बेश कीमती वस्त्रोंसे शोभित था, छोटी छोटी घंटियाँ उसके चारों ओर लगी हुई थीं, उनकी मधुर आवाज एक बड़े घंटेकी आवाजमें मिलकर, जो कि उन घंटियोंको ठीक बीचमें था, बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी, उसपर रत्नों, और मोतियोंकी मालायें अपूर्व शोभा दे रही थीं, उसके ठीक बीचमें रत्नमयी सिंहासनपर जिनभगवान्‌की बहुत सुन्दर प्रतिमा शोभित थी। वह मौलिक छत्र, चामर, भामण्डल—आदिसे अलंकृत थी। रथ चलता जाता था और उसके आगे आगे भव्यपुरुष बड़ी भक्तिके साथ जिनभगवान्‌की जय बोलते हुए और भगवान्‌पर अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी, जिनकी महकसे सब दिशायें सुगन्धित होती थीं, वर्षा करते चले जाते थे। चारणलोग भगवान्‌की स्तुति पढ़ते जाते थे। कुल कामिनियाँ सुन्दर सुन्दर गीत गाती जाती थीं। नर्तकियाँ

नृत्य करती जाती थीं। अनेक प्रकारके बाजोंका सुन्दर शब्द दर्शकोंके मनको अपनी ओर आकर्षित करता था। इन सब शोभाओंसे रथ ऐसा जान पड़ता था, मानो पुण्यरूपी रत्नोंके उत्पन्न करनेको चलनेवाला वह एक दूसरा रोहण पर्वत उत्पन्न हुआ है। उस समय जो याचकोंको दान दिया जाता था, वस्त्राभूषण वितीर्ण किये जाते थे, उससे रथकी शोभा एक चलते हुए कल्पवृक्षकीसी जान पड़ती थी। इस रथकी शोभाका कहांतक वर्णन करें ? आप इसीसे अनुमान कर लीजिये कि जिसकी शोभाको देखकर ही बहुतसे अन्यधर्मी लोगोंने जब सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया तब उसकी सुन्दरताका क्या ठिकाना है ? इत्यादि दर्शनीय वस्तुओंसे सजाकर रथ निकाला गया, उसे देखकर यही जान पड़ता था, मानों महादेवी मदनसुन्दरीकी यशोराशि ही चल रही है। वह रथ भव्य-पुरुषोंके लिये सुखका देनेवाला था। उस सुन्दर रथकी हम प्रतिदिन भावना करते हैं—उसका ध्यान करते हैं। वह हमें सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी प्रदान करे।

जिस प्रकार अकलंकदेवने सम्यग्ज्ञानकी प्रभावना की, उसका महत्त्व सब साधारण लोगोंके हृदयपर अंकित करदिया उसी प्रकार और और भव्य पुरुषोंको भी उचित है कि वे भी अपनेसे जिस तरह बन पड़े जिनधर्मकी प्रभावना करें—जैनधर्मके प्रति उनका जो कर्तव्य है उसे वे पूरा करें।

संसारमें जिनभगवान्‌की सदा जय हो, जिन्हें इन्द्र, धरणेन्द्र नमस्कार करते हैं और जिनका ज्ञानरूपी प्रदीप सारे संसारको सुख देनेवाला है।

श्रीप्रभाचन्द्र मुनि मेरा कल्याण करें, जो गुण—रत्नोंके उत्पन्न होनेके स्थान-पर्वत हैं और ज्ञानके समुद्र हैं।

३—सनत्कुमार चक्रवर्तीकी कथा।

स्वर्ग और मोक्ष सुखके देनेवाले श्रीअर्हत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार करके मैं सम्यक्चारित्रका उद्योत करनेवाले चौथे सनत्कुमार चक्रवर्तीकी कथा लिखता हूँ।

अनन्तवीर्य भारतवर्षके अन्तर्गत वीतशोक नामक शहरके राजा थे। उनकी महारानीका नाम सीता था। हमारे चरित्रनायक सनत्कुमार इन्हींके पुण्यके फल थे। वे चक्रवर्ती थे। सम्यग्दृष्टियोंमें प्रधान थे। उन्होंने छहों खण्ड पृथ्वी अपने वश करली थी। उनकी विभूतिका प्रमाण ऋषियोंने इस प्रकार लिखा है—नवनिधि, चौदह-रत्न, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़ शूरवीर, छयानवे करोड़ धान्यसे भरे हुए ग्राम, छयानवे हजार सुन्दरियां और सदा सेवामें तत्पर रहनेवाले बत्तीस हजार बड़े बड़े राजा, इत्यादि संसार—श्रेष्ठ सम्पत्तिसे वे युक्त थे। देव विद्याधर उनकी सेवा करते थे। वे बड़े सुन्दर थे, बड़े भाग्यशाली थे। जिन-धर्मपर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। वे अपना नित्य नैमित्तिक कर्म श्रद्धाके साथ करते—कभी उनमें विघ्न नहीं आने देते। इसके सिवा अपने विशाल राज्यका वे बड़ी नीतिके साथ पालन करते और सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका इन्द्र अपनी सभामें पुरुषोंके रूप-

सौंदर्यकी प्रशंसा कर रहा था। सभामें बैठे हुए एक विनोदी देवने उनसे पूछा—प्रभो! जिस रूपगुणकी आप बेहद तारीफ कर रहे हैं, क्या, ऐसा रूप भारतवर्षमें किसीका है भी या केवल यह प्रशंसा ही मात्र है?

उत्तरमें इन्द्रने कहा—हाँ, इस समय भी भारतवर्षमें एक ऐसा पुरुष है, जिसके रूपकी मनुष्य तो क्या देव भी तुलना नहीं कर सकते। उसका नाम है सनत्कुमार चक्रवर्ती।

इन्द्रके द्वारा देव—दुर्लभ सनत्कुमार चक्रवर्तीके रूपसौंदर्य-की प्रशंसा सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नामके दो देव चक्रवर्ती की रूपसुधाके पानकी बढ़ी हुई लालसाको किसी तरह नहीं रोक सके। वे उसी समय गुप्त वेषमें स्वर्गधराको छोड़कर भारतवर्षमें आये और स्नान करते हुए चक्रवर्तीका वस्त्रालंकार रहित, पर उस हालतमें भी त्रिभुवनप्रिय और सर्व सुन्दर रूपको देखकर उन्हें अपना शिर हिलाना ही पड़ा। उन्हें मानना पड़ा कि चक्रवर्तीका रूप वैसा ही सुन्दर है, जैसा इन्द्रने कहा था और सचमुच वह रूप देवोंके लिये भी दुर्लभ है। इसके बाद उन्होंने अपना असली वेष बनाकर पहरेदारसे कहा तुम जाकर अपने महाराजसे कहो कि आपके रूपको देखनेके लिये स्वर्गसे दो देव आये हुए हैं। पहरेदारने जाकर महाराजसे देवोंके आनेका हाल कहा। चक्रवर्तीने उसी समय अपने शृंगार भवनमें पहुँचकर अपनेको बहुत अच्छी तरह वस्त्राभूषणोंसे सिंगारा। इसके बाद वे सिंहासनपर आकर बैठे और देवोंको राजसभामें आनेकी आज्ञा दी।

देव राजसभामें आये और चक्रवर्तीका रूप उन्होंने देखा।

देखते ही वे खेदके साथ बोल उठे, महाराज ! क्षमा कीजिये; हमें बड़े दु:खके साथ कहना पड़ता है कि स्नान करते समय वस्त्राभूषणरहित आपके रूपमें जो सुन्दरता, जो माधुरी हमने छुपकर देख पाई थी, वह अब नहीं रही। इससे जैनधर्मका यह सिद्धान्त बहुत ठीक है कि संसारकी सब वस्तुएं क्षण-क्षणमें परिवर्त्तित होती हैं—सब क्षणभंगुर हैं।

देवोंकी विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात सुनकर राजकर्मचारियोंने तथा और और उपस्थित सभ्योंने देवोंसे कहा—हमें तो महाराजके रूपमें पहलेसे कुछ भी कमी नहीं दिखती, न जाने तुमने कैसे पहली सुन्दरतासे इसमें कमी बतलाई है। सुनकर देवोंने सबको उसका निश्चय करानेके लिये एक जल भरा हुआ घड़ा मँगवाया और उसे सबको बतलाकर फिर उसमेंसे तृण द्वारा एक जलकी बूंद निकाल ली। उसके बाद फिर घड़ा सबको दिखलाकर उन्होंने उनसे पूछा—बतलाओ पहले जैसे घड़ेमें जल भरा था अब भी वैसा ही भरा है, पर तुम्हें पहलेसे इसमें कुछ विशेषता दिखती है क्या ? सबने एक मत होकर यही कहा कि नहीं। तब देवोंने राजासे कहा—महाराज, घड़ा पहले जैसा था, उसमेंसे एक बूंद जलकी निकाल ली गई तब भी वह इन्हें वैसा ही दिखता है। इसी तरह हमने आपका जो रूप पहले देखा था, वह अब नहीं रहा। वह कमी हमें दिखती है, पर इन्हें नहीं दिखती। यह कहकर वे दोनों देव स्वर्गकी ओर चले गये।

चक्रवर्तीने इस चमत्कारको देखकर विचारा—स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चांदी—आदि जितनी

सम्पत्ति है, वह सब बिजलीकी तरह क्षणभरमें देखते देखते नष्ट होनेवाली है और संसार दुःखका समुद्र है। यह शरीर भी, जिसे दिनरात प्यार किया जाता है, घिनौना है, सन्तापको बढ़ानेवाला है, दुर्गन्धयुक्त है और अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ है। तब इस क्षणविनाशी शरीरके साथ कौन बुद्धिमान् प्रेम करेगा ? ये पांच इन्द्रियोंके विषय ठगोंसे भी बढ़कर ठग हैं। इनके द्वारा ठगाया हुआ प्राणी एक पिशाचिनीकी तरह उनके वश होकर अपनी सब सुधि भूल जाता है और फिर जैसा वे नाच नचाते हैं नाचने लगता है। मिथ्यात्व जीवका शत्रु है, उसके वश हुए जीव अपने आत्महितके करनेवाले-संसारके दुःखोंसे छुटाकर अविनाशी सुखके देनेवाले-पवित्र जिनधर्मसे भी प्रेम नहीं करते। सच भी तो है—पित्तज्वरवाले पुरुषको दूध भी कड़वा ही लगता है। परन्तु मैं तो अब इन विषयोंके जालसे अपने आत्माको छुड़ाऊंगा। मैं आज ही मोहमायाका नाशकर अपने हितके लिये तैयार होता हूँ। यह विचार कर वैरागी चक्रवर्तीने जिनमन्दिरमें पहुँचकर सब सिद्धिकी प्राप्ति करानेवाले भगवान्की पूजा की, याचकोंको दयाबुद्धिसे दान दिया और उसी समय पुत्रको राज्यभार देकर आप वनकी ओर रवाना हो गये; और चारित्रगुप्त मुनिराजके पास पहुँचकर उनसे जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि संसारका हित करनेवाली है। इसके बाद वे पंचाचार आदि मुनिव्रतोंका निरतिचार पालन करते हुए कठिनसे कठिन तपश्चर्या करने लगे। उन्हें न शीत सताती है और न आताप सन्तापित करता है। न उन्हें भूखकी परवा है और न प्यास की। वनके जीवजन्तु उन्हें खूब सताते हैं, पर वे उससे अपनेको कुछ भी दुखी ज्ञान

नहीं करते। वास्तवमें जैन साधुओंका मार्ग बड़ा कठिन है, उसे ऐसे ही धीर वीर महात्मा पाल सकते हैं। साधारण पुरुषोंकी उसके पास गम्य नहीं। चक्रवर्ती इस प्रकार आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आगे बढ़ने लगे।

एक दिनकी बात है कि—वे आहारके लिये शहरमें गये। आहार करते समय कोई प्रकृति-विरुद्ध वस्तु उनके खानेमें आ गई। उसका फल यह हुआ कि उनका सारा शरीर खराब हो गया, उसमें अनेक भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न हो गईं और सबसे भारी व्याधि तो यह हुई कि उनके सारे शरीरमें कोढ़ फूट निकली। उससे रुधिर, पीप बहने लगा, दुर्गंध आने लगी। यह सब कुछ हुआ पर इन व्याधियोंका असर चक्रवर्तीके मनपर कुछ भी नहीं हुआ। उन्होंने कभी इस बातकी चिन्ता तक भी नहीं की कि मेरे शरीरकी क्या दशा है? किन्तु वे जानते थे कि—

बीभत्सु तापकं पूति शरीरमशुचेर्गृहम्।
का प्रीतिर्विदुषामत्र यत्क्षणार्धे परिक्षयि॥

इसलिये वे शरीरसे सर्वथा निर्मोही रहे और बड़ी सावधानीसे तपश्चर्या करते रहे—अपने व्रत पालते रहे।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका इन्द्र अपनी सभामें धर्म-प्रेमके वश हो मुनियोंके पाँच प्रकारके चारित्रका वर्णन कर रहा था। उस समय एक मदनकेतु नामक देवने उससे पूछा—प्रभो! जिस चारित्रका आपने अभी वर्णन किया उसका ठीक पालनेवाला क्या कोई इस समय भारतवर्षमें है? उत्तरमें इन्द्रने कहा, सनत्कुमार चक्रवर्ती हैं। वे छह खण्ड पृथ्वीको तृणकी तरह छोड़कर संसार, शरीर, भोगादिसे अत्यन्त उदास हैं और दृढ़ताके साथ तपश्चर्या तथा पंचप्रकारका चारित्र पालन करते हैं।

मदनकेतु सुनते ही स्वर्गसे चलकर भारतवर्षमें जहाँ सनत्कुमार मुनि तपश्चर्या करते थे, वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि—उनका सारा शरीर रोगोंका घर बन रहा है, तब भी चक्रवर्ती सुमेरुके समान निश्चल होकर तप कर रहे हैं। उन्हें अपने दुःखकी कुछ परवा नहीं है। वे अपने पवित्र चारित्रका धीरताके साथ पालनकर पृथ्वीको पावन कर रहे हैं। उन्हें देखकर मदनकेतु बहुत प्रसन्न हुआ। तब भी वे शरीरसे कितने निर्मोही हैं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसने वैद्यका वेष बनाया और लगा वनमें घूमने। वह घूम घूम कर यह चिल्लाता था कि "मैं एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूँ, सब वैद्योंका शिरोमणि हूँ। कैसी ही भयंकरसे भयंकर व्याधि क्यों न हो उसे देखते देखते नष्ट करके शरीरको क्षणभरमें मैं निरोग कर सकता हूँ।" देखकर सनत्कुमार मुनिराजने उसे बुलाया और पूछा तुम कौन हो? किसलिये इस निर्जन वनमें घूमते फिरते हो? और क्या कहते हो? उत्तरमें देवने कहा—मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूँ। मेरे पास अच्छीसे अच्छी दवायें हैं। आपका शरीर बहुत बिगड़ रहा है, यदि आज्ञा दें तो मैं क्षणमात्रमें इसकी सब व्याधियाँ खोकर इसे सोने सरीखा बना सकता हूँ। मुनिराज बोले—हाँ तुम वैद्य हो? यह तो बहुत अच्छा हुआ जो तुम इधर अनायास आ निकले। मुझे एक बड़ा भारी और महाभयंकर रोग हो रहा है, मैं उसके नष्ट करनेका प्रयत्न करता हूँ पर सफल प्रयत्न नहीं होता। क्या तुम उसे दूर कर दोगे?

देवने कहा—निस्सन्देह मैं आपके रोगको जड़ मूलसे

खोदूंगा। वह रोग शरीरसे गलनेवाला कोढ़ ही है न।

मुनिराज बोले—नहीं, यह तो एक तुच्छ रोग है। इसकी तो मुझे कुछ भी परवा नहीं। जिस रोगकी बाबत मैं तुमसे कह रहा हूं, वह तो बड़ा ही भयंकर है।

देव बोला—अच्छा, तब बतलाइये वह क्या रोग है, जिसे आप इतना भयंकर बतला रहे हैं ?

मुनिराजने कहा—सुनो, वह रोग है संसारका परिभ्रमण। यदि तुम मुझे उससे छुड़ा दोगे तो बहुत अच्छा होगा। बोलो क्या कहते हो ? सुनकर देव बड़ा लज्जित हुआ। वह बोला, मुनिनाथ ! इस रोगको तो आप ही नष्ट कर सकते हैं। आप ही इसके दूर करनेको शूरवीर और बुद्धिमान हैं। तब मुनिराजने कहा—भाई, जब इस रोगको तुम नष्ट नहीं कर सकते तब मुझे तुम्हारी आवश्यकता भी नहीं। कारण—विनाशीक, अपवित्र, निर्गुण और दुर्जनके समान इस शरीरकी व्याधियोंको तुमने नष्ट कर भी दिया तो उसकी मुझे जरूरत नहीं। जिस व्याधिका वमनके स्पर्शमात्रसे ही जब क्षय हो सकता है, तब उसके लिये बड़े बड़े वैद्यशिरोमणिकी और अच्छी अच्छी दवाओंकी आवश्यकता ही क्या है ? यह कहकर मुनिराजने अपने वमन द्वारा एक हाथके रोगको नष्ट कर उसे सोनेसा निर्मल बना दिया। मुनिकी इस अतुल शक्तिको देखकर देव भौंचकसा रह गया। वह अपने कृत्रिम वेषको पलटकर मुनिराजसे बोला—भगवन् ! आपके विचित्र और निर्दोष चारित्रकी तथा शरीरमें निर्मोहपनेकी सौधर्मेन्द्रने धर्मप्रेमके वश होकर जैसी प्रशंसा की थी, वैसा ही मैंने

आपको पाया। प्रभो ! आप धन्य हैं, संसारमें आपहीका मनुष्य जन्म प्राप्त करना सफल और सुख देनेवाला है। इस प्रकार मदनकेतु सनत्कुमार मुनिराजकी प्रशंसाकर और बड़ी भक्तिके साथ उन्हें बारम्बार नमस्कार कर स्वर्गमें चला गया।

इधर सनत्कुमार मुनिराज क्षणक्षणमें बढ़ते हुए वैराग्यके साथ अपने चारित्रको क्रमशः उन्नत करने लगे अन्तमें शुक्लध्यानके द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया और इन्द्र धरणेन्द्रादि द्वारा पूज्य हुए।

इसके बाद वे संसार—दुःखरूपी अग्निसे झुलसते हुए अनेक जीवोंको सद्धर्मरूपी अमृतकी वर्षासे शान्तकर—उन्हें मुक्तिका मार्ग बतलाकर, और अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाशकर मोक्षमें जा विराजे, जो कभी नाश नहीं होनेवाला है।

उन स्वर्ग और मोक्ष-सुख देनेवाले श्रीसनत्कुमार केवलीकी हम भक्ति और पूजन करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। वे हमें भी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्रदान करें।

जिस प्रकार सनत्कुमार मुनिराजने सम्यक्चारित्रका उद्योत किया उसी तरह सब भव्य पुरुषोंको भी करना उचित है। वह सुखका देनेवाला है।

श्रीमूलसंघ-सरस्वतीगच्छमें चारित्रचूड़ामणी श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। सिंहनन्दी मुनि उनके प्रधान शिष्योंमें थे। वे बड़े गुणी थे और सत्पुरुषोंको आत्मकल्याणका मार्ग बतलाते थे। वे मुझे भी संसारसमुद्रसे पार करें।

—•—

४–समन्तभद्राचार्यकी कथा।

संसारके द्वारा पूज्य और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका उद्योत करनेवाले श्रीजिनभगवान्को नमस्कार कर श्रीसमन्तभद्राचार्य की पवित्र कथा लिखता हूँ, जो कि सम्यक्चारित्रकी प्रकाशक है।

भगवान् समन्तभद्रका पवित्र जन्म दक्षिणप्रान्तके अन्तर्गत कांची नामकी नगरीमें हुआ था। वे बड़े तत्त्वज्ञानी और न्याय, व्याकरण, साहित्य—आदि विषयोंके भी बड़े भारी विद्वान् थे। संसारमें उनकी बहुत ख्याति थी। वे कठिनसे कठिन चारित्रका पालन करते, दुस्सह तप तपते और बड़े आनन्दसे अपना समय आत्मानुभव, पठनपाठन, ग्रन्थरचना आदिमें व्यतीत करते।

कर्मोंका प्रभाव दुर्निवार है। उसके लिये राजा हो या रंक हो, धनी हो या निर्धन हो, विद्वान् हो या मूर्ख हो, साधु हो या गृहस्थ हो, सब समान हैं—सबको अपने अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है। भगवान् समन्तभद्रके लिये भी एक ऐसा ही कष्टका समय आया। वे बड़े भारी तपस्वी थे, विद्वान् थे, पर कर्मोंने इन बातोंकी कुछ परवा न कर उन्हें अपने चक्रमें फँसाया। असातावेदनीके तीव्र उदयसे भस्मव्याधि नामका एक भयंकर रोग उन्हें हो गया। उससे वे जो कुछ खाते वह उसी समय भस्म हो जाता और भूख वैसीकी वैसी बनी रहती। उन्हें इस बातका बड़ा कष्ट हुआ कि हम विद्वान् हुए और पवित्र जिनशासनका संसारभरमें प्रचार करनेके लिये समर्थ भी हुए तब भी उसका कुछ उपकार नहीं कर पाते। इस रोगने असमयमें बड़ा कष्ट पहुँचाया। अस्तु। अब कोई ऐसा

उपाय करना चाहिये जिससे इसकी शान्ति हो। अच्छे अच्छे स्निग्ध, सचिक्कण और पौष्टिक पक्वान्नका आहार करनेसे इसकी शान्ति हो सकेगी; इसलिये ऐसे भोजनका योग मिलाना चाहिये। पर यहाँ तो इसका कोई साधन नहीं दीख पड़ता। इसलिये जिस जगह, जिस तरह ऐसे भोजनकी प्राप्ति हो सकेगी मैं वहीं जाऊंगा और वैसा ही उपाय करूगा।

यह विचार कर वे कांचीसे निकले और उत्तरकी ओर रवाना हुए। कुछ दिनोंतक चलकर वे पुण्ड्र नगरमें आये। वहां बौद्धोंकी एक बड़ी भारी दानशाला थी। उसे देखकर आचार्यने सोचा, यह स्थान अच्छा है। यहाँ अपना रोग नष्ट हो सकेगा। इस विचार के साथ ही उन्होंने बुद्धसाधुका वेष बनाया और दानशालामें प्रवेश किया। पर वहां उन्हें उनकी व्याधिशान्तिके योग्य भोजन नहीं मिला। इसलिये वे फिर उत्तरकी ओर आगे बढ़े और अनेक शहरोंमें घूमते हुए कुछ दिनोंके बाद दशपुर–मन्दोसोरमें आये। वहां उन्होंने भागवत–वैष्णवोंका एक बड़ा भारी मठ देखा। उसमें बहुतसे भागवतसम्प्रदायके साधु रहते थे। उनके भक्तलोग उन्हें खूब अच्छा अच्छा भोजन देते थे। यह देखकर उन्होंने बौद्धवेषको छोड़कर भागवत–साधुका वेष ग्रहण कर लिया। वहां वे कुछ दिनोंतक रहे, पर उनकी व्याधिके योग्य उन्हें वहां भी भोजन नहीं मिला। तब वे वहांसे भी निकलकर और अनेक देशों और पर्वतोंमें घूमते हुए बनारस आये। उन्होंने यद्यपि बाह्यमें जैनमुनियोंके वेषको छोड़कर कुलिंग धारण कर रक्खा था, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके हृदयमें सम्यग्दर्शनकी पवित्र ज्योति जगमगा रही थी। इस

वेषमें वे ठीक ऐसे जान पड़ते थे, मानों कीचड़से भरा हुआ कान्तिमान् रत्न हो। इसके बाद आचार्य योगलिंग धारण कर शहरमें घूमने लगे।

उस समय बनारसके राजा थे शिवकोटी। वे शिवके बड़े भक्त थे। उन्होंने शिवका एक विशाल मन्दिर बनवाया था। वह बहुत सुन्दर था। उसमें प्रतिदिन अनेक प्रकारके व्यंजन शिवकी भेंट चढ़ा करते थे। आचार्यने देखकर सोचा कि यदि किसी तरह अपनी इस मन्दिरमें कुछ दिनोंके लिये स्थिति हो जाय, तो निस्सन्देह अपना रोग शान्त हो सकता है। यह विचार वे कर ही रहे थे कि इतनेमें पुजारी लोग महादेवकी पूजा करके बाहर आये और उन्होंने एक बड़ी भारी व्यंजनोंकी राशि, जो कि शिवकी भेंट चढ़ाई गई थी, लाकर बाहर रख दी। उसे देखकर आचार्यने कहा, क्या आप लोगोंमें ऐसी किसीकी शक्ति नहीं जो महाराजके भेजे हुए इस दिव्य भोजनको शिवकी पूजाके बाद शिवको ही खिला सके? तब उन ब्राह्मणोंने कहा, तो क्या आप अपनेमें इस भोजनको शिवको खिलानेकी शक्ति रखते हैं? आचार्यने कहा—हाँ मुझमें ऐसी शक्ति है। सुनकर उन बेचारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय जाकर यह हाल राजासे कहा—प्रभो! आज एक योगी आया है। उसकी बातें बड़ी विलक्षण हैं। हमने महादेवकी पूजा करके उनके लिये चढ़ाया हुआ नैवेद्य बाहर लाकर रक्खा, उसे देखकर वह योगी बोला कि—"आश्चर्य है, आप लोग इस महादिव्य भोजनको पूजनके बाद महादेवको न खिला कर पीछा उठा ले आते हो! भला, ऐसी पूजासे लाभ? उसने साथ ही यह भी कहा कि मुझमें ऐसी

शक्ति है जिसके द्वारा यह सब भोजन मैं महादेवको खिला सकता हूँ। यह कितने खेदकी बात है कि जिसके लिये इतना आयोजन किया जाता है, इतना खर्च उठाया जाता है, वह यों ही रह जाय और दूसरे ही उससे लाभ उठावें? यह ठीक नहीं। इसके लिये कुछ प्रबन्ध होना चाहिये, जो जिसके लिये इतना परिश्रम और खर्च उठाया जाता है वही उसका उपयोग भी कर सके।"

महाराजको भी इस अभूतपूर्व बातके सुननेसे बड़ा अचंभा हुआ। वे इस विनोदको देखनेके लिये उसी समय अनेक प्रकारके सुन्दर और सुस्वादु पक्वान्न अपने साथ लेकर शिवमन्दिर गये और आचार्यसे बोले—योगिराज! सुना है कि आपमें कोई ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा शिवमूर्तिको भी आप खिला सकते हैं, तो क्या यह बात सत्य है? और सत्य है तो लीजिये यह भोजन उपस्थित है, इसे महादेवको खिलाइये।

उत्तरमें आचार्यने 'अच्छी बात है' यह कहकर राजाके लाये हुए सब पक्वानोंको मन्दिरके भीतर रखवा दिया और सब पुजारी पंडोंको मन्दिर बाहर निकालकर भीतरसे आपने मन्दिरके किंवाड़ बन्द कर लिये। इसके बाद लगे उसे आप उदरस्थ करने। आप भूखे तो खूब थे ही, इसलिये थोड़ी ही देरमें सब आहारको हजमकर आपने झटसे मन्दिरका दरवाजा खोल दिया और निकलते ही नौकरोंको आज्ञा की कि सब बरतन बाहर निकाल लो। महाराज इस आश्चर्यको देखकर भौंचकसे रह गये। वे राजमहल लौट गये। उन्होंने बहुत तर्कवितर्क उठाये पर उनकी समझमें कुछ भी नहीं आया कि वास्तवमें बात क्या है?

अब प्रतिदिन एकसे एक बढ़कर पक्वान्न आने लगे और आचार्य महाराज भी उनके द्वारा अपनी व्याधि नाश करने लगे। इस तरह पूरे छह महिना बीत गये। आचार्यका रोग भी नष्ट हो गया।

एक दिन आहारराशिको ज्योंकी त्यों बची हुई देखकर पुजारी-पण्डोंने उनसे पूछा, योगिराज! यह क्या बात है? क्यों आज यह सब आहार यों ही पड़ा रहा? आचार्यने उत्तर दिया—राजाकी परम भक्तिसे भगवान् बहुत खुश हुए—वे अब तृप्त हो गये हैं। पर इस उत्तरसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने जाकर आहारके बाकी बचे रहनेका हाल राजासे कहा। सुनकर राजाने कहा—अच्छा इस बातका पता लगाना चाहिये, कि वह योगी मन्दिरके किंवाड़ देकर भीतर क्या करता है? जब इस बातका ठीक ठीक पता लग जाय तब उससे भोजनके बचे रहनेका कारण पूछा जा सकता है और फिर उसपर विचार भी किया जा सकता है। बिना ठीक हाल जाने उससे कुछ पूछना ठीक नहीं जान पड़ता।

एक दिनकी बात है कि आचार्य कहीं गये हुए थे और पीछेसे उन सबने मिलकर एक चालाक लड़केको महादेवके अभिषेक जलके निकलनेकी नालीमें छुपा दिया और उसे खूब फूल पत्तोंसे ढक दिया। वह वहाँ छिपकर आचार्यकी गुप्त क्रिया देखने लगा।

सदाके माफिक आज भी खूब अच्छे अच्छे पक्वान्न आये। योगिराजने उन्हें भीतर रखवाकर भीतरसे मन्दिरका दरवाजा बन्द कर लिया और आप लगे भोजन करने। जब आपका पेट भर गया,

तब किंवाड खोलकर आप नौकरोंसे उस बचे सामानको उठा लेनेके लिये कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि सामने ही खड़े हुए राजा और ब्राह्मणोंपर पड़ी। आज एकाएक उन्हें वहाँ उपस्थित देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे झटसे समझ गये कि आज अवश्य कुछ न कुछ दालमें काला है। इतनेहीमें वे ब्राह्मण उनसे पूछ बैठे कि योगिराज! क्या बात है, जो कई दिनोंसे बराबर आहार बचा रहता है? क्या शिवजी अब कुछ नहीं खाते? जान पड़ता है, वे अब खूब तृप्त हो गये हैं। इसपर आचार्य कुछ कहना ही चाहते थे कि वह धूर्त लड़का उन फूल पत्तोंके नीचेसे निकलकर महाराजके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—राज राजेश्वर! ये योगी तो यह कहते थे कि मैं शिवजीको भोजन कराता हूँ, पर इनका यह कहना बिलकुल झूठा है। असलमें ये शिवजीको भोजन न कराकर स्वयं ही खाते हैं। इन्हें खाते हुए मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। योगिराज! सबकी आँखोंमें आपने तो बड़ी बुद्धिमानीसे धूल झोंकी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप योगी नहीं, किन्तु एक बड़े भारी धूर्त हैं। और महाराज! इनकी धूर्तता तो देखिये, जो शिवजीको हाथ जोड़ना तो दूर रहा उलटा ये उनका अविनय करते हैं। इतनेमें वे ब्राह्मण भी बोल उठे, महाराज! जान पड़ता है यह शिवभक्त भी नहीं है। इसलिये इससे शिवजीको हाथ जोड़नेके लिये कहा जाय, तब सब पोल स्वयं खुल जायगी। सब कुछ सुनकर महाराजने आचार्यसे कहा—अच्छा जो कुछ हुआ उसपर ध्यान न देकर हम यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारा असल धर्म क्या है? इसलिये तुम शिवजीको नमस्कार करो। सुनकर भगवान्समन्तभद्र बोले—राजन्! मैं नमस्कार

कर सकता हूँ, पर मेरा नमस्कार स्वीकार कर लेनेको शिवजी समर्थ नहीं हैं। कारण—वे राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया आदि विकारोंसे दूषित हैं। जिस प्रकार पृथ्वीके पालनका भार एक सामान्य मनुष्य नहीं उठा सकता, उसी प्रकार मेरी पवित्र और निर्दोष नमस्कृतिको एक रागद्वेषादि विकारोंसे अपवित्र देव नहीं सह सकता। किन्तु जो क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ—आदि अठारह दोषोंसे रहित है, केवलज्ञानरूपी प्रचण्ड तेजका धारक है और लोकालोकका प्रकाशक है, वही जिनसूर्य मेरे नमस्कारके योग्य है और वही उसे सह भी सकता है। इसलिये मैं शिवजीको नमस्कार नहीं करूंगा इसके सिवा भी यदि आप आग्रह करेंगे तो आपको समझ लेना चाहिये कि इस शिवमूर्तिकी कुशल नहीं है, यह तुरत ही फट पड़ेगी। आचार्यकी इस बातसे राजाका विनोद और भी बढ़ गया। उन्होंने कहा—योगिराज! आप इसकी चिन्ता न करें, यह मूर्ति यदि फट पड़ेगी तो इसे फट पड़ने दीजिये, पर आपको तो नमस्कार करना ही पड़ेगा। राजाका बहुत ही आग्रह देख आचार्यने "तथास्तु" कहकर कहा अच्छा तो कल प्रातःकाल ही मैं अपनी शक्तिका आपको परिचय कराऊँगा। 'अच्छी बात है, यह कहकर राजाने आचार्यको मन्दिरमें बन्द करवा दिया और मन्दिरके चारों ओर नंगी तलवार लिये सिपाहियोंका पहरा लगवा दिया। इसके बाद "आचार्यकी सावधानीके साथ देखरेख की जाय, वे कहीं निकल न भागें" इस प्रकार पहरेदारोंको खूब सावधान कर आप राजमहल लौट गये।

आचार्यने कहते समय तो कह डाला, पर अब उन्हें खयाल

आया कि मैंने यह ठीक नहीं किया। क्यों मैंने विना कुछ सोचे विचारे जल्दीसे ऐसा कह डाला! यदि मेरे कहनेके अनुसार शिवजीकी मूर्ति न फटी तब मुझे कितना नीचा देखना पड़ेगा और उस समय राजा क्रोधमें आकर न जाने क्या कर बैठे! खैर, उसकी भी कुछ परवा नहीं पर इससे धर्मकी कितनी हँसी होगी! जिस परमात्माकी राजाके साम्हने मैं इतनी प्रशंसा कर चुका हूँ, उसे और मेरी झूठको देखकर सर्व साधारण क्या विश्वास करेंगे, आदि एक-पर एक चिन्ता उनके हृदयमें उठने लगी। पर अब हो भी क्या सकता था। आखिर उन्होंने यह सोचकर-कि जो होना था वह तो हो चुका और कुछ बाकी है वह कल सबेरे हो जायगा; अब व्यर्थ चिन्तासे ही लाभ क्या—जिन-भगवानकी आराधनामें अपने ध्यान-को लगाया और बड़े पवित्र भावोंसे उनकी स्तुति करने लगे।

आचार्यकी पवित्र भक्ति और श्रद्धाके प्रभावसे शासनदेवी-का आसन कम्पित हुआ। वह उसी समय आचार्यके पास आई और उनसे बोली—"हे जिनचरणकमलोंके भ्रमर! हे प्रभो! आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये। विश्वास रखिये कि जैसा आपने कहा है वह अवश्य ही होगा। आप "स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले" इस श्लोकको लेकर चतुर्विंशति तीर्थंकरोंका एक स्तवन रचियेगा। उसके प्रभावसे आपका कहा सत्य होगा और शिवमूर्ति भी फट पड़ेगी। इतना कह कर अम्बिका देवी अपने स्थानपर चली गई।

आचार्यको देवीके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके हृदयकी चिन्ता मिटी, आनन्दने अब उसपर अपना अधिकार किया।

उन्होंने उसी समय देवीके कहे अनुसार एक बहुत सुन्दर जिनस्तवन बनाया, जो कि इस समय "स्वयंभूस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध है।

रात सुखपूर्वक बीती। प्रातःकाल हुआ। राजा भी इसी समय वहाँ आ उपस्थित हुआ। उसके साथ और भी बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् आये। अन्य साधारण जनसमूह भी बहुत इकट्ठा हो गया। राजाने आचार्यको बाहर ले आनेकी आज्ञा दी। वे बाहर लाये गये। अपने साम्हने आते हुए आचार्यको खूब प्रसन्न और उनके मुँहको सूर्यके समान तेजस्वी देखकर राजाने सोचा—इनके मुँहपर तो चिन्ताके बदले स्वर्गीय तेजकी छटायें छूट रही हैं, इससे जान पड़ता है—ये अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेंगे। अस्तु।,तब भी देखना चाहिये कि ये क्या करते हैं। इसके साथ ही उसने आचार्यसे कहा—योगिराज! कीजिये नमस्कार, जिससे हम भी आपकी अद्‌भुत शक्तिका परिचय पा सकें।

राजाकी आज्ञा होते ही आचार्यने संस्कृत भाषामें एक बहुत ही सुन्दर और अर्थपूर्ण जिनस्तवन आरंभ किया। स्तवन रचते रचते जहाँ उन्होंने चन्द्रप्रभभगवानकी स्तुतिका "चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरम्" यह पद्यांश रचना शुरू किया कि उसी समय शिवमूर्ति फटी और उसमेंसे श्रीचन्द्रप्रभभगवानकी चतुर्मुख प्रतिमा प्रगट हुई। इस आश्चर्यके साथ ही जयध्वनिके मारे आकाश गूंज उठा। आचार्यके इस अप्रतिम प्रभावको देखकर उपस्थित जनसमूहको दाँतों-तले अंगुली दबानी पड़ी। सबके सब आचार्यकी ओर देखतेके देखते ही रह गये।

इसके बाद राजाने आचार्यमहाराजसे कहा—योगिराज!

आपकी शक्ति, आपका प्रभाव, आपका तेज देखकर हमारे आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहता। बतलाइये तो आप हैं कौन? और आपने वेष तो शिवभक्तका धारण कर रक्खा है, पर आप शिवभक्त हैं नहीं। सुनकर आचार्यने नीचे लिखे दो श्लोक पढ़े—

कांच्यां नग्नाटकोहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः,
पुण्ड्रोण्डे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मृष्टभोजी परिव्राट्।
बाणारस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी,
राजन् यस्यास्तिशक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता,
पश्चान्मालवसिन्धुढक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोहं करहाटकं बहुभटैर्विद्योत्कटैः संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥

भावार्थ—मैं कांचीमें नग्न दिगम्बर साधु होकर रहा। इसके बाद शरीरमें रोग हो जानेसे पुंड्र नगरमें बुद्धभिक्षुक, दशपुर (मन्दोसोर) में मिष्टान्नभोजी परिव्राजक और बनारसमें शैवसाधु बनकर रहा। राजन्, मैं जैन निर्ग्रन्थवादी स्याद्वादी हूं। जिसकी शक्ति वाद करनेकी हो, वह मेरे साम्हने आकर वाद करे।

पहले मैंने पाटलीपुत्र (पटना) में वादभेरी बजाई। इसके बाद मालवा, सिन्धुदेश, ढक (ढाका-बंगाल) कांचीपुर और विदिश नामक देशमें भेरी बजाई। अब वहाँसे चलकर मैं बड़े बड़े विद्वानोंसे भरे हुए इस करहाटक (कराड़जिला सतारा) में आया हूं। राजन्, शास्त्रार्थ करनेकी इच्छासे मैं सिंहके समान निर्भय होकर इधर उधर घूमता ही रहता हूं।

यह कहकर ही समन्तभद्रस्वामीने शैव-वेष छोड़कर पीछा जिनमुनिका वेष धारण कर लिया, जिसमें साधुलोग जीवोंकी रक्षाके लिये हाथमें मोरकी पींछी रखते हैं।

इसके बाद उन्होंने शास्त्रार्थ कर बड़े बड़े विद्वानोंको, जिन्हें अपने पाण्डित्यका अभिमान था, अनेकान्त-स्याद्वादके बलसे पराजित किया और जैनशासनकी खूब प्रभावना की, जो स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है। भगवान्समन्तभद्र भावी तीर्थंकर हैं। उन्होंने कुदेवको नमस्कार न कर सम्यग्दर्शनका खूब प्रकाश किया—सबके हृदयपर उसकी श्रेष्ठता अंकित करदी। उन्होंने अनेक ऐकान्तवादियोंको जीतकर सम्यग्ज्ञानका भी उद्योत किया।

आश्चर्यमें डालनेवाली इस घटनाको देखकर राजाकी जैनधर्मपर बड़ी श्रद्धा हुई। विवेकबुद्धिने उसके मनको खूब ऊंचा बना दिया और चारित्रमोहनीयकर्मका क्षयोपशम हो जानेसे उसके हृदयमें वैराग्यका प्रवाह बह निकला। उसने उसे सब राज्यभार छोड़ देनेके लिये बाध्य किया। शिवकोटीने क्षणभरमें सब मायामोहके जालको तोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण करली। साधु बनकर उन्होंने गुरुके पास खूब शास्त्रोंका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने श्रीलोहाचार्यके बनाये हुए चौरासी हजार श्लोक प्रमाण आराधनाग्रन्थको संक्षेपमें लिखा। वह इसलिये कि अब दिनपर दिन मनुष्योंकी आयु और बुद्धि घटती जाती है, और वह ग्रन्थ बड़ा और गंभीर था—सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते थे। शिवकोटी मुनिके बनाये हुए ग्रन्थके चवालीस अध्याय हैं और उसकी श्लोकसंख्या साढ़े तीन हजार है। उससे संसारका बहुत उपकार हुआ।

वह आराधना ग्रन्थ और समन्तभद्राचार्य तथा शिवकोटी मुनिराज मुझे सुखके देनेवाले हों। तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप परम रत्नोंके समुद्र और कामरूपी प्रचंड बलवान् हाथीके नष्ट करनेको सिंह समान विद्यानन्दी गुरु और छहों शास्त्रोंके अपूर्व विद्वान् तथा श्रुतज्ञानके समुद्र श्रीमल्लिभूषणमुनि मुझे मोक्षश्री प्रदान करें।

५—संजयन्त मुनिकी कथा।

सुखके देनेवाले श्रीजिनभगवानके चरण कमलोंको नमस्कार कर श्रीसंजयन्त मुनिराजकी कथा लिखता हूं, जिन्होंने सम्यक्तपका उद्योत किया था।

सुमेरुके पश्चिमकी ओर विदेहके अन्तर्गत गन्धमालिनी नामका देश है। उसकी प्रधान राजधानी वीतशोकपुर है। जिस समयकी बात हम लिख रहे हैं उस समय उसके राजा वैजयन्त थे। उनकी महारानीका नाम भव्यश्री था। उनके दो पुत्र थे। उनके नाम थे संजयन्त और जयन्त।

एक दिनकी बात है कि बिजलीके गिरनेसे महाराज वैजयन्तका प्रधान हाथी मर गया। यह देख उन्हें संसारसे बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने राज्य छोड़नेका निश्चय कर अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें राज्यभार सौंपना चाहा; तब दोनों भाइयोंने उनसे कहा—पिताजी, राज्य तो संसारके बढ़ानेका कारण है, इससे तो उल्टा हमें सुखकी जगह दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये हम तो

इसे नहीं लेते। आप भी तो इसीलिये छोड़ते हैं न? कि यह बुरा है—पापका कारण है। इसीलिये हमारा तो विश्वास है कि बुद्धिमानोंको-आत्म हितके चाहनेवालोंको, राज्य सरीखी झंझटोंको शिरपर उठाकर अपनी स्वाभाविक शान्तिको नष्ट नहीं करना चाहिये। यही विचार कर हम राज्य लेना उचित नहीं समझते। बल्कि हम तो आपके साथ ही साधु बनकर अपना आत्महित करेंगे।

वैजयन्तने पुत्रोंपर अधिक दबाव न डालकर उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें साधु बननेकी आज्ञा देदी और राज्यका भार संजयन्तके पुत्र वैजयन्तको देकर स्वयं भी तपस्वी बन गये। साथ ही वे दोनों भाई भी साधु हो गये।

तपस्वी बनकर वैजयन्त मुनिराज खूब तपश्चर्या करने लगे, कठिनसे कठिन परीषह सहने लगे। अन्तमें ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोंका नाश कर उन्होंने लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय उनके ज्ञानकल्याणकी पूजा करनेको स्वर्गसे देव आये। उनके स्वर्गीय ऐश्वर्य और उनकी दिव्य सुन्दरताको देखकर संजयन्तके छोटे भाई जयन्तने निदान किया—"मैंने जो इतना तपश्चरण किया है, मैं चाहता हूं कि उसके प्रभावसे मुझे दूसरे जन्ममें ऐसी ही सुन्दरता और ऐसी ही विभूति प्राप्त हो।" वही हुआ। उसका किया निदान उसे फला। वह आयुके अन्तमें मरकर धरणेन्द्र हुआ।

इधर संजयन्तमुनि पन्द्रह पन्द्रह दिनके, एक एक महिनाके उपवास करने लगे, भूख प्यासकी कुछ परवा न कर बड़ी धीरताके

साथ परीषह सहने लगे। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया, तब भी भयंकर वनोंमें सुमेरुके समान निश्चल रहकर सूर्यकी ओर मुँह किये वे तपश्चर्या करने लगे। गरमीके दिनोंमें अत्यन्त गरमी पड़ती, शीतके दिनोंमें जाड़ा खूब सताता, वर्षाके समय मूसलाधार पानी वर्षा करता और आप वृक्षोंके नीचे बैठकर ध्यान करते। वनके जीवजन्तु सताते, पर इन सब कष्टोंकी कुछ परवा न कर आप सदा आत्मध्यानमें लीन रहते।

एक दिनकी बात है—संजयन्त मुनिराज तो अपने ध्यानमें डूबे हुए थे कि उसी समय एक विद्युद्दंष्ट्र नामका विद्याधर आकाशमार्गसे उधर होकर निकला। पर मुनिके प्रभावसे उसका विमान आगे नहीं बढ़ पाया। एकाएक विमानको रुका हुआ देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नीचेकी ओर दृष्टि डालकर देखा तो उसे संजयन्त मुनि दीख पड़े। उन्हें देखते ही उसका आश्चर्य क्रोधके रूपमें परिणत हो गया। उसने मुनिराजको अपने विमानको रोकनेवाले समझकर उनपर नाना तरहके भयंकर उपद्रव करना शुरू किया उससे जहाँतक बना उसने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया। पर मुनिराज उसके उपद्रवोंसे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। वे जैसे निश्चल थे वैसे ही खड़े रहे। सच है-वायुका कितना ही भयंकर वेग क्यों न चले, पर सुमेरु हिलता तक भी नहीं।

इन सब भयंकर उपद्रवोंसे भी जब उसने मुनिराजको पर्वतसे अचल देखा तब उसका क्रोध और भी बहुत बढ़ गया। वह अपने विद्याबलसे मुनिराजको वहाँसे उठा ले चला और भारतवर्षमें पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सिंहवती नामकी एक बड़ी भारी नदी

में, जिसमें कि पाँच बड़ी बड़ी नदियाँ और मिली थीं, डाल दिया। भाग्यसे उस प्रान्तके लोग भी बड़े पापी थे। सो उन्होंने मुनिको एक राक्षस समझकर और सर्वसाधारणमें यह प्रचारकर, कि यह हमें खानेके लिये आया है, पत्थरोंसे खूब मारा। मुनिराजने सब उपद्रव बड़ी शान्तिके साथ सहा—उन्होंने अपने पूर्ण आत्मबलके प्रभावसे हृदयको लेशमात्र भी अधीर नहीं बनने दिया। क्योंकि सच्चे साधु वे ही हैं—

तृणं रत्नं वा रिपुरिव परममित्रमथवा,
स्तुतिर्वा निन्दा वा मरणमथवा जीवितमथ।
सुखं वा दुःखं वा पितृवनमहोत्सौधमथवा,
स्फुटं निर्ग्रन्थानां द्वयमपि समं शान्तमनसाम्॥

जिनके पास रागद्वेषका बढ़ानेवाला परिग्रह नहीं है-जो निर्ग्रन्थ हैं, और सदा शान्तचित्त रहते हैं, उन साधुओंके लिये तृण हो या रत्न, शत्रु हो या मित्र, उनकी कोई प्रशंसा करो या बुराई, वे जीवें अथवा मर जाँय, उन्हें सुख हो या दुःख और उनके रहनेको श्मशान हो या महल, पर उनकी दृष्टि सबपर समान रहेगी—वे किसीसे प्रेम या द्वेष न कर सबपर समभाव रक्खेंगे। यही कारण था कि संजयन्त मुनिने विद्याधरकृत सब कष्ट समभावसे सहकर अपने अलौकिक धैर्यका परिचय दिया। इस अपूर्व ध्यानके बलसे संजयन्तमुनिने चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया और इसके बाद अघातिया कर्मोंका भी नाशकर वे मोक्ष चले गये। उनके निर्वाणकल्याणकी पूजन करनेको देव आये। वह धरणेन्द्र भी इनके साथ था, जो संजयन्त मुनिका छोटा भाई था और निदान

करके धरणेन्द्र हुआ था। धरणेन्द्रको अपने भाईके शरीरकी दुर्दशा देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने भाईको कष्ट पहुँचानेका कारण वहाँके नगरवासियोंको समझकर उन सबको अपने नागपाशसे बांध लिया और लगा उन्हें वह दुःख देने। नगरवासियोंने हाथ जोड़कर उससे कहा—प्रभो, हम तो इस अपराधसे सर्वथा निर्दोष हैं। आप हमें व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो। यह सब कर्म तो पापी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरका है। आप उसे ही पकड़िये न? सुनते ही धरणेन्द्र विद्याधरको पकड़नेके लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकर उसे उसने नागपाशसे बांध लिया। इसके बाद उसे खूब मार पीटकर धरणेन्द्रने समुद्रमें डालना चाहा।

धरणेन्द्रका इस प्रकार निर्दय व्यवहार देखकर एक दिवाकर नामके दयालु देवने उससे कहा—तुम इसे व्यर्थ ही क्यों कष्ट दे रहे हो? इसकी तो संजयन्त मुनिके साथ कोई चार भवसे शत्रुता चली आती है। इसीसे उसने मुनिपर उपसर्ग किया था।

धरणेन्द्र बोला—यदि ऐसा है तो उसका कारण मुझे बतलाइये?

दिवाकरदेवने तब यों कहना आरंभ किया—

पहले समयमें भारतवर्षमें एक सिंहपुरनामका शहर था। उसके राजा सिंहसेन थे। वे बड़े बुद्धिमान और राजनीतिके अच्छे जानकार थे। उनकी रानीका नाम रामदत्ता था। वह बुद्धिमती और बड़ी सरल स्वभावकी थी। राजमंत्रीका नाम श्रीभूति था। वह बड़ा कुटिल था। दूसरोंको धोखा देना, उन्हें ठगना यह उसका प्रधान कर्म था।

एक दिन पद्मखंडपुरके रहनेवाले सुमित्र सेठका पुत्र समुद्रदत्त श्रीभूतिके पास आया और उससे बोला—"महाशय, मैं व्यापारके लिये विदेश जा रहा हूँ। दैवकी विचित्र लीलासे न जाने कौन समय कैसा आवे ? इसलिये मेरे पास ये पाँच रत्न हैं, इन्हें आप अपनी सुरक्षामें रक्खें तो अच्छा होगा और मुझपर भी आपकी बड़ी दया होगी। मैं पीछा आकर अपने रत्न ले लूंगा।" यह कहकर और श्रीभूतिको रत्न सौंपकर समुद्रदत्त चल दिया।

कई वर्ष बाद समुद्रदत्त पीछा लौटा। वह बहुत धन कमाकर लाया था। जाते समय जैसा उसने सोचा था, दैवकी प्रतिकूलता से वही घटना उसके भाग्यमें घटी। किनारे लगते लगते जहाज फट पड़ा। सब माल असबाब समुद्रके विशाल उदरमें समा गया। पुण्योदयसे समुद्रदत्तको कुछ ऐसा सहारा मिल गया, जिससे उसकी जान बच गई-वह कुशलपूर्वक अपना जीवन लेकर घर लौट आया।

दूसरे दिन वह श्रीभूतिके पास गया और अपनेपर जैसी विपत्ति आई थी उसे उसने आदिसे अन्ततक कहकर श्रीभूतिसे अपने अमानत रखे हुए रत्न पीछे मांगे। श्रीभूतिने आँखें चढ़ाकर कहा—कैसे रत्न तूं मुझसे मांगता है ? जान पड़ता है जहाज डूब जानेसे तेरा मस्तक बिगड़ गया है। श्रीभूतिने बेचारे समुद्रदत्तको मनमानी फटकार बताकर और अपने पास बैठे हुए लोगोंसे कहा—देखिये न साहब, मैंने आपसे अभी ही कहा था न ? कि कोई निर्धन मनुष्य पागल बनकर मेरे पास आवेगा और झूठा ही बखेड़ाकर झगड़ा करेगा। वही सत्य निकला। कहिये तो ऐसे दरिद्रीके पास रत्न आ कहाँसे सकते हैं ? भला, किसीने भी इसके पास कभी रत्न देखे हैं।

यों ही व्यर्थ गले पड़ता है। ऐसा कहकर उसने नौकरों द्वारा समुद्रदत्तको निकलवा दिया। बेचारा समुद्रदत्त एक तो वैसे ही विपत्तिका मारा हुआ था; इसके सिवा उसे जो एक बड़ी भारी आशा थी उसे भी पापी श्रीभूतिने नष्ट कर दिया। वह सब ओरसे अनाथ हो गया। निराशाके अथाह समुद्रमें गोते खाने लगा। पहले उसे अच्छा होनेपर भी श्रीभूतिने पागल बना डाला था; पर अब वह सचमुच ही पागल हो गया। वह शहरमें घूम घूमकर चिल्लाने लगा कि पापी श्रीभूतिने मेरे पाँच रत्न ले लिये और अब वह उन्हें देता नहीं है। राजमहलके पास भी उसने बहुत पुकार मचाई, पर उसकी कहीं सुनाई नहीं हुई। सब उसे पागल समझकर दुतकार देते थे। अन्तमें निरुपाय हो उसने एक वृक्षपर चढ़कर, जो कि रानी के महलके पीछे ही था, पिछली रातको बड़े जोरसे चिल्लाना आरंभ किया। रानीने बहुत दिनोंतक तो उसपर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसने भी समझ लिया कि कोई पागल चिल्लाता होगा। पर एक दिन उसे खयाल हुआ कि वह पागल होता तो प्रतिदिन इसी समय आकर क्यों चिल्लाता ? सारे दिन ही इसी तरह आकर क्यों न चिल्लाता फिरता ? इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। यह विचार कर उसने एक दिन राजासे कहा—प्राणनाथ ! आप इस चिल्लानेवालेको पागल बताते हैं, पर मेरी समझमें यह बात नहीं आती। क्योंकि यदि वह पागल होता तो न तो बराबर इसी समय चिल्लाता और न सदा एक ही वाक्य बोलता। इसलिये इसका ठीक ठीक पता लगाना चाहिये कि बात क्या है ? ऐसा न हो कि अन्यायसे बेचारा एक गरीब विना मौत मारा जाय। रानीके कहनेके अनुसार राजाने

समुद्रदत्तको बुलाकर सब बातें पूछीं। समुद्रदत्तने जैसी अपनेपर बीती थी, वह ज्योंकी त्यों महाराजसे कह सुनाई। तब रत्न कैसे प्राप्त किये जाँय, इसके लिये राजाको चिन्ता हुई। रानी बड़ी बुद्धिमती थी। इसलिये रत्नोंके मँगालेनेका भार उसने अपनेपर लिया।

रानीने एक दिन श्रीभूतिको बुलाया और उससे कहा—मैं आपकी सतरंज खेलनेमें बड़ी तारीफ सुना करती हूँ। मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि मैं एक दिन आपके साथ खेलूं। आज बड़ा अच्छा सुयोग मिला जो आप यहींपर उपस्थित हैं। यह कहकर उसने दासीको सतरंज ले आनेकी आज्ञा दी।

श्रीभूति रानीकी बात सुनते ही घबरा गया। उसके मुँहसे एक शब्दतक निकलना मुश्किल पड़ गया। उसने बड़ी घबराहटके साथ काँपते काँपते कहा—महारानीजी, आज आप यह क्या कह रही हैं। मैं एक क्षुद्र कर्मचारी और आपके साथ खेलूं ? यह मुझसे न होगा। भला, राजा साहब सुन पावें तो मेरा क्या हाल हो ?

रानीने कुछ मुस्कराते हुए कहा—वाह, आप तो बड़े ही डरते हैं। आप घबराइये मत। मैंने खुद राजा साहबसे पूछ लिया है। और फिर आप तो हमारे बुजुर्ग हैं। इसमें डरकी बात ही क्या है। मैं तो केवल विनोदवश होकर खेल रही हूँ।

"राजाकी मैंने स्वयं आज्ञा लेली" जब रानीके मुँहसे यह वाक्य सुना तब श्रीभूतिके जीमें जी आया और वह रानीके साथ खेलनेके लिये तैयार हुआ।

दोनोंका खेल आरंभ हुआ। पाठक जानते हैं कि रानीके लिये खेलका तो केवल बहाना था। असलमें तो उसे अपना मतलब गाँठना था। इसीलिये उसने यह चाल चली थी। रानी खेलते खेलते श्रीभूतिको अपनी बातोंमें लुभाकर उसके घरकी सब बातें जानली और इशारेसे अपनी दासीको कुछ बातें बतलाकर उसे श्रीभूतिके यहाँ भेजा। दासीने जाकर श्रीभूतिकी पत्नीसे कहा—तुम्हारे पति बड़े कष्टमें फँसे हैं, इसलिये तुम्हारे पास उन्होंने जो पाँच रत्न रक्खे हैं, उनके लेनेको मुझे भेजा है। कृपा करके वे रत्न जल्दी दे दो जिससे उनका छुटकारा हो जाय।

श्रीभूतिकी स्त्रीने उसे फटकार दिखला कर कहा चल, मेरे पास रत्न नहीं हैं और न मुझे कुछ मालूम है। जाकर उन्हींसे कहदे कि जहाँ रत्न रक्खे हों, वहाँसे तुम्हीं जाकर ले आओ।

दासीने पीछी लौट आकर सब हाल अपनी मालकिनसे कह दिया। रानीने अपनी चालका कुछ उपयोग नहीं हुआ देखकर दूसरी युक्ति निकाली। अबकी बार वह हारजीतका खेल खेलने लगी। मंत्रीने पहले तो कुछ आनाकानी की, पर फिर "रानीके पास धनका तो कुछ पार नहीं है और मेरी जीत होगी तो मैं मालामाल हो जाऊँगा" यह सोचकर वह खेलनेको तैयार हो गया।

रानी बड़ी चतुर थी। उसने पहले ही पासेमें श्रीभूतिकी एक कीमती अंगूठी जीत ली। उस अंगूठीको चुपकेसे दासीके हाथ देकर और कुछ समझाकर उसने श्रीभूतिके घर फिर भेजा और आप उसके साथ खेलने लगी।

अबकी बार रानीका प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया। दासीने पहुँचते

ही बड़ी घबराहटके साथ कहा—देखो, पहले तुमने रत्न नहीं दिये, उससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अब उन्होंने यह अँगूठी देकर मुझे भेजा है और यह कहलाया है कि यदि तुम्हें मेरी जान प्यारी हो, तब तो इस अंगूठीको देखते ही रत्नोंको दे देना और रत्न प्यारे हों तो न देना। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहता।

अब तो वह एक साथ घबरा गई। उसने उससे कुछ विशेष पूछताछ न करके केवल अँगूठीके भरोसेपर रत्न निकालकर दासीके हाथ सौंप दिये। दासीने रत्नोंको लाकर रानीको दे दिये और रानी ने उन्हें महाराजके पास पहुँचा दिये।

राजाको रत्न देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने रानीकी बुद्धिमानीको बहुत बहुत धन्यवाद दिया। इसके बाद उन्होंने समुद्रदत्तको बुलाया और उन रत्नोंको और बहुतसे रत्नोंमें मिलाकर उससे कहा—देखो, इन रत्नोंमें तुम्हारे रत्न हैं क्या ? और हों तो उन्हें निकाललो। समुद्रदत्तने अपने रत्नोंको पहचान कर निकाल लिया। सच है—बहुत समय बीत जानेपर भी अपनी वस्तुको कोई नहीं भूलता।

इसके बाद राजाने श्रीभूतिको राजसभामें बुलाया और रत्नोंको उसके सामने रखकर कहा—कहिये आप तो इस बेचारेके रत्नोंको हड़पकर भी उल्टा इसे ही पागल बनाते थे न ? यदि महारानी मुझसे आग्रह न करती और अपनी बुद्धिमानीसे इन रत्नोंको प्राप्त नहीं करती, तब यह बेचारा गरीब तो व्यर्थ मारा जाता और मेरे सिरपर कलंकका टीका लगता। क्या इतने उच्च अधिकारी बनकर मेरी प्रजाका इसी तरह तुमने सर्वस्व हरण किया है ?

राजाको बड़ा क्रोध आया। उसने अपने राज्यके कर्मचारियों से पूछा—कहो, इस महापापीको इसके पापका क्या प्रायश्चित दिया जाय, जिससे आगेके लिये सब सावधान हो जाँय और इस दुरात्माका जैसा भयंकर कर्म है, उसीके उपयुक्त इसे उसका प्रायश्चित भी मिल जाय ?

राज्यकर्मचारियोंने विचार कर और सबकी सम्मति मिलाकर कहा—महाराज, जैसा इन महाशयका नीच कर्म है, उसके योग्य हम तीन दण्ड उपयुक्त समझते हैं और उनमेंसे जो इन्हें पसन्द हो, वही ये स्वीकार करें। १—एक सेर पक्का गोमय खिलाया जाय; २—मल्लके द्वारा बत्तीस घूंसे लगवाये जाँय; या ३—सर्वस्व हरण पूर्वक देश निकाला दे दिया जाय।

राजाने अधिकारियोंके कहे माफिक दण्डकी योजना कर श्रीभूतिसे कहा कि—तुम्हें जो दण्ड पसन्द हो, उसे बतलाओ। पहले श्रीभूतिने गोमय खाना स्वीकार किया, पर उसका उससे एक ग्रास भी नहीं खाया गया। तब उसने मल्लके घूंसे खाना स्वीकार किया। मल्ल बुलवाया गया। घूँसे लगना आरंभ हुआ। कुछ घूँसोंकी मार पड़ी होगी कि उसका आत्मा शरीर छोड़कर चल बसा। उसकी मृत्यु बड़े आर्त्तध्यानसे हुई। वह मरकर राजाके खजानेपर ही एक विकराल सर्प हुआ।

इधर समुद्रदत्तको इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने संसारकी दशा देखकर उसमें अपनेको फँसाना उचित नहीं समझा। वह उसी समय अपना सब धन परोपकारके कामोंमें लगाकर वनकी ओर चल दिया और धर्माचार्य नामके महामुनिसे पवित्र धर्मका

उपदेश सुनकर साधु बन गया। बहुत दिनोंतक उसने तपश्चर्या की। इसके बाद आयुके अन्तमें मृत्यु प्राप्त कर वह इन्हीं सिंहसेन राजाके सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ।

एक दिन राजा अपने खजानेको देखनेके लिये गये थे, उन्हें देखकर श्रीभूतिके जीवको, जो कि खजानेपर सर्प हुआ था, बड़ा क्रोध आया। क्रोधके वश हो उसने महाराजको काट खाया। महाराज आर्त्तध्यानसे मरकर सल्लकी नामक वनमें हाथी हुए। राजाकी सर्प द्वारा मृत्यु देखकर सुघोष मंत्रीको बड़ा क्रोध आया। उसने अपने मंत्रबलसे बहुतसे सर्पोंको बुलाकर कहा—यदि तुम निर्दोष हो, तो इस अग्निकुण्डमें प्रवेश करते हुए अपने अपने स्थानपर चले जाओ। तुम्हें ऐसा करनेसे कुछ भी कष्ट न होगा। जितने बाहरके सर्प आये थे वे सब तो चले गये। अब श्रीभूतिका जीव बाकी रह गया। उससे कहा गया कि या तो तू विष खींचकर महाराजको छोड़ दे, या इस अग्निकुण्डमें प्रवेश कर। पर वह महाक्रोधी था उसने अग्निकुण्डमें प्रवेश करना अच्छा समझा, पर विष खींच लेना उचित नहीं समझा। वह क्रोधके वश हो अग्निमें प्रवेश कर गया। प्रवेश करते ही वह देखते देखते जलकर खाक हो गया। जिस सल्लकी वनमें महाराजका जीव हाथी हुआ था, वह सर्प भी मरकर उसी वनमें मुर्गा हुआ। सच है—पापियोंका कुयोनियोंमें उत्पन्न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इधर तो ये सब अपने अपने कर्मोंके अनुसार दूसरे भवोंमें उत्पन्न हुए और उधर सिंहसेनकी रानी पति-वियोगसे बहुत दुखी हुई। उसे संसारकी क्षणभंगुर लीला देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय संसारका मायाजाल तोड़ताड़कर वनश्री आर्यिकाके पास साध्वी बन गई। सिंहसेनका पुत्र सिंहचन्द्र भी वैराग्यके वश हो अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्रको राज्यभार सौंपकर सुव्रत नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। साधु होकर सिंहचन्द्रमुनिने खूब तपश्चर्या की, शान्ति और धीरताके साथ परीषहोंपर विजय प्राप्त किया, इन्द्रियोंको वश किया, और चंचल मनको दूसरी ओरसे रोककर ध्यानकी ओर लगाया। अन्तमें ध्यानके बलसे उन्हें मनः-पर्ययज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें मनःपर्ययज्ञानसे युक्त देखकर उनकी माताने, जो कि इन्हींके पहले आर्यिका हुई थीं, नमस्कार कर पूछा—साधुराज! मेरी कूंख धन्य है—वह आज कृतार्थ हुई, जिसने आपसे पुरुषोत्तमको धारण किया। पर अब यह तो कहिये कि आपके छोटे भाई पूर्णचन्द्र आत्महितके लिये कब उद्यत होंगे?

उत्तरमें सिंहचंद्रमुनि बोले—माता, सुनो तो मैं तुम्हें संसार की विचित्र लीला सुनाता हूं, जिसे सुनकर तुम भी आश्चर्य करोगी। तुम जानती हो कि पिताजीको सर्पने काटा था और उसीसे उनकी मृत्यु हो गई थी। वे मरकर सल्लकी वनमें हाथी हुए। वे ही पिता एक दिन मुझे मारनेके लिये मेरे पर झपटे, तब मैंने उस हाथीको समझाया और कहा—गजेन्द्रराज, जानते हो, तुम पूर्व जन्ममें राजा सिंहसेन थे और मैं प्राणोंसे भी प्यारा सिंहचन्द्र नामका तुम्हारा पुत्र था। कैसा आश्चर्य है कि आज पिता ही पुत्रको मारना चाहता है। मेरे इन शब्दोंको सुनते ही गजेन्द्रको जातिस्मरण हो आया—पूर्वजन्मकी उसे स्मृति हो गई। वह रोने लगा, उसकी आँखोंसे आँसुओं की धारा बह चली। वह मेरे सामने चित्र लिखासा खड़ा रह गया। उसकी यह अवस्था देखकर मैंने उसे जिनधर्मका उपदेश दिया और

पंचाणुव्रतका स्वरूप समझाकर उसे अणुव्रत ग्रहण करनेको कहा। उसने अणुव्रत ग्रहण किये और पश्चात् वह प्रासुक भोजन और प्रासुक जलसे अपना निर्वाहकर व्रतका दृढ़ताके साथ पालन करने लगा।

एक दिन वह जल पीनेके लिये नदीपर पहुँचा। जलके भीतर प्रवेश करते समय वह कीचड़में फँस गया। उसने निकलनेकी बहुत चेष्टा की, पर वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अपना निकलना असंभव समझकर उसने समाधिमरणकी प्रतिज्ञा लेली। उस समय वह श्रीभूतिका जीव, जो मुर्गा हुआ था, हाथीके सिरपर बैठकर उसका मांस खाने लगा। हाथीपर बड़ा उपसर्ग आया, पर उसने उसकी कुछ परवा न कर बड़ी धीरताके साथ पंच नमस्कार मंत्रकी आराधना करना शुरू कर दिया, जो कि सब पापोंका नाश करने वाला है। आयुके अन्तमें शान्तिके साथ मृत्यु प्राप्तकर वह सहस्रार-स्वर्गमें देव हुआ। सच है—धर्मके सिवा और कल्याणका कारण हो ही क्या सकता है ?

वह सर्प भी बहुत कष्टोंको सहनकर मरा और तीव्र पाप-कर्मके उदयसे चौथे नरकमें जाकर उत्पन्न हुआ, जहाँ अनन्त दुःख हैं और जबतक आयु पूर्ण नहीं होती तबतक पलक गिराने मात्र भी सुख प्राप्त नहीं होता।

सिंहसेनका जीव जो हाथी मरा था, उसके दांत और कपोलोंमेंसे निकले हुए मोती, एक भीलके हाथ लगे। भीलने उन्हें एक धनमित्र नामक साहूकारके हाथ बेच दिये और धनमित्रने उन्हें

सर्वश्रेष्ठ और कीमती समझकर राजा पूर्णचंद्रकी भेंट कर दिये। राजा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उनके बदलेमें धनमित्रको खूब धन दिया। इसके बाद राजाने दांतोंके तो अपने पलंगके पाये बनवाये और मोतियोंका रानीके लिये हार बनवा दिया। इस समय वे विषयसुखमें खूब मग्न होकर अपना काल बिता रहे हैं। यह संसारकी विचित्र दशा है। क्षणक्षणमें क्या होता है सो सिवा ज्ञानी के कोई नहीं जान पाता और इसीसे जीवोंको संसारके दुःख भोगना पड़ते हैं। माता, पूर्णचन्द्रके कल्याणका एक मार्ग है, यदि तुम जाकर उपदेश दो और यह सब घटना उसे सुनाओ, तो वह अवश्य अपने कल्याणकी ओर दृष्टि देगा।

सुनते ही वह उठी और पूर्णचन्द्रके महल पहुँची। अपनी माताको देखते ही पूर्णचंद्र उठे और बड़े विनयसे उसका सत्कार कर उन्होंने उसके लिये पवित्र आसन दिया और हाथ जोड़कर वे बोले—माताजी, आपने अपने पवित्र चरणोंसे इस समय भी इस घरको पवित्र किया, उससे मुझे जो प्रसन्नता हुई वह वचनों द्वारा नहीं कही जा सकती। मैं अपने जीवनको सफल समझूंगा यदि मुझे आप अपनी आज्ञाका पात्र बनावेंगी। वह बोली—मुझे एक आवश्यक बातकी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना है। इसीलिये मैं यहां आई हूं। और वह बड़ी विलक्षण बात है, सुनते हो न ? इसके बाद आर्यिकाने यों कहना आरंभ किया—

"पुत्र, जानते हो, तुम्हारे पिताको सर्पने काटा था, उसकी वेदनासे मरकर वे सल्लकीबनमें हाथी हुए और वह सर्प मरकर उसी वनमें मुर्गा हुआ। एक दिन हाथी जल पीने गया। वह नदीके किनारे

पर खूब गहरे कीचड़ में फँस गया। वह उसमेंसे किसी तरह निकल नहीं सका। अन्तमें निरुपाय होकर वह मर गया। उसके दांत और मोती एक भीलके हाथ लगे। भीलने उन्हें एक सेठके हाथ बेच दिये। सेठके द्वारा वे ही दांत और मोती तुम्हारे पास आये। तुमने दांतोंके तो पलंगके पाये बनवाये और मोतियोंका अपनी पत्नीके लिये हार बनवाया। यह संसारकी विचित्र लीला है। इसके बाद तुम्हें उचित जान पड़े सो करो" । आर्यिका इतना कहकर चुप हो रही। पूर्णचन्द्र अपने पिताकी कथा सुनकर एक साथ रो पड़े। उनका हृदय पिताके शोकसे सन्तप्त हो उठा। जैसे दावाग्निसे पर्वत सन्तप्त हो उठता है। उनके रोनेके साथ ही सारे अन्तःपुरमें हाहाकार मच गया। उन्होंने पितृप्रेमके वश हो उन पलंगके पायोंको छातीसे लगाया। इसके बाद उन्होंने पलंगके पायों और मोतियोंकी चन्दनादिसे पूजा कर उन्हें जला दिया। ठीक है—मोहके वश होकर यह जीव क्या क्या नहीं करता ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोहका चक्र जब अच्छे अच्छे महात्माओंपर भी चल जाता है, तब पूर्णचन्द्रपर उसका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्यका कारण नहीं है। पर पूर्णचन्द्र बुद्धिमान थे, उन्होंने झटसे अपनेको सम्हाल लिया और पवित्र श्रावकधर्मको ग्रहण कर बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ उनका वे पालन करने लगे। फिर आयुके अन्तमें वे पवित्रभावोंसे मृत्यु लाभकर महाशुक्र नामक स्वर्गमें देव हुए। उनकी माता भी अपनी शक्तिके अनुसार तपश्चर्या कर उसी स्वर्गमें देव हुई। सच है—संसारमें जन्म लेकर कौन कौन कालके ग्रास नहीं बने ? मनःपर्ययज्ञानके धारक सिंहचद्रमुनि भी

तपश्चर्या और निर्मल चारित्रके प्रभावसे मृत्यु प्राप्त कर ग्रैवेयकमें जाकर देव हुए।

भारतवर्षके अन्तर्गत सूर्याभपुरनामक एक शहर है। उसके राजाका नाम सुरावर्त्त है। वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी हैं। उनकी महारानीका नाम था यशोधरा। वह बड़ी सुन्दरी थी, बुद्धिमती थी, सती थी, सरल स्वभाव वाली थी, और विदुषी थी। वह सदा दान देती, जिन भगवानकी पूजा करती, और बड़ी श्रद्धाके साथ उपवासादि करती।

सिंहसेन राजाका जीव, जो हाथीकी पर्यायसे मरकर स्वर्ग गया था, यशोधरा रानीका पुत्र हुआ। उसका नाम था रश्मिवेग। कुछ दिनों बाद महाराज सुरावर्त तो राज्यभार रश्मिवेगके लिये सौंपकर साधु बन गये और राज्यकार्य रश्मिवेग चलाने लगा।

एक दिनकी बात है कि धर्मात्मा रश्मिवेग सिद्धकूट जिनालयकी वन्दनाके लिये गया। वहां उसने एक हरिचन्द्र नामके मुनिराजको देखा; उनसे धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेशका उसके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे बहुत वैराग्य हुआ। संसार शरीरभोगादिकोंसे उसे बड़ी घृणा हुई। उसने उसी समय मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण करली।

एक दिन रश्मिवेग महामुनि एक पर्वतकी गुफामें कायोत्सर्ग धारण किये हुए थे कि एक भयानक अजगरने, जो कि श्रीभूतिका जीव सर्पपर्यायसे मरकर चौथे नरक गया था और वहांसे आकर यह अजगर हुआ, उन्हें काट खाया। मुनिराज तब भी ध्यानमें निश्चल

खड़े रहे, जरा भी विचलित नहीं हुए। अन्तमें मृत्यु प्राप्तकर समाधिमरणके प्रभावसे वे कापिष्ठस्वर्गमें जाकर आदित्यप्रभ नामक महर्द्धिक देव हुए, जो कि सदा जिनभगवानके चरणकमलोंकी भक्ति में लीन रहते थे। और वह अजगर मरकर पापके उदयसे फिर चौथे नरक गया। वहां उसे नारकियोंने कभी तलवारसे काटा और कभी करौतीसे, कभी उसे अग्निमें जलाया और कभी घानीमें पेला, कभी अतिशय गरम तेलकी कढ़ाईमें डाला और कभी लोहेके गरम खंभोंसे आलिंगन कराया। मतलब यह कि नरकमें उसे घोर दुःख भोगना पड़े।

चक्रपुर नामका एक सुन्दर शहर है। उसके राजा हैं चक्रायुध और उनकी महारानीका नाम चित्रादेवी है। पूर्वजन्मके पुण्यसे सिंहसेन राजाका जीव स्वर्गसे आकर इनका पुत्र हुआ। उसका नाम था वज्रायुध। जिनधर्मपर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। जब वह राज्य करनेको समर्थ हो गया, तब महाराज चक्रा धने राज्यका भार उसे सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण करली। वज्रायुध सुख और नीति के साथ राज्यका पालन करने लगे। उन्होंने बहुत दिनों तक राज्यसुख भोगा। पश्चात् एक दिन किसी कारणसे उन्हें भी वैराग्य हो गया। वे अपने पिताके पास दीक्षा लेकर साधु बन गये। वज्रायुधमुनि एक दिन पियंगु नामक पर्वतपर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे कि इतनेमें एक दुष्ट भीलने, जो कि सर्पका जीव चौथे नरक गया था और वहांसे अब यही भील हुआ, उन्हें बाणसे मार दिया। मुनिराज तो समभावोंसे प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि गये और वह भील रौद्रभावसे मरकर सातवें नरक गया।

सर्वार्थसिद्धिसे आकर वज्रायुधका जीव तो संजयन्त हुआ, जो संसारमें प्रसिद्ध है और पूर्णचंद्रका जीव उनका छोटाभाई जयन्त हुआ। वे दोनों भाई छोटी ही अवस्थामें कामभोगोंसे विरक्त होकर पिताके साथ मुनि हो गये। और वह भीलका जीव सातवें नरकसे निकल कर अनेक कुगतियोंमें भटका। उनमें उसने बहुत कष्ट सहा। अन्तमें वह मरकर ऐरावतक्षेत्रान्तर्गत भूतरमण नामक वनमें बहनेवाली वेगवती नामकी नदीके किनारेपर गोश्रृंगतापसकी शंखिनी नामकी स्त्रीके हरिणश्रृंग नामक पुत्र हुआ। वही पंचाग्नितप तपकर यह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर हुआ है, जिसने कि संजयन्त मुनिपर पूर्वजन्म के बैरसे घोर उपसर्ग किया। और उनके छोटे भाई जयन्तमुनि निदान करके जो धरणेन्द्र हुए, वे तुम हो।

संजयन्त मुनिपर पापी विद्युद्दंष्ट्रने घोर उपसर्ग किया, तब भी वे पवित्रात्मा रंच मात्र विचलित नहीं हुए और सुमेरुके समान निश्चल रहकर उन्होंने सब परीषहोंको सहा और सम्यक्तपका उद्योत कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया। वहाँ उनके अनन्तज्ञानादि स्वाभाविक गुण प्रगट हुए। वे अनन्त कालतक मोक्षमें ही रहेंगे। अब वे संसारमें नहीं आवेंगे।"

दिवाकरने कहा—नागेन्द्रराज! यह संसारकी स्थिति है। इसे देखकर इस बेचारेपर तुम्हें क्रोध करना उचित नहीं। इसे दया करके छोड़ दीजिये। सुनकर धरणेन्द्र बोला, मैं आपके कहनेसे इसे छोड़ देता हूं; परन्तु इसे अपने अभिमानका फल मिले, इसलिये मैं शाप देता हूं कि "मनुष्यपर्यायमें इसे कभी विद्याकी सिद्धि न हो।"

इसके बाद धरणेन्द्र अपने भाई संजयन्तमुनिके मृतशरीरकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा कर अपने स्थानपर चला गया।

इस प्रकार उत्कृष्ट तपश्चर्या करके श्रीसंजयन्तमुनिने अविनाशी मोक्षश्रीको प्राप्त किया। वे हमें भी उत्तम सुख प्रदान करें।

श्रीमल्लिभूषण गुरु कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें हुए। वे जिनभगवानके चरणकमलोंके भ्रमर थे—उनकी भक्तिमें सदा लीन रहते थे, सम्यग्ज्ञानके समुद्र थे, पवित्र चारित्रके धारक थे और संसार-समुद्रसे भव्य जीवोंको पार करनेवाले थे। वे ही मल्लिभूषण गुरु मुझे भी सुख-सम्पत्ति प्रदान करें।

६—अंजनचोरकी कथा।

सुखके देनेवाले श्रीसर्वज्ञ वीतराग भगवानके चरणकमलोंको नमस्कार कर अंजनचोरकी कथा लिखता हूं, जिसने सम्यग्दर्शनके निःशंकित अंगका उद्योत किया है।

भारतवर्ष-मगधदेशके अन्तर्गत राजगृह नामक शहरमें एक जिनदत्त सेठ रहता था। वह बड़ा धर्मात्मा था। वह निरन्तर जिन-भगवानकी पूजा करता, दीन दुखियोंको दान देता, श्रावकोंके व्रतोंका पालन करता और सदा शान्त और विषयभोगोंसे विरक्त रहता। एक दिन जिनदत्त चतुर्दशीके दिन आधीरातके समय श्मशानमें कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। उस समय वहाँ दो देव आये। उनके

नाम अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ थे। अमितप्रभ जैनधर्मका विश्वासी था और विद्युत्प्रभ दूसरे धर्मका। वे अपने अपने स्थानसे परस्परके धर्मकी परीक्षा करनेको निकले थे। पहले उन्होंने एक पंचाग्नितप करनेवाले तापसकी परीक्षा की। वह अपने ध्यानसे विचलित हो गया। इसके बाद उन्होंने जिनदत्तको श्मशानमें ध्यान करते देखा। तब अमितप्रभने विद्युत्प्रभसे कहा—प्रिय, उत्कृष्ट चारित्रके पालनेवाले जिनधर्मके सच्चे साधुओंकी परीक्षाकी बातको तो जाने दो, परन्तु देखते हो, वह गृहस्थ जो कायोत्सर्गसे खड़ा हुआ है, यदि तुममें कुछ शक्ति हो, तो तुम उसे ही अपने ध्यानसे विचलित करदो। यदि तुमने उसे ध्यानसे चला दिया तो हम तुम्हारा ही कहना सत्य मान लेंगे।

अमितप्रभसे उत्तेजना पाकर विद्युत्प्रभने जिनदत्तपर अत्यन्त दुस्सह और भयानक उपद्रव किया, पर जिनदत्त उससे कुछ भी विचलित न हुआ और पर्वतकी तरह खड़ा रहा। जब सबेरा हुआ तब दोनों देवोंन अपना असली वेष प्रगट कर बड़ी भक्तिके साथ उसका खूब सत्कार किया और बहुत प्रशंसा कर जिनदत्तको एक आकाशगामिनी विद्या दी। इसके बाद वे जिनदत्तसे यह कहकर, कि श्रावकोत्तम! तुम्हें आजसे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई; तुम पंच नमस्कार मंत्रकी साधनविधिके साथ इसे दूसरोंको प्रदान करोगे तो उन्हें भी यह सिद्ध होगी—अपने स्थानपर चले गये।

विद्याकी प्राप्तिसे जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उसकी अकृत्रिम चैत्यालयोंके दर्शन करनेकी इच्छा पूरी हुई। वह उसी समय विद्याके प्रभावसे अकृत्रिम चैत्यालयके दर्शन करनेको गया

और खूब भक्तिभावसे उसने जिनभगवानकी पूजा की, जो कि स्वर्ग-मोक्षकी देनेवाली है।

इसी प्रकार अब जिनदत्त प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमन्दिरों के दर्शन करनेके लिये जाने लगा। एक दिन वह जानेके लिये तैयार खड़ा हुआ था कि उससे एक सोमदत्त नामके मालीने पूछा—आप प्रतिदिन सवेरे ही उठकर कहाँ जाया करते हैं? उत्तरमें जिनदत्त सेठने कहा—मुझे दो देवोंकी कृपासे आकाशगामिनी विद्या की प्राप्ति हुई है। सो उसके बलसे सुवर्णमय अकृत्रिम जिनमन्दिरों की पूजा करनेके लिये जाया करता हूं, जो कि सुखशान्तिकी देनेवाली है। तब सोमदत्तने जिनदत्तसे कहा—प्रभो, मुझे भी विद्या प्रदान कीजिये न? जिससे मैं भी अच्छे सुन्दर सुगन्धित फूल लेकर प्रतिदिन भगवानकी पूजा करनेको जाया करूं और उसके द्वारा शुभकर्म उपार्जन करूं। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे विद्या प्रदान करेंगे।

सोमदत्तकी भक्ति और पवित्रता को देखकर जिनदत्तने उसे विद्या साधन करनेकी रीति बतला दी। सोमदत्त उससे सब विधि ठीक ठीक समझकर विद्या साधनेके लिये कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीकी अन्धेरी रातमें स्मशानमें गया, जो कि बड़ा भयंकर था। वहाँ उसने एक बड़की डालीमें एकसौ आठ लड़ीका एक दूबाका सींका बांधा और उसके नीचे अनेक भयंकर तीखे तीखे शस्त्र सीधे मुँह गाड़कर उनकी पुष्पादिसे पूजा की। इसके बाद वह सींकेपर बैठकर पंच नमस्कार मंत्र जपने लगा। मंत्र पूरा होनेपर जब सींकाके काटनेका समय आया और उसकी दृष्टि चमचमाते हुए शस्त्रोंपर पड़ी तब उन्हें

देखते ही वह कांप उठा। उसने विचारा—यदि जिनदत्तने मुझे झूठ कह दिया हो तब तो मेरे प्राण ही चले जाँयगे; यह सोच कर वह नीचे उतर आया। उसके मनमें फिर कल्पना उठी कि भला जिनदत्तको मुझसे क्या लेना है जो वह झूठ कहकर मुझे ऐसे मृत्युके मुखमें डालेगा? और फिर वह तो जिनधर्मका परम श्रद्धालु है—उसके रोम रोममें दया भरी हुई है, उसे मेरी जान लेनेसे क्या लाभ? इत्यादि विचारोंसे अपने मनको सुन्तुष्ट कर वह फिर सींकपर चढ़ा, पर जसे ही उसकी दृष्टि फिर शस्त्रोंपर पड़ी कि वह फिर भयके मारे नीचे उतर आया। इसी तरह वह बारबार उतरने चढ़ने लगा, पर उसकी हिम्मत सींका काट देनेकी नहीं हुई। सच है जिन्हें स्वर्ग-मोक्षका सुख देने वाले जिनभगवानके वचनोंपर विश्वास नहीं-मनमें उनपर निश्चय नहीं, उन्हें संसारमें कोई सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती।

उसी रातको एक और घटना हुई वह उल्लेख योग्य है और खासकर उसका इसी घटनासे सम्बन्ध है। इसलिये उसे लिखते हैं। वह इस प्रकार है—

इधर तो सोमदत्त सशंक होकर क्षणभरमें वृक्षपर चढ़ता और क्षणभरमें उसपरसे उतरता था, और दूसरी ओर इसी समय माणिकांजन सुन्दरी नामकी एक वेश्याने अपनेपर प्रेम करनेवाले एक अंजन नामके चोरसे कहा—प्राणवल्लभ, आज मैंने प्रजापाल महाराज की कनकवती नामकी पट्टरानीके गलेमें रत्नका हार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। मेरा तो यह भी विश्वास है कि संसार भरमें उसकी तुलना करनेवाला कोई और हार होगा ही नहीं। सो आप

उसे लाकर मुझे दीजिये, तब ही आप मेरे स्वामी हो सकेंगे अन्यथा नहीं।

माणिकांजन सुन्दरीकी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर पहले तो वह कुछ हिचका, पर साथ ही उसके प्रेमने उसे वैसा करनेको बाध्य किया। वह अपने जीवनकी भी कुछ परवा न कर हार चुरा लानेके लिये राजमहल पहुँचा और मौका देखकर महलमें घुस गया। रानीके शयनागारमें पहुँचकर उसने उसके गलेमेंसे बड़ी कुशलताके साथ हार निकाल लिया। हार लेकर वह चलता बना। हजारों पहरेदारोंकी आँखोंमें धूल डालकर वह साफ निकल जाता, पर अपने दिव्य प्रकाशसे गाढ़ेसे गाढ़े अंधकारको भी नष्ट करनेवाले हारने उसे सफल प्रयत्न नहीं होने दिया। पहरेवालोंने उसे हार ले जाते हुए देख लिया। वे उसे पकड़नेको दौड़े। अंजन चोर भी खूब जी छोड़कर भागा, पर आखिर कहाँतक भाग सकता था। पहरेदार उसे पकड़ लेना ही चाहते थे कि उसने एक नई युक्ति की। वह हार को पीछेकी ओर जोरसे फेंक कर भागा। सिपाही लोग तो हार उठानेमें लगे और इधर अंजनचोर बहुत दूर तक निकल आया। सिपाहियोंने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। वे उसका पीछा किये चले ही गये। अंजनचोर भागता भागता श्मशानकी ओर जा निकला, जहाँ जिनदत्तके उपदेशसे सोमदत्त विद्यासाधनके लिये व्यग्र हो रहा था। उसका यह भयंकर उपक्रम देखकर अंजनने उससे पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो? क्यों अपनी जान दे रहे हो? उत्तरमें सोमदत्तने सब बातें उसे बतादीं, जैसी कि जिनदत्तने उसे बतलाई थीं। सोमदत्तकी बातोंसे अंजनको बड़ी खुशी हुई। उसने सोचा कि

सिपाही लोग तो मुझे मारनेके लिये पीछे आ ही रहे हैं और वे अवश्य मुझे मार भी डालेंगे। क्योंकि मेरा अपराध कोई साधारण अपराध नहीं है। फिर यदि मरना ही है तो धर्मके आश्रित रहकर ही मरना अच्छा है। यह विचार कर उसने सोमदत्तसे कहा—बस इसी थोड़ीसी बातके लिये इतने डरते हो? अच्छा लाओ, मुझे तलवार दो, मैं भी तो जरा आजमा लूं। यह कहकर उसने सोमदत्त से तलवार लेली और वृक्षपर चढ़कर सींकेपर जा बैठा। वह सींकेको काटनेके लिये तयार हुआ कि सोमदत्तके बताये मंत्रको भूल गया। पर उसकी वह कुछ परवा न कर और केवल इस बातपर विश्वास करके कि "जैसा सेठने कहा उसका कहना मुझे प्रमाण है।" उसने निःशंक होकर एक ही झटकेमें सारे सींकेको काट दिया। काटनेके साथ ही जबतक वह शस्त्रोंपर गिरता है तबतक आकाशगामिनी विद्याने आकर उससे कहा—देव, आज्ञा कीजिये, मैं उपस्थित हूँ। विद्याको अपने सामने खड़ी देखकर अंजनचोरको बड़ी खुशी हुई। उसने विद्यासे कहा, मेरु पर्वतपर जहाँ जिनदत्त सेठ भगवानकी पूजा कर रहा है, वहीं मुझे पहुँचा दो। उसके कहनेके साथ ही विद्याने उसे जिनदत्तके पास पहुँचा दिया। सच है—जिनधर्मके प्रसादसे क्या नहीं होता?

सेठके पास पहुँचकर अंजनने बड़ी भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया और वह बोला—हे दयाके समुद्र! मैंने आपकी कृपासे आकाशगामिनी विद्या तो प्राप्त की, पर अब आप मुझे कोई ऐसा मंत्र बतलाइये, जिससे मैं संसार समुद्रसे पार होकर मोक्षमें पहुँच जाऊँ-सिद्ध हो जाऊँ।

अंजनकी इस प्रकार वैराग्य भरी बातें सुनकर परोपकारी जिनदत्तने उसे एक चारणऋद्धिके धारक मुनिराजके पास लिवा लेजाकर उनसे जिन दीक्षा दिलवादी। अंजनचोर साधु बनकर धीरे धीरे कैलासपर जा पहुँचा। वहाँ खूब तपश्चर्या कर ध्यानके प्रभावसे उसने घातिया कर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वह त्रैलोक्य द्वारा पूजित हुआ। अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाश कर अंजनमुनिराजने अविनाशी, अनन्त गुणोंके समुद्र मोक्षपदको प्राप्त किया।

सम्यग्दर्शनके निःशंकितगुणका पालनकर अंजनचोर भी निरंजन हुआ—कर्मोंके नाश करनेमें समर्थ हुआ। इसलिये भव्य-पुरुषोंको तो निःशंकितअंगका पालन करना ही चाहिये।

मूलसंघमें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—रूप उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, बुद्धिमान थे, और ज्ञानके समुद्र थे। सिंहनन्दीमुनि उनके शिष्य थे। वे मिथ्यात्वमतरूपी पर्वतोंको तोड़नेके लिये वज्रके समान थे—बड़े पाण्डित्यके साथ वे अन्य सिद्धान्तोंका खण्डन करते थे और भव्य-पुरुषरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये वे सूर्यके समान थे। वे चिरकाल तक जीयें उनका यशःशरीर इस नश्वर संसारमें सदा बना रहे।

७—अनन्तमतीकी कथा।

मोक्ष-सुखके देनेवाले श्रीअर्हन्त भगवानके चरणोंको भक्ति-पूर्वक नमस्कार कर अनन्तमतीकी कथा लिखता हूं, जिसके द्वारा

सम्यग्दर्शनके निःकांक्षित-गुणका प्रकाश हुआ है।

संसारमें अंगदेश बहुत प्रसिद्ध देश है। जिस समयकी हम कथा लिखते हैं, उस समय उसकी प्रधान राजधानी चम्पापुरी थी। उसके राजा थे वसुवर्धन और उनको रानीका नाम लक्ष्मीमती था। वह सती थी, गुणवती थी और बड़ी सरल स्वभावकी थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था प्रियदत्त। प्रियदत्तकी जिनधर्मपर पूर्ण श्रद्धा थी। उसकी गृहिणीका नाम अंगवती था। वह बड़ी धर्मात्मा थी, उदार थी। अंगवतीके एक पुत्री थी। उसका नाम अनन्तमती था। वह बहुत सुन्दर थी, गुणोंकी समुद्र थी।

अष्टाह्निका पर्व आया। प्रियदत्तने धर्मकीर्ति मुनिराजके पास आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य व्रत लिया। साथहीमें उसने अपनी प्रिय पुत्रीको भी विनोद वश होकर ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। कभी कभी सत्पुरुषोंका विनोद भी सत्य मार्गका प्रदर्शक बन जाता है। अनंतमती के चित्तपर भी प्रियदत्तके दिलाये व्रतका ऐसा ही प्रभाव पड़ा। जब अनन्तमतीके ब्याहका समय आया और उसके लिये आयोजन होने लगा, तब अनन्तमतीने अपने पितासे कहा—पिताजी! आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिया था न? फिर यह ब्याहका आयोजन आप किस लिये करते हैं?

उत्तरमें प्रियदत्तने कहा—पुत्री, मैंने तो तुझे जो व्रत दिलवाया था वह केवल मेरा विनोद था। क्या तूं उसे सच समझ बैठी है?

अनन्तमती बोली—पिताजी, धर्म और व्रतमें हँसी विनोद कैसा, यह मैं नहीं समझी?

प्रियदत्तने फिर कहा – मेरे कुलकी प्रकाशक प्यारी पुत्री, मैंने तो तुझे ब्रह्मचर्य केवल विनोदसे दिया था। और तू उसे सच ही समझ बैठी है, तो भी वह आठ ही दिनके लिये था। फिर अब तू ब्याहसे क्यों इन्कार करती है ?

अनन्तमतीने कहा—मैं मानती हूँ कि आपने अपने भावोंसे मुझे आठ ही दिनका ब्रह्मचर्य दिया होगा; परन्तु न तो आपने उस समय मुझसे ऐसा कहा और न मुनि महाराजने ही, तब मैं कैसे समझूं कि वह आठ ही दिनके लिये था। इसलिये अब जैसा कुछ हो, मैं तो जीवन पर्यन्त ही उसे पालूंगी। मैं अब ब्याह नहीं करूंगी।

अनन्तमतीकी बातोंसे उसके पिताको बड़ी निराशा हुई; पर वे कर भी क्या सकते थे। उन्हें अपना सब आयोजन समेट लेना पड़ा। इसके बाद उन्होंने अनन्तमतीके जीवनको धार्मिक-जीवन बनानेके लिये उसके पठनपाठनका अच्छा प्रबन्ध कर दिया। अनन्तमती भी निराकुलतासे शास्त्रोंका अभ्यास करने लगी।

इस समय अनन्तमती पूर्ण युवती है। उसकी सुन्दरताने स्वर्गीय सुन्दरता धारण की है। उसके अग अंगसे लावण्यसुधाका झरना बह रहा है। चन्द्रमा उसके अप्रतिम मुखकी शोभाको देखकर फीका पड़ रहा है और नखोंके प्रतिबिम्बके बहानेसे सके पावोंमें पड़कर अपनी इज्जत बचा लेनेके लिये उससे प्राथना करता है। उसकी बड़ी बड़ी और प्रफुल्लित आँखोंको देखकर बेचारे कमलोंसे मुख भी ऊँचा नहीं किया जाता है। यदि सच पूछो तो उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा करना मानो उसकी मर्यादा बांध देना है, पर वह तो अमर्याद है, स्वर्गकी सुन्दरियोंको भी दुर्लभ है।

चैत्रका महिना था। एक दिन अनन्तमती विनोदवश हो, अपने बगीचेमें अकेली झूलेपर झूल रही थी। इसी समय एक कुण्डल-मंडित नामका विद्याधरोंका राजा, जो कि विद्याधरोंकी दक्षिणश्रेणीके किन्नरपुरका स्वामी था, इधर ही होकर अपनी प्रियाके साथ वायुयानमें बैठा हुआ जा रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि झूलती हुई अनन्तमती पर पड़ी उसकी स्वर्गीय सुन्दरताको देखकर कुंडलमंडित कामके बाणोंसे बुरी तरह बींधा गया। उसने अनंतमतीकी प्राप्तिके बिना अपने जन्मको व्यर्थ समझा। वह उस बेचारी बालिकाको उड़ा तो उसी वक्त ले जाता, पर साथमें प्रियाके होनेसे ऐसा अनर्थ करनेके लिये उसकी हिम्मत न पड़ी। पर उसे बिना अनन्तमतीके कब चैन पड़ सकता था ? इसलिये वह अपने विमानको शीघ्रतासे घर लौटा ले गया और वहाँ अपनी प्रियाको रखकर उसी समय अनंतमतीके बगीचेमें आ उपस्थित हुआ और बड़ी फुर्तीसे उस भोली बालिकाको उठा ले चला। उधर उसकी प्रियाको भी इसके कर्मका कुछ कुछ अनुसंधान लग गया था। इसलिये कुण्डलमंडित तो उसे घरपर छोड़ आया था, पर वह घरपर न ठहर कर उसके पीछे पीछे हो चली। जिस समय कुण्डलमंडित अनन्तमतीको लेकर आकाशकी ओर जा रहा था, कि उसकी दृष्टि अपनी प्रिया पर पड़ी। उसे क्रोधके मारे लाल मुख किये हुई देखकर कुण्डलमंडितके प्राणदेवता एक साथ शीतल पड़ गये। उसके शरीरको काटो तो खून नहीं। ऐसी स्थितिमें अधिक गोलमाल होनेके भयसे उसने बड़ी फुर्तीके साथ अनन्तमतीको एक पर्णलघ्वी नामकी विद्याके आधीन कर उसे एक

भयंकर वनीमें छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी और आप पत्नीके साथ घर लौट गया और उसके सामने अपनी निर्दोषताका यह प्रमाण पेश कर दिया कि अनन्तमती न तो विमानमें उसे देखनेको मिली और न विद्याके सुपुर्द करते समय कुण्डलमंडितने ही उसे देखने दी।

उस भयंकर बनीमें अनन्तमती बड़े जोर जोरसे रोने लगी, पर उसके रोनेको सुनता भी कौन ? वह तो कोसोंतक मनुष्योंके पदचारसे रहित थी। कुछ समय बाद एक भीलोंका राजा शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला। उसने अनन्तमतीको देखा। देखते ही वह भी कामके बाणोंसे घायल हो गया और उसी समय उसे उठाकर अपने गांवमें ले गया। अनन्तमती तो यह समझी कि दैवने मुझे इसके हाथ सौंपकर मेरी रक्षा की है और अब मैं अपने घर पहुँचा दी जाऊँगी। पर नहीं, उसकी यह समझ ठीक नहीं थी। वह छुटकारेके स्थानमें एक और नई विपत्तिके मुखमें फँस गई।

राजा उसे अपने महल लेजाकर बोला—बाले, आज तुम्हें अपना सौभाग्य समझना चाहिये कि एक राजा तुमपर मुग्ध है, और वह तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाना चाहता है। प्रसन्न होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करो और अपने स्वर्गीय समागमसे उसे सुखी करो। वह तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा है—तुम्हें वनदेवी समझकर अपना मन चाहा वर माँगता है। उसे देकर उसकी आशा पूरी करो। बेचारी भोली अनन्तमती उस पापीकी बातोंका क्या जबाब देती ? वह फूट फूटकर रोने लगी और आकाश पाताल एक करने लगी। पर उसकी सुनता कौन ? वह तो राज्यही मनुष्यजातिके राक्षसोंका था।

भीलराजाके निर्दयी हृदयमें तब भी अनन्तमतीके लिये कुछ भी दया नहीं आई। उसने और भी बहुत बहुत प्रार्थना की, विनय अनुनय किया, भय दिखाया, पर अनन्तमतीने उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। किन्तु यह सोचकर, कि इन नारकियोंके सामने रोनेधोनेसे कुछ काम नहीं चलेगा, उसने उसे फटकारना शुरू किया। उसकी आँखोंसे क्रोधकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, उसका चेहरा मुख सुर्ख पड़ गया। सब कुछ हुआ, पर उस भील राक्षसपर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उसने अनन्तमतीसे बलात्कार करना चाहा। इतनेमें उसके पुण्यप्रभावसे, नहीं, शीलके अखंड बलसे वनदेवीने आकर अनन्तमतीकी रक्षा की और उस पापीको उसके पापका खूब फल दिया और कहा—नीच, तू नहीं जानता यह कौन है ? याद रख यह संसारकी पूज्य एक महादेवी है, जो इसे तूने सताया कि समझ तेरे जीवनकी कुशल नहीं है। यह कहकर वनदेवी अपने स्थानपर चली गई। उसके कहनेका भीलराजपर बहुत असर पड़ा और पड़ना चाहिये था। क्योंकि थी तो वह देवी ही न ? देवीके डरके मारे दिन निकलते ही उसने अनन्तमतीको एक साहूकारके हाथ सौंपकर उससे कह दिया कि इसे इसके घर पहुँचा दीजियेगा। पुष्पक सेठने उस समय तो अनन्तमतीको उसके घर पहुँचा देनेका इकरार कर भीलराजसे लेली। पर यह किसने जाना कि उसका हृदय भी भीतरसे पापपूर्ण होगा। अनन्तमतीको पाकर वह समझने लगा कि मेरे हाथ अनायास स्वर्गकी सुन्दरी लग गई। यह यदि मेरी बात प्रसन्नता पूर्वक मानले तब तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे पंजेसे छूट कर भी तो यह नहीं जा सकती। यह विचारकर उस पापीने

अनन्तमतीसे कहा—सुन्दरी, तुम बड़ी भाग्यवती हो, जो एक नर-पिशाचके हाथसे छूटकर पुण्यपुरुषके सुपुर्द हुई। कहाँ तो यह तुम्हारी अनिन्द्य स्वर्गीय सुन्दरता और कहाँ वह भीलराक्षस, कि जिसे देखते ही हृदय कांप उठता है? मैं तो आज अपनेको देवोंसे भी कहीं बढ़कर भाग्यशाली समझता हूं, जो मुझे अनमोल स्त्री रत्न सुलभताके साथ प्राप्त हुआ। भला, विना महाभाग्यके कहीं ऐसा रत्न मिल सकता है? सुन्दरी, देखती हो, मेरे पास अटूट धन है, अनन्त वैभव है, पर उस सबको तुमपर न्यौछावर करनेको तैयार हूं और तुम्हारे चरणोंका अत्यन्त दास बनता हूँ। कहो, मुझपर प्रसन्न हो? मुझे अपने हृदयमें जगह दोगी न? दो, और मेरे जीवनको, मेरे धन-वैभवको सफल करो।

अनंतमतीने समझा था कि इस भले मानसकी कृपासे मैं सुखपूर्वक पिताजीके पास पहुंच जाऊंगी, पर वह बेचारी पापियोंके पापी हृदयकी बातको क्या जाने? उसे जो मिलता था, उसे वह भला ही समझती थी। यह स्वाभाविक बात है कि अच्छेको संसार अच्छा ही दिखता है। अनन्तमतीने पुष्पक सेठकी पापपूर्ण बातें सुनकर बड़े कोमल शब्दोंमें कहा—महाशय, आपको देखकर तो मुझे विश्वास हुआ था कि अब मेरे लिये कोई डरकी बात नहीं रही—मैं निर्विघ्न अपने घरपर पहुँच जाऊगी। क्योंकि मेरे एक दूसरे पिता मेरी रक्षाके लिये आगये हैं। पर मुझे अत्यन्त दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आप सरीखे भले मानसके मुँहसे और ऐसी नीच बातें? जिसे मैंने रस्सी समझकर हाथमें लिया था, मैं नहीं समझत थी कि वह इतना भयंकर सर्प होगा। क्या यह बाहरी चमक दमक और सीधापन केवल दाम्भिकपना है? केवल बगुलोंकी हंसोंमें गणना करानेके लिये है? यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें, तुम्हारे इस ठगी वेषको, तुम्हारे कुलको, तुम्हारे धन-वैभवको और तुम्हारे जीवनको धिक्कार देती हूँ—अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखती हूँ। जो मनुष्य केवल संसारको ठगनेके लिये ऐसे मायाचार करता है, बाहर धर्मात्मा बननेका ढोंग रचता है, लोगोंको धोखा देकर अपने मायाजालमें फँसाता है, वह मनुष्य नहीं है; किन्तु पशु है, पिशाच है, राक्षस है। वह पापी मुँह देखने योग्य नहीं, नाम लेने योग्य नहीं। उसे जितना धिक्कार दिया जाय थोड़ा है। मैं नहीं जानती थी कि आप भी उन्हीं पुरुषोंमेंसे एक होंगे। अनन्तमती और भी कहती, पर वह ऐसे कुलकलंक नीचोंके मुँह लगना उचित नहीं समझ चुप हो रही। अपने क्रोधको वह दबा गई।

उसकी जली भुनी बातें सुनकर पुष्पक सेठकी अक्ल ठिकाने आ गई। वह जलकर खाक हो गया, क्रोधसे उसका सारा शरीर कांप उठा, पर तब भी अनन्तमतीके दिव्य तेजके सामने उससे कुछ करते नहीं बना। उसने अपने क्रोधका बदला अनन्तमतीसे इस रूपमें चुकाया कि वह उसे अपने शहरमें लेजाकर एक कामसेना नामकी कुट्टिनीके हाथ सौंप दिया। सच बात तो यह है कि यह सब दोष दिया किसे जा सकता है, किन्तु कर्मोंकी ही ऐसी विचित्र स्थिति है, जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। इसमें नई बात कुछ नहीं है।

कामसेनाने भी अनन्तमतीको कष्ट देनेमें कुछ कसर नहीं रखी। जितना उससे बना उसने भयसे, लोभसे उसे पवित्र पथसे

गिराना चाहा—उसके सतीत्वधर्मको भ्रष्ट करना चाहा, पर अनंतमती उससे नहीं डिगी। वह सुमेरुके समान निश्चल बनी रही। ठीक तो है—जो संसारके दुःखोंसे डरते हैं, वे ऐसे भी सांसारिक कामोंके करनेसे घबरा उठते हैं, जो न्यायमार्गसे भी क्यों न प्राप्त हुए हों, तब भला उन पुरुषोंकी ऐसे घृणित और पाप कार्योंमें कसे प्रीति हो सकती है ? कभी नहीं होती।

कामसेनाने उसपर अपना चक्र चलता न देखकर उसे एक सिंहराज नामके राजाको सौंप दिया। बेचारी अनन्तमतीका जन्म ही न जाने कैसे बुरे समयमें हुआ था, जो वह जहाँ पहुंचती वहीं आपत्ति उसके सिरपर सवार रहती। सिंहराज भी एक ऐसा ही पापी राजा था। वह अनन्तमतीके देवांगनादुर्लभ रूपको देखकर उसपर मोहित हो गया। उसने भी उससे बहुत हाथाजोड़ी की, पर अनन्तमतीने उसकी बातोंपर कुछ ध्यान न देकर उसे भी फटकार डाला। पापी सिंहराजने अनन्तमतीका अभिमान नष्ट करनेको उससे बलात्कार करना चाहा। पर जो अभिमान मानवी प्रकृतिका न होकर अपने पवित्र आत्मीय तेजका होता है, भला, किसकी मजाल जो उसे नष्ट कर सके ? जैसे ही पापी सिंहराजने उस तेजोमय मूर्त्तिकी ओर पाँव बढ़ाया कि उसी वनदेवीने, जिसने एक बार पहले भी अनन्तमतीकी रक्षा की थी, उपस्थित होकर कहा—खबरदार ! इस सती देवीका स्पर्श भूलकर भी मत करना, नहीं तो समझ लेना कि तेरा जीवन जैसे संसारमें था ही नहीं। इसके साथ ही देवी उसे उसके पापकर्मोंका उचित दण्ड देकर अन्तर्हित हो गई। देवीको देखते ही सिंहराजका कलेजा काँप उठा। वह चित्रलिखेसा निश्चेष्ट

हो गया। देवीके चले जानेपर बहुत देर बाद उसे होश हुआ। उसने उसी समय नौकरको बुलवाकर अनन्तमतीको जंगलमें छोड़ आनेकी आज्ञा दी। राजाकी आज्ञाका पालन हुआ। अनन्तमती एक भयंकर बनमें छोड़ दी गई।

अनन्तमती कहाँ जायगी, किस दिशामें उसका शहर है, और वह कितनी दूर है ? इन सब बातोंका यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था, तब भी वह पंचपरमेष्ठिका स्मरणकर वहाँसे आगे बढ़ी और फल फूलादिसे अपना निर्वाह कर वन, जंगल, पर्वतोंको लाँघती हुई अयोध्यामें पहुंच गई। वहाँ उसे एक पद्मश्री नामकी आर्यिकाके दर्शन हुए। आर्यिकाने अनन्तमतीसे उसका परिचय पूछा। उसने अपना सब परिचय देकर अपनेपर जो जो विपत्ति आई थी और उससे जिस जिस प्रकार अपनी रक्षा हुई थी उसका सब हाल आर्यिकाको सुना दिया। आर्यिका उसकी कथा सुनकर बहुत दुखी हुई। उसे उसने एक सती-शिरोमणि रमणी-रत्न समझकर अपने पास रख लिया। सच है सज्जनोंका व्रत परोपकारार्थ ही होता है।

इधर प्रियदत्तको जब अनन्तमतीके हरे जानेका समाचार मालूम हुआ तब वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसके वियोगसे वह अस्थिर हो उठा। उसे घर श्मशान सरीखा भयंकर दिखने लगा। संसार उसके लिये सूना हो गया। पुत्रीके विरहसे दुखी होकर तीर्थयात्राके बहानेसे वह घरसे निकल खड़ा हुआ। उसे लोगोंने बहुत समझाया, पर उसने किसीकी बातको न मानकर अपने निश्चयको नहीं छोड़ा। कुटुम्बके लोग उसे घरपर न रहते देखकर स्वयं

भी उसके साथ साथ चले। बहुतसे सिद्धक्षेत्रों और अतिशय—क्षेत्रों की यात्रा करते करते वे अयोध्यामें आये। वहींपर प्रियदत्तका साला जिनदत्त रहता था। प्रियदत्त उसीके घरपर ठहरा। जिनदत्तने बड़े आदर सम्मानके साथ अपने बहनोईकी पाहुनगति की। इसके बाद स्वस्थताके समय जिनदत्तने अपनी बहिन-आदिका समाचार पूछा। प्रियदत्तने जैसी घटना बीती थी, वह सब उससे कह सुनाई। सुनकर जिनदत्तको भी अपनी भानजीके बाबत बहुत दुःख हुआ। दुःख सभीको हुआ पर उसे दूर करनेके लिये सब लाचार थे। कर्मोंकी विचित्रता देखकर सबहीको सन्तोष करना पड़ा।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और स्नानादि करके जिनदत्त तो जिनमन्दिर चला गया। इधर उसकी स्त्री भोजनकी तैयारी करके पद्मश्री आर्यिकाके पास जो बालिका थी, उसे भोजन करनेको और आँगनमें चौक पूरनेको बुला लाई। बालिकाने आकर चौक पूरा और बाद भोजन करके वह अपने स्थानपर लौट आई।

जिनदत्तके साथ प्रियदत्त भी भगवानकी पूजा करके घरपर आया। आते ही उसकी दृष्टि चौकपर पड़ी। देखते ही उसे अनंतमती की याद हो उठो। वह रो पड़ा। पुत्रीके प्रेमसे उसका हृदय व्याकुल हो गया। उसने रोते रोते कहा—जिसने यह चौक पूरा है, क्या मुझ अभागेको उसके दर्शन होंगे? जिनदत्त अपनी स्त्रीसे उस बालिकाका पता पूछ कर जहाँ वह थी, वहीं दौड़ा गया और झटसे उसे अपने घर लिवा लाया। बालिकाको देखते ही प्रियदत्तके नेत्रोंसे आँसू बह निकले। उसका गला भर आया। आज वर्षों बाद उसे अपनी पुत्री के दर्शन हुए। बड़े प्रेमके साथ उसने अपनी प्यारी पुत्रीको छातीसे

लगाया और उसे गोदीमें बैठाकर उससे एक एक बातें पूछना शुरू कीं। उसके दुःखोंका हाल सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ। उसने कर्मोंका, इसलिये कि अनन्तमती इतने कष्टोंको सहकर भी अपने धर्मपर दृढ़ रही और कुशलपूर्वक अपने पितासे आ मिली, बहुत बहुत उपकार माना। पितापुत्रीका मिलाप हो जानेसे जिनदत्तको बहुत प्रसन्नता हुई। उसने इस खुशीमें जिनभगवानका रथ निकलवाया, सबका यथायोग्य आदर सम्मान किया और खूब दान किया।

इसके बाद प्रियदत्त अपने घर जानेको तैयार हुआ। उसने अनन्तमतीसे भी चलनेको कहा। वह बोली—पिताजी, मैंने संसारकी लीलाको खूब देखा है। उसे देखकर तो मेरा जी काँप उठता है। अब मैं घरपर नहीं चलूंगी। मुझे संसारके दुःखोंसे बहुत डर लगता है। अब तो आप दया करके मुझे दीक्षा दिलवा दीजिये। पुत्रीकी बात सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ, पर अब उसने उससे घरपर चलनेको विशेष आग्रह न करके केवल इतना कहा कि—पुत्री, तेरा यह नवीन शरीर अत्यन्त कोमल है और दीक्षाका पालन करना बड़ा कठिन है—उसमें बड़ी बड़ी कठिन परीषह सहनी पड़ती है। इसलिये अभी कुछ दिनोंके लिये मन्दिरहीमें रहकर अभ्यास कर और धर्मध्यान पूर्वक अपना समय बिता। इसके बाद जैसा तू चाहती है, वह स्वयं ही हो जायगा। प्रियदत्तने इस समय दीक्षा लेनेसे अनन्तमतीको रोका, पर उसके तो रोम रोममें वैराग्य प्रवेश कर गया था; फिर वह कैसे रुक सकती थी? उसने मोहजाल तोड़कर उसी समय पद्मश्री आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ही ली।

दीक्षित होकर अनन्तमती खूब दृढ़ताके साथ तप तपने लगी। महिना महिनाके उपवास करने लगी, परीषह सहने लगी। उसकी उमर और तपश्चर्या देखकर सबको दांतोंतले अंगुली दबानी पड़ती थी। अनन्तमतीका जबतक जीवन रहा तबतक उसने बड़े साहससे अपने व्रतको निवाहा। अन्तमें वह सन्यासमरण कर सहस्रारस्वर्गमें जाकर देव हुई। वहाँ वह नित्य नये रत्नोंके स्वर्गीय भूषण पहरती है, जिनभगवानकी भक्तिके साथ पूजा करती है, हजारों देव देवाङ्गनायें उसकी सेवामें रहती हैं। उसके ऐश्वर्यका पार नहीं और न उसके सुखहीकी सीमा है। बात यह है कि पुण्यके उदयसे क्या क्या नहीं होता?

अनन्तमतीको उसके पिताने केवल विनोदसे शीलव्रत दे दिया था। पर उसने उसका बड़ी दृढ़ताके साथ पालन किया— कर्मोंके पराधीन सांसारिक सुखकी उसने स्वप्नमें भी चाह नहीं की। उसके प्रभावसे वह स्वर्गमें जाकर देव हुई, जहां सुखका पार नहीं। वहां वह सदा जिनभगवानके चरणोंमें लीन रह कर बड़ी शान्तिके साथ अपना समय बिताती है। सती-शिरोमणि अनन्तमती हमारा भी कल्याण करे।

८—उद्दायन राजाकी कथा।

संसार-श्रेष्ठ जिनभगवान, जिनवाणी और जैन ऋषियोंको नमस्कार कर उद्दायन राजाकी कथा लिखता हूं; जिन्होंने सम्यक्त्वके तीसरे निर्विचिकित्सा अंगका पालन किया है।

उद्दायन रौरवक नामक शहरके राजा थे, जो कि कच्छदेश-के अन्तर्गत था। उद्दायन सम्यग्दृष्टि थे, दानी थे, विचारशील थे, जिनभगवानके सच्चे भक्त थे और न्यायी थे। सुतरां प्रजाका उनपर बहुत प्रेम था और वे भी प्रजाके हितमें सदा उद्युक्त रहा करते थे।

उसकी रानीका नाम प्रभावती था। वह भी सती थी, धर्मात्मा थी। उसका मन सदा पवित्र रहता था। वह अपने समयको प्रायः दान, पूजा, व्रत, उपवास स्वाध्यायादिमें बिताती थी।

उद्दायन अपने राज्यका शान्ति और सुखसे पालन करते और अपनी शक्तिके अनुसार जितना बन पड़ता, उतना धार्मिक काम करते। कहनेका मतलब यह कि वे सुखी थे—उन्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी। उनका राज्य भी शत्रुरहित निष्कंटक था।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका इन्द्र अपनी सभामें धर्मोपदेश कर रहा था। "कि संसारमें सच्चे देव अरहन्त भगवान हैं, जो कि भूख, प्यास, रोग, शोक, भय, जन्म, जरा, मरण आदि दोषोंसे रहित और जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटानवाले हैं; सच्चा धर्म, उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जव—आदि दशलक्षण रूप है; गुरु निर्ग्रन्थ हैं; जिनके पास परिग्रहका नाम निशान नहीं और जो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदिसे रहित हैं और वह सच्ची श्रद्धा है, जिससे जीवाजीवादिक पदार्थोंमें रुचि होती है। यही रुचि स्वर्गमोक्षकी देनेवाली है। यह रुचि अर्थात् श्रद्धा धर्ममें प्रेम करनेसे, तीर्थ-यात्रा करनेसे, रथोत्सव करानेसे, जिनमन्दिरोंका जीर्णोद्धार करानेसे, प्रतिष्ठा करानेसे, प्रतिमा बनवानेसे और साधर्मियोंसे वात्सल्य अर्थात्

प्रेम करनेसे उत्पन्न होती है। आप लोग ध्यान रखिये कि सम्यग्दर्शन संसारमें एक सर्व श्रेष्ठ वस्तु है। और कोई वस्तु उसकी समानता नहीं कर सकती। यही सम्यग्दर्शन दुर्गतियोंका नाश करके स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है। इसे तुम धारण करो।" इस प्रकार सम्यग्दर्शनका और उसके आठ अंगोंका वर्णन करते समय इन्द्रने निर्विचिकित्सा अंगका पालन करनेवाले उद्दायन राजाकी बहुत प्रशंसा की। इन्द्रके मुँहसे एक मध्यलोकके मनुष्यकी प्रशंसा सुनकर एक वासव नामका देव उसी समय स्वर्गसे भारतमें आया और उद्दायन राजाकी परीक्षा करनेके लिये एक कोढ़ी मुनिका वेश बनाकर भिक्षाके लिये दोपहरहीको उद्दायनके महल गया।

उसके शरीरसे कोढ़ गल रहा था, उसकी वेदनासे उसके पैर इधर उधर पड़ रहे थे, सारे शरीरपर मक्खियां भिनभिना रही थीं और सब शरीर विकृत हो गया था। उसकी यह हालत होनेपर भी जब वह राजद्वारपर पहुँचा और महाराज उद्दायनकी उसपर दृष्टि पड़ी तब वे उसी समय सिंहासनसे उठकर आये और बड़ी भक्तिसे उन्होंने उस छली मुनिका आह्वान किया। इसके बाद नवधा भक्तिपूर्वक हर्षके साथ राजाने मुनिको प्रासुक आहार कराया। राजा आहार कराकर निवृत्त हुए कि इतनेमें उस कपटी मुनिने अपनी मायासे महा दुर्गन्धित वमन कर दिया। उसकी असह्य दुर्गन्धके मारे जितने और लोग पास खड़े हुए थे, वे सब भाग खड़े हुए; किन्तु केवल राजा और रानी मुनिकी सम्हाल करनेको वहीं रह गये। रानी मुनिका शरीर पोंछनेको उसके पास गई। कपटी मुनिने उस बेचारीपर भी महा दुर्गन्धित उछाट करदी। राजा और रानीने इसकी

कुछ परवा न कर उलटा इस बातपर बहुत पश्चात्ताप किया कि हमसे मुनिकी प्रकृति-विरुद्ध न जाने क्या आहार दे दिया गया, जिससे मुनिराजको इतना कष्ट हुआ। हम लोग बड़े पापी हैं। इसीलिये तो ऐसे उत्तम पात्रका हमारे यहां निरन्तराय आहार नहीं हुआ। सच है जैसे पापी लोगोंको मनोवांछित देनेवाला चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष प्राप्त नहीं होता, उसी तरह सुपात्रके दानका योग भी पापियोंको नहीं मिलता है। इस प्रकार अपनी आत्मनिन्दा कर और अपने प्रमादपर बहुत बहुत खेद प्रकाश कर राजा रानीने मुनिका सब शरीर जलसे धोकर साफ किया। उनकी इस प्रकार अचलभक्ति देखकर देव अपनी माया समेटकर बड़ी प्रसन्नताके साथ बोला—राजराजेश्वर, सचमुच ही तुम सम्यग्दृष्टि हो, महादानी हो। निर्विचिकित्सा अंगके पालन करनेमें इन्द्रने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, वह अक्षर अक्षर ठीक निकली—वैसा ही मैंने तुम्हें देखा। वास्तवमें तुमहीने जैनशासनका रहस्य समझा है। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे विना और कौन मुनिकी दुर्गन्धित उछाट अपने हाथोंसे उठाता ? राजन् ! तुम धन्य हो, शायद ही इस पृथ्वीमंडलपर इस समय तुम सरीखा सम्यग्दृष्टियोंमें शिरोमणि कोई होगा ? इस प्रकार उद्दायनकी प्रशंसा कर देव अपने स्थानपर चला गया और राजा फिर अपने राज्यका सुखपूर्वक पालन करते हुए दान, पूजा, व्रत आदिमें अपना समय बिताने लगे।

इसी तरह राज्य करते करते उद्दायनका कुछ और समय बीत गया। एक दिन वे अपने महलपर बैठे हुए प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे कि इतनेमें एक बड़ा भारी बादलका टुकड़ा उनकी आँखोंके

सामनेसे निकला। वह थोड़ी ही दूर पहुँचा होगा कि एक प्रबल वायुके वेगने उसे देखते देखते नामशेष कर दिया। क्षणभरमें एक विशाल मेघखण्डकी यह दशा देखकर उद्दायनकी आँखें खुलीं। उन्हें सारा संसार ही अब क्षणिक जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय महलसे उतरकर अपने पुत्रको बुलाया और उसके मस्तकपर राज-तिलक करके आप भगवान वर्द्धमानके समवसरणमें पहुँचे और भक्तिके साथ भगवानकी पूजा कर उनके चरणोंके पास ही उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण करली, जिसका इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि सभी आदर करते हैं।

साधु होकर उद्दायन राजाने खूब तपश्चर्या की, संसारका सर्व श्रेष्ठ पदार्थ रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसके द्वारा उन्होंने संसारके दुःखोंसे तड़फते हुए अनेक जीवोंको उबारकर, अनेकोंको धर्मके पथपर लगाया और अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाशकर अविनाशी अनन्त मोक्षपद प्राप्त किया।

उधर उनकी रानी सती प्रभावती भी जिनदीक्षा ग्रहणकर तपश्चर्या करने लगी और अन्तमें समाधि मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्गमें जाकर देव हुई।

वे जिनभगवान मुझे मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करें, जो सब श्रेष्ठ गुणोंके समुद्र हैं जिनका केवलज्ञान संसारके जीवोंका हृदयस्थ अज्ञान-रूपी आताप नष्ट करनेको चन्द्रमा समान है, जिनके चरणोंको इन्द्र, नरेन्द्र, आदि सभी नमस्कार करते हैं, जो ज्ञानके समुद्र और साधुओं के शिरोमणि हैं।

६–रेवती रानीकी कथा।

संसारका हित करनेवाले जिनभगवानको परम भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अमूढ़दृष्टि अंगका पालन करनेवाली रेवती रानीकी कथा लिखता हूं।

विजयार्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका एक सुन्दर शहर है। उसके राजा हैं चन्द्रप्रभ। चंद्रप्रभने बहुत दिनोंतक सुखके साथ अपना राज्य किया। एक दिन वे बैठे हुए थे कि एकाएक उन्हें तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा हुई। राज्यका कारोबार अपने चन्द्रशेखर नामके पुत्रको सौंपकर वे तीर्थयात्राके लिये चल दिये। वे यात्रा करते हुए दक्षिणमथुरामें आये। उन्हें पुण्यसे वहां गुप्ताचार्यके दर्शन हुए। आचार्यसे चन्द्रप्रभने धर्मोपदेश सुना। उनके उपदेशका उनपर बहुत असर पड़ा। वे आचार्यके द्वारा—

प्रोक्तः परोपकारोऽत्र महापुण्याय भूतले।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—परोपकार करना महान् पुण्यका कारण है, यह जानकर और तीर्थयात्रा करनेके लिये एक विद्याको अपने अधिकारमें रखकर क्षुल्लक बन गये।

एक दिन उनकी इच्छा उत्तरमथुराकी यात्रा करनेकी हुई। जब वे जानेको तैयार हुए तब उन्होंने अपने गुरु महाराजसे पूछा—हे दयाके समुद्र, मैं यात्राके लिये जा रहा हूं, क्या आपको कुछ समाचार तो किसीके लिये नहीं कहना है? गुप्ताचार्य बोले—मथुरा में एक सूरत नामके बड़े ज्ञानी और गुणी मुनिराज हैं, उन्हें मेरा

नमस्कार कहना और सम्यग्दृष्टिनी धर्मात्मा रेवतीके लिये मेरी धर्मवृद्धि कहना।

क्षुल्लकने और पूछा कि इसके सिवा और भी आपको कुछ कहना है क्या ? आचार्यने कहा नहीं। तब क्षुल्लकने विचारा कि क्या कारण है जो आचार्यने एकादशांगके ज्ञाता श्रीभव्यसेन मुनि तथा और और मुनियोंको रहते उन्हें कुछ नहीं कहा और केवल सूरतमुनि और रेवतीके लिये ही नमस्कार किया तथा धर्मवृद्धि दी ? इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये। अस्तु। जो कुछ होगा वह आगे स्वय मालूम हो जायगा। यह सोचकर चन्द्रप्रभ क्षुल्लक वहाँसे चल दिये। उत्तरमथुरा पहुँचकर उन्होंने सूरत मुनिको गुप्ताचार्यकी वन्दना कह सुनाई। उससे सूरतमुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने चन्द्रप्रभके साथ खूब वात्सल्यका परिचय दिया। उससे चन्द्रप्रभको बड़ी खुशी हुई। बहुत ठीक कहा है—

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः।
साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—संसारमें उन्हींका जन्म लेना सफल है जो धर्मात्माओंसे वात्सल्य-प्रेम करते हैं।

इसके बाद क्षुल्लक चन्द्रप्रभ एकादशांगके ज्ञाता, पर नाम मात्रके भव्यसेन मुनिके पास गये। उन्होंने भव्यसेनको नमस्कार किया। पर भव्यसेन मुनिने अभिमानमें आकर चन्द्रप्रभको धर्मवृद्धितक भी न दी। ऐसे अभिमानको धिक्कार है! जिन अविचारी

पुरुषोंके वचनोंमें भी दरिद्रता है—जो वचनोंसे भी प्रेमपूर्वक आये हुए अतिथिसे नहीं बोलते—वे उनका और क्या सत्कार करेंगे ? उनसे तो स्वप्नमें भी अतिथिसत्कार नहीं बन सकेगा। जैन शास्त्रोंका ज्ञान सब दोषोंसे रहित है—निर्दोष है। उसे प्राप्त कर हृदय पवित्र होना ही चाहिये। पर खेद है कि उसे पाकर भी मान होता है। पर यह शास्त्रका दोष नहीं, किन्तु यों कहना चाहिये कि पापियोंके लिये अमृत भी विष हो जाता है। जो हो, तब भी देखना चाहिये कि इनमें कुछ भी भव्यपना है भी, या केवल नाम मात्रके ही भव्य हैं ? यह विचार कर दूसरे दिन सबेरे जब भव्यसेन कमण्डलु लेकर शौचके लिये चले तब उनके पीछे पीछे चन्द्रप्रभ क्षुल्लक भी हो लिये। आगे चलकर क्षुल्लक महाशयने अपने विद्याबलसे भव्यसेनके आगेकी भूमिको कोमल और हरे हरे तृणोंसे युक्त कर दिया। भव्यसेन उसकी कुछ परवा न कर और यह विचार कर कि जैनशास्त्रोंमें तो इन्हें एकेन्द्री कहा है, इनकी हिंसाका विशेष पाप नहीं होता, उसपरसे निकल गये। आगे चलकर जब वे शौच हो लिये और शुद्धिके लिये कमण्डलुकी ओर देखा तो उसमें जल नहीं और वह औंधा पड़ा हुआ है, तब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। इतनेमें एकाएक क्षुल्लक महाशय भी उधर आ निकले। कमण्डलुका जल यद्यपि क्षुल्लकजीने ही अपने विद्याबलसे सुखा दिया था, तब भी वे बड़े आश्चर्यके साथ भव्यसेनसे बोले—मुनिराज, पास ही एक निर्मल जलका सरोवर भरा हुआ है, वहीं जाकर शुद्धि कर लीजिये न ? भव्यसेनने अपने पदस्थपर, अपने कर्त्तव्यपर कुछ भी ध्यान न देकर जैसा क्षुल्लकने कहा, वैसा ही कर लिया। सच बात तो यह है—

किं करोति न मूढात्मा कार्यं मिथ्यात्वदूषितः ।
न स्यान्मुक्तिप्रदं ज्ञानं चरित्रं दुर्दशामपि ।
उद्गतो भास्करश्चापि किं घूकस्य सुखायते ॥
मिथ्यादृष्टेः श्रुतं शास्त्रं कुमार्गाय प्रवर्तते ।
यथा मृष्टं भवेत्कष्टं सुदुग्धं तुम्बिकागतम् ॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—मूर्ख पुरुष मिथ्यात्वके वश होकर कौन बुरा काम नहीं करते ? मिथ्यादृष्टियोंका ज्ञान और चारित्र मोक्षका कारण नहीं होता। जैसे सूर्यके उदयसे उल्लूको कभी सुख नहीं होता। मिथ्यादृष्टियोंका शास्त्र सुनना, शास्त्राभ्यास करना केवल कुमार्गमें प्रवृत्त होनेका कारण है। जैसे मीठा दूध भी तूंबड़ीके सम्बन्धसे कड़वा हो जाता है। इन सब बातोंको विचारकर क्षुल्लकने भव्यसेनके आचरणसे समझ लिया कि ये नाम मात्रके जैनी हैं, पर वास्तवमें इन्हें जैनधर्मपर श्रद्धान नहीं—ये मिथ्यात्वी हैं। उस दिनसे चन्द्रप्रभने भव्यसेनका नाम अभव्यसेन रक्खा। सच बात है—दुराचारसे क्या नहीं होता ?

क्षुल्लकने भव्यसेनकी परीक्षा कर अब रेवती रानीकी परीक्षा करनेका विचार किया। दूसरे दिन उसने अपने विद्याबलसे कमलपर बैठे हुए और वेदोंका उपदेश करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका वेष बनाया और शहरसे पूर्व दिशाकी ओर कुछ दूरीपर जंगलमें वह ठहरा। यह हाल सुनकर राजा, भव्यसेन—आदि सभी वहां गये और ब्रह्माजीको उन्होंने नमस्कार किया। उनके पावों पड़ कर वे बड़े खुश हुए। राजाने चलते समय अपनी प्रिया रेवतीसे भी ब्रह्माजी

की वन्दनाके लिये चलने को कहा था, पर रेवती सम्यक्त्व रत्नसे भूषित थी, जिनभगवानकी अनन्यभक्त थी; इसलिये वह नहीं गई। उसने राजासे कहा—महाराज, मोक्ष और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रका प्राप्त करानेवाला सच्चा ब्रह्मा जिनशासनमें आदिजिनेन्द्र कहा गया है, उसके सिवा अन्य ब्रह्मा हो ही नहीं सकता और जिस ब्रह्माकी वन्दनाके लिये आप जा रहे हैं, वह ब्रह्मा नहीं है; किन्तु कोई धूर्त ठगनेके लिये ब्रह्माका वेष लेकर आया है। मैं तो नहीं चलूंगी।

दूसरे दिन क्षुल्लकने गरुड़पर बैठे हुए, चतुर्बाहु, शंख, चक्र, गदा—आदिसे युक्त और दैत्योंको कँपानेवाले वैष्णव भगवानका वेष बनाकर दक्षिण दिशामें अपना डेरा जमाया।

तीसरे दिन उस बुद्धिमान् क्षुल्लकने बैलपर बैठे हुए, पार्वतीके मुखकमलको देखते हुए, सिरपर जटा रखाये हुए, गणपति युक्त और जिन्हें हजारों देव आ आकर नमस्कार कर रहे हैं, ऐसा शिवका वेष धारणकर पश्चिम दिशाकी शोभा बढ़ाई।

चौथे दिन उसने अपनी मायासे सुन्दर समवसरणमें विराजे हुए, आठ प्रातिहार्योंसे विभूषित, मिथ्यादृष्टियोंके मानको नष्ट करनेवाले मानस्तंभादिसे युक्त, निर्ग्रन्थ और जिन्हें हजारों देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आ आकर नमस्कार करते हैं, ऐसा संसार श्रेष्ठ तीर्थंकरका वेष बनाकर पूर्व दिशाको अलंकृत किया। तीर्थंकर भगवानका आगमन सुनकर सबको बहुत आनन्द हुआ। सब प्रसन्न होते हुए भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना करनेको गये। राजा, भव्यसेन आदि भी उनमें शामिल थे। तीर्थंकर भगवानके दर्शनोंके लिये भी रेवती-

रानीको न जाती हुई देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुतोंने उससे चलनेके लिये आग्रह भी किया, पर वह न गई। कारण वह सम्यक्त्वरूप मौलिक रत्नसे भूषित थी—उसे जिनभगवानके वचनों-पर पूरा विश्वास था कि तीर्थंकर परम देव चौबीस ही होते हैं, और वासुदेव नौ और रुद्र ग्यारह होते हैं। फिर उनकी संख्याको तोड़ने-वाले ये दशवें वासुदेव, बारहवें रुद्र और पच्चीसवें तीर्थंकर आ कहाँसे सकते हैं? वे तो अपने अपने कर्मोंके अनुसार जहाँ उन्हें जाना था वहाँ चले गये। फिर यह नई सृष्टि कैसी? इनमें न तो कोई सच्चा रुद्र है, न वासुदेव है, और न तीर्थंकर है, किन्तु कोई मायावी ऐन्द्रजालिक अपनी धूर्तता से लोगोंको ठगनेके लिये आया है। यह विचार कर रेवती रानी तीर्थंकरकी वन्दनाके लिये भी नहीं गई। सच है—कहीं वायुसे मेरु पर्वत भी चला है?

इसके बाद चन्द्रप्रभ, क्षुल्लक-वेषहीमें, पर अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त तथा अत्यन्त मलिन शरीर होकर रेवतीके घर भिक्षाके लिये पहुँचे। आँगनमें पहुँचते ही वे मूर्छा खाकर पृथ्वीपर धड़ामसे गिर पड़े। उन्हें देखते ही धर्मवत्सला रेवती रानी हाय हाय कहती हुई उनके पास दौड़ी गई और बड़ी भक्ति और विनयसे उसने उन्हें उठाकर सचेत किया। इसके बाद अपने महलमें लिवा जाकर बड़े कोमल और पवित्र भावोंसे उसने उन्हें प्रासुक आहार कराया। सच है—जो दयावान होते हैं उनकी बुद्धि दान देनेमें स्वभावहीसे तत्पर रहती है।

क्षुल्लकको अबतक भी रेवतीकी परीक्षासे सन्तोष नहीं हुआ। सो उन्होंने भोजन करनेके साथ ही वमन कर दिया, जिसमें

अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी। क्षुल्लककी यह हालत देखकर रेवतीको बहुत दुःख हुआ। उसने बहुत पश्चात्ताप किया कि न जाने क्या अपथ्य मुझ पापिनीके द्वारा दे दिया गया, जिससे इनकी यह हालत हो गई। मेरी इस असावधानताको धिक्कार है। इस प्रकार बहुत कुछ पश्चात्ताप करके उसने क्षुल्लकका शरीर पोंछा और बाद कुछ कुछ गरम जलसे उसे धोकर साफ किया।

क्षुल्लक रेवतीकी भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे अपनी माया समेटकर बड़ी खुशीके साथ रेवतीसे बोले—देवी, संसारश्रेष्ठ मेरे परम गुरु महाराज गुप्ताचार्यकी धर्मवृद्धि तेरे मनको पवित्र करे, जो कि सब सिद्धियोंकी देनेवाली है और तुम्हारे नामसे मैंने यात्रामें जहाँ जहाँ जिनभगवानकी पूजा की है वह भी तुम्हें कल्याण-की देनेवाली हो।

देवी, तुमने जिस संसारश्रेष्ठ और संसार—समुद्रसे पार करनेवाले अमूढ़दृष्टि अंगको ग्रहण किया है, उसकी मैंने नाना तरहसे परीक्षा की, पर उसमें तुम्हें अचल पाया। तुम्हारे इस त्रिलोकपूज्य सम्यक्त्वकी कौन प्रशंसा करनेको समर्थ है? कोई नहीं। इस प्रकार गुणवती रेवती रानीकी प्रशंसा कर और उसे सब हाल कह-कर क्षुल्लक अपने स्थान चले गये।

इसके बाद वरुण नृपति और रेवती रानीका बहुत समय सुखके साथ बीता। एक दिन राजाको किसी कारणसे वैराग्य हो हो गया। वे अपने शिवकीर्ति नामक पुत्रको राज्य सौंपकर और सब मायाजाल तोड़कर तपस्वी बन गये। साधु बनकर उन्होंने खूब

तपश्चर्या की और आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वे माहेन्द्रस्वर्गमें जाकर देव हुए।

जिनभगवानकी परम भक्त महारानी रेवती भी जिनदीक्षा ग्रहण कर और शक्तिके अनुसार तपश्चर्या कर आयुके अन्तमें ब्रह्म-स्वर्गमें जाकर महर्द्धिक देव हुई।

भव्य पुरुषो, यदि तुम भी स्वर्ग या मोक्ष-सुखको चाहते हो, तो जिस तरह श्रीमती रेवती रानीने मिथ्यात्व छोड़ा उसी तरह तुम भी मिथ्यात्वको छोड़कर स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले, अत्यन्त पवित्र और बड़े बड़े देव, विद्याधर, राजा महाराजाओंसे भक्तिपूर्वक ग्रहण किये हुए जैनधर्मका आश्रय स्वीकार करो।

१०–जिनेन्द्रभक्तकी कथा।

स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले श्रीजिनभगवानको नमस्कार कर मैं जिनेन्द्रभक्तकी कथा लिखता हूँ, जिन्होंने कि सम्यग्दर्शनके उपगूहन अंगका पालन किया था।

नेमिनाथ भगवानके जन्मसे पवित्र और दयालु पुरुषोंसे परिपूर्ण सौराष्ट्र देशके अन्तर्गत एक पाटलिपुत्र नामका शहर था। जिस समयकी कथा है, उस समय उसके राजा यशोध्वज थे। उनकी रानीका नाम सुसीमा था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसके एक पुत्र था। उसका नाम था सुवीर। बेचारी सुसीमाके पापके उदयसे वह महा व्यसनी और चोर हुआ। सच तो यह है—जिन्हें आगे कुयोनियोंके दुःख भोगना होता है, उनका न तो अच्छे कुलमें जन्म लेना काम आता है और न ऐसे पुत्रोंसे बेचारे मातापिताको कभी सुख होता है।

गोड़देशके अन्तर्गत तामलिप्ता नामकी एक पुरी है। उसमें एक सेठ रहते थे। उनका नाम था जिनेन्द्रभक्त। जैसा उनका नाम है वैसे ही वे जिनभगवानके भक्त हैं भी। जिनेन्द्रभक्त सच्चे सम्य-ग्दृष्टि थे और अपने श्रावक धर्मका बराबर सदा पालन करते थे। उन्होंने बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर बनवाये, बहुतसे जीर्ण मन्दिरों-का उद्धार किया, जिनप्रतिमायें बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करवाई और चारों संघोंको खूब दान दिया, उनका खूब सत्कार किया।

सम्यग्दृष्टि शिरोमणि जिनेन्द्रभक्तका महल सात मँजला था। उसकी अन्तिम मंजिलपर एक बहुत ही सुन्दर जिन चैत्यालय था। चैत्यालयमें श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी बहुत मनोहर और रत्न-मयी प्रतिमा थी। उसपर तीन छत्र, जो कि रत्नोंके बने हुए थे, बड़ी शोभा दे रहे थे। उन छत्रोंपर एक वैडूर्यमणि नामका अत्यन्त कान्तिमान बहुमूल्य रत्न लगा हुआ था। इस रत्नका हाल सुवीरने सुना। उसने अपने साथियोंको बुलाकर कहा—सुनते हो, जिनेन्द्र-भक्त सेठके चैत्यालयमें प्रतिमापर लगे हुए छत्रोंमें एक रत्न लगा हुआ है, वह अमोल है। क्या तुम लोगोंमेंसे कोई उसे ला सकता है? सुनकर उनमेंसे एक सूर्यक नामका चोर बोला, यह तो एक अत्यन्त साधारण बात है। यदि वह रत्न इन्द्रके सिरपर भी होता, तो मैं उसे क्षणभरमें ला सकता था। यह सच भी है कि जो जितने ही दुराचारी होते हैं वे उतना ही पापकर्म भी कर सकते हैं।

सूर्यकके लिये रत्न लानेकी आज्ञा हुई। वहांसे आकर उसने मायावी क्षुल्लकका वेष धारण किया। क्षुल्लक बनकर वह व्रत उपवासादि करने लगा। उससे उसका शरीर बहुत दुबला पतला हो गया। इसके बाद वह अनेक शहरों और ग्रामोंमें घूमता हुआ और लोगोंको अपने कपटी वेष से ठगता हुआ कुछ दिनोंमें तामलिप्ता पुरीमें आ पहुँचा। जिनेन्द्रभक्त सच्चे धर्मात्मा थे, इसलिये उन्हें धर्मात्माओंको देखकर बड़ा प्रेम होता था। उन्होंने जब इस धूर्त क्षुल्लकका आगमन सुना तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उसी समय घरका सब कामकाज छोड़कर क्षुल्लक महाराजकी वन्दना करनेके लिये गये। उसे तपश्चर्यासे क्षीण शरीर देखकर उनकी उसपर और अधिक श्रद्धा हुई। उन्होंने भक्तिके साथ क्षुल्लकको प्रणाम किया और बाद वे उसे अपने महल लिवा लाये। सच बात यह है कि :—

अहो धूर्त्तस्य धूर्त्तत्वं लक्ष्यते केन भूतले।
यस्य प्रपंचतो गाढं विद्वान्सश्चापि वंचिताः॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात—जिनकी धूर्ततासे अच्छे अच्छे विद्वान् भी जब ठगा जाते हैं, तब बेचारे साधारण पुरुषोंकी क्या मजाल जो वे उनकी धूर्तताका पता पा सकें।

क्षुल्लकजीने चैत्यालयमें पहुँच कर जब उस मणिको देखा तो उनका हृदय आनन्दके मारे बाँसों उछलने लगा। वे बहुत सन्तुष्ट हुए। जैसे सुनार अपने पास कोई रकम बनवानेके लिये लाये हुए

पुरुषके पासका सोना देखकर प्रसन्न होता है। क्योंकि उसकी नियत सदा चोरीकी ओर ही लगी रहती है।

जिनेन्द्रभक्तको उसके मायाचारका कुछ पता नहीं लगा। इसलिये उन्होंने उसे बड़ा धर्मात्मा समझ कर और मायाचारीसे क्षुल्लकके मना करनेपर भी जबरन अपने जिनालयकी रक्षाके लिये उसे नियुक्त कर दिया और आप उससे पूछकर समुद्रयात्रा करनेके लिये चल पड़े।

जिनेन्द्रभक्तके घर बाहर होते ही क्षुल्लकजीकी बन पड़ी। आधी रातके समय आप उस तेजस्वी रत्नको कपड़ोंमें छुपाकर घर बाहर हो गये। पर पापियोंका पाप कभी नहीं छुपता। यही कारण था कि रत्न लेकर भागते हुए उसे सिपाहियोंने देख लिया। वे उसे पकड़नेको दौड़े। क्षुल्लकजी दुबले पतले तो पहलेहीसे हो रहे थे, इसलिये वे अपनेको भागनेमें असक्त समझ लाचार होकर जिनेन्द्रभक्तकी ही शरणमें गये और प्रभो, बचाइये! बचाइये! यह कहते हुए उनके पावोंमें गिर पड़े। जिनेन्द्रभक्तने, "चोर भागा जाता है! इसे पकड़ना" ऐसा हल्ला सुन करके जान लिया कि यह चोर है और क्षुल्लक वेषमें लोगोंको ठगता फिरता है। यह जानकर भी दर्शनकी निन्दाके भयसे जिनेन्द्रभक्तने क्षुल्लकके पकड़नेको आये हुए सिपाहियोंसे कहा—आप लोग बड़े कम समझ हैं! आपने बहुत बुरा किया जो एक तपस्वीको चोर बतला दिया। रत्न तो ये मेरे कहनेसे लाये हैं। आप नहीं जानते कि ये बड़े सच्चरित्र साधु हैं? अस्तु। आगेसे ध्यान रखिये। जिनेन्द्रभक्तके वचनोंको सुनते ही

सब सिपाही लोग ठण्डे पड़ गये और उन्हें नमस्कार कर चलते बने।

जब सब सिपाही चले गये तब जिनेन्द्रभक्तने क्षुल्लकजीसे रत्न लेकर एकान्तमें उनसे कहा—बड़े दुःखकी बात है कि तुम ऐसे पवित्र वेषको धारण कर उसे ऐसे नीच कर्मोंसे लजा रहे हो? तुम्हें यही उचित है क्या? याद रक्खो, ऐसे अनर्थोंसे तुम्हें कुगतियोंमें अनन्त काल दुःख भोगना पड़ेंगे। शास्त्रकारोंने पापी पुरुषोंके लिये लिखा है कि—

ये कृत्वा पातकं पापाः पोषयन्ति स्वकं भुवि।
त्यक्त्वा न्यायक्रमं तेषां महादुःखं भवार्णवे॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात—जो पापी लोग न्यायमार्गको छोड़कर और पापके द्वारा अपना निर्वाह करते हैं, वे संसारसमुद्रमें अनन्त काल दुःख भोगते हैं। ध्यान रक्खो कि अनीतिसे चलनेवाले, और अत्यन्त तृष्णावान तुम सरीखे पापी लोग बहुत ही जल्दी नाशको प्राप्त होते हैं। तुम्हें उचित है—तुम बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुए इस मनुष्य जन्मको इस तरह बर्बाद न कर कुछ आत्महित करो। इस प्रकार शिक्षा देकर जिनेन्द्रभक्तने अपने स्थानसे उसे अलग कर दिया।

इसी प्रकार और भी भव्य पुरुषोंको, दुर्जनोंके मलिन कर्मोंसे निन्दाको प्राप्त होनेवाले सम्यग्दर्शनकी रक्षा करनी उचित है।

जिनभगवानका शासन पवित्र है—निर्दोष है, उसे जो

सदोष बनानेकी कोशिश करते हैं, वे मूर्ख हैं, उन्मत्त हैं। ठीक भी है—उन्हें वह निर्दोष धर्म अच्छा जान भी नहीं पड़ता। जैसे पित्तज्वरवालेको अमृतके समान मीठा दूध भी कड़वा ही लगता है।

११—वारिषेण मुनिकी कथा।

मैं संसारपूज्य जिनभगवानको नमस्कार कर श्रीवारिषेण मुनिकी कथा लिखता हूं, जिन्होंने सम्यग्दर्शनके स्थितिकरण नामक अंगका पालन किया है।

अपनी सम्पदासे स्वर्गको नीचा दिखानेवाले मगधदेशके अन्तर्गत राजगृह नामका एक सुन्दर शहर है। उसके राजा हैं श्रेणिक। वे सम्यग्दृष्टि हैं, उदार हैं और राजनीतिके अच्छे विद्वान हैं। उनकी महारानीका नाम चेलनी है। वह भी सम्यक्त्वरूपी अमोल रत्नसे भूषित है, बड़ी धर्मात्मा है, सती है और विदुषी है। उसके एक पुत्र है। उसका नाम है वारिषेण। वारिषेण बहुत गुणी है, धर्मात्मा है और श्रावक है।

एक दिन मगधसुन्दरी नामकी एक वेश्या राजगृहके उपवन में क्रीड़ा करनेको आई हुई थी। उसने वहाँ श्रीकीर्ति नामक सेठके गलेमें एक बहुत ही सुन्दर रत्नोंका हार पड़ा हुआ देखा। उसे देखते ही मगधसुन्दरी उसके लिये लालायित हो उठी। उसे हारके बिना अपना जीवन निरर्थक जान पड़ने लगा। सारा संसार उसे हारमय दिखने लगा। वह उदास मुँह घरपर लौट आई। रातके

समय उसका प्रेमी विद्युतचोर जब घरपर आया तब उसने मगधसुन्दरीको उदास मुँह देखकर बड़े प्रेमसे पूछा—प्रिये, आज मैं तुम्हें उदास देखता हूं; क्या इसका कारण तुम बतलाओगी ? तुम्हारी यह उदासी मुझे अत्यन्त दुखी कर रही है।

मगधसुन्दरीने विद्युतपर कटाक्षबाण चलाते हुए कहा—प्राणवल्लभ, तुम मुझपर इतना प्रेम करते हो, पर मुझे तो जान पड़ता है कि यह सब तुम्हारा दिखाऊ प्रेम है। और सचमुच ही तुम्हारा यदि मुझपर प्रेम है तो कृपाकर श्रीकीर्ति सेठके गलेका हार, जिसे कि आज मैंने बगीचेमें देखा है और जो बहुत ही सुन्दर है, लाकर मुझे दीजिये; जिससे मेरी इच्छा पूरी हो। तब ही मैं समझूंगी कि आप मुझसे सच्चा प्रेम करते हैं और तब ही मेरे प्राणवल्लभ होनेके अधिकारी हो सकेंगे।

मगधसुन्दरीके जालमें फँसकर उसे इस कठिन कार्यके लिये भी तैयार होना पड़ा। वह उसे सन्तोष देकर उसी समय वहाँसे चल दिया और श्रीकीर्ति सेठके महलपर पहुँचा। वहाँसे वह श्रीकीर्तिके शयनागारमें गया और अपनी कार्यकुशलतासे उसके गलेमेंसे हार निकाल लिया और बड़ी फुर्तीके साथ वहाँसे चल दिया। हारके दिव्य तेजको वह नहीं छुपा सका। सो भागते हुए उसे सिपाहियोंने देख लिया। वे उसे पकड़नेको दौड़े। वह भागता हुआ श्मशानकी ओर निकल आया। वारिषेण इस समय श्मशानमें कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। सो विद्युत चोर मौका देखकर पीछे आनेवाले सिपाहियोंके पंजेसे छूटनेके लिये उस हारको वारिषेणके आगे पटक कर वहांसे भाग खड़ा हुआ। इतनेमें सिपाही भी वहीं

आ पहुँचे, जहाँ वारिषेण ध्यान किये खड़ा हुआ था। वे वारिषेणको हारके पास खड़ा देखकर भौंचकसे रह गये। वे उसे उस अवस्थामें देखकर हँसे और बोले—वाह, चाल तो खूब खेली गई ? मानो मैं कुछ जानता ही नहीं। मुझे धर्मात्मा जानकर सिपाही छोड़ जाँयगे। पर याद रखिये हम अपने मालिककी सच्ची नौकरी खाते हैं। हम तुम्हें कभी नहीं छोड़ेंगे ! यह कह कर वे वारिषेणको बांधकर श्रेणिकके पास ले गये और राजासे बोले—महाराज, ये हार चुरा कर लिये जाते थे, सो हमने इन्हें पकड़ लिया।

सुनते ही श्रेणिकका चेहरा क्रोधके मारे लाल सुर्ख हो गया, उनके ओठ कांपने लगे, आँखोंसे क्रोधकी ज्वालायें निकलने लगीं। उन्होंने गर्जकर कहा—देखो, इस पापीका नीच कर्म जो श्मशानमें जाकर ध्यान करता है और लोगोंको, यह बतलाकर कि मैं बड़ा धर्मात्मा हूं, ठगता है—धोखा देता है। पापी ! कुल कलंक ! देखा मैंने तेरा धर्मका ढोंग ! सच है दुराचारी, लोगोंको धोखा देनेके लिये क्या क्या अनर्थ नहीं करते ? जिसे मैं राज्यसिंहासन पर बैठाकर संसारका अधीश्वर बनाना चाहता था, मैं नहीं जानता था कि वह इतना नीच होगा ? इससे बढ़कर और क्या कष्ट हो सकता है ? अच्छा तो जो इतना दुराचारी है और प्रजाको धोखा देकर ठगता है उसका जीता रहना सिवा हानिके लाभदायक नहीं हो सकता। इसलिये जाओ इसे लेजाकर मार डालो।

अपने खास पुत्रके लिये महाराजकी ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर सब चित्र लिखेसे होकर महाराजकी ओर देखने लगे। सबकी आँखोंमें पानी भर आया। पर किसकी मजाल जो उनकी

आज्ञाका प्रतिवाद कर सके। जल्लाद लोग उसी समय वारिषेणको बध्यभूमिमें ले गये। उनमेंसे एकने तलवार खींचकर बड़े जोरसे वारिषेणकी गर्दनपर मारी, पर यह क्या आश्चर्य ? जो उसकी गर्दनपर बिलकुल घाव नहीं हुआ; किन्तु वारिषेणको उलटा यह जान पड़ा—मानो किसीने उसपर फूलोंकी माला फैंकी है। जल्लाद लोग देखकर दांतोंमें अंगुली दबा गये। वारिषेणके पुण्यने उसकी रक्षा की। सच है—

अहो पुण्येन तीव्राग्निर्जलत्वं याति भूतले।
समुद्रः स्थलतामेति दुर्विषं च सुधायते॥
शत्रुर्मित्रत्वमाप्नोति विपत्तिः सम्पदायते।
तस्मात्सुखैषिणो भव्याः पुण्यं कुर्वन्तु निर्मलम्॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यके उदयसे अग्नि जल बन जाती है, समुद्र स्थल हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है और विपत्ति सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। इसलिये जो लोग सुख चाहते हैं, उन्हें पवित्र कार्यों द्वारा सदा पुण्य उत्पन्न करना चाहिये।

जिनभगवानकी पूजा करना, दान देना, व्रत उपवास करना, सदा विचार पवित्र और शुद्ध रखना, परोपकार करना, हिंसा, झूठ, चोरी—आदि पापकर्मोंका न करना, ये पुण्य उत्पन्न करनेके कारण हैं।

वारिषेणकी यह हालत देखकर सब उसकी जय जयकार करने लगे। देवोंने प्रसन्न होकर उसपर सुगंधित फूलोंकी वर्षा की।

नगरवासियोंको इस समाचारसे बड़ा आनन्द हुआ। सबने एक स्वरसे कहा कि, वारिषेण तुम धन्य हो, तुम वास्तवमें साधु पुरुष हो, तुम्हारा चारित्र बहुत निर्मल है, तुम जिनभगवानके सच्चे सेवक हो, तुम पवित्र पुरुष हो, तुम जैनधर्मके सच्चे पालन करनेवाले हो। पुण्य-पुरुष, तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। सच है—पुण्यसे क्या नहीं होता ?

श्रेणिकने जब इस अलौकिक घटनाका हाल सुना तो उन्हें भी अपने अविचारपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे दुखी होकर बोले—

ये कुर्वन्ति जडात्मानः कार्यं लोकेऽविचार्य च।
ते सीदन्ति महन्तोपि मादृशा दुःखसागरे॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—जो मूर्ख लोग आवेशमें आकर विना विचारे किसी कामको कर बैठते हैं, वे फिर बड़े भी क्यों न हों, उन्हें मेरी तरह दुःख ही उठाने पड़ते हैं। इसलिये चाहे कैसा ही काम क्यों न हो, उसे बड़े विचारके साथ करना चाहिये।

श्रेणिक बहुत कुछ पश्चात्ताप करके पुत्रके पास श्मशानमें आये। वारिषेणकी पुण्यमूर्तिको देखते ही उनका हृदय पुत्रप्रेमसे भर आया। उनकी आँखोंसे आँसू बह निकले। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर रोते रोते कहा—प्यारे पुत्र, मेरी मूर्खताको क्षमा करो! मैं क्रोधके मारे अन्धा बन गया था, इसलिये आगे पीछेका कुछ सोच-विचार न कर मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। पुत्र, पश्चात्तापसे मेरा हृदय जल रहा है, उसे अपने क्षमारूप जल-

से बुझाओ ! दुःखके समुद्रमें मैं गोते खा रहा हूँ, मुझे सहारा देकर निकालो !

अपने पूज्य पिताकी यह हालत देखकर वारिषेणको बड़ा कष्ट हुआ। वह बोला—पिताजी, आप यह क्या कहते हैं ? आप अपराधी कैसे ? आपने तो अपने कर्त्तव्यका पालन किया है और कर्त्तव्य पालन करना कोई अपराध नहीं है। मान लीजिये कि यदि आप पुत्र-प्रेमके वश होकर मेरे लिये ऐसे दण्डकी आज्ञा न देते, तो उससे प्रजा क्या समझती ? चाहे मैं अपराधी नहीं भी था तब भी क्या प्रजा इस बातको देखती ? वह तो यही समझती कि आपने मुझे अपना पुत्र जानकर छोड़ दिया। पिताजी, आपने बहुत ही बुद्धिमानी और दूरदर्शिताका काम किया है। आपकी नीति-परायणता देखकर मेरा हृदय आनन्दके समुद्रमें लहरें ले रहा है। आपने पवित्र वंशकी आज लाज रख ली। यदि आप ऐसे समयमें अपने कर्त्तव्यसे जरा भी खिसक जाते, तो सदाके लिये अपने कुलमें कलंकका टीका लग जाता। इसके लिये तो आपको प्रसन्न होना चाहिये न कि दुखी। हाँ इतना जरूर हुआ कि मेरे इस समय पापकर्मका उदय था; इसलिये मैं निरपराधी होकर भी अपराधी बना। पर इसका मुझे कुछ खेद नहीं। क्योंकि—

अवश्य ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् ।

[वादीभसिंह]

अर्थात्—जो जैसा कर्म करता है उसका शुभ या अशुभ फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। फिर मेरे लिये कर्मोंका फल भोगना कोई नई बात नहीं है।

पुत्रके ऐसे उन्नत और उदार विचार सुनकर श्रेणिक बहुत आनन्दित हुए। वे सब दुःख भूल गये। उन्होंने कहा, पुत्र, सत्पुरुषोंने बहुत ठीक लिखा है—

चंदनं घृष्यमाणं च दह्यमानो यथाऽगुरुः ।
न याति विक्रियां साधुः पीडितो पि तथाऽपरैः ॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—चन्दनको कितना भी घिसिये, अगुरुको खूब जलाइये, उससे उनका कुछ न बिगड़कर उलटा उनमेंसे अधिक अधिक सुगन्ध निकलेगी। उसी तरह सत्पुरुषोंको दुष्ट लोग कितना ही सतावें—कितना ही कष्ट दें, पर वे उससे कुछ भी विकारको प्राप्त नहीं होते—सदा शान्त रहते हैं और अपनी बुराई करनेवालेका भी उपकार ही करते हैं।

वारिषेणके पुण्यका प्रभाव देखकर विद्युतचोरको बड़ा भय हुआ। उसने सोचा कि राजाको मेरा हाल मालूम हो जानेसे वे मुझे बहुत कड़ी सजा देंगे। इससे यही अच्छा है कि मैं स्वयं ही जाकर उनसे सब सच्चा सच्चा हाल कह दूं। ऐसा करनेसे वे मुझे क्षमा भी कर सकेंगे। यह विचार कर विद्युतचोर महाराजके सामने जा खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उनसे बोला—प्रभो, यह सब पापकर्म मेरा है। पवित्रात्मा वारिषेण सर्वथा निर्दोष है। पापिनी वेश्याके जालमें फँसकर ही मैंने यह नीच काम किया था; पर आजसे मैं कभी ऐसा काम नहीं करूंगा। मुझे दया करके क्षमा कीजिये।

विद्युतचोरको अपने कृतकर्मके पश्चात्तापसे दुखी देख श्रेणिक उसे अभय देकर अपने प्रिय पुत्र वारिषेणसे बोले—पुत्र,

अब राजधानीमें चलो, तुम्हारी माता तुम्हारे वियोगसे बहुत दुखी हो रही होंगी।

उत्तरमें वारिषेणने कहा—पिताजी, मुझे क्षमा कीजिये। मैंने संसारकी लीला देख ली। मेरा आत्मा उसमें और प्रवेश करनेके लिये मुझे रोकता है। इसलिये मैं अब घरपर न जाकर जिन-भगवानके चरणोंका आश्रय ग्रहण करूंगा। सुनिये, अबसे मेरा कर्तव्य होगा कि मैं हाथहीमें भोजन करूंगा, सदा वनमें रहूंगा और मुनि मार्गपर चलकर अपना आत्महित करूंगा। मुझे अब संसारमें पैठनेकी इच्छा नहीं, विषयवासनासे प्रेम नहीं। मुझे संसार दुःखमय जान पड़ता है, इसलिये मैं जान बूझकर अपनेको दुःखोंमें फँसाना नहीं चाहता। क्योंकि—

निजे पाणौ दीपे लसति भुवि कूपे निपततां
फलं किं तेन स्यादिति—

[जीवंधर चम्पू]

अर्थात्—हाथमें प्रदीप लेकर भी यदि कोई कूएमें गिरना चाहे, तो बतलाइये उस दीपकसे क्या लाभ? जब मुझे दो अक्षरोंका ज्ञान है और संसारकी लीलासे मैं अपरिचित नहीं हूँ; इतना होकर भी फिर मैं यदि उसमें फसूँ, तो मुझसा मूर्ख और कौन होगा? इसलिये आप मुझे क्षमा कीजिये कि मैं आपकी पालनीय आज्ञाका भी बाध्य होकर विरोध कर रहा हूं। यह कहकर वारिषेण फिर एक मिनटके लिये भी न ठहर कर वनकी ओर चल दिया और श्रीसूर-देवमुनिके पास जाकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण करली।

तपस्वी बनकर वारिषेणमुनि बड़ी दृढ़ताके साथ चारित्रका पालन करने लगे। वे अनेक देशों विदेशोंमें घूम घूम कर धर्मोपदेश करते हुए एकबार पलाशकूट नामक शहरमें पहुँचे। वहाँ श्रेणिकका मंत्री अग्निभूति रहता था। उसका एक पुष्पडाल नामका पुत्र था। वह बहुत धर्मात्मा था और दान, व्रत, पूजा आदि सत्कर्मोंके करनेमें सदा तत्पर रहा करता था। वह वारिषेणमुनिको भिक्षार्थ आये हुए देखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके साम्हने गया और भक्तिपूर्वक उनका आह्वान कर उसने नवधा भक्ति सहित उन्हें प्रासुक आहार दिया। आहार करके जब वारिषेणमुनि वनमें जाने लगे तब पुष्पडाल भी कुछ तो भक्तिसे, कुछ बालपनेकी मित्रताके नातेसे और कुछ राजपुत्र होनेके लिहाजसे उन्हें थोड़ी दूर पहुँचा आनेके लिये अपनी स्त्रीसे पूछकर उनके पीछे पीछे चल दिया। वह दूरतक जानेकी इच्छा न रहते हुए भी मुनिके साथ साथ चलता गया। क्योंकि उसे विश्वास था कि थोड़ी दूर गये बाद ये मुझे लौट जानेके लिये कहेंगे ही। पर मुनिने उसे कुछ नहीं कहा, तब उसकी चिन्ता बढ़ गई। उसने मुनिको यह समझानेके लिये, कि मैं शहरसे बहुत दूर निकल आया हूँ, मुझे घरपर जल्दी लौट जाना है, कहा—कुमार, देखते हैं यह वही सरोवर है, जहाँ हम आप खेला करते थे; यह वही छायादार और उन्नत आमका वृक्ष है, जिसके नीचे आप हम बाललीलाका सुख लेते थे; और देखो, यह वही विशाल भूभाग है, जहाँ मैंने और आपने बालपनमें अनेक खेल खेले थे। इत्यादि अपने पूर्व परिचित चिह्नोंको बार बार दिखलाकर पुष्पडालने मुनिका ध्यान अपने दूर निकल आनेकी ओर आकर्षित करना चाहा, पर मुनि उसके हृदय

की बात जानकर भी उसे लौट जानेको न कह सके। कारण वैसा करना उनका मार्ग नहीं था। इसके विपरीत उन्होंने पुष्पडालके कल्याणकी इच्छासे उसे खूब वैराग्यका उपदेश देकर मुनिदीक्षा देदी। पुष्पडाल मुनि हो गया, संयमका पालन करने लगा और खूब शास्त्रोंका अभ्यास करने लगा; पर तब भी उसकी विषयवासना न मिटी—उसे अपनी स्त्रीकी बार बार याद आने लगी। आचार्य कहते हैं कि—

धिक्कामं धिङ्महामोहं धिङ्भोगान्यैस्तु वंचितः।
सन्मार्गेपि स्थितो जन्तुर्न जानाति निजं हितम् ॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—उस कामको, उस मोहको, उन भोगोंको धिक्कार है, जिनके वश होकर उत्तम मार्गमें चलनेवाले भी अपना हित नहीं कर पाते। यही हाल पुष्पडालका हुआ, जो मुनि होकर भी वह अपनी स्त्रीको हृदयसे न भुला सका।

इसी तरह पुष्पडालको बारह बर्ष बीत गये। उसकी तपश्चर्या सार्थक होनेके लिये गुरुने उसे तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी और उसके साथ वे भी चले। यात्रा करते करते एक दिन वे भगवान् वर्धमानके समवसरणमें पहुँच गये। भगवान्को उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उस समय वहाँ गंधर्वदेव भगवान्की भक्ति कर रहे थे। उन्होंने कामकी निन्दामें एक पद्य पढ़ा। वह पद्य यह था—

मइलकुचेली दुम्मणी णाहे पवसियएण।
कह जीवेसइ धणियधर उब्भते विरहेण॥

[कोई कवि]

अर्थात्—स्त्री चाहे मैली हो, कुचेली हो, हृदयकी मलिन हो, पर वह भी अपने पतिके प्रवासी होनेपर—विदेशमें रहनेपर—नहीं जीकर पतिवियोगसे वन वन, पर्वतों पर्वतोंमें मारी मारी फिरती है। अर्थात्—कामके वश होकर नहीं करनेके काम भी कर डालती है।

उक्त पद्यको सुनते ही पुष्पडालमुनि भी कामसे पीड़ित होकर अपनी स्त्रीकी प्राप्तिके लिये अधीर हो उठे। वे व्रतसे उदासीन होकर अपने शहरकी ओर रवाना हुए। उनके हृदयकी बात जानकर वारिषेणमुनि भी उन्हें धर्ममें दृढ़ करनेके लिये उनके साथ साथ चल दिये।

गुरु और शिष्य अपने शहरमें पहुँचे। उन्हें देखकर सती चेलनाने सोचा—कि जान पड़ता है, पुत्र चारित्रसे चलायमान हुआ है। नहीं तो ऐसे समय इसके यहां आनेकी क्या आवश्यकता थी? यह विचार कर उसने उसकी परीक्षाके लिये उसके बैठनेको दो आसन दिये। उनमें एक काष्ठका था और दूसरा रत्नजड़ित। वारिषेणमुनि रत्नजड़ित आसनपर न बैठकर काष्ठके आसनपर बैठे। सच है—जो सच्चे मुनि होते हैं वे कभी ऐसा तप नहीं करते जिससे उनके आचरणमें किसीको सन्देह हो। इसके बाद वारिषेण मुनिने अपनी माताके सन्देहको दूर करके उससे कहा—माता, कुछ समयके लिये मेरी सब स्त्रियोंको यहाँ बुलवा तो लीजिये। महारानी ने वैसा ही किया। वारिषेणकी सब स्त्रियां खूब वस्त्राभूषणोंसे सजकर उनके साम्हने आ उपस्थित हुईं। वे बड़ी सुन्दरी थीं। देवकन्यायें भी उनके रूपको देखकर लज्जित होती थीं। मुनिको नम-

स्कार कर वे सब उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षाके लिये खड़ी रहीं।

वारिषेणने तब अपने शिष्य पुष्पडालसे कहा—क्यों देखते हो न ? ये मेरी स्त्रियाँ हैं, यह राज्य है, यह सम्पत्ति है, यदि तुम्हें ये अच्छी जान पड़ती हैं—तुम्हारा संसारसे प्रेम है, तो इन्हें तुम स्वीकार करो। वारिषेणमुनिराजका यह आश्चर्यमें डालनेवाला कर्त्तव्य देखकर पुष्पडाल बड़ा लज्जित हुआ। उसे अपनी मूर्खतापर बहुत खेद हुआ। वह मुनिके चरणोंको नमस्कार कर बोला—प्रभो, आप धन्य हैं, आपने लोभरूपी पिशाचको नष्ट कर दिया है, आपही ने जिनधर्मका सच्चा सार समझा है। संसारमें वे ही बड़े पुरुष हैं—महात्मा हैं, जो आपके समान संसारकी सब सम्पत्तिको लात मारकर वैरागी बनते हैं। उन महात्माओंके लिये फिर कौन वस्तु संसारमें दुर्लभ रह जाती है ? दयासागर, मैं तो सचमुच जन्मान्ध हूँ, इसीलिये तो मौलिक तपरत्नको प्राप्तकर भी अपनी स्त्रीको चित्तसे अलग नहीं कर सका। प्रभो, जहाँ आपने बारह वर्ष पर्यन्त खूब तपश्चर्या की वहाँ मुझ पापीने इतने दिन व्यर्थ गँवा दिये—सिवा आत्माको कष्ट पहुँचानेके कुछ नहीं किया। स्वामी, मैं बहुत अपराधी हूं, इसलिये दया करके मुझे अपने पापका प्रायश्चित्त देकर पवित्र कीजिये। पुष्पडालके भावोंका परिवर्तन और कृतकर्मके पश्चात्तापसे उनके परिणामोंकी कोमलता तथा पवित्रता देखकर वारिषेणमुनिराज बोले—धीर, इतने दुखी न बनिये। पापकर्मोंके उदयसे कभी कभी अच्छे अच्छे विद्वान भी हतबुद्धि हो जाते हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यही अच्छा हुआ जो तुम पीछे अपने मार्गपर आ गये। इसके बाद उन्होंने पुष्पडालमुनिको उचित

प्रायश्चित्त देकर पीछा धर्ममें स्थिर किया—अज्ञानके कारण सम्यग्दर्शनसे विचलित देखकर उनका धर्ममें स्थितिकरण किया।

पुष्पडालमुनि गुरु महाराजकी कृपासे अपने हृदयको शुद्ध बनाकर बड़े वैराग्यभावोंसे कठिन कठिन तपश्चर्या करने लगे, भूख प्यासकी कुछ परवा न कर परीषह सहने लगे।

इसी प्रकार अज्ञान वा मोहसे कोई धर्मात्मा पुरुष धर्मरूपी पर्वतसे गिरता हो, तो उसे सहारा देकर न गिरने देना चाहिये। जो धर्मज्ञ पुरुष इस पवित्र स्थितिकरण अंगका पालन करते हैं, समझो कि वे स्वर्ग और मोक्ष-सुखके देनेवाले धर्मरूपी वृक्षको सींचते हैं। शरीर, सम्पत्ति, कुटुम्ब आदि अस्थिर हैं—विनाशीक हैं, इनकी रक्षा भी जब कभी कभी सुख देनेवाली हो जाती है तब अनन्तसुख देनेवाले धर्मकी रक्षाका कितना महत्त्व होगा, यह सहज में जाना जा सकता है। इसलिये धर्मात्माओंको उचित है कि वे दुःख देनेवाले प्रमादको छोड़कर संसार-समुद्रसे पार करनेवाले पवित्र धर्मका सेवन करें।

श्रीवारिषेणमुनि, जो कि सदा जिनभगवान्‌की भक्तिमें लीन रहते हैं, तप पर्वतसे गिरते हुए पुष्पडालमुनिको हाथका सहारा देकर तपश्चर्या और ध्यानाध्ययन करनेके लिये वनमें चले गये, वे प्रसिद्ध महात्मा आत्मसुख प्रदान कर मुझे भी संसार-समुद्रसे पार करें।

१२–विष्णुकुमारमुनिकी कथा।

अनन्त सुख प्रदान करनेवाले जिनभगवान् जिनवानी और जैन साधुओंको नमस्कार कर मैं वात्सल्यांगके पालन करनेवाले श्री विष्णुकुमार मुनिराजकी कथा लिखता हूं।

अवन्तिदेशके अन्तर्गत उज्जयिनी बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध नगरी है। जिस समयका यह उपाख्यान है, उस समय उसके राजा श्रीवर्मा थे। वे बड़े धर्मात्मा थे, सब शास्त्रोंके अच्छे विद्वान थे, विचारशील थे, और अच्छे शूरवीर थे। वे दुराचारियोंको उचित दण्ड देते और प्रजाका नीतिके साथ पालन करते। सुतरां प्रजा उनकी बड़ी भक्त थी।

उनकी महारानीका नाम था श्रीमती। वह भी विदुषी थी। उस समयकी स्त्रियोंमें वह प्रधान सुन्दरी समझी जाती थी। उसका हृदय बड़ा दयालु था। वह जिसे दुखी देखती, फिर उसका दुःख दूर करनेके लिये जी जानसे प्रयत्न करती। महारानीको सारी प्रजा देवी ज्ञान करती थी।

श्रीवर्माके राजमंत्री चार थे। उनके नाम थे बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि। ये चारों ही धर्मके कट्टर शत्रु थे। इन पापी मंत्रियोंसे युक्त राजा ऐसे जान पड़ते थे मानो जहरीले सर्पसे युक्त जैसे चन्दनका वृक्ष हो।

एक दिन ज्ञानी अकम्पनाचार्य देश विदेशोंमें पर्यटन कर भव्य पुरुषोंको धर्मरूपी अमृतसे सुखी करते हुए उज्जयिनीमें आये। उनके साथ सातसौ मुनियोंका बड़ा भारी संघ था। वे शहर बाहर

एक पवित्र स्थानमें ठहरे। अकम्पनाचार्यको निमित्तज्ञानसे उज्जयिनी की स्थिति अनिष्टकर जान पड़ी। इसलिये उन्होंने सारे संघसे कह दिया कि देखो, राजा, वगैरह कोई आवे पर आप लोग उनसे वाद-विवाद न कीजियेगा। नहीं तो सारा संघ बड़े कष्टमें पड़ जायगा—उसपर घोर उपसर्ग आवेगा। गुरुकी हितकर आज्ञाको स्वीकार कर सब मुनि मौनके साथ ध्यान करने लगे। सच है—

शिष्यास्तेत्र प्रशस्यन्ते ये कुर्वन्ति गुरोर्वचः।
प्रीतितो विनयोपेता भवन्त्यन्ये कुपुत्रवत्॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—शिष्य वे ही प्रशंसाके पात्र हैं, जो विनय और प्रेमके साथ अपने गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं। इसके विपरीत चलनेवाले कुपुत्रके समान निन्दाके पात्र हैं।

अकम्पनाचार्यके आनेके समाचार शहरके लोगोंको मालूम हुए। वे पूजाद्रव्य लेकर बड़ी भक्तिके साथ आचार्यकी वन्दनाको जाने लगे। आज एकाएक अपने शहरमें आनन्दकी धूमधाम देखकर महलपर बैठे हुए श्रीवर्माने मंत्रियोंसे पूछा—ये सब लोग आज ऐसे सजधजकर कहाँ जा रहे हैं? उत्तरमें मंत्रियोंने कहा—महाराज, सुना जाता है कि अपने शहरमें नंगे जैन साधु आये हुए हैं। ये सब उनकी पूजाके लिये जा रहे हैं। राजाने प्रसन्नताके साथ कहा—तब तो हमें भी चलकर उनके दर्शन करना चाहिये। वे महापुरुष होंगे! यह विचार कर राजा भी मंत्रियोंके साथ आचार्यके दर्शन करनेको गये। उन्हें आत्मध्यानमें लीन देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने क्रमसे एक एक मुनिको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

सब मुनि अपने आचार्यकी आज्ञानुसार मौन रहे। किसीने भी उन्हें धर्मवृद्धि नहीं दी। राजा उनकी वन्दना कर वापिस महल लौट चले। लौटते समय मंत्रियोंने उनसे कहा—महाराज, देखे साधुओं-को ? बेचारे बोलना तक भी नहीं जानते, सब नितान्त मूर्ख हैं। यही तो कारण है कि सब मौनी बने बैठे हुए हैं। उन्हें देखकर सर्व साधारण तो यह समझेंगे कि ये सब आत्मध्यान कर रहे हैं, बड़े तपस्वी हैं। पर यह इनका ढोंग है। अपनी सब पोल न खुल जाय, इसलिये उन्होंने लोगोंको धोखा देनेको यह कपटजाल रचा है। महाराज, ये दाम्भिक हैं। इस प्रकार त्रैलोक्यपूज्य और परम शान्त मुनिराजोंकी निन्दा करते हुए ये मलिन-हृदयी मंत्री राजाके साथ लौटे आ रहे थे कि रास्तेमें इन्हें एक मुनि मिल गये, जो कि शहरसे आहार करके वनकी ओर आ रहे थे। मुनिको देखकर इन पापियोंने उनकी हँसी की, कि महाराज, देखिये वह एक बैल और पेट भरकर चला आ रहा है! मुनिने मंत्रियोंके निन्दावचनोंको सुन लिया। सुन-कर भी उनका कर्त्तव्य था कि वे शान्त रह जाते, पर वे निन्दा न सह सके। कारण वे आहारके लिये शहरमें चले गये थे, इसलिये उन्हें अपने आचार्य महाराजकी आज्ञा मालूम न थी। मुनिने यह समझ कर, कि इन्हें अपनी विद्याका बड़ा अभिमान है, उसे मैं चूर्ण करूंगा, कहा—तुम व्यर्थ क्यों किसीकी बुराई करते हो ? यदि तुममें कुछ विद्या हो, आत्मबल हो, तो मुझसे शास्त्रार्थ करो! फिर तुम्हें जान पड़ेगा कि बैल कौन है ? भला वे भी तो राजमंत्री थे, उसपर भी दुष्टता उनके हृदयमें कूट कूटकर भरी हुई थी; फिर वे कैसे एक अकिंचन्य साधुके वचनोंको सह सकते थे ? उन्होंने मुनिके साथ

शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। अभिमानमें आकर उन्होंने कह तो दिया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे, पर जब शास्त्रार्थ हुआ तब उन्हें जान पड़ा कि शास्त्रार्थ करना बच्चोंकासा खेल नहीं है। एक ही मुनिने अपने स्याद्वादके बलसे बातकी बातमें चारों मंत्रियोंको परा-जित कर दिया। सच है—एक ही सूर्य सारे संसारके अन्धकारको नष्ट करनेके लिये समर्थ है।

विजय लाभकर श्रुतसागरमुनि अपने आचार्यके पास आये। उन्होंने रास्तेकी सब घटना आचार्यसे ज्योंकी त्यों कह सुनाई। सुन-कर आचार्य खेदके साथ बोले—हाय! तुमने बहुत ही बुरा किया, जो उनसे शास्त्रार्थ किया। तुमने अपने हाथोंसे सारे संघका घात किया—संघकी अब कुशल नहीं है। अस्तु, जो हुआ, अब यदि तुम सारे संघकी जीवनरक्षा चाहते हो, तो पीछे जाओ और जहाँ मंत्रियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ है, वहीं जाकर कायोत्सर्ग ध्यान करो। आचार्यकी आज्ञाको सुनकर श्रुतसागर मुनिराज जरा भी विचलित नहीं हुए। वे संघकी रक्षाके लिये उसी समय वहांसे चल दिये और शास्त्रार्थकी जगहपर आकर मेरुकी तरह निश्चल हो बड़े धैर्यके साथ कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे।

शास्त्रार्थमें मुनिसे पराजित होकर मंत्री बड़े लज्जित हुए। अपने मानभंगका बदला चुकानेका विचार कर मुनिवधके लिये रात्रिके समय वे चारों शहरसे बाहर हुए। रास्तेमें उन्हें श्रुतसागर-मुनि ध्यान करते हुए मिले। पहले उन्होंने अपने मानभंग करने-वालेहीको परलोक पहुँचा देना चाहा। उन्होंने मुनिकी गर्दन काटने को अपनी तलवारको म्यानसे खींचा और एक ही साथ उनका काम

तमाम करनेके विचार करनेके विचारसे उनपर वार करना चाहा कि, इतनेमें मुनिके पुण्य प्रभावसे पुरदेवीने आकर उन्हें तलवार उठाये हुए ही कील दिये।

प्रातःकाल होते ही बिजलीकी तरह सारे शहरमें मंत्रियोंकी दुष्टताका हाल फैल गया। सब शहर उनके देखनेको आया। राजा भी आये। सबने एक स्वरसे उन्हें धिक्कारा। है भी तो ठीक, जो पापी लोग निरापराधोंको कष्ट पहुँचाते हैं वे इस लोकमें भी घोर दुःख उठाते हैं और परलोकमें नरकोंके असह्य दुःख सहते हैं। राजा ने उन्हें बहुत धिक्कार कर कहा—पापियो, जब तुमने मेरे सामने इन निर्दोष और संसारमात्रका उपकार करनेवाले मुनियोंकी निन्दा की थी, तब मैं तुम्हारे विश्वासपर निर्भर रहकर यह समझा था कि संभव है मुनि लोग ऐसे ही हों, पर आज मुझे तुम्हारी नीचताका ज्ञान हुआ—तुम्हारे पापी हृदयका पता लगा। तुम इन्हीं निर्दोष साधुओंकी हत्या करनेको आये थे न? पापियों, तुम्हारा मुख देखना भी महापाप है। तुम्हें तुम्हारे इस घोर कर्मका उपयुक्त दण्ड तो यही देना चाहिये था कि जैसा तुम करना चाहते थे, वही तुम्हारे लिये किया जाता। पर पापियो, तुम ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए हो और तुम्हारी कितनी ही पीढ़ियां मेरे यहाँ मंत्रीपदपर प्रतिष्ठा पा चुकी हैं, इसलिये उसके लिहाजसे तुम्हें अभय देकर अपने नौकरोंको आज्ञा करता हूँ कि वे तुम्हें गधोंपर बैठाकर मेरे देशकी सीमासे बाहर करदें। राजाकी आज्ञाका उसी समय पालन हुआ। चारों मन्त्री देशसे निकाल दिये गये। सच है—पापियोंकी ऐसी दशा होना उचित ही है।

धर्मके ऐसे प्रभावको देखकर लोगोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। वे अपने हृदयमें बढ़ते हुए हर्षके वेगको रोकनेमें समर्थ नहीं हुए। उन्होंने जयध्वनिके मारे आकाशपातालको एक कर दिया। मुनिसंघका उपद्रव टला। सबके चित्त स्थिर हुए। अकम्पनाचार्य भी उज्जयिनीसे विहार कर गये।

हस्तिनापुर नामका एक शहर है। उसके राजा हैं महापद्म। उनकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। उसके पद्म और विष्णु नामके दो पुत्र हुए।

एक दिन राजा संसारकी दशापर विचार कर रहे थे। उसकी अनित्यता और निस्सारता देखकर उन्हें बहुत वैराग्य हुआ। उन्हें संसार दुःखमय दिखने लगा। वे उसी समय अपने बड़े पुत्र पद्मको राज्य देकर अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ वनमें चले गये और श्रुतसागरमुनिके पास पहुंचकर दोनों पिता-पुत्रने दीक्षा ग्रहण करली। विष्णुकुमार बालपनेसे ही संसारसे विरक्त थे, इसलिये पिताके रोकनेपर भी वे दीक्षित हो गये। विष्णुकुमारमुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे। कुछ दिनों बाद तपश्चर्याके प्रभावसे उन्हें विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई।

पिताके दीक्षित हो जानेपर हस्तिनापुरका राज्य पद्मराज करने लगे। उन्हें सब कुछ सुख होनेपर भी एक बातका बड़ा दुःख था। वह यह कि, कुंभपुरका राजा सिंहबल उन्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया करता था। उनके देशमें अनेक उपद्रव किया करता था। उसके अधिकारमें एक बड़ा भारी सुदृढ़ किला था। इसलिये वह पद्मराजकी प्रजापर एकाएक धावा मारकर अपने किलेमें जाकर छुप

रहता। तब पद्मराज उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर पाते थे। इस कष्ट की उन्हें सदा चिन्ता रहा करती थी।

इसी समय श्रीवर्माके चारों मंत्री उज्जयिनीसे निकलकर कुछ दिनों बाद हस्तिापुरकी ओर आ निकले। उन्हें किसी तरह राजाके इस दुःखका सूत्र मालूम हो गया। वे राजासे मिले और उन्हें चिन्तासे निर्मुक्त करनेका वचन देकर कुछ सेनाके साथ सिंहबलपर जा चढ़े और अपनी बुद्धिमानीसे किलेको तोड़कर सिंहबलको उन्होंने बांध लिया और लाकर पद्मराजके साम्हने उपस्थित कर दिया। पद्मराज उनकी वीरता और बुद्धिमानीसे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें अपने मंत्री बनाकर कहा—कि तुमने मेरा उपकार किया है। तुम्हारा मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। यद्यपि उसका प्रतिफल नहीं दिया जा सकता, तब भी तुम जो कहो वह मैं तुम्हें देनेको तैयार हूं। उत्तरमें बलि नामके मंत्रीने कहा—प्रभो, आपकी हमपर कृपा है, तो हमें सब कुछ मिल चुका। इसपर भी आपका आग्रह है, तो उसे हम अस्वीकार भी नहीं कर सकते। अभी हमें कुछ आवश्यकता नहीं है। जब समय होगा तब आपसे प्रार्थना करेंगे ही।

इसी समय श्री अकम्पनाचार्य अनेक देशोंमें विहार करते हुए और धर्मोपदेश द्वारा संसारके जीवोंका हित करते हुए हस्तिनापुरके बगीचेमें आकर ठहरे। सब लोग उत्सवके साथ उनकी वन्दना करनेको गये। अकम्पनाचार्यके आनेका समाचार राजमंत्रियोंको मालूम हुआ। मालूम होते ही उन्हें अपने अपमानकी बात याद हो आई। उनका हृदय प्रतिहिंसासे उद्विग्न हो उठा। उन्होंने परस्परमें

विचार किया कि समय बहुत उपयुक्त है, इसलिये बदला लेना ही चाहिये। देखो न, इन्हीं दुष्टोंके द्वारा अपनेको कितना दुःख उठाना पड़ा था? सबके हम धिक्कार पात्र बने और अपमानके साथ देशसे निकाले गये। पर हाँ अपने मार्गमें एक कांटा है। राजा इनका बड़ा भक्त है। वह अपने रहते हुए इनका अनिष्ट कैसे होने देगा? इसके लिये कुछ उपाय सोच निकालना आवश्यक है। नहीं तो ऐसा न हो कि ऐसा अच्छा समय हाथसे निकल जाय? इतनेमें बलि मंत्री बोल उठा कि, हाँ इसकी आप चिन्ता न करें। अपना सिंहबलके पकड़ लानेका पुरस्कार राजासे पाना बाकी है, उसकी ऐवजमें उससे सात दिनका राज्य ले लेना चाहिये। फिर जैसा हम करेंगे वही होगा। राजाको उसमें दखल देनेका कुछ अधिकार न रहेगा। यह प्रयत्न सबको सर्वोत्तम जान पड़ा। बलि उसी समय राजाके पास पहुँचा और बड़ी विनीततासे बोला—महाराज, आपपर हमारा एक पुरस्कार पाना है। आप कृपाकर अब उसे दीजिये। इस समय उससे हमारा बड़ा उपकार होगा। राजा उसका कूट कपट न समझ और यह विचार कर, कि इन लोगोंने मेरा बड़ा उपकार किया था, अब उसका बदला चुकाना मेरा कर्त्तव्य है, बोला—बहुत अच्छा, जो तुम्हें चाहिये वह माँगलो, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारे ऋण से उऋण होनेका यत्न करूंगा।

बलि बोला—महाराज, यदि आप वास्तवमें ही हमारा हित चाहते हैं, तो कृपा करके सात दिनके लिये अपना राज्य हमें प्रदान कीजिये।

राजा सुनते ही अवाक् रह गया। उसे किसी बड़े भारी अनर्थकी आशंका हुई। पर अब वश ही क्या था? उसे वचनबद्ध होकर राज्य दे देना ही पड़ा। राज्यके प्राप्त होते ही उनकी प्रसन्नताका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने मुनियोंके मारनेके लिये यज्ञका बहाना बनाकर षड्यंत्र रचा, जिससे कि सर्वसाधारण न समझ सकें।

मुनियोंके बीचमें रखकर यज्ञके लिये एक बड़ा भारी मंडप तैयार किया गया। उनके चारों ओर काष्ठ ही काष्ठ रखवा दिया गया। हजारों पशु इकट्ठे किये गये। यज्ञ आरम्भ हुआ। वेदोंके जानकार बड़े बड़े विद्वान् यज्ञ कराने लगे। वेदध्वनिसे यज्ञमंडप गूँजने लगा। बेचारे निरपराध पशु बड़ी निर्दयतासे मारे जाने लगे। उनकी आहुतियाँ दी जाने लगीं। देखते देखते दुर्गन्धित धुएँसे आकाश परिपूर्ण हुआ। मानो इस महापापको न देख सकने के कारण सूर्य अस्त हुआ। मनुष्योंके हाथसे राज्य राक्षसोंके हाथोंमें गया।

सारे मुनिसंघपर भयंकर उपसर्ग हुआ। परन्तु उन शान्तिकी मूर्त्तियोंने इसे अपने किये कर्मोंका फल समझकर बड़ी धीरताके साथ सहना आरम्भ किया। वे मेरु समान निश्चल रहकर एक चित्तसे परमात्माका ध्यान करने लगे। सच है—जिन्होंने अपने हृदयको खूब उन्नत और दृढ़ बना लिया है, जिनके हृदयमें निरन्तर यह भावना बनी रहती है—

अरि मित्र, महल मसान, कंचन काच, निन्दन थुतिकरन।
अर्घावतारन असिप्रहारनमैं सदा समता धरन॥

वे क्या कभी ऐसे उपसर्गोंसे विचलित होते हैं? नहीं। पाण्डवोंको शत्रुओंने लोहेके गरम गरम भूषण पहना दिये। अग्निकी भयानक ज्वाला उनके शरीरको भस्म करने लगी। पर वे विचलित नहीं हुए। धैर्यके साथ उन्होंने सब उपसर्ग सहा। जैनसाधुओंका यही मार्ग है कि वे आये हुए कष्टोंको शान्तिसे सहें और वे ही यथार्थ साधु हैं। जिनका हृदय दुर्बल है, जो रागद्वेषरूपी शत्रुओंको जीतनेके लिये ऐसे कष्ट नहीं सह सकते—दुःखोंके प्राप्त होनेपर समभाव नहीं रख सकते, वे न तो अपने आत्महितके मार्गमें आगे बढ़ पाते हैं और न वे साधुपद स्वीकार करने योग्य हो सकते हैं।

मिथिलामें श्रुतसागरमुनिको निमित्तज्ञानसे इस उपसर्गका हाल मालूम हुआ। उनके मुँहसे बड़े कष्टके साथ वचन निकले—हाय! हाय!! इस समय मुनियोंपर बड़ा उपसर्ग हो रहा है। वहीं एक पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक भी उपस्थित थे। उन्होंने मुनिराजसे पूछा—प्रभो, यह उपसर्ग कहाँ हो रहा है? उत्तरमें श्रुतसागरमुनि बोले—हस्तिनापुरमें सातसौ मुनियोंका संघ ठहरा हुआ है। उसके संरक्षक अकम्पनाचार्य हैं। उस सारे संघपर पापी बलिके द्वारा यह उपसर्ग किया जा रहा है।

क्षुल्लकने फिर पूछा—प्रभो, कोई ऐसा उपाय भी है, जिससे यह उपसर्ग दूर हो?

मुनिने कहा—हाँ उसका एक उपाय है। श्रीविष्णुकुमार मुनिको विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई है। वे अपनी ऋद्धिके बलसे उपसर्गको रोक सकते हैं।

पुष्पदन्त फिर एक क्षणभर भी वहां न ठहरे और जहां विष्णुकुमार मुनि तपश्चर्या कर रहे थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने सब हाल विष्णुकुमार मुनिसे कह सुनाया। विष्णुकुमारको ऋद्धि प्राप्त होनेकी पहले खबर नहीं हुई थी। पर जब पुष्पदन्तके द्वारा उन्हें मालूम हुआ, तब उन्होंने परीक्षाके लिये एक हाथ पसारकर देखा। पसारते ही उनका हाथ बहुत दूरतक चला गया। उन्हें विश्वास हुआ। वे उसी समय हस्तिनापुर आये और अपने भाईसे बोले—भाई, आप किस नींदमें सोते हुए हो? जानते हो, शहरमें कितना बड़ा भारी अनर्थ हो रहा है? अपने राज्यमें तुमने ऐसा अनर्थ क्यों होने दिया? क्या पहले किसीने भी अपने कुलमें ऐसा घोर अनर्थ आजतक किया है? हाय! धर्मके अवतार, परम शान्त और किसीसे कुछ लेते देते नहीं, उन मुनियोंपर यह अत्याचार? और वह भी तुम सरीखे धर्मात्माओंके राज्यमें? खेद! भाई, राजाओंका धर्म तो यह कहा गया है कि वे सज्जनोंकी, धर्मात्माओंकी रक्षा करें और दुष्टोंको दण्ड दें। पर आप तो बिलकुल इससे उलटा कर रहे हैं। समझते हो, साधुओंका सताना ठीक नहीं। ठंडा जल भी गरम होकर शरीरको जला डालता है। इसलिये जबतक कोई आपत्ति तुमपर न आवे, उसके पहले ही उपसर्गकी शान्ति करवा दीजिये।

अपने भाईका उपदेश सुनकर पद्मराज बोले—मुनिराज, मैं क्या करूं? मुझे क्या मालूम था कि ये पापी लोग मिलकर मुझे ऐसा धोखा देंगे? अब तो मैं बिलकुल विवश हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। सात दिनतक जैसा कुछ ये करेंगे वह सब मुझे सहना

होगा। क्योंकि मैं वचनबद्ध हो चुका हूं। अब तो आप ही किसी उपाय द्वारा मुनियोंका उपसर्ग दूर कीजिये। आप इसके लिये समर्थ भी हैं और सब जानते हैं। उसमें मेरा दखल देना तो ऐसा है जैसा सूर्यको दीपक दिखलाना। आप अब जाइये और शीघ्रता कीजिये। विलम्ब करना उचित नहीं।

विष्णुकुमारमुनिने विक्रियाऋद्धिके प्रभावसे बावन ब्राह्मणका वेष बनाया और बड़ी मधुरतासे वेदध्वनिका उच्चारण करते हुए वे यज्ञमंडपमें पहुँचे। उनका सुन्दर स्वरूप और मनोहर वेदोच्चार सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए। बलि तो उनपर इतना मुग्ध हुआ कि उसके आनन्दका कुछ पार नहीं रहा। उसने बड़ी प्रसन्नता से उनसे कहा—महाराज, आपने पधारकर मेरे यज्ञकी अपूर्व शोभा करदी। मैं बहुत खुश हुआ। आपको जो इच्छा हो, मांगिये। इस समय मैं सब कुछ देनेको समर्थ हूँ।

विष्णुकुमार बोले—मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मुझे अपनी जैसी कुछ स्थिति है, उसमें सन्तोष है। मुझे धन-दौलतकी कुछ आवश्यकता नहीं। पर आपका जब इतना आग्रह है, तो आपको असन्तुष्ट करना भी मैं नहीं चाहता। मुझे केवल तीन पैंड पृथ्वीकी आवश्यकता है। यदि आप कृपा करके उतनी भूमि मुझे प्रदान कर देंगे तो मैं उसमें टूटी फूटी झोंपड़ी बनाकर रह सकूंगा। स्थानकी निराकुलतासे मैं अपना समय वेदाध्ययनादिमें बड़ी अच्छी तरह बिता सकूंगा। बस, इसके सिवा मुझे और कुछ आशा नहीं है।

विष्णुकुमारकी यह तुच्छ याचना सुनकर और और

ब्राह्मणोंको उनकी बुद्धिपर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने कहा भी कृपानाथ, आपको थोड़ेमें ही सन्तोष था, तब भी आपका यह कर्त्तव्य तो था कि आप बहुत कुछ माँगकर अपने जाति भाइयोंका ही उपकार करते? उसमें आपका बिगड़ क्या जाता था?

बलिने भी उन्हें बहुत समझाया और कहा कि आपने तो कुछ भी नहीं माँगा। मैं तो यह समझा था कि आप अपनी इच्छासे माँगते हैं, इसलिये जो कुछ माँगेंगे वह अच्छा ही माँगेंगे; परन्तु आपने तो मुझे बहुत ही हताश किया। यदि आप मेरे वैभव और मेरी शक्तिके अनुसार माँगते तो मुझे बहुत सन्तोष होता। महाराज, अब भी आप चाहें तो और भी अपनी इच्छानुसार माँग सकते हैं। मैं देनेको प्रस्तुत हूँ।

विष्णुकुमार बोले—नहीं, मैंने जो कुछ माँगा है, मेरे लिये वही बहुत है। अधिक मुझे चाह नहीं। आपको देना ही है तो और बहुत से ब्राह्मण मौजूद हैं; उन्हें दीजिये। बलिने अगत्या कहा कि—जैसी आपकी इच्छा। आप अपने पाँवोंसे भूमि माप लीजिये। यह कहकर उसने हाथमें जल लिया और संकल्प कर उसे विष्णुकुमारके हाथमें छोड़ दिया। संकल्प छोड़ते ही उन्होंने पृथ्वी मापना शुरू की। पहला पाँव उन्होंने सुमेरु पर्वतपर रक्खा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वतपर, अब तीसरा पाँव रखनेको जगह नहीं। उसे वे कहाँ रक्खें? उनके इस प्रभावसे सारी पृथ्वी काँप उठी, सब पर्वत चल गये, समुद्रोंने मर्यादा तोड़ दी, देवों और ग्रहोंके—विमान एकसे एक टकराने लगे और देवगण आश्चर्यके मारे भौंचकसे रह गये। वे सब विष्णुकुमारके पास आये और बलिको बांधकर बोले—प्रभो, क्षमा कीजिये!

क्षमा कीजिये!! यह सब दुष्कर्म इसी पापीका है। यह आपके सामने उपस्थित है। बलिने मुनिराजके पांवोंमें गिरकर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया और अपने दुष्कर्मपर बहुत पश्चात्ताप किया।

विष्णुकुमार मुनिने संघका उपद्रव दूर किया। सबको शान्ति हुई। राजा और चारों मंत्री तथा प्रजाके सब लोग बड़ी भक्तिके साथ अकम्पनाचार्यकी वन्दना करनेको गये। उनके पांवोंमें पड़कर राजा और मंत्रियोंने अपना अपराध उनसे क्षमा कराया और उसी दिनसे मिथ्यात्वमत छोड़कर सब अहिंसामयी पवित्र जिनशासनके उपासक बने।

देवोंने प्रसन्न होकर विष्णुकुमारकी पूजनके लिये तीन बहुत ही सुन्दर स्वर्गीय वीणायें प्रदान कीं, जिनके द्वारा उनका गुणानुवाद गा गाकर लोग बहुत पुण्य उत्पन्न करेंगे। जैसा विष्णुकुमारने वात्सल्य अंगका पालनकर अपने धर्म बन्धुओंके साथ प्रेमका अपूर्व परिचय दिया, उसी प्रकार और और भव्य पुरुषोंको भी अपने और दूसरोंके हितके लिये समय समयपर दूसरोंके दुःखोंमें शामिल होकर वात्सल्य-उदारप्रेम-का परिचय देना उचित है।

इस प्रकार जिनभगवान्के परमभक्त विष्णुकुमारने धर्म प्रेमके वश हो मुनियोंका उपसर्ग दूरकर वात्सल्य अंगका पालन किया और पश्चात् ध्यानाग्नि द्वारा कर्मोंका नाश कर मोक्ष गये। वे ही विष्णुकुमार मुनिराज मुझे भवसमुद्रसे पारकर मोक्ष प्रदान करें।

१३–वज्रकुमारकी कथा

संसारके परम गुरु श्रीजिनभगवान्को नमस्कार कर मैं प्रभावनांगके पालन करनेवाले श्रीवज्रकुमारमुनिकी कथा लिखता हूँ।

जिस समयकी यह कथा है, उस समय हस्तिनापुरके राजा थे बल। वे राजनीतिके अच्छे विद्वान थे, बड़े तेजस्वी थे और दयालु थे। उनके मंत्रीका नाम था गरुड़। उसका एक पुत्र था। उसका नाम सोमदत्त था। वह सब शास्त्रोंका विद्वान् था और सुन्दर भी बहुत था। उसे देखकर सबको बड़ा आनन्द होता था। एक दिन सोमदत्त अपने मामाके यहाँ गया, जो कि अहिछत्रपुरमें रहता था। उसने मामासे विनयपूर्वक कहा—मामाजी, यहांके राजासे मिलनेकी मेरी बहुत उत्कठा है। कृपाकर आप उनसे मेरी मुलाकात करवा दीजिये न ? सुभूतिने अभिमानमें आकर अपने महाराजसे सोमदत्तकी मुलाकात नहीं कराई। सोमदत्तको मामाकी यह बात बहुत खटकी। आखिर वह स्वयं ही दुर्मुख महाराजके पास गया और मामाका अभिमान नष्ट करनेके लिये राजाको अपने पाण्डित्य और प्रतिभाशालिनी बुद्धिका परिचय कराकर स्वयं भी उनका राजमंत्री बन गया। ठीक भी है—सबको अपनी ही शक्ति सुख देनेवाली होती है।

सुभूतिको अपने भानजेका पाण्डित्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उसके साथ अपनी यज्ञदत्ता नामकी पुत्रीको ब्याह दिया। दोनों दम्पति सुखसे रहने लगे। कुछ दिनों बाद यज्ञदत्ताके गर्भ रहा।

समय चातुर्मासका था। यज्ञदत्ताको दोहद उत्पन्न हुआ। उसे आम खानेकी प्रबल उत्कण्ठा हुई। स्त्रियोंको स्वभावसे गर्भावस्थामें दोहद उत्पन्न हुआ ही करते हैं। सो आमका समय न होनेपर भी सोमदत्त वनमें आम ढूंढनेको चला। बुद्धिमान पुरुष असमयमें भी अप्राप्त वस्तुके लिये साहस करते ही हैं। सोमदत्त वनमें पहुँचा, तो भाग्यसे उसे सारे बगीचेमें केवल एक आमका वृक्ष फला हुआ मिला। उसके नीचे एक परम महात्मा योगिराज बैठे हुए थे। उनसे वह वृक्ष ऐसा जान पड़ता था, मानो मूर्तिमान् धर्म है। सारे वनमें एक ही वृक्षको फला हुआ देखकर उसने समझ लिया कि यह मुनिराजका प्रभाव है। नहीं तो असमयमें आम कहाँ ? वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसपरसे बहुतसे फल तोड़कर अपनी प्रियाके पास पहुँचा दिये और आप मुनिराजको नमस्कार कर भक्तिसे उनके पाँवोंके पास बैठ गया। उसने हाथ जोड़कर मुनिसे पूछा—प्रभो, संसारमें सार क्या है ? इस बातको आपके श्रीमुखसे सुननेकी मेरी बहुत उत्कण्ठा है। कृपाकर कहिये।

मुनिराज बोले—वत्स, संसारमें सार—आत्माको कुगतियोंसे बचाकर सुख देनेवाला, एक धर्म है। उसके दो भेद हैं, १–मुनिधर्म, २–श्रावक धर्म। मुनियोंका धर्म—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहका त्याग ऐसे पांच महाव्रत, तथा उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप—आदि दश लक्षण धर्म और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ऐसे तीन रत्नत्रय, पांच समिति, तीन गुप्ति, खड़े होकर आहार करना, स्नान न करना, सहनशक्ति बढ़ानेके लिये सिरके बालोंका हाथोंसे ही लौंच करना,

वस्त्रका न रखना—आदि है। और श्रावक धर्म-बारह व्रतोंका पालन करना, भगवान्‌की पूजा करना, पात्रोंको दान देना और जितना अपनेसे बन सके दूसरोंका उपकार करना, किसीकी निन्दा बुराई न करना, शान्तिके साथ अपना जीवन बिताना आदि है। मुनिधर्मका पालन सर्वदेश किया जाता है और श्रावक धर्मका एकदेश। जैसे अहिंसाव्रतका पालन मुनि तो सर्वदेश करेंगे। अर्थात्—स्थावर जीवोंकी भी हिंसा वे नहीं करेंगे और श्रावक इसी व्रतका पालन एकदेश अर्थात् स्थूल रूपसे करेगा। वह त्रस जीवोंकी संकल्पी हिंसाका त्याग करेगा और स्थावर जीव-वनस्पति आदिको अपने कामलायक उपयोग में लाकर शेषकी रक्षा करेगा।

श्रावकधर्म परम्परा मोक्षका कारण है और मुनिधर्म द्वारा उसी पर्यायसे भी मोक्ष जा सकता है। श्रावकको मुनिधर्म धारण करना ही पड़ता है। क्योंकि उसके बिना मोक्ष होता ही नहीं। जन्मजरामरणका दुःख बिना मुनिधर्मके कभी नहीं छूटता। इसमें भी एक विशेषता है। वह यह कि—जितने मुनि होते हैं, वे सब मोक्षमें ही जाते होंगे ऐसा नहीं समझना चाहिये। उसमें परिणामोंपर सब बात निर्भर है। जिसके जितने जितने परिणाम उन्नत होते जाँयगे और राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ—आदि आत्मशत्रु नष्ट होकर अपने स्वभावकी प्राप्ति होती जायगी वह उतना ही अन्तिम साध्य मोक्षके पास पहुँचता जायगा। पर यह पूर्ण रीतिसे ध्यानमें रखना चाहिये कि मोक्ष होगा तो मुनिधर्महीसे।

इस प्रकार श्रावक और मुनिधर्म तथा उनकी विशेषतायें सुनकर सोमदत्तको मुनिधर्म ही बहुत पसन्द पड़ा। उसने अत्यन्त

वैराग्यके वश होकर मुनिधर्मकी ही दीक्षा ग्रहण की, जो कि सब पापोंकी नाश करनेवाली है। साधु बनकर गुरुके पास उसने खूब शास्त्राभ्यास किया। सब शास्त्रोंमें उसने बहुत योग्यता प्राप्त करली। इसके बाद सोमदत्त मुनिराज नाभिगिरी नामक पर्वतपर जाकर तपश्चर्या करने लगे और परीषह सहन द्वारा अपनी आत्मशक्तिको बढ़ाने लगे।

इधर यज्ञदत्ताके समय पाकर पुत्र हुआ। उसकी दिव्य सुन्दरता और तेजको देखकर यज्ञदत्ता बड़ी प्रसन्न हुई। एक दिन उसे किसीके द्वारा अपने स्वामीके समाचार मिले। उसने वह हाल अपने और घरके लोगोंसे कहा और उनके पास चलनेके लिये उनसे आग्रह किया। उन्हें साथ लेकर यज्ञदत्ता नाभिगिरीपर पहुँची। मुनि इस समय तापसयोगसे अर्थात् सूर्यके सामने मुँह किये ध्यान कर रहे थे। उन्हें मुनिवेषमें देखकर यज्ञदत्ताके क्रोधका कुछ ठिकाना नहीं रहा—उसने गर्जकर कहा—दुष्ट! पापी!! यदि तुझे ऐसा करना था—मेरी जिन्दगी बिगाड़ना थी, तो पहलेहीसे मुझे न ब्याहता? बतला तो अब मैं किसके पास जाकर रहूं? निर्दय! तुझे दया भी न आई जो मुझे निराश्रय छोड़कर तप करनेको यहां चला आया? अब इस बच्चेका पालन कौन करेगा? जरा कह तो सही! मुझसे इसका पालन नहीं होता। तू ही इसे लेकर पाल। यह कहकर निर्दयी यज्ञदत्ता बेचारे निर्दोष बालकको मुनिके पाँवोंमें पटक कर घर चली गई। उस पापिनीको अपने हृदयके टुकड़ेपर इतनी भी दया नहीं आई कि मैं सिंह, व्याघ्र, आदि हिंस्र जीवोंसे भरे हुए ऐसे भयंकर पर्वतपर उसे कैसे छोड़ जाती हूँ? उसकी

कौन रक्षा करेगा ? सच तो यह है—क्रोधके वश हो स्त्रियाँ क्या नहीं करतीं ?

इधर तो यज्ञदत्ता पुत्रको मुनिके पास छोड़कर घरपर गई और इतनेहीमें दिवाकरदेव नामका एक विद्याधर इधर आ निकला। वह अमरावतीका राजा था। पर भाई भाईमें लड़ाई हो जानेसे उसके छोटे भाई पुरसुन्दरने उसे युद्धमें पराजित कर देशसे निकाल दिया था। सो वह अपनी स्त्रीको साथ लेकर तीर्थयात्राके लिये चल दिया। यात्रा करता हुआ वह नाभिपर्वतकी ओर आ निकला। पर्वतपर मुनिराजको देखकर उनकी वन्दनाके लिये नीचे उतरा। उसकी दृष्टि उस खेलते हुए तेजस्वी बालकके प्रसन्न मुखकमलपर पड़ी। बालकको भाग्यशाली समझकर उसने अपनी गोदमें उठा लिया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे अपनी प्रियाको सौंपकर कहा—प्रिये, यह कोई बड़ा पुण्यपुरुष है। आज अपना जीवन कृतार्थ हुआ जो हमें अनायास ऐसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। उसकी स्त्री भी बच्चेको पाकर बहुत खुश हुई। उसने बड़े प्रेमके साथ उसे अपनी छातीसे लगाया और अपनेको कृतार्थ माना। बालक होनहार था। उसके हाथोंमें वज्रका चिह्न था। उसका सारा शरीर शुभ लक्षणोंसे विभूषित था। वज्रका चिह्न देखकर विद्याधरमहिलाने उसका नाम भी वज्रकुमार रख दिया। इसके बाद वे दम्पत्ति मुनिको प्रणाम कर अपने घरपर लौट आये। यज्ञदत्ता तो अपने औरस पुत्रको भी छोड़कर चली आई, पर जो भाग्यवान् होता है उसका कोई न कोई रक्षक बनकर आ ही जाता है। बहुत ठीक लिखा है—

प्रकृष्टपूर्वपुण्यानां न हि कष्टं जगत्त्रये !

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यवानोंको कहीं कष्ट प्राप्त नहीं होता। विद्याधरके घरपर पहुँच कर वज्रकुमार द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगा—और अपनी बाललीलाओंसे सबको आनन्द देने लगा जो उसे देखता वही उसकी स्वर्गीय सुन्दरतापर मुग्ध हो उठता था।

दिवाकरदेवके सम्बन्धसे वज्रकुमारका मामा कनकपुरीका राजा विमलवाहन हुआ। अपने मामाके यहाँ रहकर वज्रकुमारने खूब शास्त्राभ्यास किया। छोटी ही उमरमें वह एक प्रसिद्ध विद्वान बन गया। उसकी बुद्धिको देखकर विद्याधर बड़ा आश्चर्य करने लगे।

एक दिन वज्रकुमार ह्रीमंतपर्वतपर प्रकृतिकी शोभा देखनेको गया हुआ था। वहींपर एक गरुड़वेग विद्याधरकी पवनवेगा नामकी पुत्री विद्या साध रही थी। सो विद्या साधते साधते भाग्यसे एक कांटा हवासे उड़कर उसकी आँखमें गिर गया। उसके दुःखसे उसका चित्त चंचल हो उठा। उससे विद्या सिद्ध होनेमें उसके लिये बड़ी कठिनता आ उपस्थित हुई। इसी समय वज्रकुमार इधर आ निकला। उसे ध्यानसे विचलित देखकर उसने उसकी आँखमेंसे कांटा निकाल दिया। पवनवेगा स्वस्थ होकर फिर मंत्र साधनमें तत्पर हुई। मंत्रयोग पूरा होनेपर उसे विद्या सिद्ध हो गई। वह सब उपकार वज्रकुमारका समझकर उसके पास आई और उससे बोली—आपने मेरा बहुत उपकार किया है। ऐसे समय यदि आप उधर नहीं आते तो कभी संभव नहीं था, कि मुझे विद्या सिद्ध होती।

इसका बदला मैं एक क्षुद्र बालिका क्या चुका सकती हूँ, पर यह जीवन आपके लिये समर्पण कर आपकी चरणदासी बनना चाहती हूँ। मैंने संकल्प कर लिया है कि इस जीवनमें आपके सिवा किसी को मैं अपने पवित्र हृदयमें स्थान न दूंगी। मुझे स्वीकार कर कृतार्थ कीजिये। यह कहकर वह सतृष्ण नयनोंसे वज्रकुमारकी ओर देखने लगी। वज्रकुमारने मुस्कुराकर उसके प्रेमोपहारको बड़े आदरके साथ ग्रहण किया। दोनों वहाँसे विदा होकर अपने अपने घर गये। शुभ दिनमें गरुड़वेगने पवनवेगाका परिणय संस्कार वज्रकुमारके साथ कर दिया। दोनों दम्पति सुखसे रहने लगे।

एक दिन वज्रकुमारको मालूम हो गया कि मेरे पिता थे तो राजा, पर उन्हें उनके छोटे भाईने लड़ झगड़कर अपने राज्यसे निकाल दिया है। यह देख उसे अपने काकापर बड़ा क्रोध आया। वह पिताके बहुत कुछ मना करनेपर भी कुछ सेना और अपनी पत्नीकी विद्याको लेकर उसी समय अमरावतीपर जा चढ़ा। पुरन्दरदेवको इस चढ़ाईका हाल कुछ मालूम नहीं हुआ था, इसलिये वह बातकी बातमें पराजित कर बाँध लिया गया। राज्यसिंहासन पीछा दिवाकरदेवके अधिकारमें आया। सच है—"सुपुत्रः कुलदीपकः" अर्थात सुपुत्रसे कुलकी उन्नति ही होती है। इस वीर वृत्तान्तसे वज्रकुमार बहुत प्रसिद्ध हो गया। अच्छे अच्छे शूरवीर उसका नाम सुनकर काँपने लगे।

इसी समय दिवाकरदेवकी प्रिया जयश्रीके भी एक औरस पुत्र उत्पन्न हो गया। अब उसे वज्रकुमारसे डाह होने लगी। उसे एक भ्रम सा हो गया कि इसके साम्हने मेरे पुत्रको राज्य कैसे

मिलेगा ? खैर, यह भी मान लूं कि मेरे आग्रहसे प्राणनाथ अपने हो पुत्रको राज्य दे भी दें तो यह क्यों उसे देने देगा ? ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो—

आश्रयन्तीं श्रियं को वा पादेन भुवि ताडयेत।

[वादीभसिंह]

आती हुई लक्ष्मीको पाँवकी ठोकरसे ठुकरावेगा ? तब अपने पुत्रको राज्य मिलनेमें वह एक कंटक है। इसे किसी तरह उखाड़ फैंकना चाहिये। यह विचार कर वह मौका देखने लगी। एक दिन वज्रकुमारने अपनी माताके मुँहसे यह सुन लिया कि "वज्रकुमार बड़ा दुष्ट है। देखो, तो कहां तो उत्पन्न हुआ और किसे कष्ट देता है ?" उसकी माता किसीके साम्हने उसकी बुराई कर रही थी। सुनते ही वज्रकुमारके हृदयमें मानो आग बरस गई। उसका हृदय जलने लगा। उसे फिर एक क्षणभर भी उस घरमें रहना नर्क बराबर भयंकर हो उठा। वह उसी समय अपने पिताके पास गया और बोला—पिताजी, जल्दी बतलाइये मैं किसका पुत्र हूं ? और क्यों कर यहां आया ? मैं जानता हूं कि आपने मेरा अपने बच्चेसे कहीं बढ़कर पालन किया है, तब भी मुझे कृपाकर बतला दीजिये कि मेरे सच्चे पिता कौन हैं ? और कहां हैं ? यदि आप मुझे ठीक ठीक हाल नहीं कहेंगे तो मैं आजसे भोजन नहीं करूंगा !

दिवाकरदेवने आज एकाएक वज्रकुमारके मुँहसे अचम्भेमें डालनेवाली बातें सुनकर वज्रकुमारसे कहा—पुत्र, क्या आज तुम्हें कुछ हो तो नहीं गया है, जो बहकी बहकी बातें करते हो ? तुम

समझदार हो, तुम्हें ऐसी बातें करना उचित नहीं, जिससे मुझे कष्ट हो।

वज्रकुमार बोला—पिताजी मैं यह नहीं कहता कि मैं आपका पुत्र नहीं, क्योंकि मेरे सच्चे पिता तो आप ही हैं—आपही ने मुझे पालापोषा है। पर जो सच्चा वृत्तान्त है, उसके जाननेकी मेरी बड़ी उत्कण्ठा है; इसलिये उसे आप न छिपाइये। उसे कहकर मेरे अशान्त हृदयको शान्त कीजिये। बहुत सच है—बड़े पुरुषोंके हृदय में जो बात एक बार समा जाती है फिर वे उसे तबतक नहीं छोड़ते जबतक उसका उन्हें आदि अन्त मालूम न हो जाय। वज्रकुमारके आग्रहसे दिवाकरदेवको उसका पूर्व हाल सब ज्योंका त्यों कह देना ही पड़ा। क्योंकि आग्रहसे कोई बात छुपाई नहीं जा सकती। वज्रकुमार अपना हाल सुनकर बड़ा विरक्त हुआ। उसे संसारका मायाजाल बहुत भयंकर जान पड़ा। वह उसी समय विमानमें चढ़कर अपने पिताकी वन्दना करनेको गया। उसके साथ ही उसका पिता तथा और और बन्धुलोग भी गये। सोमदत्त मुनिराज मथुराके पास एक गुहामें ध्यान कर रहे थे। उन्हें देखकर सब ही बहुत आनन्दित हुए। सब बड़ी भक्तिके साथ मुनिको प्रणामकर जब बैठे, तब वज्रकुमारने मुनिराजसे कहा—पूज्यपाद, आज्ञा दीजिये, जिससे मैं साधु बनकर तपश्चर्या द्वारा अपना आत्मकल्याण करूँ। वज्रकुमारको एक साथ संसारसे विरक्त देखकर दिवाकरदेवको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने इस अभिप्रायसे, कि सोमदत्त मुनिराज वज्रकुमारको कहीं मुनि हो जानेकी आज्ञा न देदें, उनसे वज्रकुमार उन्हींका पुत्र है, और उसीपर मेरा राज्यभार भी निर्भर है—आदि

सब हाल कह दिया। इसके बाद वह वज्रकुमारसे भी बोला—पुत्र, तुम यह क्या करते हो? तप करनेका मेरा समय है या तुम्हारा? तुम अब सब तरह योग्य हो गये, राजधानीमें जाओ और अपना राज्यभार सम्हालो। अब मैं सब तरह निश्चिन्त हुआ। मैं आज ही दीक्षा ग्रहण करूंगा। दिवाकरदेवने उसे बहुत कुछ समझाया और दीक्षा लेनेसे रोका, पर उसने किसीकी एक न सुनी और सब वस्त्राभूषण फेंककर मुनिराजके पास दीक्षा लेली। कन्दर्पकेसरी वज्रकुमार मुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे। कठिनसे कठिन परीषह सहने लगे। वे जिनशासनरूप समुद्रके बढ़ानेवाले चन्द्रमाके समान शोभने लगे।

वज्रकुमारके साधु बनजानेके बादकी कथा अब लिखी जाती है। इस समय मथुराके राजा थे पूतगन्ध। उनकी रानीका नाम था उर्विला। वह बड़ी धर्मात्मा थी, सती थी, विदुषी थी और सम्यग्दर्शन से भूषित थी। उसे जिनभगवान्‌की पूजासे बहुत प्रेम था। वह प्रत्येक नन्दीश्वरपर्वमें आठ दिनतक खूब पूजा महोत्सव करवाती, खूब दान करती। उससे जिनधर्मकी बहुत प्रभावना होती। सर्व साधारणपर जैनधर्मका अच्छा प्रभाव पड़ता। मथुराहीमें एक सागरदत्त नामका सेठ था। उसकी गृहिणीका नाम था समुद्रदत्ता। पूर्व पापके उदयसे उसके दरिद्रा नामकी पुत्री हुई। उसके जन्मसे माता पिताको सुख न होकर दुःख हुआ। धन सम्पत्ति सब जाती रही। माता पिता मर गये। बेचारी दरिद्राके लिये अब अपना पेट भरना भी मुश्किल पड़ गया। अब वह दूसरोंका झूठा खा खाकर दिन काटने लगी। सच है—पापके उदयसे जीवोंको दुःख भोगना ही पड़ता है।

एक दिन दो मुनि भिक्षाके लिये मथुरामें आये। उनके नाम थे नन्दन और अभिनन्दन। इनमें नन्दन बड़े थे और अभिनन्दन छोटे। दरिद्राको एक एक अन्नका झूठा कण खाती हुई देखकर अभिनन्दनने नन्दनसे कहा—मुनिराज, देखिये, हाय! यह बेचारी बालिका कितनी दुखी है? कैसे कष्टसे अपना जीवन बिता रही है! तब नन्दनमुनिने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा—हाँ यद्यपि इस समय इसकी दशा अच्छी नहीं है, तथापि इसका पुण्यकर्म बहुत प्रबल है उससे यह पूतीगंध राजाकी पट्टरानी बनेगी। मुनिने दरिद्राका जो भविष्य सुनाया, उसे भिक्षाके लिये आये हुए एक बौद्ध भिक्षुकने भी सुन लिया। उसे जैन ऋषियोंके विषयमें बहुत विश्वास था, इसलिये वह दरिद्राको अपने स्थानपर लिवा लाया और उसका पालन करने लगा।

दरिद्रा जैसी जैसी बड़ी होती गई वैसे ही वैसे यौवनने उसकी श्रीको खूब सम्मान देना आरंभ किया। वह अब युवती हो चली। उसके सारे शरीरसे सुन्दरताकी सुधाधारा बहने लगी। आँखोंने चंचल मीनको लजाना शुरू किया। मुँहने चन्द्रमाको अपना दास बनाया। नितम्बोंको अपनेसे जल्दी बढ़ते देखकर शर्मके मारे स्तनोंका मुँह काला पड़ गया। एक दिन युवती दरिद्रा शहरके बगीचेमें जाकर झूलेपर झूल रही थी कि कर्मयोगसे उसी दिन राजा भी वहीं आ गये। उनकी नजर एकाएक दरिद्रापर पड़ी। उसे देखकर वे अचम्भेमें आ गये कि यह स्वर्ग सुन्दरी कौन है? उन्होंने दरिद्रासे उसका परिचय पूछा। उसने निस्संकोच होकर अपना स्थान वगैरह सब उन्हें बता दिया। वह बेचारी भोली थी। उसे क्या मालूम कि मुझसे खास मथुराके राजा पूछताछ कर रहे हैं। राजा तो उसे देखकर कामान्ध हो गये। वे बड़ी मुश्किलसे अपने महलपर आये। आते ही उन्होंने अपने मंत्रीको श्रीवन्दकके पास भेजा। मंत्रीने पहुँचकर श्रीवन्दकसे कहा—आज तुम्हारा और तुम्हारी कन्याका बड़ा ही भाग्य है, जो मथुराधीश्वर उसे अपनी महारानी बनाना चाहते हैं। कहो, तुम्हें तो यह बात सम्मत है न? श्रीवन्दक बोला—हाँ मुझे महाराजकी बात स्वीकार है, पर एक शर्तके साथ। वह शर्त यह है कि—महाराज बौद्धधर्म स्वीकार करें तो मैं इसका ब्याह महाराजके साथ कर सकता हूँ। मंत्रीने महाराजसे श्रीवन्दककी शर्त कह सुनाई। महाराजने उसे स्वीकार किया। सच है—लोग कामके वश होकर धर्मपरिवर्तन तो क्या पर बड़े बड़े अनर्थ भी कर बैठते हैं।

आखिर महाराजका दरिद्राके साथ ब्याह हो गया। दरिद्रा मुनिराजके भविष्य कथनानुसार पट्टरानी हुई। दरिद्रा इस समय बुद्धदासीके नामसे प्रसिद्ध है। इसलिये आगे हम भी इसी नामसे उसका उल्लेख करेंगे। बुद्धदासी पट्टरानी बनकर बुद्धधर्मका प्रचार बढ़ानेमें सदा तत्पर रहने लगी। सच है—जिनधर्म संसारमें सुखका देनेवाला और पुण्यप्राप्तिका खजाना है, पर उसे प्राप्त कर पाते हैं भाग्यशाली ही। बेचारी अभागिनी बुद्धदासीके भाग्यमें उसका प्राप्ति कहाँ?

अष्टाह्निका पर्व आया। उर्विला महारानीने सदाके नियमानुसार अबकी बार भी उत्सव करना आरम्भ किया। जब रथ निकालनेका दिन आया और रथ, छत्र, चँवर, वस्त्र, भूषण, पुष्पमाला आदिसे खूब सजाया गया, उसमें भगवानकी प्रतिमा विराज-

मान की जाकर वह निकाला जाने लगा, तब बुद्धदासीने राजासे यह कह कर, कि पहले मेरा रथ निकलेगा, उर्विला रानीका रथ रुकवा दिया। राजाने भी उसपर कुछ बाधा न देकर उसके कहने को मान लिया। सच है—

मोहान्धा नैव जानंति गोक्षीरार्कपयोन्तरम् ।
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात् मोहसे अन्धे हुए मनुष्य गायके दूधमें और आकड़े के दूधमें कुछ भी भेद नहीं समझते। बुद्धदासीके प्रेमने यही हालत पूतगंधराजाकी करदी। उर्विलाको इससे बहुत कष्ट पहुंचा। उसने दुखी होकर प्रतिज्ञा करली कि जब पहले मेरा रथ निकलेगा तब ही मैं भोजन करूंगी। यह प्रतिज्ञा कर वह क्षत्रिया नामकी गुहामें पहुँची। वहाँ योगिराज सोमदत्त और वज्रकुमार महामुनि रहा करते हैं। वह उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बोली—हे जिनशासनरूप समुद्रके बढ़ानेवाले चन्द्रमाओ, और हे मिथ्यात्वरूप अन्धकारके नष्ट करनेवाले सूर्य! इस समय आप ही मेरे लिये शरण हैं। आप ही मेरा दुःख दूर कर सकते हैं। जैनधर्मपर इस समय बड़ा संकट उपस्थित है, उसे नष्ट कर उसकी रक्षा कीजिये। मेरा रथ निकलने वाला था, पर उसे बुद्धदासीने महाराजसे कहकर रुकवा दिया है। आजकल वह महाराजकी बड़ी कृपापात्र है, इसलिये जैसा वह कहती है महाराज भी विना विचारे वही कहते हैं। मैंने प्रतिज्ञा करली है कि सदाकी भांति मेरा रथ पहले यदि निकलेगा तब ही मैं भोजन करूंगी। अब जैसा आप उचित समझें वह कीजिये। उर्विला अपनी बात कह रही थी कि इतनेमें वज्रकुमार तथा सोमदत्त मुनि-

की वन्दना करनेको दिवाकरदेव आदि बहुतसे विद्याधर आये। वज्रकुमारमुनिने उनसे कहा—आप लोग समर्थ हैं और इस समय जैनधर्मपर कष्ट उपस्थित है। बुद्धदासीने महारानी उर्विलाका रथ रुकवा दिया है। सो आप जाकर जिस तरह बन सके इसका रथ निकलवाइये। वज्रकुमारमुनिकी आज्ञानुसार सब विद्याधर लोग अपने अपने विमानपर चढ़कर मथुरा आये। सच है— जो धर्मात्मा होते हैं वे धर्म प्रभावनाके लिये स्वयं प्रयत्न करते हैं, तब उन्हें तो मुनिराजने स्वयं प्रेरणा की है, इसलिये रानी उर्विलाको सहायता देना तो उन्हें आवश्यक ही था। विद्याधरोंने पहुँचकर बुद्धदासीको खूब समझाया और कहा, जो पुरानी रीति है उसे ही पहले होने देना अच्छा है। पर बुद्धदासीको तो अभिमान आ रहा था, इसलिये वह क्यों मानने चली? विद्याधरोंने सीधेपनसे अपना कार्य होता हुआ न देखकर बुद्धदासीके नियुक्त किये हुए सिपाहियोंसे लड़ना शुरू किया और बातकी बातमें उन्हें भगाकर बड़े उत्सव और आनन्दके साथ उर्विलारानीका रथ निकलवा दिया। रथके निर्विघ्न निकलनेसे सबको बहुत आनन्द हुआ। जैनधर्मकी भी खूब प्रभावना हुई। बहुतोंने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया। बुद्धदासी और राजापर भी इस प्रभावनाका खूब प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी शुद्धान्तः-करणसे जैनधर्म स्वीकार किया।

जिस प्रकार श्रीवज्रकुमार मुनिराजने धर्मप्रेमके वश होकर जैनधर्मकी प्रभावना करवाई उसी तरह और और धर्मात्मा पुरुषोंको भी संसारका उपकार करनेवाली और स्वर्गसुखकी देनेवाली धर्म प्रभावना करना चाहिये। जो भव्य पुरुष, प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, रथ-

यात्रा, विद्यादान, आहारदान, अभयदान, आदि द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होकर त्रिलोक पूज्य होते हैं और अन्तमें मोक्षसुख प्राप्त करते हैं।

धर्मप्रेमी श्रीवज्रकुमार मुनि मेरी बुद्धिको सदा जैनधर्ममें दृढ़ रक्खें, जिसके द्वारा मैं भी कल्याणपथपर चलकर अपना अन्तिम-साध्य मोक्ष प्राप्त कर सकूं।

श्रीमल्लिभूषण गुरु मुझे मंगल प्रदान करें, वे मूल संघके प्रधान शारदागच्छमें हुए हैं। वे ज्ञानके समुद्र हैं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नोंसे अलंकृत हैं। मैं उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ।

१४—नागदत्तमुनिकी कथा।

मोक्षराज्यके अधीश्वर श्रीपंचपरमगुरुको नमस्कार कर श्रीनागदत्तमुनिका सुन्दर चरित मैं लिखता हूँ।

मगधदेशकी प्रसिद्ध राजधानी राजगृहमें प्रजापाल नामके राजा हैं। वे विद्वान हैं, उदार हैं, धर्मात्मा हैं, जिनभगवान्के भक्त हैं और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। उनकी रानीका नाम है प्रियधर्मा। वह भी बड़ी सरल स्वभावकी और सुशीला है। उसके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे प्रियधर्म और प्रियमित्र। दोनों भाई बड़े बुद्धिमान् और सुचरित थे।

किसी कारणसे दोनों भाई संसारसे विरक्त होकर साधु बन गये। और अन्तसमय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्गमें जाकर देव

हुए। उन्होंने वहां परस्परमें प्रतिज्ञा की कि, "जो दोनोंमेंसे पहले मनुष्यपर्याय प्राप्त करे उसके लिये स्वर्गस्थ देवका कर्त्तव्य होगा कि वह उसे आकर सम्बोधे और संसारसे विरक्त कर मोक्षसुखकी देने-वाली जिनदीक्षा ग्रहण करनेके लिये उसे उत्साहित करे।" इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे वहाँ सुखसे रहने लगे। उन दोनोंमेंसे प्रियदत्त-की आयु पहले पूर्ण हो गई। वह वहाँसे उज्जयिनीके राजा नागधर्म-की प्रिय नागदत्ताके, जो कि बहुत ही सुन्दरी थी, नागदत्त नामक पुत्र हुआ। नागदत्त सर्पोंके साथ क्रीड़ा करनेमें बहुत चतुर था, सर्पोंके साथ उसे विनोद करते देखकर सब लोग बड़ा आश्चर्य प्रगट करते थे।

एक दिन प्रियधर्म, जो कि स्वर्गमें नागदत्तका मित्र था, गारुड़िका वेष लेकर नागदत्तको सम्बोधनेको उज्जयिनीमें आया। उसके पास दो भयंकर सर्प थे। वह शहरमें घूम घूमकर लोगोंको तमाशा बताता और सर्व साधारणमें यह प्रगट करता कि मैं सर्प-क्रीड़ाका अच्छा जानकार हूं। कोई और भी इस शहरमें सर्पक्रीड़ाका अच्छा जानकार हो, तो फिर उसे मैं अपना खेल दिखलाऊं। यह हाल धीरे धीरे नागदत्तके पास पहुँचा। वह तो सर्पक्रीड़ाका पहले-हीसे बहुत शौकीन था, फिर अब तो एक और उसका साथी मिल गया। उसने उसी समय नौकरोंको भेजकर उसे अपने पास बुला मँगाया। गारुड़ि तो इस कोशिशमें था ही कि नागदत्तको किसी तरह मेरी खबर लग जाय और वह मुझे बुलावे। प्रियधर्म उसके पास गया। उसे पहुंचते ही नागदत्तने अभिमानमें आकर उससे

कहा—मंत्रवित्, तुम अपने सर्पोंको बाहर निकालो न ? मैं उनके साथ कुछ खेल तो देखूं कि वे कैसे जहरीले हैं।

प्रियधर्म बोला—मैं राजपुत्रोंके साथ ऐसी हँसी दिल्लगी या खेल करना नहीं चाहता कि जिसमें जानकी जोखम तक हो। बतलाओ मैं तुम्हारे सामने सर्प निकाल कर रख दूं और तुम उनके साथ खेलो, इस बीचमें कुछ तुम्हें जोखम पहुँच जाय तब राजा मेरी क्या बुरी दशा करें ? क्या उस समय वे मुझे छोड़ देंगे ? कभी नहीं। इसलिये न तो मैं ही ऐसा कर सकता हूँ और न तुम्हें ही इस विषयमें कुछ विशेष आग्रह करना उचित है। हाँ तुम कहो तो मैं तुम्हें कुछ खेल दिखा सकता हूं।

नागदत्त बोला—तुम्हे पिताजीकी ओरसे कुछ भय नहीं करना चाहिये। वे स्वयं अच्छी तरह जानते हैं कि मैं इस विषयमें कितना विज्ञ हूँ और इसपर भी तुम्हे सन्तोष न हो तो आओ मैं पिताजीसे तुम्हे क्षमा करवाये देता हूँ। यह कहकर नागदत्त प्रियदत्त-को पिताके पास ले गया और मारे अभिमानमें आकर बड़े आग्रहके साथ महाराजसे उसे अभय दिलवा दिया। नागधर्म कुछ तो नागदत्तका सर्पोंके साथ खेलना देख चुके थे और इस समय पुत्रका बहुत आग्रह था, इसलिये उन्होंने विशेष विचार न कर प्रियदत्तको अभयप्रदान कर दिया। नागदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। उसने प्रियदत्तसे सर्पोंको बाहर निकालनेके लिये कहा। प्रियदत्तने पहले एक साधारण सर्प निकाला। नागदत्त उसके साथ क्रीड़ा करने लगा और थोड़ी देरमें उसे उसने पराजित कर दिया—निर्विष कर दिया। अब तो नागदत्त का साहस खूब बढ़ गया। उसने दूने अभिमानके साथ कहा कि तुम

क्या ऐसे मुर्दे सर्पको निकालकर और मुझे शर्मिन्दा करते हो ? कोई अच्छा विषधर सर्प निकालो न ? जिससे मेरी शक्तिका तुम भी परिचय पा सको।

प्रियधर्म बोला—आपका होश पूरा हुआ। आपने एक सर्प को हरा भी दिया है। अब आप अधिक आग्रह न करें तो अच्छा है। मेरे पास एक सर्प और है, पर वह बहुत जहरीला है, दैवयोगसे उसने काट खाया तो समझिये फिर उसका कुछ उपाय ही नहीं है। उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। इसलिये उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। उसने नागदत्तसे बहुत बहुत प्रार्थना की पर नागदत्तने उसकी एक नहीं मानी। उलटा उसपर क्रोधित होकर वह बोला—तुम अभी नहीं जानते कि इस विषयमें मेरा कितना प्रवेश है ? इसी-लिये ऐसी डरपोकपनेकी बातें करते हो। पर मैंने ऐसे ऐसे हजारों सर्पोंको जीतकर पराजित किया है। मेरे साम्हने यह बेचारा तुच्छ जीव कर ही क्या सकता है ? और फिर इसका डर तुम्हे या मुझे ? वह काटेगा तो मुझे ही न ? तुम मत घबराओ, उसके लिये मेरे पास बहुतसे ऐसे साधन हैं, जिससे भयंकरसे भयंकर सर्पका जहर भी क्षणमात्रमें उतर सकता है।

प्रियधर्मने कहा—अच्छा यदि तुम्हारा अत्यन्त ही आग्रह है तो उससे मुझे कुछ हानि नहीं। इसके बाद उसने राजा आदिकी साक्षीसे अपने दूसरे सर्पको पिटारेमेंसे निकाल बाहर कर दिया। सर्पने निकलते ही फुंकार मारना शुरू किया। वह इतना जहरीला था कि उसके साँसकी हवाहीसे लोगोंके सिर घूमने लगते थे। जैसे ही नागदत्त उसे हाथमें पकड़नेको उसकी ओर बढ़ा कि सर्पने उसे

बड़े जोरसे काट खाया। सर्पका काटना था कि नागदत्त उसी समय चक्कर खाकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और अचेत हो गया। उसकी यह दशा देखकर हाहाकार मच गया। सबकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। राजाने उसी समय नौकरोंको दौड़ाकर सर्पका विष उतारनेवालोंको बुलवाया। बहुतसे मांत्रिक तांत्रिक इकट्ठे हुए। सबने अपनी अपनी करनीमें कोई बात उठा नहीं रक्खी। पर किसी का किया कुछ नहीं हुआ। सबने राजाको यही कहा कि महाराज, युवराजको तो कालसर्पने काटा है, अब ये नहीं जी सकेंगे। राजा बड़े निराश हुए। उन्होंने सर्पवालेसे यह कह कर, कि यदि तू इसे जिला देगा तो मैं तुझे अपना आधा राज्य दे दूंगा, नागदत्तको उसीके सुपुर्द कर दिया। प्रियधर्म तब बोला—महाराज, इसे काटा तो है कालसर्पने, और इसका जी जाना भी असंभव है, पर मेरा कहा मानकर मत निकालिये यदि यह जी जाय तो आप इसे मुनि हो जानेकी आज्ञा दें तो, मैं भी एक बार इसके जिलानेका यत्न कर देखूं।

राजाने कहा—मैं इसे भी स्वीकार करता हूँ। तुम इसे किसी तरह जिला दो, यही मुझे इष्ट है।

इसके बाद प्रियधर्मने कुछ मंत्र पढ़ पढ़ाकर उसे जीता कर दिया। जैसे मिथ्यात्वरूपी विषसे अचेत हुए मनुष्योंको परोपकारी मुनिराज अपना स्वरूप प्राप्त करा देते हैं। जैसे ही नागदत्त सचेत होकर उठा और उसे राजाने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। वह उससे बहुत प्रसन्न हुआ। पश्चात् एक क्षणभर ही वह वहां न ठहर कर वनकी ओर रवाना हो गया और यमधर मुनिराजके पास पहुँचकर

उसने जिनदीक्षा ग्रहण करली। उसे दीक्षित हो जानेपर प्रियधर्म, जो गारुड़िका वेष लेकर स्वर्गसे नागदत्तके सम्बोधने को आया था, उसे सब हाल कहकर और अन्तमें नमस्कार कर पीछा स्वर्ग चला गया।

मुनि बनकर नागदत्त खूब तपश्चर्या करने लगे और अपने चारित्रको दिनपर दिन निर्मल करके अन्तमें जिनकल्पीमुनि हो गये। अर्थात् जिनभगवान्‌की तरह अब वे अकेले ही विहार करने लगे। एक दिन वे तीर्थयात्रा करते हुए एक भयानक वनीमें निकल आये। वहाँ चोरोंका अड्डा था, सो चोरोंने मुनिराजको देख लिया। उन्होंने यह समझ कर, कि ये हमारा पता लोगोंको बता देंगे और फिर हम पकड़ लिये जावेंगे, उन्हें पकड़ लिया और अपने मुखियाके पास वे लिवा ले गये। मुखियाका नाम था सूरदत्त। वह मुनिको देखकर बोला—तुमने इन्हें क्यों पकड़ा? ये तो बड़े सीधे और सरल स्वभावी हैं। इन्हें किसीसे कुछ लेना देना नहीं, किसीपर इनका राग द्वेष नहीं। ऐसे साधुको तुमने कष्ट देकर अच्छा नहीं किया। इन्हें जल्दी छोड़ दो। जिस भयकी तुम इनके द्वारा आशंका करते हो, वह तुम्हारी भूल है। ये कोई बात ऐसी नहीं करते जिससे दूसरोंको कष्ट पहुँचे। अपने मुखियाकी आज्ञाके अनुसार चोरोंने उसी समय मुनिराजको छोड़ दिया।

इसी समय नागदत्तकी माता अपनी पुत्रीको साथ लिये हुए वत्स देशकी ओर जा रही थी। उसे उसका ब्याह कोशाम्बीके रहनेवाले जिनदत्त सेठके पुत्र धनपालसे करना था। अपने जमाईको दहेज देनेके लिये उसने अपने पास उपयुक्त धन-सम्पत्ति भी रखली

थी। उसके साथ और भी पुरजन परिवारके लोग थे। सो उसे रास्ते में अपने पुत्र नागदत्तमुनिके दर्शन हो गये। उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा—प्रभो, आगे रास्ता तो अच्छा है न? मुनिराज इसका कुछ उत्तर न देकर मौन सहित चले गये। क्योंकि उनके लिये तो शत्रु और मित्र दोनों ही समान हैं।

आगे चलकर नागदत्ताको चोरोंने पकड़कर उसका सब माल असबाब छीन लिया और उसकी कन्याको भी उन पापियोंने छुड़ा-ली। तब सूरदत्त उनका मुखिया उनसे बोला—क्यों आपने देखी न उस मुनिकी उदासीनता और निस्पृहता? जो इस स्त्रीने मुनिको प्रणाम किया और उनकी भक्ति की तब भी उन्होंने इससे कुछ नहीं कहा और हम लोगोंने उन्हें बाँधकर कष्ट पहुँचाया तब उन्होंने हमसे कुछ द्वेष नहीं किया। सच बात तो यह है कि उनकी वह वृत्तिही इतने ऊँचे दरजेकी है, जो उसमें भक्ति करनेवालेपर तो प्रेम नहीं और शत्रुता करनेवालेसे द्वेष नहीं। दिगम्बर मुनि बड़े ही शान्त, धीर, गंभीर और तत्त्वदर्शी हुआ करते हैं।

नागदत्ता यह सुनकर, कि यह सब कारस्तानी मेरे ही पुत्रकी है, यदि वह मुझे इस रास्तेका सब हाल कह देता, तो क्यों आज मेरी यह दुर्दशा होती? क्रोधके तीव्र आवेगसे थरथर काँपने लगी। उसने अपने पुत्रकी निर्दयतासे दुःखी होकर चोरोंके मुखिया सूरदत्तसे कहा—भाई, जरा अपनी छुरी तो मुझे दे, जिससे मैं अपनी कूँख को चीरकर शान्तिलाभ करूं। जिस पापीका तुम जिकर कर रहे हो, वह मेरा ही पुत्र है। जिसे मैंने नौ महीने इस कूँखमें रक्खा और बड़े बड़े कष्ट सहे उसीने मेरे साथ इतनी निर्दयता की कि मेरे

पूछनेपर भी उसने मुझे रास्तेका हाल नहीं बतलाया। तब ऐसे कुपुत्रको पैदाकर मुझे जीते रहनेसे ही क्या लाभ?

नागदत्ताका हाल जानकर सूरदत्तको बड़ा वैराग्य हुआ। वह उससे बोला—जो उस मुनिकी माता है, वह मेरी भी माता है। माता, क्षमा करो! यह कहकर उसने उसका सब धन असबाब उसी समय पीछा लौटा दिया और आप मुनिके पास पहुँचा। उसने बड़ी भक्तिके साथ परम गुणवान नागदत्त मुनिकी स्तुति की और पश्चात् उन्हींके द्वारा दीक्षा लेकर वह तपस्वी बन गया।

साधु बनकर सूरदत्तने तपश्चर्या और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य होकर अनेक भव्य जीवोंको कल्याणका रास्ता बतलाया और अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाश कर अविनाशी, अनन्त, मोक्षपद प्राप्त किया।

श्रीनागदत्त और सूरदत्त मुनि संसारके दुःखोंको नष्ट कर मेरे लिये शान्ति प्रदान करें, जो कि गुणों के समुद्र हैं, जो देवों द्वारा सदा नमस्कार किये जाते हैं और जो संसारी जीवोंके नेत्ररूपी कुमुद पुष्पोंको प्रफुल्लित करनेके लिये चंद्रमा समान हैं,—जिन्हें देखकर नेत्रोंको बड़ा आनन्द मिलता है—शान्ति मिलती है।

१५. शिवभूति पुरोहितकी कथा।

मैं संसारके हित करनेवाले जिनभगवान्को नमस्कार कर दुर्जनोंकी संगतिसे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उससे सम्बन्ध रखनेवाली

एक कथा लिखता हूं, जिससे कि लोग दुर्जनोंकी संगति छोड़नेका यत्न करें।

यह कथा उस समय की है, जब कि कोशाम्बीका राजा धनपाल था। धनपाल अच्छा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था। शत्रु तो उसका नाम सुनकर काँपते थे। राजाके यहाँ एक पुरोहित था। उसका नाम था शिवभूति। वह पौराणिक अच्छा था।

वहीं दो शूद्र रहते थे। उनके नाम कल्पपाल और पूर्णचन्द्र थे। उनके पास कुछ धन भी था। उनमें पूर्णचन्द्रकी स्त्रीका नाम था मणिप्रभा। उसके एक सुमित्रा नामकी लड़की थी। पूर्णचन्द्रने उसके विवाहमें अपने जातीय भाइयोंको जिमाया और उसका राज पुरोहित से कुछ परिचय होनेसे उसने उसे भी निमंत्रित किया। पर पुरोहित महाराजने उसमें यह बाधा दी कि भाई, तुम्हारा भोजन तो मैं नहीं कर सकता। तब कल्पपालने बीचमें ही कहा—अस्तु। आप हमारे यहाँका भोजन न करें। हम ब्राह्मणोंके द्वारा आपके लिये भोजन तैयार करवा देंगे तब तो आपको कुछ उजर न होगा। पुरोहितजी आखिर थे तो ब्राह्मण ही न ? जिनके विषयमें यह नीति प्रसिद्ध है कि "असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः" अर्थात् लोभमें फँसकर ब्राह्मण नष्ट हुए। सो वे अपने एकबारके भोजनका लोभ नहीं रोक सके। उन्होंने यह विचार कर, कि जब ब्राह्मण भोजन बनानेवाले हैं, तब तो कुछ नुकसान नहीं, उसका भोजन करना स्वीकार कर लिया। पर इस बातपर उन्होंने तनिक भी विचार नहीं किया कि ब्राह्मणोंने ही भोजन बना दिया तो हुआ क्या ? आखिर पैसा तो उसका है और न जाने उसने कैसे कैसे पापों द्वारा उसे कमाया है।

जो हो, नियमित समयपर भोजन तैयार हुआ। एक ओर पुरोहित देवता भोजनके लिये बैठे और दूसरी ओर पूर्णचन्द्रका परिवारवर्ग। इस जगह इतना और ध्यानमें रखना चाहिये कि दोनोंका चौका अलग अलग था। भोजन होने लगा। पुरोहितजीने मनभर माल उड़ाया। मानों उन्हें कभी ऐसे भोजनका मौका ही नसीब नहीं हुआ था। पुरोहितजीको वहाँ भोजन करते हुए कुछ लोगोंने देख लिया। उन्होंने पुरोहितजीकी शिकायत महाराजसे करदी। महाराजने एक शूद्रके साथ भोजन करनेवाले—वर्णव्यवस्था को धूलमें मिलानेवाले ब्राह्मणको अपने राज्यमें रखना उचित न समझ देशसे निकलवा दिया। सच है - "कुसंगो कष्टदो ध्रुवम्" अर्थात् बुरी संगति दुःख देनेवाली ही होती है। इसलिये अच्छे पुरुषोंको उचित है कि वे बुरोंकी संगति न कर सज्जनोंकी संगति करें, जिससे वे अपने धर्म, कुल, मान-मर्यादाकी रक्षा कर सकें।

१९. पवित्र हृदयवाले एक बालककी कथा।

बालक जैसा देखता है, वैसा ही कह भी देता है। क्योंकि उसका हृदय पवित्र रहता है। यहाँ मैं जिनभगवान्को नमस्कार कर एक ऐसी ही कथा लिखता हूँ, जिसे पढ़कर सर्व साधारणका ध्यान पापकर्मोंके छोड़नेकी ओर जाय।

कौशाम्बीमें जयपाल नामके राजा हो गये हैं। उनके समय में वहीं एक सेठ हुआ है। उसका नाम समुद्रदत्त था और उसकी स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम सागरदत्त

था। वह बहुत ही सुन्दर था। उसे देखकर सबका चित्त उसे खेलाने के लिये व्यग्र हो उठता था। समुद्रदत्तका एक गोपायन नामका पड़ौसी था। पूर्वजन्मके पापकर्मके उदयसे वह दरिद्री हुआ। इसलिये धनकी लालसाने उसे व्यसनी बना दिया। उसकी स्त्रीका नाम सोमा था। उसके भी एक सोमक नामका पुत्र था। वह धीरे धीरे कुछ बड़ा हुआ और अपनी मीठी और तोतली बोलीसे मातापिताको आनन्दित करने लगा।

एक दिन गोपायनके घरपर सागरदत्त और सोमक अपना बालसुलभ खेल खेल रहे थे। सागरदत्त इस समय गहना पहरे हुए था। उसी समय पापी गोपायन आ गया। सागरदत्तको देखकर उसके हृदयमें पापवासना हुई। दरवाजा बन्दकर वह कुछ लोभके बहाने सागरदत्तको घरके भीतर लिवा ले गया। उसीके साथ सोमक भी दौड़ा गया। भीतर लेजाकर पापी गोपायनने उस अबोध बालक का बड़ी निर्दयतासे छुरी द्वारा गला घोट दिया और उसका सब गहना उतारकर उसे गड्ढेमें गाड़ दिया।

कई दिनोंतक बराबर कोशिश करते रहनेपर भी जब सागरदत्तके मातापिताको अपने बच्चेका कुछ हाल नहीं मिला, तब उन्होंने जान लिया कि किसी पापीने उसे धनके लोभसे मारडाला है। उन्हें अपने प्रिय बच्चेकी मृत्युसे जो दुःख हुआ उसे वे ही पाठक अनुभव कर सकते हैं जिनपर कभी ऐसा दैवी प्रसंग आया हो। आखिर बेचारे अपना मन मसोस कर रह गये। इसके सिवा वे और करते भी तो क्या ?

कुछ दिन बीतनेपर एक दिन सोमक समुद्रदत्तके घरके आँगनमें खेल रहा था। तब समुद्रदत्ताके मनमें न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई सो उसने सोमकको बड़े प्यारसे अपने पास बुलाकर उससे पूछा—भैया, बतला तो तेरा साथी समुद्रदत्त कहाँ गया है ? तूने उसे देखा है ?

सोमक बालक था और साथ ही बालस्वभावके अनुसार पवित्र हृदयी था। इसलिये उसने झटसे कह दिया कि वह तो मेरे घरमें एक खाड़ेमें गड़ा हुआ है। बेचारी सागरदत्ता अपने बच्चेकी दुर्दशा सुनते ही धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। इतने में सागरदत्त भी वहीं आ पहुँचा। उसने उसे होशमें लाकर उसके मूर्च्छित हो जानेका कारण पूछा। सागरदत्ताने सोमकका कहा हाल उसे सुना दिया। सागरदत्तने उसी समय दौड़े जाकर यह खबर पुलिसको दी। पुलिसने आकर मृत बच्चेकी लाश सहित गोपायनको गिरफ्तार किया, मुकदमा राजाके पास पहुँचा। उन्होंने गोपायनके कर्मके अनुसार उसे फाँसीकी सजा दी। बहुत ठीक कहा है—

पापी पापं करोत्यत्र प्रच्छन्नमपि पापतः।
तत्प्रसिद्धं भवत्येव भवभ्रमणदायकः॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात् पापी लोग बहुत छुपकर भी पाप करते हैं, पर वह नहीं छुपता और प्रगट हो ही जाता है। और परिणाममें अनन्त कालतक संसारके दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये सुख चाहनेवाले पुरुषोंको हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाप, जो कि दुःखके देने-

वाले हैं, छोड़कर सुख देनेवाला दयाधर्म-जिनधर्म ग्रहण करना उचित है।

बालपनेमें विशेष ज्ञान नहीं होता, इसलिये बालक अपना हिताहित नहीं जान पाता, युवावस्थामें कुछ ज्ञानका विकाश होता है, पर काम उसे अपने हितकी ओर नहीं फटकने देता और वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ जर्जर हो जाती हैं—किसी कामके करनेमें उत्साह नहीं रहता और न शक्ति ही रहती है। इसके सिवा और और जो अवस्थायें हैं, उनमें कुटुम्ब परिवारके पालनपोषणका भार सिरपर रहने के कारण सदा अनेक प्रकारकी चिन्तायें घेरे रहती हैं—कभी स्वस्थचित्त होने ही नहीं पाता, इसलिये तब भी आत्महितका कुछ साधन प्राप्त नहीं होता। आखिर होता यह है कि जैसे पैदा हुए, वैसे ही चल बसते हैं। अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त हुई मनुष्य पर्यायको समुद्रमें रत्न फैंक देनेकी तरह गँवा बैठते हैं। और प्राप्त करते हैं वही एक संसारभ्रमण। जिसमें अनन्त काल ठोकरें खाते खाते बीत गये। पर ऐसा करना उचित नहीं; किन्तु प्रत्येक जीवमात्रको अपने आत्महित की ओर ध्यान देना परमावश्यक है। उन्हें सुख प्रदान करनेवाला जिनधर्म ग्रहणकर शान्तिलाभ करना चाहिये।

१७—धनदत्त राजाकी कथा।

देवादिके द्वारा पूज्य और अनन्तज्ञान, दर्शनादि आत्मीयश्रीसे विभूषित जिनभगवान्को नमस्कार कर मैं धनदत्त राजाकी पवित्र कथा लिखता हूँ।

अन्ध्रदेशान्तर्गत कनकपुर नामक एक प्रसिद्ध और मनोहर शहर था। उसके राजा थे धनदत्त। वे सम्यग्दृष्टि थे, गुणवान् थे, और धर्मप्रेमी थे। राजमंत्रीका नाम श्रीवन्दक था। वह बौद्धधर्मानुयायी था। परन्तु तब भी राजा अपने मंत्रीकी सहायतासे राजकार्य अच्छा चलाते थे। उन्हें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचती थी।

एक दिन राजा और मंत्री राजमहलके ऊपर बैठे हुए कुछ राज्य सम्बन्धी विचार कर रहे थे कि राजाको आकाशमार्गसे जाते हुए दो चारणऋद्धि धारी मुनियोंके दर्शन हुए। राजाने हर्षके साथ उठकर मुनिराजको बड़े विनयसे नमस्कार किया और अपने महलमें उनका आह्वान किया। ठीक भी है—"साधुसंगः सतां प्रियः" अर्थात्—साधुओंकी संगति सज्जनोंको बहुत प्रीतिकर जान पड़ती है।

इसके बाद राजाके प्रार्थना करनेपर मुनिराजने उसे धर्मोपदेश दिया और चलते समय वे श्रीवन्दक मंत्रीको अपने साथ लिवा ले गये। लेजाकर उन्होंने उसे समझाया और आत्महितकी इच्छासे उसके प्रार्थना करनेपर उसे श्रावकके व्रत दे दिये। श्रीवन्दक अपने स्थान लौट आया। इसके पहले श्रीवन्दक अपने बुद्धगुरुकी वन्दनाभक्ति करनेको प्रतिदिन उनके पास जाया करता था। सो जब उसने श्रावकव्रत ग्रहण कर लिये तबसे वह नहीं जाने लगा। यह देख बौद्धगुरुने उसे बुलाया, पर जब श्रीवन्दकने आकर भी उसे नमस्कार नहीं किया तब संघश्रीने उससे पूछा—क्यों आज तुमने मुझे नमस्कार नहीं किया? उत्तरमें मंत्रीने मुनिके आने, उपदेश करने और अपने व्रत ग्रहण करनेका सब हाल संघश्रीसे कह सुनाया। सुनकर

संघश्री बड़े दु:खके साथ बोला—हाय ! तू ठगा गया, पापियोंने तुझे बड़ा धोखा दिया। क्या कभी यह संभव है कि निराश्रय आकाशमें भी कोई चल सकता है ? जान पड़ता है तुम्हारा राजा बड़ा कपटी और ऐन्द्रजालिक है। इसीलिये उसने तुम्हें ऐसा आश्चर्य दिखला कर अपने धर्ममें शामिल कर लिया। तुम तो भगवान् बुद्धके इतने विश्वासी थे, फिर भी तुम उस पापी राजाकी बहकावटमें आगये ? इस तरह उसे बहुत कुछ ऊँचा नीचा समझाकर संघश्रीने कहा—अब तुम कभी राजसभामें नहीं जाना और जाना भी पड़े तो यह आजका हाल राजासे नहीं कहना। कारण वह जैनी है। सो बुद्धधर्म-पर स्वभावहीसे उसे प्रेम नहीं होगा। इसलिये क्या मालूम कब वह बुद्धधर्मका अनिष्ट करनेको तैयार हो जाय ? बेचारा श्रीवन्दक फिर संघश्रीकी चिकनी चुपड़ी बातोंमें आ गया। उसने श्रावक धर्मको भी उसी समय जलाञ्जलि देदी। बहुत ठीक कहा गया है—

स्वयं ये पापिनो लोके परं कुर्वन्ति पापिनम् ।
यथा संतप्तमानोसौ दहत्यग्निर्न संशय: ॥
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—जो स्वयं पापी होते हैं वे औरोंको भी पापी बना डालते हैं। यह उनका स्वभाव ही होता है। जैसे अग्नि स्वयं भी गरम होती है और दूसरोंको भी जला देती है।

दूसरे दिन धनदत्तने राज्यसभामें बड़े आनन्द और धर्म-प्रेमके साथ चारणमुनिका हाल सुनाया। उनमें प्राय: लोगोंको, जो कि जैन नहीं थे, बहुत आश्चर्य हुआ। उनका विश्वास राजाके कथनपर नहीं जमा। सब आश्चर्य भरी दृष्टिसे राजाके मुँहकी ओर

देखने लगे। राजाको जान पड़ा कि मेरे कहनेपर लोगोंको विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने अपनी गंभीरताको हँसीके रूपमें परिवर्तित कर झटसे कहा, हाँ मैं यह कहना तो भूल ही गया कि उस समय हमारे मंत्री महाशय भी मेरे पास ही थे। यह कहकर ही उन्होंने मंत्रीपर नजर दौड़ाई पर वे उन्हें नहीं दीख पड़े। तब राजाने उसी समय नौकरोंको भेजकर श्रीवन्दकको बुलवाया। उसके आते ही राजाने अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित करने के लिये उससे कहा—मंत्रीजी, कल दोपहरका हाल तो इन सबको सुनाइये कि वे चारणमुनि कैसे थे ? तब बौद्धगुरुका बहकाया हुआ पापी श्रीवन्दक बोल उठा कि महाराज, मैंने तो उन्हें नहीं देखा और न यह संभव ही है कि आकाशमें कोई चल सके ? पापी श्रीवन्दकके मुँहसे उक्त वाक्योंका निकलना था कि उसी समय उसकी दोनों आँखें मुनिनिन्दा के तीव्र पापके उदयसे फूट गईं। सच है—

प्रभावो जिनधर्मस्यं सूर्यस्येव जगत्त्रये ।
नैव संछाद्यते केन घूकप्रायेण पापिना ॥
[ब्रह्म नेमिदत्त]

जैसे संसारमें फैले हुए सूर्यके प्रभावको उल्लू नहीं रोक सकता, ठीक उसी तरह पापी लोग पवित्र जिनधर्मके प्रभावको कभी नहीं रोक सकते। उक्त घटनाको देखकर राजा वगैरहने जिनधर्मकी खूब प्रशंसा की और श्रावक धर्म स्वीकार कर वे उसके उपासक बन गये।

इस प्रकार निर्मल और देवादिके द्वारा पूज्य जिनशासन का प्रभाव देखकर भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे निर्भ्रान्त होकर

सुखके खजाने और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले पवित्र जिनधर्मकी ओर अपनी निर्मल और मनोवांछितकी देनेवाली बुद्धिको लगावें।

१८-ब्रह्मदत्तकी कथा।

परम भक्तिसे संसार पूज्य जिन भगवान्‌को नमस्कार कर मैं ब्रह्मदत्तकी कथा लिखता हूं। वह इसलिये कि सत्पुरुषोंको इसके द्वारा कुछ शिक्षा मिले।

कांपिल्य नामक नगरमें एक ब्रह्मरथ नामका राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था रामिली। वह सुन्दरी थी, विदुषी थी और राजाको प्राणोंसे भी कहीं प्यारी थी, बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त इसीके पुत्र थे। वे छह खण्ड पृथ्वीको अपने वश करके सुख पूर्वक अपना राज्य शासनका काम करते थे।

एक दिन राजा भोजन करनेको बैठे उस समय उनके विजयसेन नामके रसोइयेने उन्हें खीर परोसी। पर वह बहुत गरम थी, इसलिये राजा उसे खा न सके। उसे इतनी गरम देखकर राजा रसोइयेपर बहुत गुस्सा हुए। गुस्सेमें आकर उन्होंने खीरके उसी बर्तनको रसोइयेके सिरपर दे मारा। उसका सिर सब जल गया। साथ ही वह मर गया। हाय! ऐसे क्रोधको धिक्कार है, जिससे मनुष्य अपना हिताहित न देखकर बड़े बड़े अनर्थ कर बैठता है और फिर अनन्त कालतक कुगतियोंमें दुःख भोगता रहता है।

रसोइया बड़े दुःखसे मरा सही, पर उसके परिणाम उस समय भी शान्त रहे। वह मरकर लवण समुद्रान्तर्गत विशालरत्न

नामक द्वीपमें व्यन्तर देव हुआ। विभंगावधिज्ञानसे वह अपने पूर्व-भवकी कष्ट कथा जानकर क्रोधके मारे काँपने लगा। वह एक सन्यासीके वेषमें राजाके पास आया और राजाको उसने केला, आम, सेव, सन्तरा आदि बहुतसे फल भेंट किये। राजा जीभकी लोलुपतासे उन्हें खाकर सन्यासीसे बोला—साधुजी, कहिये—आप ये फल कहाँसे लाये? और कहाँ मिलेंगे? ये तो बड़े ही मीठे हैं। मैंने तो आजतक ऐसे फल कभी नहीं खाये। मैं आपकी इस भेंटसे बहुत खुश हुआ।

सन्यासीने कहा, महाराज, मेरा घर एक टापूमें है। वहीं एक बहुत सुन्दर बगीचा है। उसीके ये फल हैं। और अनन्त फल उसमें लगे हुए हैं। सन्यासीकी रसभरी बात सुनकर राजाके मुँहमें पानी भर आया। उसने सन्यासीके साथ जानेकी तैयारी की। सच है—

शुभाऽशुभं न जानाति हा कष्टं लंपटः पुमान्।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—जिह्वालोलुपी पुरुष भला बुरा नहीं जान पाते, यह बड़े दुःखकी बात है। यही हाल राजाका हुआ। जब वह लोलुपताके वश हो उस सन्यासीके साथ समुद्रके बीचमें पहुँचा, तब उसने राजाको मारनेके लिये बड़ा कष्ट देना शुरू किया। चक्रवर्ती अपनको कष्टोंसे घिरा देखकर पचनमस्कार मंत्रकी आराधना करने लगा। उसके प्रभावसे कपटी सन्यासीकी सब शक्ति रुद्ध हो गई। वह राजा को कुछ कष्ट न दे सका। आखिर प्रगट होकर उसने राजासे कहा—दुष्ट, याद है? मैं जब तेरा रसोइया था, तब तूने मुझे जानसे मार

डाला था ? वही आग आज मेरे हृदयको जला रही है, और उसीको बुझानेके लिये—अपने पूर्व भवका बैर निकालनेके लिये मैं तुझे यहाँ छलकर लाया हूं और बहुत कष्टके साथ तुझे जानसे मारूंगा, जिससे फिर कभी तू ऐसा अनर्थ न करे। पर यदि तू एक काम करे तो बच भी सकता है। वह यह कि तू अपने मुँहसे पहले तो यह कहदे कि संसारमें जिनधर्म ही नहीं है और जो कुछ है वह अन्यधर्म है। इसके सिवा पंचनमस्कार मंत्रको जलमें लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटादे, तब मैं तुझे छोड़ सकता हूं। मिथ्यादृष्टि ब्रह्मदत्तने उसके बहकानेमें आकर वही किया जैसा उसे देवन कहा था। उसका व्यन्तरके कहे अनुसार करना था कि उसने चक्रवर्तीको उसी समय मारकर समुद्रमें फैंक दिया। अपना वैर उसने निकाल लिया। चक्रवर्ती मरकर मिथ्यात्वके उदयसे सातवें नरक गया। सच है—मिथ्यात्व अनन्त दुःखोंका देनेवाला है। जिसका जिनधर्मपर विश्वास नहीं क्या उसे इस अनन्त दुःखमय संसारमें कभी सुख हुआ है ? नहीं। मिथ्यात्वके समान संसारमें और कोई इतना निन्द्य नहीं है। उसीसे तो चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त सातवें नरक गया। इसलिये आत्महितके चाहनेवाले पुरुषोंको दूरसे ही मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिका कारण सम्यक्त्व ग्रहण करना उचित है।

संसारमें सच्चे देव अरहन्त भगवान् हैं, जो क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, रोग, शोक, चिन्ता, भय आदि दोषोंसे और धन धान्य, दासी दास, सोना, चांदी आदि दश प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं, जो इन्द्र, चक्रवर्ती, देव, विद्याधरों द्वारा वन्द्य हैं, जिनके वचन जीव मात्रको सुख देनेवाले और भवसमुद्रसे तिरनेके लिये जहाज

समान हैं, उन अर्हन्त भगवान्का आप पवित्र भावोंसे सदा ध्यान किया कीजिये कि जिससे वे आपके लिये कल्याण पथके प्रदर्शक हों।

---

१६. श्रेणिकराजाकी कथा।

केवल ज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा समस्त संसारके पदार्थोंके देखने जाननेवाले और जगत्पूज्य श्रीजिनभगवान्को नमस्कार कर मैं राजा श्रेणिककी कथा लिखता हूँ, जिसके पढ़नेसे सर्वसाधारणका हित होगा।

श्रेणिक मगध देशके अधीश्वर थे। मगधकी प्रधान राजधानी राजगृह थी। श्रेणिक कई विषयोंके सिवा राजनीतिके बहुत अच्छे विद्वान् थे। उनकी महारानी चेलनी बड़ी धर्मात्मा जिनभगवान्की भक्त और सम्यग्दर्शनसे विभूषित थी।

एक दिन श्रेणिकने उससे कहा—देखो, संसारमें वैष्णव धर्मकी बहुत प्रतिष्ठा है और वह जैसा सुख देनेवाला है वैसा और धर्म नहीं। इसलिये तुम्हें भी उसी धर्मका आश्रय स्वीकार करना उचित है।

सुनकर चेलनी देवी, जिसे कि जिनधर्मपर अगाध विश्वास था, बड़े विनयसे बोली—नाथ, अच्छी बात है, समय पाकर मैं इस विषयकी परीक्षा करूंगी।

इसके कुछ दिनों बाद चेलनीने कुछ भागवत साधुओंका अपने यहाँ निमंत्रण किया और बड़े गौरवके साथ अपने यहाँ उन्हें

बुलाया। वहाँ आकर अपना ढोंग दिखलानेके लिये वे कपट मायाचारसे ईश्वराराधन करनेको बैठे। उस समय चेलनीने उनसे पूछा, आप लोग क्या करते हैं ? उत्तरमें उन्होंने कहा–देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए शरीरको छोड़कर अपने आत्माको विष्णु अवस्थामें प्राप्तकर स्वानुभवजन्य सुख भोगते हैं।

सुनकर देवी चेलनीने उस मंडपमें, जिसमें सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवा दी। आग लगते ही वे सब कव्वेकी तरह भाग खड़े हुए। यह देख कर श्रेणिकने बड़े क्रोधके साथ चेलनी से कहा—आज तुमने साधुओंके साथ बड़ा अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उनपर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हें जानसे ही मार डालना ? बतलाओ तो उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवनकी ही प्यासी हो उठी ?

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिये सुखका कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं ? तब उन्होंने मुझे कहा था कि हम अपवित्र शरीर छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपद प्राप्त करते हैं। तब मैंने सोचा कि ओहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे उत्तम यह होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु बने रहें। संसारमें बार बार आना और जाना यह इनके पीछे पचड़ा क्यों ? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमें रहकर सुखभोग करें, इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मंडपमें आग लगवा दी थी। आप ही अब विचार

कर बतलाइये कि इसमें मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया ? और सुनिये मेरे वचनोंपर आपको विश्वास हो, इसलिये एक कथा भी आपको सुनाये देती हूँ।

"जिस समयकी यह कथा है, उस समय वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्य शासन नीतिके साथ करते हुए सुख से समय बिताते थे। कोशाम्बी में दो सेठ रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठोंमें परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम उन्होंने सदा दृढ़ बना रहे, इसलिये परस्परमें एक शर्त की। वह यह कि—"मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूंगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़की का ब्याह उसके साथ कर देना पड़ेगा।"

दोनोंने उक्त शर्त स्वीकार की। इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्तके घर पुत्रजन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र हुआ। पर उसमें एक बड़े भारी आश्चर्यकी बात थी। वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई। उसका नाम रक्खा गया नागदत्ता। वह बड़ी खूब सूरत सुन्दरी थी। उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह वसुमित्रके साथ कर दिया। सच है—

नैव वाचा चलत्वं स्यात्सतां कष्टशतैरपि।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्रका ब्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिनमें तो सर्प बनकर एक पिटारेमें रहता और रातमें एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोपभोग करता। सचमुच संसारकी विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसे कई दिन बीत गये। एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्थामें पदार्पण करती हुई और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली—हाय! दैवकी कैसी विडम्बना है, जो कहाँ तो देवबाला सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प? उसकी दु:ख भरी आहको नागदत्ताने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी मातासे बोली—माता, इसके लिये आप क्यों दु:ख करती हैं? मेरा जब भाग्य ही ऐसा था, तब उसके लिये दु:ख करना व्यर्थ है। और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ताने अपनी माताको स्वामीके उद्धार सम्बन्धकी बात समझा दी।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यरूपमें आया और अपने शय्या-भवनमें पहुँचा। इधर समुद्रदत्ता छुपी हुई आकर वसुदत्तके पिटारेको वहाँ-से उठा ले आई और उसे उसी समय उसने जला डाला। तबसे वसुमित्र मनुष्यरूपमें ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ

अपना समय आनन्दसे बिताने लगा *।" नाथ! उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोकमें रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी; इसलिये मैंने वैसे किया था। महारानी चेलनी की कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उसपर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोध को उस समय दबा भी गये।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिये गये हुए थे। उन्होंने वनमे यशोधर मुनिराजको देखा। वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे। श्रेणिकने उन्हें शिकारके लिये विघ्नरूप समझकर मारने का विचार किया और बड़े गुस्सेमें आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तों को उनपर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयताके साथ मुनिके मारनेको झपटे। पर मुनिराजकी तपश्चर्याके प्रभावसे वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पाँवोंके पास खड़े रह गये। यह देख श्रेणिकको और भी क्रोध आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर मुनिपर शर चलाना आरम्भ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो शरोंके द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानो किसीने उनपर फूलोंकी वर्षा की है। सच बात यह है कि तपस्वियों-का प्रभाव कह कौन सकता है? श्रेणिकने मुनिहिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरककी आयुका बन्ध किया, जिसकी स्थिति तेतीस सागरकी है।

---

* यह कथा जैन धर्मसे विरुद्ध है। जान पड़ता है चेलिनीरानीने अपनी बातको पुष्ट करनेके लिये अन्यमतके ग्रन्थोंका प्रमाण देकर इसे उद्धृत किया है।

इन सब अलौकिक घटनाओंको देखकर श्रेणिकका पत्थर के समान कठोर हृदय फूलसा कोमल हो गया। उनके हृदयकी सब दुष्टता निकलकर उसमें मुनिके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया। वे मुनिराजके पास गये और भक्तिसे उन्होंने मुनिके चरणोंको नमस्कार किया। यशोधर मुनिराजने श्रेणिकके हितके लिये उपयुक्त समझकर उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासनका उपदेश दिया। उसका श्रेणिकके हृदयपर बहुत ही असर पड़ा। उनके परिणामोंमें विलक्षण परिवर्तन हुआ। उन्हें अपने कृतकर्मपर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। मुनिराजके उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसके प्रभावसे, उन्होंने जो सातवें नर्ककी आयुका बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरकका रह गया, जहांकी स्थिति चौरासी हजार वर्षोंकी है। ठीक है सम्यग्दर्शनके प्रभावसे भव्यपुरुषोंको क्या प्राप्त नहीं होता ?

इसके बाद श्रेणिकने श्रीचित्रगुप्त मुनिराजके पास क्षयोपशमसम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् वर्धमान स्वामीके द्वारा शुद्ध क्षायिकसम्यक्त्व, जो कि मोक्षका कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थंकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे।

वे केवलज्ञानरूपी प्रदीप श्रीजिनभगवान् संसारमें सदाकाल विद्यमान रहें, जो इन्द्र, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती द्वारा पूज्य हैं और जिनके पवित्र उपदेशके हृदयमें मनन और ग्रहण द्वारा मनुष्य निर्मल लक्ष्मीको प्राप्त करनेका पात्र होता है—मोक्षलाभ करता है।

२०—पद्मरथ राजाकी कथा।

इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य जिनभगवान्के चरणोंको नमस्कार कर मैं पद्मरथ राजाकी कथा लिखता हूँ, जो प्रसिद्ध जिनभक्त हुआ है।

मगध देशके अन्तर्गत एक मिथिला नामकी सुन्दर नगरी थी। उसके राजा थे पद्मरथ। वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीतिके अच्छे जाननेवाले थे, उदार और परोपकारी थे। सुतरां वे खूब प्रसिद्ध थे।

एक दिन पद्मरथ शिकारके लिये वनमें गये हुए थे। उन्हें एक खरगोश दीख पड़ा। उन्होंने उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। खरगोश उनकी नजर बाहर होकर न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। पद्मरथ भाग्यसे कालगुफा नामकी एक गुहामें जा पहुंचे। वहाँ एक मुनिराज रहा करते थे। वे बड़े तपस्वी थे। उनका दिव्य देह तपके प्रभावसे अपूर्व तेज धारण कर रहा था। उनका नाम था सुधर्म। पद्मरथ रत्नत्रय विभूषित और परम शान्त मुनिराजके पवित्र दर्शनसे बहुत शान्त हुए। जैसे तपा हुआ लोहपिंड जलसे शान्त हो जाता है। वे उसी समय घोड़ेपरसे उतर पड़े और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उन्होंने उनके द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा। उन्होंने सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत ग्रहण किये। इसके बाद उन्होंने मुनिराजसे पूछा—हे प्रभो! हे संसारके आधार! कहिये तो इस समय जिनधर्मरूप समुद्रको बढ़ानेवाले आप सरीखे गुणज्ञ चन्द्रमा और भी कोई है या नहीं ? और है तो कहाँ हैं ? हे करुणासागर ! मेरे इस सन्देहको मिटाइये।

उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् ! चम्पानगरीमें इस समय बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य विराजमान हैं। उनके भौतिक शरीरके तेजकी समानता तो अनेक सूर्य मिलकर भी नहीं कर सकते और उनके अनन्त ज्ञानादि गुणोंको देखते हुए मुझमें और उनमें राई और सुमेरुका अन्तर है। भगवान् वासुपूज्यका समाचार सुनकर पद्मरथको उनके दर्शनोंकी अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। वे उसी समय फिर वहाँसे बड़े वैभवके साथ भगवान्के दर्शनोंके लिये चले। यह हाल धन्वन्तरी और विश्वानुलोम नामके दो देवोंको जान पड़ा। सो वे पद्मरथकी परीक्षाके लिये मध्यलोकमें आये। उन्होंने पद्मरथकी भक्तिकी दृढ़ता देखनेके लिये रास्तेमें उनपर उपद्रव करना शुरू किया। पहले उन्होंने उन्हें एक भयंकर कालसर्प दिखलाया, इसके बाद राज्यछत्रका भंग, अग्निका लगना, प्रचण्ड वायुद्वारा पर्वत और पत्थरोंका गिरना, असमयमें भयंकर जलवर्षा और खूब कीचड़ मय मार्ग और उसमें फँसा हाथी आदि दिखलाया। यह उपद्रव देखकर साथके सब लोग भयके मारे अधमरे हो गये। मंत्रियोंने यात्रा अमंगलमय बतलाकर पद्मरथसे पीछे लौट चलनेके लिये आग्रह किया। परन्तु पद्मरथने किसीकी बात नहीं सुनी और बड़ी प्रसन्नताके साथ "नमः श्रीवासुपूज्याय" कहकर अपना हाथी आगे बढ़ाया। पद्मरथकी इस प्रकार अचल भक्ति देखकर दोनों देवोंने उनकी बहुत बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वे पद्मरथको सब रोगोंको नष्ट करनेवाला एक दिव्य हार और एक बहुत सुन्दर वीणा, जिसकी आवाज एक योजन पर्यन्त सुनाई पड़ती है, देकर अपने स्थान चले गये। ठीक कहा है—जिनके हृदयमें जिनभगवान्की भक्ति सदा

विद्यमान रहती है, उनके सब काम सिद्ध हों, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पद्मरथने चम्पानगरीमें पहुँच कर समवसरणमें विराजे हुए, आठ प्रातिहार्योंसे विभूषित, देव, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य, केवलज्ञान द्वारा संसारके सब पदार्थोंको जानकर धर्मका उपदेश करते हुए और अनन्त जन्मोंमें बाँधे हुए मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाले भगवान् वासुपूज्यके पवित्र दर्शन किये, उनकी पूजा की, स्तुति की और उपदेश सुना। भगवान्के उपदेशका उनके हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा। वे उसी समय जिनदीक्षा लेकर तपस्वी हो गये। प्रव्रजित होते ही उनके परिणाम इतने विशुद्ध हुए कि उन्हें अवधि और मनःपर्ययज्ञान हो गया। भगवान् वासुपूज्यके वे गणधर हुए। इसलिये भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्षको देनेवाली जिनभगवान्की भक्ति निरन्तर पवित्र भावोंके साथ करें और जिस प्रकार पद्मरथ सच्चा जिनभक्त हुआ उसी प्रकार वे भी हों।

जिनभक्ति सब प्रकारका सांसारिक सुख देती है और परम्परा मोक्षकी प्राप्तिका कारण है, जो केवलज्ञान द्वारा संसारके प्रकाशक हैं, और सत्पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, वे भगवान् वासुपूज्य सारे संसारको मोक्ष सुख प्रदान करें—कर्मोंके उदयसे घोर दुःख सहते हुए जीवोंका उद्धार करें।

२१—पंच नमस्कारमंत्र—माहात्म्य कथा।

मोक्षसुख प्रदान करनेवाले श्रीअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपा-

ध्याय और साधुओंको नमस्कार कर पंच नमस्कारमंत्रकी आराधना द्वारा फल प्राप्त करनेवाले सुदर्शनकी कथा लिखी जाती है।

अंगदेशकी राजधानी चम्पानगरीमें गजवाहन नामके एक राजा हो चुके हैं। वे बहुत खूबसूरत और साथ ही बड़े भारी शूर-वीर थे। अपने तेजसे शत्रुओंपर विजय प्राप्तकर सारे राज्यको उन्होंने निष्कण्टक बना लिया था। वहीं वृषभदत्त नामके एक सेठ रहा करते थे। उनकी गृहिणीका नाम था अर्हद्दासी। अपनी प्रिया-पर सेठका बहुत प्रेम था। वह भी सच्ची पतिभक्तिपरायणा थी, सुशीला थी, सती थी, वह सदा जिनभक्तिमें तत्पर रहा करती थी।

वृषभदत्तके यहाँ एक गुवाल नौकर था। एक दिन वह वनसे अपने घरपर आ रहा था। समय शीतकालका था। जाड़ा खूब पड़ रहा था। उस समय रास्तेमें उसे एक ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन हुए, जो कि एक शिलापर ध्यान लगाये बैठे हुए थे। उन्हें देखकर गुवालेको बड़ी दया आई। वह यह विचार कर, कि अहा! इनके पास कुछ वस्त्र नहीं है और जाड़ा इतने जोरका पड़ रहा है, तब भी ये इसी शिलापर बैठे हुए ही रात बिता डालेंगे, अपने घर गया और आधी रातके समय अपनी स्त्रीको साथ लिये पीछा मुनि-राजके पास आया। मुनिराजको जिस अवस्थामें बैठे हुए वह देख गया था, वे अब भी उसी तरह ध्यानस्थ बैठे हुए थे। उनका सारा शरीर ओससे भींग रहा था। उनकी यह हालत देखकर दयाबुद्धिसे उसने मुनिराजके शरीरपरसे ओसको साफ किया और सारी रात वह उनके पाँव दाबता रहा—सब तरह उनकी वैयावृत्य करता रहा।

सबेरा होते ही मुनिराजका ध्यान पूरा हुआ। उन्होंने आँख उठाकर देखा तो गुवालेको पास ही बैठा पाया। मुनिराजने गुवालेको निकट-भव्य समझकर पंच नमस्कारमंत्रका उपदेश किया, जो कि स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिका कारण है। इसके बाद मुनिराज भी पंचनमस्कार-मंत्रका उच्चारण कर आकाशमें विहार कर गये।

गुवालेकी धीरे धीरे मंत्रपर बहुत श्रद्धा हो गई। वह किसी भी कामको जब करने लगता तो पहले ही नमस्कारमंत्रका स्मरण कर लिया करता था। एक दिन जब गुवाला मंत्र पढ़ रहा था, तब उसे उसके सेठने सुन लिया। वे मुस्कुराकर बोले—क्यों रे, तूने यह मंत्र कहाँसे उड़ाया? गुवालेने पहलेकी सब बात अपने स्वामीसे कहदी। सेठने प्रसन्न होकर गुवालेसे कहा – भाई, क्या हुआ यदि तू छोटे भी कुलमें उत्पन्न हुआ? पर आज तू कृतार्थ हुआ, जो तुझे त्रिलोकपूज्य मुनिराजके दर्शन हुए। सच बात है सत्पुरुष धर्मके बड़े प्रेमी हुआ करते हैं।

एक दिन गुवाला भैंसें चरानेके लिये जंगलमें गया। समय वर्षाका था। नदी नाले सब पूर थे। उसकी भैंसें चरनेके लिये नदी पार जाने लगीं। सो उन्हें लौटा लानेकी इच्छासे गुवाला भी उनके पीछे ही नदीमें कूद पड़ा। जहाँ वह कूदा वहीं एक नुकीला लकड़ा गड़ा हुआ था। सो उसके कूदते ही लकड़ेकी नोंक उसके पेटमें जा घुसी। उससे उसका पेट फट गया। वह उसी समय मर गया। वह जिस समय नदीमें कूदा था, उस समय सदाके नियमानुसार पंचनमस्कारमंत्रका उच्चारण कर कूदा था। वह मर-कर मंत्रके प्रभावसे वृषभदत्तके यहाँ पुत्र हुआ। वह जाता तो कहीं

स्वर्गमें, पर उसने वृषभदत्तके यहाँ उत्पन्न होनेका निदान कर लिया था, इसलिये निदान उसकी ऊँची गतिका बाधक बन गया। उसका नाम रक्खा गया सुदर्शन। सुदर्शन बड़ा सुन्दर था। उसका जन्म मातापिताके लिये खूब उत्कर्षका कारण हुआ। पहलेसे कई गुणी सम्पत्ति उनके पास बढ़ गई। सच है—पुण्यवानोंके लिये कहीं भी कुछ कमी नहीं रहती।

वहीं एक सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सागरसेना। उसके एक पुत्री थी। उसका नाम मनोरमा था। वह बहुत सुन्दरी थी। देवकन्यायें भी उसकी रूपमाधुरीको देखकर शर्मा जाती थी। उसका ब्याह सुदर्शनके साथ हुआ। दोनों दम्पति सुखसे रहने लगे।

एक दिन वृषभदत्त समाधिगुप्त मुनिराजके दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उन्होंने मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उनपर खूब पड़ा। संसार की दशा देखकर उन्हें बहुत वैराग्य हुआ। वे घरका कारोबार सुदर्शनके सुपुर्दकर समाधिगुप्त मुनिराजके पास दीक्षा लेकर तपस्वी बन गये।

पिताके प्रवृजित हो जानेपर सुदर्शनने भी खूब प्रतिष्ठा सम्पादन की। राजदरबारमें भी उसकी पिताके जैसी ही पूछताछ होने लगी। वह सर्व साधारणमें खूब प्रसिद्ध हो गया। सुदर्शन न केवल लौकिक कामोंमें ही प्रेम करता था; किन्तु वह उस समय एक बहुत धार्मिक पुरुष गिना जाता था। वह सदा जिनभगवान्‌की भक्तिमें तत्पर रहता, श्रावकके व्रतोंका श्रद्धाके साथ पालन करता,

दान देता, पूजन स्वाध्याय करता। यह सब होनेपर भी ब्रह्मचर्यमें वह बहुत दृढ़ था।

एक दिन मगधाधीश्वर गजवाहनके साथ सुदर्शन वन-विहारके लिये गया। राजाके साथ राजमहिषी भी थी। सुदर्शन सुन्दर तो था ही, सो उसे देखकर राजरानी कामके पाशमें बुरी तरह फँसी। उसने अपनी एक परिचारिकाको बुलाकर पूछा—क्यों तू जानती है कि महाराजके साथ आगन्तुक कौन हैं? और ये कहाँ रहते हैं?

परिचारिकाने कहा—देवी, आप नहीं जानतीं, ये तो अपने प्रसिद्ध राजश्रेष्ठी सुदर्शन हैं।

राजमहिषीने कहा—हाँ! तब तो ये अपनी राजधानीके भूषण हैं। अरी, देख तो इनका रूप कितना सुन्दर, कितना मनको अपनी ओर खींचनेवाला है? मैंने तो आजतक ऐसा सुन्दर नररत्न नहीं देखा। मैं तो कहती हूँ, इनका रूप स्वर्गके देवोंसे भी कहीं बढ़-कर है। तूने भी कभी ऐसा सुन्दर पुरुष देखा है।

वह बोली—महारानीजी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके समान सुन्दर पुरुषरत्न तीन लोकमें भी नहीं मिलेगा।

राजमहिषीने उसे अपने अनुकूल देखकर कहा—हाँ तो तुमसे मुझे एक बात कहना है।

वह बोली—वह क्या, महारानीजी?

महारानी बोली—पर तू उसे करदे तो मैं कहूँ।

वह बोली—देवी, भला, मैं तो आपकी दासी हूँ, फिर मुझे आपकी आज्ञा पालन करनेमें क्यों इन्कार होगा। आप

निःसंकोच होकर कहिये। जहाँतक मेरा बस चलेगा, मैं उसे पूरा करूंगी।

महारानीने कहा—देख, मेरा तेरेपर पूर्ण विश्वास है, इसलिये मैं अपने मनकी बात तुझे कहती हूँ। देखना कहीं मुझे धोखा न देना ? तो सुन, मैं जिस सुदर्शनकी बाबत ऊपर तुझसे कह आई हूँ, वह मेरे हृदयमें स्थान पा गया है। उसके बिना मुझे संसार निःसार और सूना जान पड़ता है। तू यदि किसी प्रयत्नसे मुझे उससे मिलादे तब ही मेरा जीवन बच सकता है। अन्यथा समझ संसारमें मेरा जीवन कुछ ही दिनोंके लिये है।

वह महारानीकी बात सुनकर पहले तो कुछ विस्मितसी हुई, पर थी तो आखिर पैसेकी गुलाम ही न ? उसने महारानीकी आशा पूरी कर देनेके बदलेमें अपनेको आशातीत धनकी प्राप्ति होगी, इस विचारसे कहा—महारानीजी, बस यही बात है ? इसीके लिये आप इतनी निराश हुई जाती हैं ? जबतक मेरे दममें दम है तबतक आपको निराश होनेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। मैं आपकी आशा अवश्य पूरी करूंगी। आप घबरावें नहीं। बहुत ठीक लिखा है—

असभ्य दुष्टनारीभिर्निन्दितं क्रियते न किम्।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—असभ्य और दुष्ट स्त्रियाँ कौन बुरा काम नहीं करतीं ? अभयाकी धाय भी ऐसी ही स्त्रियोंमेंसे थी। फिर वह क्यों इस काममें अपना हाथ न डालती ? वह अब सुदर्शनको राजमहलमें ले आनेके प्रयत्नमें लगी।

सुदर्शन एक धर्मात्मा श्रावक था। वह वैरागी था। संसारमें रहता तब भी सदा उससे छुटकारा पानेके उपायमें लगा रहता था। इसलिये वह ध्यानका भी अभ्यास किया करता था। अष्टमी और चतुर्दशीकी रात्रिमें वह भयंकर श्मशानमें जाकर ध्यान करता। धायको सुदर्शनके ध्यानकी बात मालूम थी। उसने सुदर्शनको राजमहलमें लिवा लेजानेको एक षड्यंत्र रचा। एक दिन वह एक कुम्हारके पास गई और उससे मनुष्यके आकारका एक मिट्टीका पुतला बनवाया और उसे वस्त्र पहराकर वह राजमहल लिवा ले चली। महलमें प्रवेश करते समय पहरेदारोंने उसे रोका और पूछा कि यह क्या है ? वह उसका कुछ उत्तर न देकर आगे बढ़ी। पहरेदारोंने उसे नहीं जाने दिया। उसने गुस्सेका ढोंग बनाकर पुतलेको जमीनपर दे मारा। वह चूर चूर हो गया। इसके साथ ही उसने कड़क कर कहा—पापियो, दुष्टो, तुमने आज बड़ा अनर्थ किया है। तुम नहीं जानते कि महारानीके नरव्रत था, सो वे इस पुतलेकी पूजा करके भोजन करतीं। सो तुमने इसे फोड़ डाला है। अब वे कभी भोजन नहीं करेंगी। देखो, मैं अब महारानीसे जाकर तुम्हारी दुष्टताका हाल कहती हूँ। फिर वे सबेरे ही तुम्हारी क्या गति करती हैं ? तुम्हारी दुष्टता सुनकर ही वे तुम्हें जानसे मरवा डालेंगी। धायकी धूर्ततासे बेचारे पहरेदारोंके प्राण सूख गये। उन्हें काटो तो खून नहीं। मारे डरके वे थर थर काँपने लगे। वे उसके पाँवोंमें पड़कर अपने प्राण बचानेकी उससे भीख माँगने लगे। बड़ी आरजू मिन्नत करनेपर उसने उनसे कहा—तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे दया आती है। खैर, मैं तुम्हारे बचानेका उपाय करूंगी। पर याद

रखना अब तुम मुझे कोई काम करते समय मत छेड़ना। तुमने इस पुतलेको तो फोड़ डाला, बतलाओ अब महारानी आज अपना व्रत कैसे पूरा करेंगी ? और न इसी समय और दूसरा पुतला ही बन सकता है। अस्तु। फिर भी मैं कुछ उपाय करती हूँ। जहाँतक बन पड़ा वहाँतक तो दूसरा पुतला ही बनवाकर लाती हूँ और यदि नहीं बन सका तो किसी जिन्दा ही पुरुषको मुझे थोड़ी देरके लिये लाना पड़ेगा। तुम्हें सचेत करती हूँ कि उस समय मैं किसीसे नहीं बोलूंगी, इसलिये तुम मुझसे कुछ कहना सुनना नहीं। बेचारे पहरेदारोंको तो अपनी जानकी पड़ी हुई थी, इसलिये उन्होंने हाथ जोड़कर कह दिया कि—अच्छा, हम लोग आपसे अब कुछ नहीं कहेंगे। आप अपना काम निडर होकर कीजिये।

इस प्रकार वह धूर्त्ता सब पहरेदारोंको अपने वशकर उसी समय श्मशानमें पहुँची। श्मशान जलती चिताओंसे बड़ा भयकर बन रहा था उसी भयंकर श्मशानमें सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। महारानी अभयाकी परिचारिकाने उसे उठा लाकर महारानीके सुपुर्द कर दिया। अभया अपनी परिचारिकापर बहुत प्रसन्न हुई। सुदशनको प्राप्तकर उसके आनन्दका कुछ ठिकाना न रहा, मानो उसे अपनी मनमानी निधि मिल गई। वह कामसे तो अत्यन्त पीडित थी ही, उसने सुदर्शनसे बहुत अनुनय विनय किया, इसलिये कि वह उसकी इच्छा पूरी करके उसे सुखी करे—कामाग्निसे जलते हुए शरीरको आलिंगनसुधा प्रदान कर शीतल करे। पर सुदर्शनने उसकी एक भी बातका उत्तर नहीं दिया। यह देख रानीने उसके साथ अनेक प्रकारकी कुचेष्टायें करनी आरंभ की, जिससे

वह विचलित हो जाय। पर तब भी रानीकी इच्छा पूरी नहीं हुई। सुदर्शन मेरुसा निश्चल और समुद्रसा गंभीर बना रहकर जिन-भगवान्के चरणोंका ध्यान करने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस उपसर्गसे बच गया तो अब संसारमें न रहकर साधु हो जाऊँगा। प्रतिज्ञाकर वह काष्ठकी तरह निश्चल होकर ध्यान करने लगा। बहुत ठीक लिखा है—

सन्तः कष्टशतैश्चापि चारित्रान्न चलत्य हो।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपने व्रतसे कभी नहीं चलते। अनेक तरहका यत्न, अनेक कुचेष्टायें करनेपर भी जब रानी सुदर्शनको शीलशैलसे न गिरा सकी, उसे तिलभर भी विचलित नहीं कर सकी, तब शर्मिन्दा होकर उसने सुदर्शनको कष्ट देनेके लिये एक नया ही ढोंग रचा। उसने अपने शरीरको नखोंसे खूब खुजा डाला, अपने कपड़े फाड़ डाले, भूषण तोड़ फोड़ डाले और यह कहती हुई वह जोर जोरसे हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी कि हाय ! इस पापी दुराचारीने मेरी यह हालत करदी। मैंने तो इसे भाई समझकर अपने महल बुलाया था। मुझे क्या मालूम था कि यह इतना दुष्ट होगा ? हाय ! दौड़ो !! मुझे बचाओ ! मेरी रक्षा करो ! यह पापी मेरा सर्वनाश करना चाहता है। रानीके चिल्लाते ही बहुतसे नौकर चाकर दौड़े आये और सुदर्शनको बाँधकर वे महाराजके पास लिवा ले गये। सच है—

किं न कुर्वन्ति पापिन्यो निंद्यं दुष्टस्त्रियो भुवि।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पापिनी और दुष्ट स्त्रियाँ संसारमें कौन बुरा काम नहीं करतीं ? अभया भी ऐसी ही स्त्रियोंमें एक थी। इसलिये उसने अपना चरित कर बतलाया। महाराजको जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने क्रोधमें आकर सुदर्शनको मार डालनेका हुकुम दे दिया। महाराजकी आज्ञा होते ही जल्लाद लोग उसे श्मशानमें लिवा ले गये। उनमेंसे एकने अपनी तेज तलवार सुदर्शनके गलेपर दे मारी। पर यह हुआ क्या ? जो सुदर्शनको उससे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा और उलटा उसे वह तलवारका मारना ऐसा जान पड़ा, मानो किसीने उसपर फूलकी माला फेंकी हो। जान पड़ा यह सब उसके अखण्ड शीलव्रतका प्रभाव था। ऐसे कष्टके समय देवोंने आकर उसकी रक्षा की और स्तुति की कि सुदर्शन, तुम धन्य हो, तुम सच्चे जिनभक्त हो, सच्चे श्रावक हो, तुम्हारा ब्रह्मचर्य अखण्ड है, तुम्हारा हृदय सुमेरुसे भी कहीं अधिक निश्चल है। इस प्रकार प्रशंसा कर देवोंने उसपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की और धर्मप्रेमके वश होकर उसकी पूजा की। सच है—

अहो पुण्यवतां पुंसां कष्टं चापि सुखायते।
तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितम् ॥
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यवानोंके लिये दुःख भी सुखके रूपमें परिणत हो जाता है। इसलिये भव्य पुरुषोंको जिनभगवान्के कहे मार्गसे पुण्यकर्म करना चाहिये। भक्तिपूर्वक जिनभगवान्की पूजा करना, पात्रोंको दान देना, ब्रह्मचर्यका पालना, अणुव्रतोंका पालन करना, अनाथ, अपाहिज दुखियोंको सहायता देना, विद्यालय, पाठशाला

खुलवाना, उनमें सहायता देना, विद्यार्थियोंको छात्र वृत्तियाँ देना, आदि पुण्यकर्म हैं। सुदर्शनके व्रतमाहात्म्यका हाल महाराजको मालूम हुआ। वे उसी समय सुदर्शनके पास आये और उन्होंने उससे अपने अविचारके लिये क्षमा माँगी।

सुदर्शनको संसारकी इस लीलासे बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपना कारोबार सब सुकान्त पुत्रको सौंपकर वनमें गया और त्रिलोकपूज्य विमलवाहन मुनिराजको नमस्कार कर उनके पास प्रव्रजित हो गया। मुनि होकर सुदर्शनने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपश्चर्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक भव्य पुरुषोंको कल्याणका मार्ग दिखलाकर तथा देवादि द्वारा पूज्य होकर अन्तमें वह निराबाध, अनन्त सुखमय मोक्षधाममें पहुँच गया।

इस प्रकार नमस्कार मंत्रका माहात्म्य जानकर भव्योंको उचित है कि वे प्रसन्नताके साथ उसपर विश्वास करें और प्रतिदिन उसकी आराधना करें।

धर्मात्माओंके नेत्ररूपी कुमुद-पुष्पोंके प्रफुल्लित करनेवाले—आनन्द देनेवाले, और श्रुतज्ञानके समुद्र, तथा मुनि, देव, विद्याधर चक्रवर्त्ती—आदि द्वारा पूज्य, केवलज्ञान रूपी कान्तिसे शोभायमान भगवान् जिनचन्द्र संसारमें सदा काल रहें।

२१—यममुनिकी कथा।

मैं देव, गुरु और जिनवाणीको नमस्कार कर यममुनिकी

कथा लिखता हूं, जिन्होंने बहुत ही थोड़ा ज्ञान होनेपर भी अपनेको मुक्तिका पात्र बना लिया और अन्तमें वे मोक्ष गये। यह कथा सब सुखकी देनेवाली है।

उड्रदेशके अन्तर्गत एक धर्म नामका प्रसिद्ध और सुन्दर शहर है। उसके राजा थे यम। वे बुद्धिमान और शास्त्रज्ञ थे। उनकी रानीका नाम धनवती था। धनवतीके एक पुत्र और एक पुत्री थी। उनके नाम थे गर्दभ और कोणिका। कोणिका बहुत सुन्दरी थी। धनवतीके अतिरिक्त राजाकी और भी कई रानियाँ थीं। उनके पुत्रोंकी संख्या पाँचसौ थी। ये पाँचसौ ही भाई धर्मात्मा थे और संसारसे उदासीन रहा करते थे। राजमंत्रीका नाम था दीर्घ। वह बहुत बुद्धिमान् और राजनीतिका अच्छा जानकार था। राजा इन सब साधनोंसे बहुत सुखी थे और अपना राज्य भी बड़ी शान्तिसे करते थे।

एक दिन एक राज ज्योतिषीने कोणिकाके लक्षण वगैरह देखकर राजासे कहा—महाराज, राजकुमारी बड़ी भाग्यवती है। जो इसका पति होगा वह सारी पृथ्वीका स्वामी होगा। यह सुनकर राजा बहुत खुश हुए और उस दिनसे वे उसकी बड़ी सावधानी से रक्षा करने लगे, उन्होंने उसके लिये एक बहुत सुन्दर और भव्य तलग्रह बनवा दिया। वह इसलिये कि उसे और छोटा मोटा बलवान् राजा न देख पाये।

एक दिन उसकी राजधानीमें पाँचसौ मुनियोंका संघ आया। संघके आचार्य थे महामुनि सुधर्माचार्य। संसारका हित करना उनका एक मात्र व्रत था। बड़े आनन्द उत्साहके साथ शहरके सब

लोग अनेक प्रकारके पूजनद्रव्य हाथोंमें लिये हुए आचार्यकी पूजाके लिये गये। उन्हें जाते हुए देख राजा भी अपने पाण्डित्यके अभिमान में आकर मुनियोंकी निन्दा करते हुए उनके पास गये। मुनिनिन्दा और ज्ञानका अभिमान करनेसे उसी समय उनके कोई ऐसा कर्मोंका तीव्र उदय आया कि उनकी सब बुद्धि नष्ट हो गई। वे महामूर्ख बन गये। इसलिये जो उत्तम पुरुष हैं और ज्ञानी बनना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे कभी ज्ञानका गर्व न करें और ज्ञानहीका क्यों ? किन्तु कुल, जाति, बल, ऋद्धि, ऐश्वर्य, शरीर, तप, पूजा, प्रतिष्ठा-आदि किसीका भी गर्व—अभिमान न करें। इनका अभिमान करना बड़ा दुःखदायी है।

अपनी यह हालत देखकर राजाका होश ठिकाने आया। वे एक साथ ही दाँतरहित हाथीकी तरह गर्व रहित हो गये। उन्होंने अपने कृत कर्मोंका बहुत पश्चात्ताप किया और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनसे धर्मोपदेश सुना, जो कि जीव मात्रको सुखका देनेवाला है। धर्मोपदेशसे उन्हें बहुत शान्ति मिली। उसका असर भी उनपर बहुत पड़ा। वे संसारसे विरक्त हो गये। वे उसी समय अपने गर्दभनामके पुत्रको राज्य सौंपकर अपने अन्य पाँचसौ पुत्रोंके साथ, जो कि बालपनहीसे वैरागी रहा करते थे, मुनि हो गये। मुनि हुए बाद उन सबने खूब शास्त्रोंका अभ्यास किया। आश्चर्य है कि वे पाँचसौ ही भाई तो खूब विद्वान् हो गये, पर राजाको—यममुनिको पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करना तक भी नहीं आया। अपनी यह दशा देखकर यममुनि बड़े शर्मिन्दा और दुःखी हुए। उन्होंने वहाँ रहना उचित न समझ अपने गुरुसे तीर्थयात्रा करनेकी

आज्ञा ली और अकेले ही वहाँसे वे निकल पड़े। यममुनि अकेले ही यात्रा करते हुए एक दिन स्वच्छन्द होकर रास्तेमें जा रहे थे। जाते हुए उन्होंने एक रथ देखा। रथमें गधे जुते हुए थे और उसपर एक आदमी बैठा हुआ था। गधे उसे एक हरे धानके खेतकी ओर लिये जा रहे थे। रास्तेमें मुनिको जाते हुए देखकर रथपर बैठे हुए मनुष्यने उन्हें पकड़ लिया और लगा वह उन्हें कष्ट पहुँचाने। मुनिने कुछ ज्ञानका क्षयोपशम होजानेसे एक खण्ड गाथा बनाकर पढ़ी। वह गाथा यह थी—

कट्टसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि
खादिदुमिति।

अर्थात्—रे गधो, कष्ट उठाओगे, तो तुम जव भी खा सकोगे।

इसी तरह एक दिन कुछ बालक खेल रहे थे। वहीं कोणिका भी न जाने किसी तरह पहुँच गई। उसे देखकर सब बालक डरे। उस समय कोणिका को देखकर यममुनिने एक और खण्ड गाथा बनाकर आत्माके प्रति कहा। वह गाथा यह थी—

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थणिबुद्धि
या छिद्दे अच्छई कोणिआ इति।

अर्थात्—दूसरी ओर क्या देखते हो ? तुम्हारी पत्थर सरीखी कठोर बुद्धिको छेदनेवाली कोणिका तो है।

एक दिन यम मुनिने एक मेंडकको एक कमल पत्रकी आड़में छुपे हुए सर्पकी ओर आते हुए देखा। देखकर वे मेंढकसे बोले—

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्हे ति।

अर्थात्—मुझे—मेरे आत्माको तो किसीसे भय नहीं है। भय है, तो तुम्हें।

बस, यममुनिने जो ज्ञान सम्पादन कर पाया, वह इतना था। वे इन्हीं तीन खण्ड गाथाओंका स्वाध्याय करते, पाठ करते और कुछ उन्हें आता नहीं था। इसी तरह पवित्रात्मा और धर्मानुयायी यममुनिने अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए धर्मपुरकी ओर आ निकले। वे शहर बाहर एक बगीचेमें कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे। उनके पीछे लौट आनेका हाल उनके पुत्र गर्दभ और राजमंत्री दीर्घ को ज्ञात हुआ। उन्होंने समझा कि ये हमसे पीछा राज्य लेनेको आये हैं। सो वे दोनों मुनिके मारनेका विचार कर आधीरातके समय वनमें गये। और तलवार खींचकर उनके पीछे खड़े हो गये। आचार्य कहते हैं कि—

धिक्राज्यं धिङ्मूर्खत्वं कातरत्वं च धिक्तराम्।
निस्पृहाच्च मुनेर्येन शंका राज्येऽभवत्तयोः॥

अर्थात्—ऐसे राज्यको, ऐसी मूर्खता और ऐसे डरपोंकपने को धिक्कार है, जिससे एक निस्पृह और संसारत्यागी मुनिके द्वारा राज्यके छिन जानेका उन्हें भय हुआ। गर्दभ और दीर्घ, मुनिकी हत्या करनेको तो आये पर उनकी हिम्मत उन्हें मारनेकी नहीं पड़ी। वे बारबार अपनी तलवारोंको म्यानमें रखने लगे और बाहर निकालने लगे। उसी समय यममुनिने अपनी स्वाध्यायकी पहली गाथा पढ़ी, जो कि ऊपर लिखी जा चुकी है। उसे सुनकर गर्दभने अपने मंत्रीसे कहा—जान पड़ता है मुनिने हम दोनोंको देख लिया। पर साथ ही

जब मुनिने आधी गाथा फिर पढ़ी तब उसने कहा—नहीं जी, मुनिराज राज्य लेनेको नहीं आये हैं। मैंने जो वैसा समझा वह मेरा भ्रम था। मेरी बहिन कोणिकाको प्रेमके वश कुछ कहनेको ये आये हुए जान पड़ते हैं। इसके बाद जब मुनिराजने तीसरी आधी गाथा भी पढ़ी तब उसे सुनकर गर्दभने अपने मनमें उसका यह अर्थ समझा कि "मंत्री दीर्घ बड़ा कूट है, और मुझे मारना चाहता है," यही बात पिताजी, प्रेमके वश हो तुझे कहकर सावधान करनेको आये हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद ही उसका यह सन्देह भी दूर हो गया। उन्होंने अपने हृदयकी सब दुष्टता छोड़कर बड़ी भक्तिके साथ पवित्र चारित्रके धारक मुनिराजको प्रणाम किया और उनसे धर्मका उपदेश सुना, जो कि स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है। उपदेश सुनकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद वे श्रावकधर्म ग्रहणकर अपने स्थान लौट गये।

इधर यमधरमुनि भी अपने चारित्रको दिन दूना निर्मल करने लगे, परिणामोंको वैराग्यकी ओर खूब लगाने लगे। उसके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें उन्हें सातों ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं।

अहा! नाममात्र ज्ञान द्वारा भी यममुनिराज बड़े ज्ञानी हुए—उन्होंने अपनी उन्नतिको अन्तिम सीढ़ीतक पहुँचा दिया। इसलिये भव्य पुरुषोंको संसारका हित करनेवाले जिन भगवान्के द्वारा उपदिष्ट सम्यग्ज्ञानकी सदा आराधना करना चाहिये।

देखो, यममुनिराजको बहुत थोड़ा ज्ञान था, पर उसकी उन्होंने बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ आराधना की। उसके प्रभावसे वे संसारमें प्रसिद्ध हुए, मुनियोंमें प्रधान और मान्य हुए और सातों

ऋद्धियाँ उन्हें प्राप्त हुईं। इसलिये सज्जन धर्मात्मा पुरुषोंको उचित है कि वे त्रिलोकपूज्य जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट, सब सुखोंका देनेवाला और मोक्ष-प्राप्तिका कारण अत्यन्त पवित्र सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करें।

२३—दृढ़सूर्यकी कथा।

लोकालोकके प्रकाश करनेवाले—केवलज्ञान द्वारा संसारके सब पदार्थोंको जानकर उनका स्वरूप कहनेवाले और देवेन्द्रादि द्वारा पूज्य श्रीजिनभगवान्को नमस्कार कर मैं दृढ़सूर्यकी कथा लिखता हूं, जो कि जीवोंको विश्वासकी देनेवाली है।

उज्जयिनीके राजा जिस समय धनपाल थे, उस समयकी यह कथा है। धनपाल उस समयके राजाओंमें एक प्रसिद्ध राजा थे। उनकी महारानीका नाम धनवती था। एक दिन धनवती अपनी सखियोंके साथ वसन्तश्री देखनेको उपवनमें गई। उसके गलेमें एक बहुत कीमती रत्नोंका हार पड़ा हुआ था। उसे वहीं आई हुई एक वसन्तसेना नामकी वेश्याने देखा। उसे देखकर उसका मन उसकी प्राप्तिके लिये आकुलित हो उठा। उसके बिना उसे अपना जीवन भी निष्फल जान पड़ने लगा। वह दुःखी होकर अपने घर लौटी। सारे दिन वह उदास रही। जब रातके समय उसका प्रेमी दृढ़सूर्य आया तब उसने उसे उदास देखकर पूछा—प्रिये, कहो! कहो! जल्दी कहो!! तुम आज अप्रसन्न कैसी? वसन्तसेनाने उसे अपने लिये इस प्रकार खेदित देखकर कहा—आज मैं उपवनमें गई

हुई थी। वहाँ मैंने राजरानीके गलेमें एक हार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। उसे आप लाकर दें तब ही मेरा जीवन रह सकता है और तब ही आप मेरे सच्चे प्रेमी हो सकते हैं।

दृढ़सूर्य हारके लिये चला। वह सीधा राजमहल पहुँचा। भाग्यसे हार उसके हाथ पड़ गया। वह उसे लिये हुए राजमहलसे निकला। सच है—लोभी, लपटी कौन काम नहीं करते ? उसे निकलते ही पहरेदारोंने पकड़ लिया। सबेरा होनेपर वह राजसभा में पहुँचाया गया। राजाने उसे शूलीकी आज्ञा दी। वह शूलीपर चढ़ाया गया। इसी समय धनदत्त नामके एक सेठ दर्शन करनेको जिनमन्दिर जा रहे थे। दृढ़सूर्यने उनके चेहरे और चालढालसे उन्हें दयालु समझकर उनसे कहा—सेठजी, आप बड़े जिनभक्त और दयावान् हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि मैं इस समय बड़ा प्यासा हूँ, सो आप कहींसे थोड़ासा जल लाकर मुझे पिलादें, तो आपका बड़ा उपकार हो। धनदत्तने उसकी भलाईकी इच्छासे कहा—भाई, मैं जल तो लाता हूँ, पर इस बीचमें तुम्हें एक बात करनी होगी। वह यह कि—मैंने कोई बारह वर्षके कठिन परिश्रम द्वारा अपने गुरुमहाराजकी कृपासे एक विद्या सीख पाई है, सो मैं तुम्हारे लिये जल लेनेको जाते समय कदाचित् उसे भूल जाऊँ तो उससे मेरा सब श्रम व्यर्थ जायगा और मुझे बहुत हानि भी उठानी पड़ेगी, इसलिये उसे मैं तुम्हें सौंप जाता हूँ। मैं जब जल लेकर आऊँ तब तुम मुझे वह पीछी लौटा देना। यह कहकर परोपकारी धनदत्त स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाला पंच नमस्कारमंत्र उसे सिखाकर आप जल लेनेको चला गया। वह जल लेकर वापिस लौटा, इतनेमें दृढ़सूर्यकी जान निकल गई—वह मर गया। पर वह मरा नमस्कारमंत्रका ध्यान करता हुआ। उसे सेठके इस कहनेपर पूर्ण विश्वास होगया था कि वह विद्या महाफलके देनेवाली है। नमस्कारमंत्रके प्रभावसे वह सौधर्म-स्वर्गमें जाकर देव हुआ। सच है—पंच नमस्कारमंत्रके प्रभावसे मनुष्यको क्या प्राप्त नहीं होता ?

इसी समय किसी एक दुष्टने राजासे धनदत्तकी शिकायत करदी कि, महाराज, धनदत्तने चोरके साथ कुछ गुप्त मंत्रणा की है, इसलिये उसके घरमें चोरीका धन होना चाहिये। नहीं तो एक चोरसे बातचीत करनेका उसे मतलब ? ऐसे दुष्टोंको और उनके दुराचारोंको धिक्कार है, जो व्यर्थ ही दूसरोंके प्राण लेनेके यत्नमें रहते हैं और परोपकार करनेवाले सज्जनोंको भी जो दुर्वचन कहते रहते हैं। राजा सुनते ही क्रोधके मारे आग बबूला हो गये। उन्होंने बिना कुछ सोचे विचारे धनदत्तको बाँध ले आनेके लिये अपने नौकरों को भेजा। इसी समय अवधिज्ञान द्वारा यह हाल सौधर्मेन्द्रको, जो कि दृढ़सूर्यका जीव था, मालूम हो गया। अपने उपकारीको कष्टमें फँसा देखकर वह उसी समय उज्जयिनीमें आया और स्वयं ही द्वार-पाल बनकर उसके घरके दरवाजेपर पहरा देने लगा। जब राज-नौकर धनदत्तको पकड़नेके लिये घरमें घुसने लगे तब देवने उन्हें रोका। पर जब वे हठ करने लगे और जबरन घरमें घुसने ही लगे तब देवने भी अपनी मायासे उन सबको एक क्षणभरमें धराशायी बना दिया। राजाने यह हाल सुनकर और भी बहुतसे अपने अच्छे अच्छे शूरवीरोंको भेजा, देवने उन्हें भी देखते देखते पृथ्वीपर लोटा दिया। इससे राजाका क्रोध अत्यन्त बढ़ गया। तब वे स्वयं अपनी

सेनाको लेकर धनदत्तपर आ चढ़े। पर उस एक ही देवने उनकी सारी सेनाको तीन तेरह कर दिया। यह देखकर राजा भयके मारे भागने लगे। उन्हें भागते हुए देखकर देवने उनका पीछा किया और वह उनसे बोला—आप कहीं नहीं भाग सकते। आपके जीनेका एक मात्र उपाय है, वह यह कि आप धनदत्तके आश्रय जाँय और उससे अपने प्राणोंकी भीख माँगें। बिना ऐसा किये आपकी कुशल नहीं। सुनकर ही राजा धनदत्तके पास जिनमन्दिर गये और उन्होंने सेठसे प्रार्थना की कि—धनदत्त, मेरी रक्षा करो! मुझे बचाओ! मैं तुम्हारे शरणमें प्राप्त हूँ। सेठने देवको पीछे ही आया हुआ देखकर कहा—तुम कौन हो? और क्यों हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हो? देवने अपनी माया समेटी और सेठको प्रणाम करके कहा—हे जिनभक्त सेठ, मैं वही पापी चोरका जीव हूँ, जिसे तुमने नमस्कारमंत्रका उपदेश दिया था। उसीके प्रभावसे मैं सौधर्मस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ हूँ। मैंने अवधिज्ञान द्वारा जब अपना पूर्वभवका हाल जाना तब मुझे ज्ञात हुआ कि इस समय मेरे उपकारीपर बड़ी आपत्ति आ रही है, इसलिये ऐसे समयमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिये और आपकी रक्षाके लिये मैं आया हूँ। यह सब माया मुझ सेवककी ही की हुई है। इस प्रकार सब हाल सेठसे कहकर और रत्नमय भूषणादिसे उसका यथोचित सत्कार कर देव स्वर्गमें चला गया। जिनभक्त धनदत्तकी परोपकारबुद्धि और दूसरोंके दुःख दूर करनेकी कर्त्तव्यपरता देखकर राजा वगैरहने उसका खूब आदर सम्मान किया। सच है—"धार्मिकः कैर्न पूज्यते" अर्थात् धर्मात्माका कौन सत्कार नहीं करता?

राजा और प्रजाके लोग इस प्रकार नमस्कारमंत्रका प्रभाव देखकर बहुत खुश हुए और पवित्र जिनशासनके श्रद्धानी हुए। इसी तरह धर्मात्माओंको भी उचित है कि वे अपने आत्महितके लिये भक्तिपूर्वक जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्ममें अपनी बुद्धिको स्थिर करें।

२४—यमपाल चांडालकी कथा।

मोक्ष-सुखके देनेवाले श्रीजिनभगवान्‌को धर्मप्राप्तिके लिये नमस्कार कर मैं एक ऐसे चाण्डालकी कथा लिखता हूँ, जिसकी कि देवों तकने पूजा की है।

काशीके राजा पाकशासनने एक समय अपनी प्रजाको महामारीसे पीड़ित देखकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि "नन्दीश्वर-पर्वमें आठ दिन पर्यन्त किसी जीवका वध न हो। इस राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला प्राणदंडका भागी होगा।" वहीं एक सेठपुत्र रहता था। उसका नाम तो था धर्म, पर असलमें वह महा अधर्मी था। वह सात व्यसनोंका सेवन करनेवाला था। उसे मांस खानेकी बुरी आदत पड़ी हुई थी। एक दिन भी बिना मांस खाये उससे नहीं रहा जाता था। एक दिन वह गुप्तरीतिसे राजाके बगीचेमें गया। वहाँ एक राजाका खास मेंढा बँधा करता था। उसने उसे मार डाला और उसके कच्चे ही मांसको खाकर वह उसकी हड्डियोंको एक गड्ढेमें गाड़ गया। सच है—

व्यसनेन युतो जीवः सत्यं पापपरो भवेत् ।
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—व्यसनी मनुष्य नियमसे पापमें सदा तत्पर रहा करते हैं। दूसरे दिन जब राजाने बगीचेमें मेंढा नहीं देखा और उसके लिये बहुत खोज करनेपर भी जब उसका पता नहीं चला, तब उन्होंने उसका शोध लगानेको अपने बहुतसे गुप्तचर नियुक्त किये। एक गुप्तचर राजाके बागमें भी चला गया। वहांका बागमाली रातको सोते समय सेठपुत्रके द्वारा मेंढेके मारे जानेका हाल अपनी स्त्रीसे कह रहा था, उसे गुप्तचरने सुन लिया। सुनकर उसने महाराजसे जाकर सब हाल कह दिया। राजाको इससे सेठपुत्रपर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने कोतवालको बुलाकर आज्ञा की कि, पापी धर्मने एक तो जीवहिंसा की और दूसरे राजाज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये उसे लेजाकर शूली चढ़ा दो। कोतवाल राजाज्ञाके अनुसार धर्मको शूलीके स्थानपर लिवा ले गया और नौकरोंको भेजकर उसने यमपाल चाण्डालको इसलिये बुलाया कि वह धर्मको शूलीपर चढ़ादे। क्योंकि यह काम उसीके सुपुर्द था। पर यमपालने एक दिन सर्वौषधिऋद्धिधारी मुनिराजके द्वारा जिनधर्मका पवित्र उपदेश सुनकर, जो कि दोनों भवोंमें सुखका देनेवाला है, प्रतिज्ञा की थी कि "मैं चतुर्दशीके दिन कभी जीवहिंसा नहीं करूंगा। इसलिये उसने राजनौकरोंको आते हुए देखकर अपने व्रतकी रक्षाके लिये अपनी स्त्रीसे कहा—प्रिये, किसीको मारनेके लिये मुझे बुलानेको राजनौकर आ रहे हैं, सो तुम उनसे कह देना कि घरमें वे नहीं हैं, दूसरे ग्राम गये हुए हैं। इस प्रकार वह चाण्डाल अपनी प्रियाको

समझाकर घरके एक कोनेमें छुप रहा। जब राजनौकर उसके घरपर आये और उनसे चाण्डालप्रियाने अपने स्वामीके बाहर चले जानेका समाचार कहा, तब नौकरोंने बड़े खेदके साथ कहा—हाय! वह बड़ा अभागा है। दैवने उसे धोका दिया। आज ही तो एक सेठपुत्रके मारनेका मौका आया था और आज ही वह चल दिया! यदि वह आज सेठपुत्रको मारता तो उसे उसके सब वस्त्राभूषण प्राप्त होते। वस्त्राभूषणका नाम सुनते ही चाण्डालिनीके मुँहमें पानी भर आया। वह अपने लोभके सामने अपने स्वामीका हानिलाभ कुछ नहीं सोच सकी। उसने रोनेका ढोंग बनाकर और यह कहते हुए, कि हाय वे आज ही गांवको चले गये, आती हुई लक्ष्मीको उन्होंने पाँवसे ठुकरादी, हाथके इशारेसे घरके भीतर छुपे हुए अपने स्वामीको बता दिया। सच है—

स्त्रीणां स्वभावतो माया किं पुनर्लोभकारणे ।
प्रज्वलन्नपि दुर्वह्निः किं वाते वाति दारुणे ॥
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—स्त्रियाँ एक तो वैसे ही मायाविनी होती हैं, और फिर लोभादिका कारण मिल जाय तब तो उनकी मायाका कहना ही क्या? जलती हुई अग्नि वैसे ही भयानक होती है और यदि ऊपरसे खूब हवा चल रही हो तब फिर उसकी भयानकताका क्या पूछना?

यह देख राजनौकरोंने उसे घर बाहर निकाला। निकलते ही निर्भय होकर उसने कहा—आज चतुर्दशी है और मुझे आज अहिंसाव्रत है, इसलिये मैं किसी तरह—चाहे मेरे प्राण ही क्यों

न जायें कभी हिंसा नहीं करूंगा। यह सुन नौकर लोग उसे राजाके पास लिवा ले गये। वहाँ भी उसने वैसा ही कहा। ठीक है—

यस्य धर्मे सुविश्वासः क्वापि भीतिं न याति स।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—जिसका धर्मपर दृढ़ विश्वास है, उसे कहीं भी भय नहीं होता। राजा सेठपुत्रके अपराधके कारण उसपर अत्यन्त गुस्सा हो ही रहे थे कि एक चाण्डालकी निर्भयपनेकी बातोंने उन्हें और भी अधिक क्रोधी बना दिया। एक चाण्डालको राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला और इतना अभिमानी देखकर उनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने उसी समय कोतवालको आज्ञा की कि जाओ, इन दोनोंको लेजाकर अपने मगर मच्छादि क्रूर जीवोंसे भरे हुए तालाबमें डाल आओ। वही हुआ। दोनोंको कोतवालने तालाबमें डलवा दिया। तालाबमें डालते ही पापी धर्मको तो जलजीवोंने खा लिया। रहा यमपाल, सो वह अपने जीवनकी कुछ परवा न कर अपने व्रतपालनमें निश्चल बना रहा। उसके उच्च भावों और व्रतके प्रभावसे देवोंने आकर उसकी रक्षा की। उन्होंने धर्मानुरागसे तालाबहीमें एक सिंहासनपर यमपाल चाण्डालको बैठाया, उसका अभिषेक किया और उसे खूब स्वर्गीय वस्त्राभूषण प्रदान किये—खूब उसका आदर सम्मान किया। जब राजा प्रजाको यह हाल सुन पड़ा, तो उन्होंने भी उस चाण्डालका बड़े आनन्द और हर्षके साथ सम्मान किया। उसे खूब धन दौलत दी। जिनधर्मका ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देखकर और और भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे स्वर्ग-मोक्षका

सुख देनेवाले जिनधर्ममें अपनी बुद्धिको लगावें। स्वर्गके देवोंने भी एक अत्यन्त नीच चाण्डालका आदर किया, यह देखकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको अपनी अपनी जातिका कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि पूजा जातिकी नहीं होती, किन्तु गुणोंकी होती है।

यमपाल जातिका चाण्डाल था, पर उसके हृदयमें जिन-धर्मकी पवित्र वासना थी, इसलिये देवोंने उसका सम्मान किया, उसे रत्नादिकोंके अलंकार प्रदान किये, अच्छे अच्छे वस्त्र दिये, उस-पर फूलोंकी वर्षा की। यह जिनभगवान्के उपदिष्ट धर्मका प्रभाव है, वे ही जिनेन्द्रदेव, जिन्हें कि स्वर्गके देव भी पूजते हैं, मुझे मोक्षश्री प्रदान करें। यह मेरी उनसे प्रार्थना है।

इति आराधना कथाकोश

[प्रथम भाग]

समाप्त

ॐ

आराधना कथाकोश

(दूसरा भाग)

२५–मृगसेन धीवर की कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्र के धारक श्री जिनेन्द्र भगवान को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर मैं अहिंसाव्रत का फल पाने वाले एक धीवर की कथा लिखता हूँ।

सब सन्देहों को मिटानेवाली, प्रीतिपूर्वक आराधना करने वाले प्राणियों के लिये सब प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाली, जिनेन्द्रभगवान की वाणी संसार में सदैव बनी रहे।

संसाररूपी अथाह समुद्र से भव्य पुरुषों को पार कराने के लिए पुल के समान ज्ञान के सिन्धु मुनिराज निरन्तर मेरे हृदय में विराजमान रहें।

इसप्रकार पंचपरमेष्ठी का स्मरण और मंगल करके कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए मैं अहिंसाव्रत की पवित्र कथा लिखता हूं। जिस अहिंसा का नाम ही जीवों को अभय प्रदान करने वाला है, उसका पालन करना तो निस्सन्देह सुख का कारण है। अतः दयालु पुरुषों को मन, वचन और कायसे संकल्पी हिंसा का परित्याग करना उचित है। बहुत से लोग अपने पितरों आदि की शांति के लिए श्राद्ध वगैरह में हिंसा करते हैं; बहुतसे देवताओं को सन्तुष्ट

करने के लिए उन्हें जीवों की बलि देते हैं और कितने ही महामारी, रोग आदि के मिट जाने के उद्देश्य से जीवों की हिंसा करते हैं; परन्तु यह हिंसा सुख के लिए न होकर दुःख के लिए ही होती है। हिंसा द्वारा जो सुख की कल्पना करते हैं, यह उनका अज्ञान ही है। पाप कर्म कभी सुख का कारण हो ही नहीं सकता। सुख है अहिंसा-व्रत के पालन करने में। भव्य जन! मैं आपको भव भ्रमण का नाश करने वाला तथा अहिंसाव्रत का माहात्म्य प्रकट करने वाली एक कथा सुनाता हूँ; आप ध्यान से सुनें।

अपनी उत्तम सम्पत्ति से स्वर्ग को नीचा दिखानेवाले सुरम्य अवन्तिदेश के अन्तर्गत शिरीष नामके एक छोटे से सुन्दर गाँव में मृगसेन नामका एक धीवर रहा करता था। अपने कन्धों पर एक बड़ा भारी जाल लटकाए हुए एक दिन वह मछलियाँ पकड़ने के लिए शिप्रा नदी की ओर जा रहा था। रास्ते में उसे यशोधर नामक मुनिराज के दर्शन हुए। उस समय अनेक राजा महाराजा-आदि उनके पवित्र चरणों की पर्युपासना कर रहे थे, मुनिराज जैन सिद्धान्त के मूल रहस्य स्याद्वाद के बहुत अच्छे विद्वान थे, जीवमात्र का उद्धार करने हेतु वे सदा कमर कसे तैयार रहते थे—जीवमात्र का उपकार करना ही एक मात्र उनका व्रत था, धर्मोपदेश रूपी अमृत से सारे संसार को उन्होंने संतुष्ट कर दिया था, अपने वचन रूपी प्रखर किरणों के तेज से उन्होंने मिथ्यात्वरूपी गाढ़ान्धकार को नष्ट कर दिया था, उनके पास वस्त्र वगैरह कुछ नहीं थे, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी इन तीन मौलिक रत्नों से वे अवश्य अलंकृत थे। मुनिराजको देखते ही उसके कोई ऐसा

पुण्य का उदय आया, जिससे उसके हृदयमें कोमलता ने अधिकार कर लिया। अपने कंधे पर से जाल हटा कर वह मुनिराज के समीप पहुँचा, बहुत भक्तिपूर्वक उनके चरणों में प्रणामकर उसने उनसे प्रार्थना की कि हे स्वामी! कामरूपी हाथी को नष्ट करने वाले हे केसरी!! मुझे भी कोई ऐसा व्रत दीजिए, जिससे मेरा जीवन सफल हो। ऐसी प्रार्थना कर विनय-विनीत मस्तक से वह मुनिराज के चरणों में बैठ गया। मुनिराज ने उसकी ओर देखकर विचार किया कि देखो! कैसे आज इस महाहिंसक के परिणाम कोमल होगए हैं और इसकी मनोवृत्ति व्रत लेने की हुई है। सत्य है—

युक्तं स्यात्प्राणिनां भावि शुभाशुभनिभं मनः।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—आगे जैसा अच्छा या बुरा होना होता है, जीवों का मन भी उसी अनुसार पवित्र या अपवित्र बन जाता है, अर्थात् जिसका भविष्यत् अच्छा होता है, उसका मन पवित्र हो जाता है और जिसका बुरा होनहार होता है उसका मन भी बुरा हो जाता है। इसके बाद मुनिराज ने अवधिज्ञान द्वारा मृगसेन के भावी जीवन पर जब विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि इसकी आयु अब बहुत कम रह गई है। यह देख उन्होंने करुणाबुद्धि से उसे समझाया कि हे भव्य! मैं तुझे एक बात कहता हूँ, तू जब तक जीए तब तक उसका पालन करना। वह यह कि तेरे जाल में पहली बार जो मछली आए उसे तू छोड़ देना और इस तरह जब तक तेरे हाथ से मरे हुए जीव का मांस तुझे प्राप्त न हो, तब तक तू पाप से मुक्त ही रहेगा। इसके अतिरिक्त मैं तुझे पंचनमस्कार मंत्र सिखाता हूं

जो प्राणी मात्र का हित करने वाला है, उसका तू सुखमें, दुःखमें, सरोग या नीरोग अवस्था में सदैव ध्यान करते रहना। मुनिराज के स्वर्ग-मोक्ष के देनेवाले इस प्रकार के वचनों को सुनकर मृगसेन बहुत प्रसन्न हुआ और उसने यह व्रत स्वीकार कर लिया। जो भक्तिपूर्वक अपने गुरुओं के वचनों को मानते हैं—उन पर विश्वास लाते हैं, उन्हें सब सुख मिलता है और वे परम्परा से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं।

व्रत लेकर मृगसेन नदी पर गया। उसने नदी में जाल डाला। भाग्य से एक बड़ा भारी मत्स्य उसके जाल में फँस गया। उसे देखकर धीवर ने विचारा—हाय! मैं निरन्तर ही तो महापाप करता हूँ और आज गुरु महाराज ने मुझे व्रत दिया है, भाग्य से आज ही इतना बड़ा मच्छ जाल में आ फँसा। पर जो कुछ हो, मैं तो इसे कभी नहीं मारूंगा। यह सोचकर व्रती मृगसेन ने अपने कपड़े की एक चिन्दी फाड़कर उस मत्स्य के कान में इसलिए बाँध दी कि यदि वही मच्छ दूसरी बार जाल में आ जाय तो मालूम हो जाए। इसके बाद वह उसे बहुत दूर जाकर नदी में छोड़ आया। सच है—मृत्यु पर्यन्त निर्विघ्न पालन किया हुआ व्रत सब प्रकार की उत्तम सम्पत्ति का देने वाला होता है।

वह फिर दूसरी ओर जाकर मछलियाँ पकड़ने लगा। पर भाग्य से इस बार भी वही मच्छ उसके जाल में आया। उसने उसे फिर छोड़ दिया। इस तरह उसने जितनी बार जाल डाला, उसमें वही वही मत्स्य आया पर उससे वह क्षुब्ध नहीं हुआ अपितु अपने व्रत की रक्षाके लिए खूब दृढ़ हो गया। उसे वहाँ इतना समय हो

गया कि सूर्य भी अस्त हो चला, पर उसके जाल में उस मत्स्य को छोड़कर और कोई मत्स्य नहीं आया। अन्तमें मृगसेन निरुपाय होकर घर की ओर लौट पड़ा। उसे अपने व्रत पर खूब श्रद्धा हो-गई। वह रास्ते भर गुरु महाराज द्वारा सिखाए पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण करता हुआ चला आया। जब वह अपने घर के दरवाजे पर पहुंचा तो उसकी स्त्री उसे खाली हाथ देखकर आग बबूला हो उठी उसने गुस्से से पूछा—रे मूर्ख! घर पर खाली हाथ तो चला आया, पर बतला तो सही कि खायगा क्या पत्थर? इतना कहकर वह घर के भीतर चली गई और गुस्से में उसने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए। सच है—छोटे कुल शील की स्त्रियों का अपने पति पर प्रेम, लाभ होते रहने पर ही अधिक होता है। अपनी स्त्रीका इस प्रकार दुर्व्यवहार देखकर बेचारा मृगसेन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी कुछ नहीं चली। उसे घर के बाहर ही रह जाना पड़ा। बाहर एक पुराना बड़ा भारी लकड़ा पड़ा हुआ था। मृगसेन निरुपाय होकर पंचनमस्कार मंत्र का ध्यान करता हुआ उसी पर सो गया। दिनभर के श्रम के कारण रात में वह तो भर नींद में सोया हुआ था कि उस लकड़े में से एक भयङ्कर और जहरीले सर्पने निकल कर उसे काट खाया। वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ।

प्रातः काल होने पर जब उसकी पत्नी ने मृगसेन की यह दुर्दशा देखी तो उसके दुःख का कोई ठिकाना नहीं रहा। वह रोने लगी, छाती कूटने लगी और अपने नीच कर्मका बारबार पश्चात्ताप करने लगी। उसका दुःख बढ़ता ही गया। उसने भी यह प्रतिज्ञा ली कि जो व्रत मेरे स्वामी ने ग्रहण किया था वही मैं भी ग्रहण

करती हूं और निदान किया कि "ये ही मेरे अन्य जन्म में भी स्वामी हों।" अनन्तर साहस करके वह भी अपने स्वामी के साथ अग्नि प्रवेश कर गई-इस प्रकार अपघातसे उसने अपनी जान गँवा दी।

विशाला नामकी नगरी में विश्वम्भर राजा राज्य करते थे। उनकी प्रियाका नाम विश्वगुणा था। वहीं एक सेठ रहते थे। गुणपाल उनका नाम था। उनकी स्त्रीका नाम धनश्री था। धनश्री के सुबन्धु नामकी एक अतिशय सुन्दरी और गुणवती कन्या थी। पुण्योदय से मृगसेन धीवर का जीव धनश्री के गर्भ में आया।

अपने नर्मधर्म नामक मंत्री के अत्यन्त आग्रह और प्रार्थना से राजा ने सेठ गुणपाल से आग्रह किया कि वह मंत्रीपुत्र नर्मधर्म के साथ अपनी पुत्री सुबन्धु का ब्याह कर दे। यह जानकर गुणपाल को बहुत दुःख हुआ। उसके सामने एक अत्यन्त कठिन समस्या उत्पन्न हुई। उसने विचारा कि पापी राजा, मेरी प्यारी सुन्दरी सुबन्धुका, जो कि मेरे कुलरूपी बगीचेपर प्रकाश डालनेवाली है, नीच कर्म करनेवाले नर्मधर्मके साथ ब्याह कर देनेको कहता है। उसने इस समय मुझे बड़ा संकटमें डाल दिया। यदि सुबन्धुका नर्मधर्मके साथ ब्याह कर देता हूँ, तो मेरे कुलका क्षय होता है और साथ ही अपयश होता है और यदि नहीं करता हूँ, तो सर्वनाश होता है—राजा न जाने क्या करेगा? प्राण भी बचे या नहीं बचे? आखिर उसने निश्चय किया जो कुछ हो, पर मैं ऐसे नीचोंके हाथ तो कभी अपनी प्यारी पुत्रीका जीवन नहीं सौंपूंगा—उसकी जिन्दगी बरबाद नहीं करूंगा। इसके बाद वह अपने श्रीदत्त मित्रके पास गया और उससे सब हाल कह कर तथा उसकी सम्मतिसे अपनी

गर्भिणी स्त्रीको उसीके घरपर छोड़कर आप रातके समय अपना कुछ धन और पुत्रीको साथ लिये वहांसे गुपचुप निकल खड़ा हुआ। वह धीरे धीरे कौशाम्बी आ पहुँचा। सच है—दुर्जनोंके सम्बन्धसे देश भी छोड़ देना पड़ता है।

श्रीदत्तके घरके पास ही एक श्रावक रहता था। एक दिन उसके यहाँ पवित्र चारित्रके धारक शिवगुप्त और मुनिगुप्त नामके दो मुनिराज आहारके लिये आये। उन्हें श्रावक महाशयने अपने कल्याणकी इच्छासे विधिपूर्वक आहार दिया, जो कि सर्वोत्तम सम्पत्तिकी प्राप्तिका कारण है। मुनिराजको आहार देकर उसने बहुत पुण्य उत्पन्न किया, जो कि दुःख दरिद्रता-आदिका नाश करनेवाला है। मुनिराज आहारके बाद जब वनमें जाने लगे तब उनमेंसे मुनिगुप्तकी नजर धनश्रीपर पड़ी, जो कि श्रीदत्तके आँगनमें खड़ी हुई थी। उस समय उसकी दशा अच्छी नहीं थी। बेचारी पति और पुत्रीके वियोगसे दुःखी थी, पराये घरपर रह कर अनेक दुःखोंको सहती थी, आभूषण वगैरह सब उसने उतार डालकर शरीरको शोभाहीन बना डाला था, कुकविकी रचनाके समान उसका सारा शरीर रूक्ष और श्रीहीन हो रहा था और इन सब दुःखोंके होनेपर भी वह गर्भिणी थी, इससे और अधिक दुर्व्यवस्थामें वह फँसी थी। उसे इस हालतमें देखकर मुनिगुप्तने शिवगुप्त मुनिराजसे कहा—प्रभो, देखिये तो इस बेचारीकी कैसी दुर्दशा हो रही है—कैसे भयंकर कष्टका इसे साम्हना करना पड़ा है? जान पड़ता है इसके गर्भमें किसी अभागे जीवने जन्म लिया है, इसीसे इसकी यह दीन हीन दशा हो रही है। सुनकर जैनसिद्धान्तके विद्वान् और अवधिज्ञानी

श्रीशिवगुप्तमुनि बोले—मुनिगुप्त, तुम यह न समझो कि इसके गर्भमें कोई अभागा आया है; किन्तु इतना अवश्य है कि इस समय उसकी अवस्था ठीक नहीं है और यह दुःखी है; परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इसके दिन फिरेंगे और पुण्यका उदय आवेगा। इसके यहाँ जिसका जन्म होगा, वह बड़ा महात्मा, जिनधर्मका पूर्ण भक्त और राजसम्मानका पात्र होगा। होगा तो वह वैश्यवंशमें पर उसका ब्याह इन्हीं विश्वंभर राजाकी पुत्रीके साथ होगा—राजवंश भी उसकी सेवा करेगा।

मुनिराजकी भविष्य वाणी पापी श्रीदत्तने भी सुनी। वह था तो धनश्रीके पति गुणपालका मित्र, पर अपने एक जातीय बन्धु-का उत्कर्ष होना उसे सह्य नहीं हुआ—उसका पापी हृदय मत्सरता के द्वेषसे अधीर हो उठा। उसने बालकको जन्मते ही मार डालनेका निश्चय किया। अबसे वह बाहर कहीं न जाकर बगुलेकी तरह सीधा साधा बनकर घरहीमें रहने लगा। सच है—

कारणेन विना वैरी दुर्जनः सुजनो भवेत्।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—दुर्जन-शत्रु विना कारणके भी सुजन—मित्र बन जाया करते हैं। सो पहले तो श्रीदत्त बेचारी धनश्रीको कष्ट दिया करता था और अब उसके साथ बड़ी सज्जनता का बर्ताव करने लगा। धनश्री सेठानीने समय पाकर पुत्रको प्रसव किया। वास्तवमें बालक बड़ा भाग्यशाली हुआ। वह उत्पन्न होते ही ऐसा तेजस्वी जान पड़ता था, मानो पुण्यसमूह हो। धनश्री पुत्रकी प्रसव वेदनासे मूर्छित हो गई। उसे अचेत देखकर पापी श्रीदत्तने अपने मनमें

सोचा—बालक प्रज्वलित अग्निकी तरह तेजस्वी है, अपनेको आश्रय देनेवालेका ही क्षय करनेवाला होगा, इसलिये इसका जीता रहना ठीक नहीं। यह विचार कर उसने अपने घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा यह प्रगट करवा कर, कि बालक मरा हुआ पैदा हुआ था, बालकको एक भंगीके हाथ सौंप दिया और उससे कह दिया कि इसे लेजाकर ही मार डालना। उचित तो यह था कि—

शत्रुजोपि न हन्तव्यो बालक किं पुनर्वृथा।
हा कष्टं किं न कुर्वन्ति दुर्जनाः फणिनो यथा॥

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—शत्रुका भी यदि बच्चा हो, तो उसे नहीं मारना चाहिये, तब दूसरोंके बच्चोंके सम्बन्धमें तो क्या कहें? परन्तु खेद है कि सर्पके समान दुष्ट पुरुष कोई भी बुरा काम करते नहीं हिचकते। चाण्डाल बच्चे को एकान्तमें मारनेको ले गया, पर जब उसने उजेलेमें उसे देखा तो उसकी सुन्दरताको देखकर उसे भी दया आ गई—करुणासे उसका हृदय भर आया। सो वह उसे न मारकर वहीं एक अच्छे स्थानपर रखकर अपने घर चला गया।

श्रीदत्तकी एक बहिन थी। उसका ब्याह इन्द्रदत्त सेठके साथ हुआ था। भाग्यसे उसके सन्तान नहीं हुई थी। बालकके पूर्व पुण्यके उदयसे इन्द्रदत्त माल बेचता हुआ इसी ओर आ निकला। जब वह गुवाल लोगोंके मोहल्लेमें आया तो उसने गुवालोंको परस्पर बातें करते हुए सुना कि "एक बहुत सुन्दर बालकको न जाने कोई अमुक स्थानकी सिलापर लेटा गया है, वह बहुत तेजस्वी है, उसके चारों ओर अपनी गायोंके बच्चे खेल रहे हैं और वह उनके बीचमें

बड़े सुखसे खेल रहा है।" उनकी बातें सुनकर ही इन्द्रदत्त बालकके पास आया। वह एक दूसरे बाल सूर्यको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसके कोई सन्तान तो थी ही नहीं, इसलिये बच्चे को उठाकर वह अपने घर ले आया और अपनी प्रियासे बोला—प्यारी राधा ? तुम्हें इसकी खबर भी नहीं कि तुम्हारे गूढ़गर्भसे अपने कुलका प्रकाशक पुत्र हुआ है ? और देखो वह यह है। इसे लेओ और पालो। आज अपना जीवन कृतार्थ हुआ। यह कहकर उसने बालकको अपनी प्रियाकी गोदमें रख दिया। बालककी खुशीके उपलक्षमें इन्द्रदत्तने खूब उत्सव किया। खूब दान दिया। सच है—

प्राणिनां पूर्वपुण्यानां मापदासम्पदायते।
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यवानोंके लिये विपत्ति भी सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। पापी श्रीदत्तको यह हाल मालूम हो गया। सो वह इन्द्रदत्तके घर आया और मायाचारसे उसने अपने बहनोई से कहा—देखोजी, हमारा भानजा बड़ा तेजस्वी है, बड़ा भाग्यवान् है, इसलिये उसे हम अपने घरपर ही रक्खेंगे। आप हमारी बहिन को भेज दीजिये। बेचारा इन्द्रदत्त उसके पापी हृदयकी बात नहीं जान पाया। इसलिये उसने अपने सीधे स्वभाव से अपनी प्रिया-को पुत्र सहित उसके साथ कर दिया। बहुत ठीक लिखा है—

अहो दुष्टाशयः प्राणी चित्तेऽन्यद्वचनेऽन्यथा।
कायेनान्यत्करोत्येव परेषां वचन महत्॥
[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—जिन लोगोंका हृदय दुष्ट होता है, उनके चित्तमें कुछ और रहता है, वचनोंसे वे कुछ और ही कहते हैं और शरीरसे कुछ और ही करते हैं। दूसरोंको ठगना—उन्हें धोखा देना ही एक मात्र ऐसे पुरुषोंका उद्देश्य रहता है। पापी श्रीदत्त भी एक ऐसा ही दुष्ट मनुष्य था। इसीलिए तो वह निरपराध बालकके खून का प्यासा हो उठा। उसने पहले की तरह फिर भी उसे मार डालने की इच्छा से एक चाण्डाल को बहुत कुछ लोभ देकर उसके हाथ सौंप दिया। चाण्डालने भी बालकको ले तो लिया पर जब उसने उसकी स्वर्गीय सुन्दरता देखी तो उसके हृदय में भी दया देवी आ विराजी। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि कुछ हो, मैं कभी इस बच्चेको न मारूंगा और इसे बचाऊंगा। वह अपना विचार श्रीदत्तसे नहीं कहकर बच्चेको लिवा ले गया। कारण श्रीदत्तकी पापवासना उसे कभी जिन्दा रहने न देगी, यह उसे उसकी बात-चीतसे मालूम हो गया था। चाण्डाल बच्चेको एक नदीके किनारे-पर लिवा ले गया। वहीं एक सुन्दर गुहा थी, जिसके चारों ओर वृक्ष थे। वह बालकको उस गुहामें रखकर अपने घरपर लौट आया।

संध्याका समय था। गुवाल लोग अपनी अपनी गायोंको घरपर लौटाये ला रहे थे। उनमेंसे कुछ गायें इस गुहाकी ओर आ गईं थी, जहाँ गुणपालका पुत्र अपने पूर्वपुण्यके उदयसे रक्षा पा रहा था। धायके समान उन गायोंने आकर उस बच्चेको घेर लिया। मानों बचा प्रेमसे अपनी माँकी ही गोदमें बैठा हो। बच्चेको देख-कर गायोंके थनोंमेंसे दूध झरने लग गया। गुवाल लोग प्रसन्नमुख बच्चेको गायोंसे घिरा हुआ और निर्भय खेलता हुआ देखकर बहुत

आश्चर्य करने लगे। उन्होंने जाकर अपनी जातिके मुखिया गोविन्दसे यह सब हाल कह सुनाया। गोविन्दके कोई संतान नहीं थी, इसलिये वह दौड़ा गया और बालकको उठा लाकर उसने अपनी सुनन्दा नामकी प्रियाको सौंप दिया। उसका नाम उसने धनकीर्ति रखा। वहींपर बड़े यत्न और प्रेम से उसका पालन व संरक्षण होने लगा। धनकीर्ति भी दिनों दिन बढ़ने लगा। वह ग्वालमहिलाओं के नेत्र-रूपी कुमुद पुष्पों को प्रफुल्लित करने वाला चन्द्रमा था। उसे देखकर उनके नेत्रों को बड़ी शांति मिलती थी। वह सब सामुद्रिक लक्षणों से युक्त था। उसे देखकर सबको बड़ा प्रेम होता था। वह अपनी रूप मधुरिमासे कामदेव जान पड़ता था, कान्तिसे चन्द्रमा, और तेजसे एक दूसरा सूर्य। जैसे जैसे उसकी सुन्दरता बढ़ती जाती थी, वैसे वैसे ही उसमें अनेक उत्तम उत्तम गुण भी स्थान पाते चले जाते थे।

एक दिन पापी श्रीदत्त घीकी खरीद करता हुआ इधर आ गया। उसने धनकीर्तिको देखकर पहिचान लिया। अपना सन्देह मिटानेको और भी दूसरे लोगोंसे उसने उसका हाल दर्याफ्त किया। उसे निश्चय हो गया कि यह गुणपालही का पुत्र है। तब उसने फिर उसके मारनेका षडयंत्र रचा। उसने गोविन्दसे कहा—भाई, मेरा एक बहुत जरूरी काम है, यदि तुम अपने पुत्र द्वारा उसे करा दो तो बड़ी कृपा हो। मैं अपने घरपर भेजनेके लिये एक पत्र लिखे देता हूँ, उसे यह पहुँचा आवे। बेचारे गोविन्दने कह दिया कि मुझे आपके कामसे कोई इन्कार नहीं है। आप लिख दीजिये, यह उसे दे आयगा। सच बात है—

अहो दुष्टस्य दुष्टत्वं लक्ष्यते केन वेगतः।

[ब्रह्म नेमिदत्त]

अर्थात्—दुष्टोंकी दुष्टताका पता जल्दीसे कोई नहीं पा सकता। पापी श्रीदत्तने पत्रमें लिखा—

"पुत्र महाबल,

जो तुम्हारे पास पत्र लेकर आ रहा है, वह अपने कुलका नाश करनेके लिये भयंकरतासे जलता हुआ मानों प्रलय कालकी अग्नि है—समर्थ होते ही यह अपना सर्वनाश कर देगा। इसलिए तुम्हें उचित है कि इसे गुप्तरीतिसे तलवार द्वारा वा मूसले से मार डालकर अपना कांटा साफ कर दो। काम बड़ी सावधानी से हो, जिसे कोई जान न पावे।"

पत्रको अच्छी तरह बन्द करके उसने कुमार धनकीर्त्तिको सौंप दिया। धनकीर्त्तिने उसे अपने गलेमें पड़े हुए हारसे बाँध लिया और सेठकी आज्ञा लेकर उसी समय वह वहाँसे निडर होकर चल दिया। वह धीरे धीरे उज्जयिनीके उपवनमें आ पहुँचा। रास्तेमें चलते चलते वह थक गया था। इसलिये थकावट मिटानेके लिये वह वहीं एक वृक्षकी ठंडी छायामें सो गया। उसे वहाँ नींद आ गई।

इतनेहीमें वहाँ एक अनंगसेना नामकी वेश्या फूल तोड़नेके लिये आई। वह बहुत सुन्दरी थी। अनेक तरहके मौलिक भूषण और वस्त्र वह पहरे थी। उससे उसकी सुन्दरता भी बेहद बढ़ गई थी। वह अनेक विद्या-कलाओंकी जाननेवाली और बड़ी विनोदिनी थी। उसने धनकीर्त्तिको एक वृक्षके नीचे सोता देखा। पूर्वजन्ममें

अपना उपकार करनेके कारणसे उसपर उसका बहुत प्रेम हुआ। उसके वश होकर ही उसे न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई जो उसने उसके गलेमें बँधे हुए श्रीदत्तके कागजको खोल लिया। पर जब उसने उसे बाँचा तो उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना न रहा। एक निर्दोष कुमारके लिये श्रीदत्तका ऐसा घोर पैशाचिक अत्याचारका हाल पढ़कर उसका हृदय काँप उठा। वह उसकी रक्षाके लिये घबरा उठी। वह भी थी बड़ी बुद्धिमती सो उसे झट एक युक्ति सूझ गई। उसने उस लिखावट को बड़ी सावधानीसे मिटाकर उसकी जगह अपनी आँखों में अंजे हुए काजल को पत्तों के रस से गीली की हुई सलाई से निकाल निकाल कर उसके द्वारा लिख दिया कि—

"प्रिये! यदि तुम मुझे सच्चा अपना स्वामी समझती हो, और पुत्र महाबल! तुम यदि वास्तवमें मुझे अपना पिता समझते हो तो इस पत्र लाने वाले के साथ श्रीमती का ब्याह शीघ्र कर देना। अपने को बड़े भाग्य से ऐसे वर की प्राप्ति हुई है। मैंने इसकी साख वगैरह सब अच्छी तरह देख ली हैं। कहीं कोई बाधा नहीं आती है। इस काम के लिए तुम मेरी भी अपेक्षा नहीं करना। कारण, सम्भव है मुझे आने में कुछ विलम्ब हो जाय। फिर ऐसा योग मिलना कठिन है। वरके मान सम्मान में तुम लोग किसी प्रकार की कमी मत रखना।"

इस प्रकार पत्र लिखकर अनंगसेनाने पहले की तरह उसे धनकीर्तिके गलेमें बाँध दिया अथवा यों कह लीजिये कि उसने धनकीर्ति को मानों जीवन प्रदान किया। इसके बाद वह अपने घरपर लौट आई।

अनंगसेनाके चले जाने के बाद धनकीर्ति की भी नींद खुली। वह उठा और श्रीदत्तके घर पहुँचा। उसने पत्र निकालकर श्रीदत्तकी स्त्रीके हाथमें सौंपा। पत्र को उसके पुत्र महाबलने भी पढ़ा। पत्र पढ़कर उन्हें बहुत खुशी हुई। धनकीर्ति का उन्होंने बहुत आदर-सम्मान किया तथा शुभ मुहूर्त्तमें श्रीमतीका ब्याह उसके साथ कर दिया। सच कहा है—

सम्भवेत्कृतपुण्यानां महापायेपि सत्सुखम्।

[ब्र० नेमिदत्त]

अर्थात्—पुण्यवान जीवोंको महासंकट के समय भी जीवन के नष्ट होने के कारणों के मिलने पर भी सुख प्राप्त होता है। यह हाल जब श्रीदत्तको ज्ञात हुआ, तो वह घबराकर उसी समय दौड़ा हुआ आया। उसने रास्तेमें ही धनकीर्तिको मार डालने की युक्ति सोचकर अपनी नगरी के बाहर पार्वतीके मन्दिरमें एक मनुष्य को इसलिए नियुक्त कर दिया कि मैं किसी बहाने से धनकीर्ति को रातके समय यहाँ भेजूंगा, सो उसे तुम मार डालना। इसके बाद वह अपने घर पर आया और एकान्तमें अपने जमाई को बुलाकर उसने कहा—देखोजी, मेरी कुल परम्परा में एक रीति चली आरही है, उसका पालन तुम्हें भी करना होगा। वह यह है कि नवविवाहित वर रात्रि के आरम्भमें उड़दके आटेके बनाए हुए तोता, काक, मुर्गा आदि जानवरों को लाल वस्त्रसे ढककर और कंकण पहने हुए हाथमें रखकर बड़े आदर के साथ शहर के बाहर पार्वतीके मंदिर में ले जाय और शान्ति के लिए उनकी बलि दे।

यह सुनकर धनकीर्ति बोला—जैसे आपकी आज्ञा। मुझे शिरोधार्य है। इसके बाद वह बलि लेकर घरसे निकला। शहरके बाहर पहुँचते ही उसे उसका साला महाबल मिला। महाबलने उससे पूछा—क्योंजी! ऐसे अंधकार में अकेले कहाँ जा रहे हो? उत्तरमें धनकीर्तिने कहा—आपके पिताजी की आज्ञा से मैं पार्वतीजी के मंदिरमें बलि देने के लिए जारहा हूँ। यह सुनकर महाबल बोला—आप बलि मुझे दे दीजिए, मैं चला जाता हूँ। आपके वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप घर पधारिए। धनकीर्तिने कहा—देखिए, इससे आपके पिताजी बुरा मानेंगे। इसलिए आप मुझे ही जाने दीजिए। महाबलने कहा—नहीं, मुझे बलि देनेकी सब विधि वगैरह मालूम है, इसलिए मैं ही जाता हूँ—यह कहकर उसने धनकीर्त्तिको तो घर लौटा दिया और आप दुर्गाके मन्दिर जाकर कालके घरका पाहुना बना। सच है—

पुण्यवानोंके लिए कालरूपी अग्नि जल हो जाती है, समुद्र स्थल हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है, विष अमृतके रूपमें परिणत हो जाता है, विपत्ति सम्पत्ति हो जाती है, और विघ्न डरके मारे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए बुद्धिमानोंको सदा पुण्यकर्म करते रहना चाहिए। पुण्य उत्पन्न करनेके कारण ये हैं—भक्तिसे भगवान् की पूजा करना, पात्रोंको दान देना, व्रत पालना, उपवासादिके द्वारा इन्द्रियोंको जीतना, ब्रह्मचर्य रखना, दुखियोंकी सहायता करना, विद्या पढ़ाना, पाठशाला खोलना, अर्थात् अपनेसे जहाँतक बन पड़े तनसे, मनसे और धनसे दूसरोंकी भलाई करना।

अपने पुत्रके मारे जानेकी जब श्रीदत्तको खबर हुई, तब वह

बहुत दुखी हुआ। पर फिर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसका हृदय अब प्रतिहिंसासे और अधिक जल उठा। उसने अपनी स्त्रीको एकान्तमें बुलाकर कहा—प्रिये, बतलाओ तो हमारे कुलरूपीवृक्षको जड़मूलसे उखाड़ फैंकनेवाले इस दुष्टकी हत्या कैसे हो? कैसे यह मारा जा सके? मैंने इसके मारनेको जितने उपाय किये, भाग्यसे वे सब व्यर्थ गये और उलटा उनसे मुझे ही अत्यन्त हानि उठानी पड़ी। सो मेरी बुद्धि तो बड़े असमंजसमें फँस गई है। देखो, कैसे अचंभे की बात है जो इसके मारनेके लिए जितने उपाय किये, उन सबसे रक्षा पाकर और अपना ही बैरी बना हुआ यह अपने घरमें बैठा है।

श्रीदत्तकी स्त्रीने कहा—बात यह है कि अब आप बूढ़े हो गये। आपकी बुद्धि अब काम नहीं देती। अब जरा आप चुप होकर बैठे रहें। मैं आपकी इच्छा बहुत जल्दी पूरी करूंगी। यह कह कर उस पापिनीने दूसरे दिन विष मिले हुए कुछ लड्डू बनाये और अपनी पुत्रीसे कहा—बेटी श्रीमती, देख मैं तो अब स्नान करनेको जाती हूँ और तू इतना ध्यान रखना कि ये जो उजले लड्डू हैं, उन्हें तो अपने स्वामीको परोसना और जो मैले हैं, उन्हें अपने पिताको परोसना। यह कहकर श्रीमतीकी माँ नहानेको चली गई। श्रीमती अपने पिता और पतिको भोजन करानेको बैठी। बेचारी श्रीमती भोलीभाली लड़की थी और न उसे अपनी माताका कूट-कपट ही मालूम था; इसलिए उसने अच्छे लड्डू अपने पिताके लिए ही परोसना उचित समझा, जिससे कि उसके पिताको अपने साम्हने श्रीमतीका बरताव बुरा न जान पड़े और यही एक कुलीन कन्याके

लिए उचित भी था। क्योंकि अपने मातापिता या बड़ोंके साम्हने ऐसा बेहयापनका काम अच्छी स्त्रियाँ नहीं करतीं। इसीलिये जो लड्डू उसके पतिके लिए उसकी मांने बनाये थे, उन्हें उसने पिता की थालीमें परोस दिया। सच है—"विचित्रा कर्मणां गतिः" अर्थात् कर्मोंकी गति विचित्र ही हुआ करती है।

विष मिले हुए लड्डूओं के खाते ही श्रीदत्त ने अपने किए कर्मका उपयुक्त प्रायश्चित पा लिया—वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ। ठीक ही कहा है कि पाप कर्म करने वालों का कभी कल्याण नहीं होता।

श्रीमती की माँ जब नहाकर लौटी और उसने अपने स्वामी को इसप्रकार मरा पाया तो उसके दुःख का कोई पार नहीं रहा। वह बहुत विलाप करने लगी—परन्तु अब क्या हो सकता था ! जो दूसरों के लिए कुआ खोदते हैं, उसमें पहले वे स्वयं ही गिरते हैं, यह संसारका नियम है। श्रीमती की माँ और पिता इसके उदाहरण हैं। इसलिए जो अपना बुरा नहीं चाहते उन्हें दूसरों का बुरा करने का कभी स्वप्नमें भी विचार नहीं करना चाहिए। अन्तमें श्रीमती की माताने अपनी पुत्रीसे कहा—हे पुत्री! तेरे पिताने और मैंने निर्दय होकर अपने हाथों ही अपने कुल का सर्वनाश किया। हमने दूसरे का अनिष्ट करने के जितने प्रयत्न किए वे सब व्यर्थ गए और अपने नीच कर्मोंका फल भी हमें हाथों हाथ मिल गया। अब जो तेरे पिताजी की गति हुई, वही मेरे लिए भी इष्ट है। अन्तमें मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तू और तेरे पति इस घरमें सुखशान्ति से रहें

जैसे इन्द्र अपनी प्रिया के साथ रहता है। इतना कहकर उसने भी जहरके लड्डुओं को खा लिया। देखते देखते उसकी आत्मा भी शरीर को छोड़ कर चली गई। ठीक है—दुर्बुद्धियों की ऐसी ही गति हुआ करती है। जो लोग दुष्ट हृदय बनकर दूसरों का बुरा सोचते हैं, उनका बुरा करते हैं, वे स्वयं अपना बुरा कर अन्तमें कुगतियों में जाकर अनन्त दुःख उठाते हैं। इस प्रकार धनकीर्ति पुण्य के प्रभावसे अनेक बड़ी बड़ी आपत्तियों से भी सुरक्षित रह कर सुख-पूर्वक जीवन यापन करने लगा।

जब महाराज विश्वम्भर को धनकीर्ति के पुण्य, उसकी प्रतिष्ठा तथा गुणशालीनताका परिचय मिला तो वे उससे बहुत खुश हुए और उन्होंने अपनी राजकुमारी का विवाह भी शुभ दिन देख कर बड़े ठाटबाट सहित उसके साथ कर दिया। धनकीर्ति को उन्होंने दहेज में बहुत धन सम्पत्ति दी, उसका खूब सम्मान किया तथा 'राज्य सेठ' के पद पर भी उसे प्रतिष्ठित किया। इस पर किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि संसारमें ऐसी कोई शुभ वस्तु नहीं जो जिनधर्म के प्रभाव से प्राप्त न होती हो।

गुणपाल को जब अपने पुत्र का हाल ज्ञात हुआ तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उसी समय कौशाम्बी से उज्जयिनीके लिए चला और बहुत शीघ्र अपने पुत्र से आ मिला। सबका फिर पुण्य-मिलाप हुआ। धनकीर्ति पुण्योदय से प्राप्त हुए भोगों को भोगता हुआ अपना समय सुखसे बिताने लगा। इससे कोई यह न समझले कि वह अब दिनरात विषयभोगोंमें ही फँसा रहता है, नहीं; उसका

अपने आत्मकल्याण की ओर भी पूरा ध्यान है। वह बड़ी सावधानी के साथ सुख देने वाले जिनधर्म की सेवा करता है, भगवान की प्रतिदिन पूजा करता है, पात्रों को दान देता है, दुःखी-अनाथोंकी सहायता करता है और सदा स्वाध्यायाध्ययन करता है। मतलब यह कि धर्म-सेवा और परोपकार करना ही उसके जीवनका एक मात्र लक्ष्य हो गया है। पुण्यके उदयसे जो प्राप्त होना चाहिए वह सब धनकीर्तिको इस समय प्राप्त है। इस प्रकार धनकीर्त्तिने बहुत दिनों तक खूब सुख भोगा और सबको प्रसन्न रखने की वह सदा चेष्टा करता रहा।

एक दिन धनकीर्तिका पिता गुणपाल सेठ अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, बन्धु, बान्धवको साथ लिए यशोध्वज मुनिराजकी वन्दना करनेको गया। भाग्यसे अनंगसेना भी इस समय पहुँच गई। संसार का उपकार करनेवाले उन मुनिराजकी सभी ने बड़ी भक्तिके साथ वन्दना की। इसके बाद गुणपालने मुनिराजसे पूछा—प्रभो, कृपाकर बतलाइए कि मेरे इस धनकीर्ति पुत्रने ऐसा कौन महापुण्य पूर्व जन्म में किया है, जिससे इसने इस बालपनमें ही भयंकरसे भयकर कष्टों पर विजय प्राप्त कर बहुत कीर्त्ति कमाई, खूब धन कमाया, और अच्छे अच्छे पवित्र काम किये, सुख भोगा, और यह बड़ा ज्ञानी हुआ, दानी हुआ तथा दयालु हुआ। भगवन्, इन सब बातोंको मैं सुनना चाहता हूँ।

करुणाके समुद्र और चार ज्ञानके धारी यशोध्वज मुनिराज ने, मृगसेन धीवरके अहिंसाव्रत ग्रहण करने, जालमें एक ही एक मच्छके बार बार आने, घरपर सूने हाथ लौट आने, स्त्रीके नाराज

होकर घरमें न आने देने, आदिकी सब कथा गुणपालसे कहकर कहा—वह मृगसेन तो अहिंसाव्रतके प्रभावसे यह धनकीर्त्ति हुआ, जो कि सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तिका मालिक और महाभव्य है; और मृगसेन की जो घण्टा नामकी स्त्री थी, वह निदान करके इस जन्ममें भी धनकीर्त्तिकी श्रीमती नामकी गुणवती स्त्री हुई है और जो मच्छ पाँच बार पकड़कर छोड़ दिया गया था, वह यह अनंगसेना हुई है, जिसने कि धनकीर्त्तिको जीवदान देकर अत्यन्त उपकार किया है, सेठ महाशय, यह सब एक अहिंसाव्रतके धारण करनेका फल है। और परम अहिंसामयी जिनधर्मके प्रसादसे सज्जनोंको क्या प्राप्त नहीं होता! मुनिराजके द्वारा इस सुखदायी कथाको सुनकर सब ही बहुत प्रसन्न हुए। जिनधर्म पर उनकी गाढ श्रद्धा होगई। अपने पूर्व भव का हाल सुनकर धनकीर्त्ति, श्रीमती और अनंगसेनाको जातिस्मरण हो गया। उससे उन्हें संसारकी क्षणस्थायी दशापर बड़ा वैराग्य हुआ। धर्माधर्मका फल भी उन्हें जान पड़ा। उनमें धनकीर्त्तिने तो, जिसका कि सुयश सारे संसारमें विस्तृत है, यशोध्वज मुनिराजके पास ही एक दूसरे मोहपाशकी तरह जान पड़ने वाले अपने केशकलापको हाथोंसे उखाड़ कर जिनदीक्षा ग्रहण करली, जो कि संसारके जीवोंका उद्धार करनेवाली है। साधु हो जानेके बाद धनकीर्त्तिने खूब निर्दोष तपस्या की, अनेक जीवोंको कल्याणके मार्गपर लगाया, जिनधर्मकी प्रभावना की, पवित्र रत्नत्रय प्राप्त किया और अन्तमें समाधिसहित मरकर सर्वार्थसिद्धिका श्रेष्ठ सुख लाभ किया। धनकीर्त्ति आगे केवली होकर मुक्ति प्राप्त करेगा। और और ऋषियोंने भी अहिंसाव्रतका फल लिखते समय धनकीर्त्ति

की प्रशंसामें लिखा है—"धनकीर्त्तिने पूर्व भवमें एक मच्छको पाँच वार छोड़ा था, उसके फलसे वह स्वर्गीयश्रीका स्वामी हुआ।" इसलिए आत्महितकी इच्छा करनेवालोंको यह व्रत मन, वचन, कायकी पवित्रतापूर्वक निरन्तर पालते रहना चाहिए।

धनकीर्त्तिको दीक्षित हुआ देखकर श्रीमती और अनंगसेनाने भी हृदयसे विषयवासनाको दूरकर अपने योग्य जिनदीक्षा ग्रहण करली, जो कि सब दुःखोंकी नाश करनेवाली है। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार तपस्या कर उन दोनोंने भी मृत्युके अन्तमें स्वर्ग प्राप्त किया। सच है—जिनशासनकी आराधना कर किस किसने सुख प्राप्त न किया! अर्थात् जिसने जिनधर्म ग्रहण किया उसे नियमसे सुख मिला है।

इस प्रकार मुझ अल्पबुद्धिने धर्म-प्रेमके वश हो यह अहिंसाव्रतकी पवित्र कथा जैनशास्त्रके अनुसार लिखी है। यह सब सुखोंकी देनेवाली माता है और विघ्नोंको नाश करनेवाली है। इसे आप लोग हृदयमें धारण करें। वह इसलिए कि इसके द्वारा आपको शान्ति प्राप्त होगी।

मूलसंघके प्रधान प्रवर्तक श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें मल्लिभूषण गुरु हुए। वे ज्ञानके समुद्र थे। उनके शिष्य श्रीसिंहनन्दी मुनि हुए। वे बड़े आध्यात्मिक विद्वान् थे। उन्हें अच्छे अच्छे परमार्थवित्—अध्यात्मशास्त्रके जानकार विद्वान् नमस्कार करते थे। वे सिंहनन्दी मुनि आपके लिए संसार-समुद्रसे पार करनेवाले होकर

संसारमें चिरकाल तक बढ़ें—उनका यशःशरीर बहुत समय तक प्रकाशित रहे।

२६—वसुराजाकी कथा।

संसारके बन्धु और देवों द्वारा पूज्य श्रीजिनेन्द्रको नमस्कार कर झूठ बोलनेसे नष्ट होनेवाले वसुराजा का चरित्र मैं लिखता हूँ।

स्वस्तिकावती नामकी एक सुन्दर नगरी थी। उसके राजाका नाम विश्वावसु था। विश्वावसुकी रानी श्रीमती थी। उसके एक वसु नामका पुत्र था।

वहीं एक क्षीरकदम्ब उपाध्याय रहता था। वह बड़ा सुचरित्र और सरल-स्वभावी था। जिन भगवान्का वह भक्त था और होम, शान्ति-विधान आदि जैन क्रियाओं द्वारा गृहस्थोंके लिए शान्ति-सुखार्थ अनुष्ठान करना उसका काम था। उसकी स्त्रीका नाम स्वस्तिमती था। उसके पर्वत नामका एक पुत्र था। भाग्यसे वह पापी और दुर्व्यसनी हुआ। कर्मोंकी कैसी विचित्र स्थिति है जो पिता तो कितना धर्मात्मा और सरल और उसका पुत्र दुराचारी। इसी समय एक विदेशी ब्राह्मण नारद, जो कि निरभिमानी और सच्चा जिनभक्त था, क्षीरकदम्बके पास पढ़नेके लिए आया। राजकुमार वसु, पर्वत और नारद ये तीनों एक साथ पढ़ने लगे। वसु और नारदकी बुद्धि अच्छी थी, सो वे तो थोड़े ही समयमें अच्छे विद्वान् हो गये। रहा पर्वत सो एक तो उसकी बुद्धि ही खराब,

उस पर पापके उदयसे उसे कुछ नहीं आता-जाता था। अपने पुत्रकी यह हालत देखकर उसकी माताने एक दिन अपने पतिसे गुस्सा होकर कहा—जान पड़ता है, आप बाहरके लड़कोंको तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं और खास अपने पुत्र पर आपका ध्यान नहीं है—उसे आप अच्छी तरह नहीं पढ़ाते। इसीलिए उसे इतने दिन तक पढ़ते रहने पर भी कुछ नहीं आया। क्षीरकदम्बने कहा—इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है। मैं तो सबके साथ एकहीसा श्रम करता हूँ। तुम्हारा पुत्र ही मूर्ख है, पापी है, वह कुछ समझता ही नहीं। बोलो, अब इसके लिए मैं क्या करूं? स्वस्तिमतीको इस बात पर विश्वास हो, इसलिए उसने तीनों शिष्यों को बुलाकर कहा—पुत्रो, देखो तुम्हें यह एक एक पाई दी जाती है, इसे लेकर तुम बाजार जाओ; और अपने बुद्धिबलसे इसके द्वारा चने लेकर खा आओ और पाई पीछी वापिस भी लौटा लाओ। तीनों गये। उनमें पर्वत एक जगहसे चने मोल लेकर और वहीं खा—पीकर सूने हाथ घर लौट आया। अब रहे वसु और नारद, सो इन्होंने पहले तो चने मोल लिये और फिर उन्हें इधर उधर घूमकर बेचा, जब उनकी पाई वसूल हो गई तब बाकी बचे चनोंको खाकर वे लौट आये। आकर उन्होंने गुरुजीकी अमानत उन्हें वापिस सौंप दी। इसके बाद क्षीरकदम्बने एक दिन तीनोंको आटेके बने हुए तीन बकरे देकर उनसे कहा—देखो, इन्हें ले जाकर और जहाँ कोई न देख पाये ऐसे एकान्त स्थान में इनके कानोंको छेद लाओ। गुरुकी आज्ञानुसार तीनों फिर इस नये कामके लिए गये। पर्वतने तो एक जंगलमें जाकर बकरेका कान छेद डाला। वसु और नारद बहुत जगह गये, सर्वत्र उन्होंने एकान्त

स्थान ढूंढ डाला, पर उन्हें कहीं उनके मनलायक स्थान नहीं मिला। अथवा यों कहिए कि उनके विचारानुसार एकान्त स्थान कोई था ही नहीं। वे जहाँ पहुँचते और मनमें विचार करते वहीं उन्हें चन्द्र, सूर्य, तारा, देव, व्यन्तर, पशु, पक्षी और अवधिज्ञानी मुनि आदि जान पड़ते। वे उस समय यह विचार कर, कि ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहाँ कोई न देखता हो, वापिस घर लौट आये। उन्होंने उन बकरोंके कानोंको नहीं छेदा। आकर उन्होंने गुरुजीको नमस्कार किया और अपना सब हाल उनसे कह सुनाया। सच है—बुद्धि कर्मके अनुसार ही हुआ करती है। उनकी बुद्धिकी इस प्रकार चतुरता देखकर उपाध्यायजीने अपनी प्रियासे कहा—क्यों देखी सबकी बुद्धि और चतुरता? अब कहो, दोष मेरा या पर्वतके भाग्यका?

एक दिनकी बात है कि वसुसे कोई ऐसा अपराध बन गया, जिससे उपाध्यायने उसे बहुत मारा। उस समय स्वस्तिमतीने बीचमें पड़कर वसुको बचा लिया। वसुने अपनी बचानेवाली गुरुमातासे कहा—माता, तुमने मुझे बचाया इससे मैं बड़ा उपकृत हुआ। कहो तुम्हें क्या चाहिए? वही लाकर मैं तुम्हें प्रदान करूं। स्वस्तिमतीने उत्तरमें राजकुमारसे कहा—पुत्र, इस समय तो मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जब होगी तब माँगूंगी। तू मेरे इस वरको अभी अपने ही पास रख।

एक दिन क्षीरकदम्बके मनमें प्रकृतिकी शोभा देखनेके लिए उत्कंठा हुई। वह अपने साथ तीनों शिष्योंको भी इसलिए लिवा ले गया कि उन्हें वहीं पाठ भी पढ़ा दूंगा। वह एक सुन्दर

बगीचेमें पहुंचा। वहाँ कोई अच्छा पवित्र स्थान देखकर वह अपने शिष्योंको बृहदारण्यका पाठ पढ़ाने लगा। वहीं और दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमेंसे छोटे मुनिने क्षीरकदम्बको पाठ पढ़ाते देखकर बड़े मुनिराजसे कहा—प्रभो, देखिए कैसे पवित्र स्थानमें उपाध्याय अपने शिष्योंको पढ़ा रहा है! गुरुने कहा—अच्छा है, पर देखो, इनमेंसे दो तो पुण्यात्मा हैं और वे स्वर्गमें जाँयगे और दो पापके उदयसे नर्कोंके दुःख सहेंगे। सच है—

कर्मोंके उदयसे जीवोंको सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। मुनिके वचन क्षीरकदम्बने सुन लिये। वह अपने विद्यार्थियोंको घर भेजकर मुनिराजके पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—हे भगवन्, हे जैनसिद्धान्तके उत्तम विद्वान्, कृपाकर मुझे कहिए कि हममेंसे कौन दो तो स्वर्ग जाकर सुखी होंगे और कौन दो नर्क जायेंगे? कामके शत्रु मुनिराजने क्षीरकदम्बसे कहा—भव्य, स्वर्ग जानेवालोंमें एक तो तू जिनभक्त और दूसरा धर्मात्मा नारद है और वसु तथा पर्वत पापके उदयसे नर्क जायँगे। क्षीरकदम्ब मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर आया। उसे इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि उसका पुत्र नरकमें जायगा। क्योंकि मुनियोंका कहा अनन्तकालमें भी झूठा नहीं होता।

एक दिन कोई ऐसा कारण देख पड़ा, जिससे वसुके पिता विश्वावसु अपना राज—काज वसुको सौंपकर आप साधु होगये। राज्य अब वसु करने लगा। एक दिन वसु वन-विहारके लिए उपवनमें गया हुआ था। वहाँ उसने आकाशसे लुढ़क कर गिरते हुए

एक पक्षीको देखा। देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने सोचा पक्षीके लुढ़कते हुए गिरनेका कोई कारण यहां अवश्य होना चाहिए। उसकी शोध लगानेको जिधरसे पक्षी गिरा था उधर ही लक्ष्य बाँधकर उसने बाण छोड़ा। उसका लक्ष्य व्यर्थ न गया। यद्यपि उसे यह नहीं जान पड़ा कि क्या गिरा, पर इतना उसे विश्वास हो गया कि उसके बाणके साथ ही कोई भारी वस्तु गिरी जरूर है। जिधरसे किसी वस्तुके गिरनेकी आवाज उसे सुन पड़ी थी वह उधर ही गया पर तब भी उसे कुछ नहीं देख पड़ा। यह देख उसने उस भागको हाथों से टटोलना शुरू किया। हस्तस्पर्शसे उसे एक बहुत निर्मल खम्भा, जो कि स्फटिक-मणिका बना था, जान पड़ा। वसुराजा उसे गुप्तरीतिसे अपने महल पर ले आया। वसुने उस खम्भेके चार पाये बनवाये और उन्हें अपने न्याय-सिंहासनके लगवा दिये। उन पायोंके लगनेसे सिंहासन ऐसा जान पड़ने लगा मानों वह आकाशमें ठहरा हुआ हो। धूर्त वसु अब उसी पर बैठकर राज्यशासन करने लगा। उसने सब जगह यह प्रगट कर दिया कि "राजा वसु बड़ा ही सत्यवादी है, उसकी सत्यताके प्रभावसे उसका न्यायसिंहासन आकाशमें ठहरा हुआ है।" इस प्रकार कपटकी आड़में वह अब सर्वसाधारणके बहुत ही आदरका पात्र हो गया। सच है—

मायावी पुरुष संसारमें क्या ठगाई नहीं करते! इधर सम्यग्दृष्टि, जिनभक्त क्षीरकदम्ब संसारसे विरक्त होकर तपस्वी होगया और अपनी शक्तिके अनुसार तपस्या कर अन्तमें समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग लाभ किया। पिताका उपाध्याय पद अब पर्वतको मिला। पर्वतको जितनी बुद्धि थी, जितना ज्ञान था, उसके

अनुकूल वह पिताके विद्यार्थियोंको पढ़ाने लगा। उसी वृत्तिके द्वारा उसका निर्वाह होता था। क्षीरकदम्बके साधु हुए बाद ही नारद भी वहाँसे कहीं अन्यत्र चल दिया। वर्षों तक नारद विदेशोंमें घूमा किया। घूमते फिरते वह फिर भी एकबार स्वस्तिपुरीकी ओर आ निकला। वह अपने सहाध्यायी और गुरुपुत्र पर्वतसे मिलनेको गया। पर्वत उस समय अपने शिष्योंको पढ़ा रहा था। साधारण कुशल प्रश्नके बाद नारद वहीं बैठ गया और पर्वतका अध्यापन कार्य देखने लगा। प्रकरण कर्मकाण्डका था। वहाँ एक श्रुति थी—"अजैर्यष्टव्यमिति।" दुराग्रही पापी पर्वतने उसका अर्थ किया कि "अजैश्छागैः प्रयष्टव्यमिति" अर्थात्—बकरोंकी बलि देकर होम करना चाहिए। उसमें बाधा देकर नारदने कहा—नहीं; इस श्रुति का यह अर्थ नहीं है। गुरुजीने तो हमें इसका अर्थ बतलाया था कि "अजैस्त्रिवार्षिकैर्धान्यैः प्रयष्टव्यम्" अर्थात—तीन वर्षके पुराने धानसे, जिसमें उत्पन्न होनेकी शक्ति न हो, होम करना चाहिए। पापी, तू यह क्या अनर्थ करता है जो उलटा ही अर्थ कर दिया? उस पर पापी पर्वतने दुराग्रहके वश हो यही कहा कि नहीं, तुम्हारा कहना सर्वथा मिथ्या है। असलमें 'अज' शब्दका अर्थ बकरा ही होता है और उसीसे होम करना चाहिए। ठीक कहा है—

जिसे दुर्गतिमें जाना होता है, वही पुरुष जानकर भी ऐसा झूठ बोलता है।

तब दोनोंमें सच्चा कौन है, इसके निर्णयके लिए उन्होंने राजा वसुको मध्यस्थ चुना। उन्होंने परस्परमें प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठ हो उसकी जबान काट दी जाय। पर्वतकी माँको जब इस विवादका और परस्परकी प्रतिज्ञाका हाल मालूम हुआ तब उसने पर्वतको बुलाकर बहुत डाँटा और गुस्सेमें आकर कहा—पापी, तूने यह क्या अनर्थ किया? क्यों उस श्रुतिका उलटा अर्थ किया? तुझे नहीं मालूम कि तेरा पिता जैनधर्मका पूर्ण श्रद्धानी था और वह 'अजैर्यष्टव्यम्' इसका अर्थ तीन वर्षके पुराने धानसे होम करनेका करता था। और स्वयं भी वह पुराने धानहीसे सदा होमादिक किया करता था। स्वस्तिमतीने उसे और भी बहुत फटकारा, पर उसका फल कुछ नहीं निकला। पर्वत अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बना रहा। पुत्रका इस प्रकार दुराग्रह देखकर वह अधीर हो उठी। एक ओर पुत्रके अन्याय-पक्षका समर्थन होकर सत्यकी हत्या होती है और दूसरी ओर पुत्र-प्रेम उसे अपने कर्तव्यसे विचलित करता है। अब वह क्या करे? पुत्र-प्रेममें फँसकर सत्यकी हत्या करे या उसकी रक्षा कर अपना कर्त्तव्य पालन करे? वह बड़े संकटमें पड़ी। आखिर दोनों शक्तियोंका युद्ध होकर पुत्र-प्रेमने विजय प्राप्त कर उसे अपने कर्त्तव्य पथसे गिरा दिया—सत्यकी हत्या करनेको उसे सन्नद्ध किया। वह उसी समय वसुके पास पहुंची और उससे बोली—पुत्र, तुम्हें याद होगा कि मेरा एक वर तुमसे पाना बाकी है। आज उसकी मुझे जरूरत पड़ी है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञाका निर्वाह कर मुझे कृतार्थ करो। बात यह है—पर्वत और नारदका किसी विषय पर झगड़ा होगया है। उसके निर्णयके लिए उन्होंने तुम्हें मध्यस्थ चुना है। इसलिये मैं तुम्हें कहनेको आई हूँ कि तुम पर्वतके पक्षका समर्थन करना। सच है—

जो स्वयं पापी होते हैं वे दूसरोंको भी पापी बना डालते हैं। जैसे सर्प स्वयं जहरीला होता है और जिसे काटता है उसे भी विषयुक्त कर देता है। पापियोंका यह स्वभाव ही होता है।

राजसभा लगी हुई थी। बड़े बड़े कर्मचारी यथा स्थान बैठे हुए थे। राजा वसु भी एक बहुत सुन्दर रत्न-जड़े सिंहासन पर बैठा हुआ था। इतनेमें पर्वत और नारद अपना न्याय करानेके लिए राजसभामें आये। दोनोंने अपना अपना कथन सुनाकर अन्तमें किसका कहना सत्य है और गुरुजीने अपनेको "अजैर्यष्टव्यम्" इसका क्या अर्थ समझाया था, इसका खुलासा करनेका भार वसु पर छोड़ दिया। वसु उक्त वाक्यका ठीक अर्थ जानता था और यदि वह चाहता तो सत्यकी रक्षा कर सकता था, पर उसे अपनी गुराणीजीके माँगे हुए वरने सत्यमार्गसे ढकेल कर आग्रही और पक्षपाती बना दिया। मिथ्या आग्रहके वश हो उसने अपनी मानमर्यादा और प्रतिष्ठाकी कुछ परवा न कर नारदके विरुद्ध फैसला दिया। उसने कहा कि जो पर्वत कहता है वही सत्य है और गुरुजीने हमें ऐसा ही समझाया था कि "अजैर्यष्टव्यम्" इसका अथ बकरोंको मार कर उनसे होम करना चाहिए। प्रकृतिको उसका यह महा अन्याय सहन नहीं हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि राजा वसु जिस स्फटिकके सिंहासन पर बैठकर प्रति दिन राजकार्य करता था और लोगोंको यह कहा करता था कि मेरे सत्यके प्रभावसे मेरा सिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है, वही सिंहासन वसुकी असत्यतासे टूट पड़ा और पृथ्वीमें घुस गया। उसके साथ ही वसु भी पृथ्वीमें जा धँसा। यह

देख नारदने उसे समझाया—महाराज, अब भी सत्य सत्य कह दीजिए, गुरुजीने जैसा अर्थ कहा था वह प्रगट कर दीजिए। अभी कुछ नहीं गया। सत्यव्रत आपकी इस संकटसे अवश्य रक्षा करेगा। कुगतिमें व्यर्थ अपने आत्माको न ले जाइए। अपनी इस दुर्दशा पर भी वसुको दया नहीं आई। वह और जोशमें आकर बोला—नहीं, जो पर्वत कहता है वही सत्य है। इतना उसका कहना था कि उसके पापके उदयने उसे पृथिवीतलमें पहुँचा दिया। वसु कालके सुपुर्द हुआ। मरकर वह सातवें नरकमें गया। सच है जिनका हृदय दुष्ट और पापी होता है उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। और अन्तमें उन्हें कुगतिमें जाना पड़ता है। इस लिए जो अच्छे पुरुष हैं और पापसे बचना चाहते हैं उन्हें प्राणोंपर कष्ट आने पर भी कभी झूठ न बोलना चाहिए। पर्वतकी यह दुष्टता देखकर प्रजाके लोगोंने उसे गधे पर बैठा कर शहरसे निकाल बाहर किया और नारदका बहुत आदर-सत्कार किया।

नारद अब वहीं रहने लगा। वह बड़ा बुद्धिमान् और धर्मात्मा था। सब शास्त्रोंमें उसकी गति थी। वह वहाँ रहकर लोगों को धर्मका उपदेश दिया करता, भगवान्की पूजा करता, पात्रोंको दान देता। उसकी यह धर्मपरायणता देखकर वसुके बाद राज्य-सिंहासन पर बैठनेवाला राजा उस पर बहुत खुश हुआ। उस खुशीमें उसने नारदको गिरितट नामक नगरीका राज्य भेंटमें दे दिया। नारदने बहुत समय तक उस राज्यका सुख भोगा। अन्तमें संसारसे उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण करली। मुनि होकर उसने अनेक जीवोंको कल्याणके मार्गमें लगाया और तपस्या द्वारा

पवित्र रत्नत्रयकी आराधना कर आयुके अन्तमें वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुखका स्थान है। सच है, जैनधर्मकी कृपासे भव्य पुरुषोंको क्या प्राप्त नहीं होता ?

निरभिमानी नारद अपने धर्म पर बड़ा दृढ़ था। उसने समय समय पर और और धर्मवालोंके साथ शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त कर जैनधर्मकी खूब प्रभावना की। वह जिनशासनरूप महान् समुद्रके बढ़ानेवाला चन्द्रमा था। ब्राह्मणवंशका एक चमकता हुआ रत्न था। अपनी सत्यताके प्रभावसे उसने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करली थी। अन्तमें वह तपस्या कर सर्वार्थसिद्धि गया। वह महात्मा नारद सबका कल्याण करे।

२७–श्रीभूति–पुरोहितकी कथा।

जिन्हें स्वर्गके देवता बड़ी भक्तिके साथ पूजते हैं, उन सुखके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कार कर मैं श्रीभूति पुरोहितका उपाख्यान कहता हूँ, जो चोरी करके दुर्गतिमें गया है।

सिंहपुर नामका एक सुन्दर नगर था। उसका राजा सिंहसेन था। सिंहसेनकी रानीका नाम रामदत्ता था। राजा बुद्धिमान् और धर्मपरायण था। रानी भी बड़ी चतुर थी। सब कामोंको वह उत्तमताके साथ करती थी। राजपुरोहित श्रीभूति था। उसने मायाचारीसे अपने सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध कर रक्खी थी कि मैं बड़ा सत्य बोलनेवाला हूँ। बेचारे भोले लोग उस कपटीके विश्वासमें

आकर अनेक बार ठगे जाते थे। पर उसके कपटका पता किसीको नहीं पड़ पाता था। ऐसे ही एक दिन एक विदेशी उसके चंगुलमें आ फँसा। इसका नाम समुद्रदत्त था। यह पद्मखण्डपुरका रहनेवाला था। इसके पिता सुमित्र और माता सुमित्रा थी। समुद्रदत्तकी इच्छा एक दिन व्यापारार्थ विदेश जाने की हुई। इसके पास पाँच बहुत कीमती रत्न थे। पद्मखण्डपुरमें कोई ऐसा विश्वस्त पुरुष इसके ध्यान में नहीं आया, जिसके पास यह अपन रत्नोंको रखकर निश्चित हो सकता था। इसने श्रीभूतिकी प्रसिद्धि सुन रक्खी थी। इसलिए उसके पास रत्न रखनेका विचार कर यह सिंहपुर आया। यहाँ श्रीभूतिसे मिलकर इसने अपना विचार उसे कह सुनाया। श्रीभूतिने इसके रत्नोंका रखना स्वीकार कर लिया। समुद्रदत्तको इससे बड़ी खुशी हुई और साथ ही वह उन रत्नोंको श्रीभूतिको सौंपकर आप रत्नद्वीपके लिए रवाना होगया। वहाँ कई दिनों तक ठहर कर इसने बहुत धन कमाया। जब यह वापिस लौटकर जहाज द्वारा अपने देशकी ओर आ रहा था तब पापकर्मके उदयसे इसका जहाज टकरा कर फट गया। बहुतसे आदमी डूब मरे। बहुत ठीक लिखा है, कि विना पुण्यके कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। समुद्रदत्त इस समय भाग्यसे मरते मरते बच गया। इसके हाथ जहाजका एक छोटासा टुकड़ा लग गया। यह उस पर बैठकर बड़ी कठिनताके साथ किसी तरह राम राम करता किनारे आ लगा। यहाँसे यह सीधा श्रीभूति पुरोहितके पास पहुँचा। श्रीभूति इसे दूरसे देखकर ही पहिचान गया। वह धूर्त तो था ही, सो उसने अपने आसपासके बैठे हुए लोगों से कहा—देखिये, वह कोई दरिद्र भिखमंगा आ रहा है। अब यहाँ

आकर व्यर्थ सिर खाने लगेगा। जिनके पास थोड़ा बहुत पैसा होता है या जिनकी मान मर्यादा लोगोंमें अधिक होती है तो उन्हें इन भिखारियोंके मारे चैन नहीं। एक न एक हर समय सिरपर खड़ा ही रहता है। हम लोगोंने जो सुना था कि कल एक जहाज फटकर डूब गया है, मालूम होता है यह उसी परका कोई यात्री है और इसका सब धन नष्ट हो जानेसे यह पागल होगया जान पड़ता है। इसकी दुर्दशासे ज्ञात होता है कि यह इस समय बड़ा दुखी है और इसीसे संभव है कि यह मुझसे कोई बड़ी भारी याचना करे। श्रीभूति तो इस तरह लोगोंको कह ही रहा था कि समुद्रदत्त उसके सामने जा खड़ा हुआ। वह श्रीभूतिको नमस्कार कर अपनी हालत सुनाना आरंभ करता है कि इतनेमें श्रीभूति बोल उठा कि मुझे इतना समय नहीं कि मैं तुम्हारी सारी दुःख कथा सुनूं। हाँ तुम्हारी इस हालत से जान पड़ता है कि तुमपर कोई बड़ी भारी आफत आई है। अस्तु, मुझे तुम्हारे दुःखमें समवेदना है। अच्छा जाइए, मैं नौकरोंसे कहे देता हूँ कि वे तुम्हें कुछ दिनोंके लिए खानेका सामान दिलवादें। यह कहकर ही उसने नौकरोंकी ओर मुँह फेरा और आठ दिन तक का खानेका सामान समुद्रदत्तको दिलवा देनेके लिए उनसे कह दिया। बेचारा समुद्रदत्त तो श्रीभूतिकी बातें सुनकर हत-बुद्धि हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। उसने घबराते घबराते कहा—महाराज, आप यह क्या करते हैं ? मेरे जो आपके पास पाँच रत्न रक्खे हैं, मुझे तो वे ही दीजिए। मैं आपका सामान-वामान नहीं लेता। श्रीभूतिने रत्नका नाम सुनते ही अपने चेहरेपरका भाव बदला और त्यौरी चढ़ाकर जोरके साथ कहा—रत्न ! अरे दरिद्र ! तेरे रत्न और

मेरे पास ? यह तू क्या बक रहा है ? कह तो सही वास्तवमें तेरी मंशा क्या है ? क्या मुझे तू बदनाम करना चाहता है ? तू कौन, और कहाँका रहनेवाला है ? मैं तुझे जानता तक नहीं, फिर तेरे रत्न मेरे पास आये कहाँसे ? जा जा, पागल तो नहीं होगया है ? ठीक ध्यानसे विचार कर। किसी औरके यहाँ रखकर उसके भ्रमसे मेरे पास आगया जान पड़ता है। इसके बाद ही उसने लोगोंकी ओर नजर फेरकर कहा—देखिये साहब, मैंने कहा था न ? कि यह मेरेसे कोई बड़ी भारी याचना न करे तो अच्छा। ठीक वही हुआ। बतलाइए, इस दरिद्रके पास रत्न आ कहाँसे सकते हैं ? धन नष्ट होजानेसे जान पड़ता है यह बहक गया है। यह कहकर श्रीभूतिने नौकरों द्वारा समुद्रदत्तको घर बाहर निकलवा दिया। नीतिकारने ठीक लिखा है—जो लोग पापी होते हैं और जिन्हें दूसरोंके धनकी चाह होती है, वे दुष्ट पुरुष ऐसा कौन बुरा काम है जिसे लोभके वश हो न करते हों ? श्रीभूति ऐसे ही पापियोंमेंसे एक था, तब वह कैसे ऐसे निंद्य कर्मसे बचा रह सकता था ? पापी श्रीभूतिसे ठगा जाकर बेचारा समुद्रदत्त सचमुच पागल होगया। वह श्रीभूतिके मकानसे निकलते ही यह चिल्लाता हुआ, कि पापी श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता है, सारे शहरमें घूमने लगा। पर उसे एक भिखारीके वेशमें देखकर किसीने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। उलटा उसे ही सब पागल बताने लगे। समुद्रदत्त दिनभर तो इस तरह चिल्लाता हुआ सारे शहरमें घूमता फिरता और जब रात होती तब राजमहलके पीछे एक वृक्ष पर चढ़ जाता और सारी रात उसी तरह चिल्लाया करता। ऐसा करते करते उसे कोई छह महिना बीत गये। समुद्रदत्त

का इस तरह रोज रोज चिल्लाना सुनकर एक दिन महारानी रामदत्ता ने सोचा कि बात वास्तवमें क्या है, इसका पता जरूर लगाना चाहिए। तब एक दिन उसने अपने स्वामीसे कहा—प्राणनाथ, मैं रोज एक गरीबकी पुकार सुनती हूँ। मैं आज तक तो यह समझती रही, कि वह पागल होगया है और इसीसे दिन रात चिल्लाया करता है, कि श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता। पर प्रति दिन उसके मुँहसे एक ही वाक्य सुनकर मेरे मनमें कुछ खटका पैदा होता है। इस लिए आप उसे बुलाकर पूछिये तो कि वास्तवमें रहस्य क्या है। रानीके कहे अनुसार राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर सब बातें पूछीं। समुद्रदत्त ने जो यथार्थ घटना थी, वह राजासे कह सुनाई। सुनकर राजाने रानीसे कहा कि इसके चेहरेपरसे तो इसकी बात ठीक जँचती है। पर इसका भेद खुलनेके लिए क्या उपाय है? रानीने थोड़ी देर तक विचारकर कहा—हाँ इसकी आप चिन्ता न करें। मैं सब बातें जान लूंगी।

दूसरे दिन रानीने पुरोहितजीको अपने अन्तःपुरमें बुलाया। आदर-सत्कार होनेके बाद रानीने उनसे कहा—मेरी इच्छा बहुत दिनोंसे आपसे मिलनेकी थी, पर कोई ठीक समय ही नहीं मिल पाता था। आज बड़ी खुशी हुई कि आप ने यहां आनेकी कृपा की। इसके बाद रानीने पुरोहितजीसे कुछ इधर उधरकी बातें करके उनसे भोजनका हाल पूछा। उनके भोजनका सब हाल जानकर उसने अपनी एक विश्वस्त दासीको बुलाया और उसे कुछ बातें समझा बुझाकर पीछी चली जानेको कह दिया। दासीके जाने

बाद रानीने पुरोहितजीसे एक नई ही बातका जिकर उठाया। वह बोली—

पुरोहितजी, सुनती हूँ कि आप पासे खेलनेमें बड़े चतुर और बुद्धिमान् हैं। मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा होती थी कि आपके साथ खेलकर मैं भी एक बार देखूं कि आप किस चतुराईसे खेलते हैं। यह कहकर रानीने एक दासीको बुलाकर चौपड़के ले आनेकी आज्ञा की।

पुरोहितजी रानीकी बात सुनकर दंग रह गये। वे घबराकर बोले—हैं! हैं! महारानीजी, यह आप क्या करती हैं? मैं एक भिक्षुक ब्राह्मण और आपके साथ मेरी यह धृष्टता। यदि महाराज सुन पावें तो वे मेरी क्या गति बनावेंगे?

रानीने कहा—पुरोहितजी, आप इतने घबराइए मत। मेरे साथ खेलनेमें आपको किसी प्रकारके गहरे विचारमें पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। महाराज इस विषयमें आपसे कुछ नहीं कहेंगे। आप डरिये मत।

बेचारे पुरोहितजी बड़े पशोपेशमें पड़े। रानीकी आज्ञा भी वे नहीं टाल सकते और इधर महाराजका उन्हें भय। वे तो इस उधेड़-बुनमें लगे हुए थे कि दासीने चौपड़ लाकर रानीके सामने रखदी। आखिर उन्हें खेलना ही पड़ा। रानीने पहली ही बाजीमें पुरोहितजीकी अंगूठी, जिस पर कि उनका नाम खुदा हुआ था, जीत ली। दोनों फिर खेलने लगे। इतनेमें पहली दासीने आकर रानीसे कुछ कहा। रानीने अबकी बार पुरोहितजीकी जीती हुई

अंगूठी चुपकेसे उसे देकर चली जानेको कह दिया। दासी घण्टे भर बाद फिर आई। उसे कुछ निराशसी देखकर रानी ने इशारेसे अपने कमरेके बाहर ही रहनेको कह दिया और आप अपने खेलमें लग गई। अबकी बार उसने पुरोहितजीका जनेऊ जीत लिया और किसी बहानेसे उस दासीको बुलाकर चुपकेसे जनेऊ देकर भेज दिया। दासीके वापिस आने तक रानी और भी पुरोहितजीको खेलमें लगाये रही। इतनेमें दासी भी आगई। उसे प्रसन्न देखकर रानीने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझा। उसने उसी समय खेल बन्द किया और पुरोहितजीकी अंगूठी और जनेऊ उन्हें वापिस देकर वह बोली—आप सचमुच खेलनेमें बड़े चतुर हैं। आपकी चतुरता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई। आज मैंने सिर्फ इस चतुरताको देखनेके लिए ही आपको यह कष्ट दिया था। आप इसके लिए मुझे क्षमा करें। अब आप खुशीके साथ जा सकते हैं।

बेचारे पुरोहितजी रानीके महलसे बिदा हुए। उन्हें इसका कुछ भी पता नहीं पड़ा कि रानीने मेरी आँखोंमें दिन दहाड़े धूल झोंककर मुझे कैसा उल्लू बनाया है। बात असलमें यह थी कि रानीने पहले पुरोहितजीकी जीती हुई अंगूठी देकर दासीको उनकी स्त्रीके पास समुद्रदत्तके रत्न लेनेको भेजा, पर जब पुरोहितजीकी स्त्रीने अंगूठी देखकर भी उसे रत्न नहीं दिये तब यज्ञोपवीत जीता और उसे दासीके हाथ देकर फिर भेजा। अबकी बार रानीका मनोरथ सिद्ध हुआ। पुरोहितजीकी स्त्रीने दासीकी बातोंसे डरकर झटपट रत्नोंको निकाल दासीके हवाले कर दिया। दासीने लाकर रत्नोंको रानीको दे दिये। रानी प्रसन्न हुई। पुरोहितजी तो खेलते रहे और उधर उनका भाग्य फूट गया, इसकी उन्हें रत्तीभर भी खबर नहीं पड़ी।

रानीने रत्नोंको लेजाकर महाराजके सामने रख दिये और साथ ही पुरोहितजीके महलसे रवाना होनेकी खबर दी। महाराजने उसी समय उनके गिरफ्तार करनेकी सिपाहियोंको आज्ञा की। बेचारे पुरोहितजी अभी महलके बाहर भी नहीं हुए थे कि सिपाहियोंने जाकर उनके हाथोंमें हथकड़ी डाल दी और उन्हें दरबारमें लाकर उपस्थित कर दिया।

पुरोहितजी यह देखकर भौंचकसे रह गये। उनकी समझमें नहीं आया कि यह एकाएक क्या होगया और कौन मैंने ऐसा भारी अपराध किया जिससे मुझे एक शब्द तक न बोलने देकर मेरी यह दशा की गई। वे हत-बुद्धि होगये। उन्हें इस बातका और अधिक दुःख हुआ कि मैं एक राजपुरोहित, ऐसा वैसा गैर आदमी नहीं और मेरी यह दशा? और वह बिना किसी अपराधके? क्रोध, लज्जा, और आत्मग्लानिसे उनकी एक विलक्षण ही दशा होगई।

रानीने जैसे ही रत्नोंको महाराजके सामने रक्खा, महाराजने उसी समय उन्हें अपने और बहुतसे रत्नोंमें मिलाकर समुद्रदत्तको बुलाया और उससे कहा—अच्छा, देखो तो इन रत्नोंमें तुम्हारे रत्न हैं क्या? और हों तो उन्हें निकाल लो। महाराजकी आज्ञा पाकर समुद्रदत्तने उन सब रत्नोंमेंसे अपने रत्नोंको पहिचान कर निकाल लिया। सच है, सज्जन पुरुष अपनी ही वस्तुको लेते हैं। दूसरोंकी वस्तु उन्हें विष समान जान पड़ती हैं। समुद्रदत्तने अपने

रत्न पहिचान लिए, यह देख महाराज उस पर इतने प्रसन्न हुए कि उसे उन्होंने अपना राजसेठ बना लिया।

महाराज त्वरित ही दरबारमें आये। जैसे ही उनकी दृष्टि पुरोहितजी पर पड़ी, उन्होंने बड़ी ग्लानिकी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर गुस्सेके साथ कहा—पापी, ठगी! मैं नहीं जानता था कि तू हृदयका इतना काला होगा और ऊपरसे ऐसा ढोंगीका वेष लेकर मेरी गरीब और भोली प्रजाको इस तरह धोखेमें फँसायगा? न मालूम तेरी इस कपटवृत्तिने मेरे कितने बन्धुओंको घर घरका भिखारी बनाया होगा? ऐ पापके पुतले, लोभके जहरीले सर्प, तुझे देखकर हृदय चाहता तो यह है कि तुझे इसकी कोई ऐसी भयंकर सजा दी जाए, जिससे तुझे भी इसका ठीक प्रायश्चित मिल जाय और सर्व साधारणको दुराचारियोंके साथ मेरे कठिन शासनका ज्ञान हो जाय; उससे फिर कोई ऐसा अपराध करनेका साहस न करे। परन्तु तू ब्राह्मण है, इस लिए तेरे कुलके लिहाजसे तेरी सजाके विचारका भार मैं अपने मंत्री-मंडल पर छोड़ता हूँ। यह कहकर ही राजाने अपने धर्माधिकारियोंकी ओर देखकर कहा—"इस पापीने एक विदेशी यात्रीके, जिसका कि नाम समुद्रदत्त है और वह यहीं बैठा हुआ भी है, कीमती पाँच रत्नोंको हड़प कर लिया है, जिनको कि यात्रीने समुद्रयात्रा करनेके पहले श्रीभूतिको एक विश्वस्त और राजप्रतिष्ठित समझकर धरोहरके रूपमें रक्खे थे। दैवकी विचित्र गतिसे यात्रासे लौटते समय यात्रीका जहाज एकाएक फट गया और साथ ही उसका सब माल-असबाब भी डूब गया। यात्री किसी तरह बच गया। उसने जाकर पुरोहित श्रीभूतिसे अपनी धरोहर

वापिस लौटा देनेके लिए प्रार्थना की। पुरोहितके मनमें पापका भूत सवार हुआ। बेचारे गरीब यात्रीको उसने धक्के देकर घरसे बाहर निकलवा दिया। यात्री अपनी इस हालतसे पागलसा होकर सारे शहरमें यह पुकार मचाता हुआ महिनों फिरा किया कि श्रीभूतिने मेरे रत्न चुरा लिये, पर उस पर किसीका ध्यान न जाकर उलटा सबने उसे ही पागल करार दिया। उसकी यह दशा देखकर महारानीको बड़ी दया आई। यात्री बुलाया जाकर उससे सब बातें दर्याफ्त की गईं। बादमें महारानीने उपाय द्वारा वे रत्न अपने हस्तगत कर लिये। वे रत्न समुद्रदत्तके हैं या नहीं इसकी परीक्षा करनेके आशयसे उन पाँचों रत्नोंको मैंने बहुतसे और रत्नोंमें मिला दिया। पर आश्चर्य है कि यात्रीने अपने रत्नोंको पहिचान कर निकाल लिये। श्रीभूतिके जिम्मे धरोहर हड़प कर जानेका गुरुतर अपराध है। इसके सिवा धोखेबाजी, ठगाई आदि और भी बहुतसे अपराध हैं। इसकी इसे क्या सजा दी जाय, इसका आप विचार करें।"

धर्माधिकारियोंने आपसमें सलाह कर कहा—महाराज, श्रीभूति पुरोहितका अपराध बड़ा भारी है। इसके लिए हम तीन प्रकारकी सजायें नियत करते हैं। उनमेंसे फिर जिसे यह पसन्द करे, स्वीकार करे। या तो इसका सर्वस्व हरण कर लिया जाकर इसे देश बाहर कर दिया जाय, या पहलवानोंकी बत्तीस मुक्कियाँ इस पर पड़ें, या तीन थालीमें भरे हुए गोबरको यह खा जाय। श्रीभूतिसे सजा पसन्द करनेको कहा गया। पहले उसने गोबर खाना चाहा, पर खाया नहीं गया, तब मुक्कियाँ खानेको कहा।

मुक्कियाँ पड़ना शुरू हुईं। कोई दश पन्द्रह मुक्कियाँ पड़ी होंगी कि पुरोहितजीकी अकल ठिकाने आगई। आप एकदम चक्कर खाकर जमीन पर ऐसे गिरे कि पीछे उठे ही नहीं। महा आर्त्तध्यानसे उनकी मृत्यु हुई। वे दुर्गतिमें गये। धनमें अत्यन्त लम्पटताका उन्हें उपयुक्त प्रायश्चित्त मिला। इस लिए जो भव्य पुरुष हैं, उन्हें उचित है कि वे चोरीको अत्यन्त दुःखका कारण समझकर उसका परित्याग करें और अपनी बुद्धिको पवित्र जैनधर्मकी ओर लगावें, जो ऐसे महापापोंसे बचानेवाला है।

वे जिनभगवान्, जो सब सन्देहोंके नाश करनेवाले और स्वर्गके देवों और विद्याधरों द्वारा पूज्य हैं, वह जिनवाणी जो सब सुखोंकी खान है और मेरे गुरु श्रीप्रभाचन्द्र, ये सब मुझे मंगल प्रदान करें—मुझे कल्याणका मार्ग बतलावें।

२८—नीलीकी कथा।

जिनभगवान्‌के चरणोंको, जो कि कल्याणके करनेवाले हैं, नमस्कार कर श्रीमती नीली सुन्दरीकी मैं कथा कहता हूं। नीलीने चौथे अणुव्रत-ब्रह्मचर्यकी रक्षा कर प्रसिद्धि प्राप्त की है।

पवित्र भारतवर्षमें लाटदेश एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश था। जिनधर्मका वहाँ खूब प्रचार था। वहाँकी प्रजा अपने धर्मकर्म पर बड़ी दृढ़ थी। इससे इस देशकी शोभाको उस समय कोई देश नहीं पा सकता था। जिस समयकी यह कथा है, तब उसकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ नगर था। यह नगर बहुत सुन्दर और सब

प्रकारकी योग्य और कीमती वस्तुओंसे पूर्ण था। इसका राजा तब वसुपाल था और वह जिससे अपनी प्रजा सुखी हो, धनी हो, सदाचारी हो, दयालु हो, इसके लिए कोई बात उठा न रखकर सदा प्रयत्नशील रहता था।

यहीं एक सेठ रहता था। उसका नाम था जिनदत्त। जिनदत्तकी शहरके सेठ साहूकारोंमें बड़ी इज्जत थी। वह धर्मशील और जिनभगवान्‌का भक्त था। दान, पूजा, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्मोंको वह सदा नियमानुसार किया करता था। उसकी धर्मप्रियाका नाम जिनदत्ता था। जैसा जिनदत्त धर्मात्मा और सदाचारी था, उसकी गुणवती साध्वी स्त्री भी उसीके अनुरूप थी और इसीसे इनके दिन बड़े ही सुखके साथ बीतते थे। अपने गार्हस्थ्य सुखको स्वर्ग सुखसे भी कहीं बढ़कर इन्होंने बना लिया था। जिनदत्ता बड़ी उदार प्रकृतिकी स्त्री थी। वह जिसे दुखी देखती उसकी सब तरह सहायता करती, और उनके साथ प्रेम करती। इसके सन्तानमें केवल एक पुत्री थी। उसका नाम नीली था। अपने मातापिताके अनुरूप ही इसमें गुण, और सदाचारकी सृष्टि हुई थी। जैसे सन्तोंका स्वभाव पवित्र होता है, नीली भी उसी प्रकार बड़े पवित्र स्वभावकी थी।

इसी नगरमें एक और वैश्य रहता था। उसका नाम समुद्रदत्त था। यह जैनी नहीं था। इसकी बुद्धि बुरे उपदेशोंको सुनसुनकर बड़ी मठ्ठी होगई थी। अपने हितकी ओर कभी इसकी दृष्टि नहीं जाती थी। इसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र था। उसका नाम था सागरदत्त। सागरदत्त एक दिन अचानक जिनमन्दिरमें पहुँच गया। इस समय नीली भगवान्‌की पूजा कर

रही थी। वह एक तो स्वभावसे ही बड़ी सुन्दरी थी। इस पर उसने अच्छे अच्छे रत्न, जड़े गहने और बहुमूल्य वस्त्र पहर रक्खे थे। इससे उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी। वह देखनेवालोंको ऐसी जान पड़ती थी, मानों कोई स्वर्गकी देव-बाला भगवानकी खड़ी खड़ी पूजा कर रही है। सागरदत्त उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरताको देखकर मुग्ध होगया। कामने उसके मनको बेचैन कर दिया। उसने पास ही खड़े हुए अपने मित्रसे कहा—यह है कौन ? मुझे तो नहीं जान पड़ता कि यह मध्यलोककी बालिका हो। या तो यह कोई स्वर्ग-बाला है, या नागकुमारी अथवा विद्याधर कन्या; क्योंकि मनुष्योंमें इतना सुन्दर रूप होना असम्भव है।

सागरदत्तके मित्र प्रियदत्तने नीलीका परिचय देते हुए कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, जो तुम ऐसा कहते हो कि ऐसी सुन्दरता मनुष्योंमें नहीं हो सकती। तुम जिसे स्वर्ग-बाला समझ रहे हो वह न स्वर्ग-बाला है, न नागकुमारी और न किसी विद्याधर वगैरह की ही पुत्री है; किन्तु मनुष्यनी है और अपने इसी शहरमें रहनेवाले जिनदत्त सेठके कुलकी एकमात्र प्रकाश करनेवाली उसकी नीली नामकी कन्या है।

अपने मित्र द्वारा नीलीका हाल जानकर सागरदत्त आश्चर्य के मारे दंग रह गया। साथ ही कामने उसके हृदय पर अपना पूरा अधिकार किया। वह घर पर आया सही, पर अपने मनको वह नीलीके पास ही छोड़ आया। अब वह दिन रात नीलीकी चिन्तामें घुल-घुलकर दुबला होने लगा। खाना-पीना उसके लिए कोई

आवश्यक काम नहीं रहा। सच है, जिस कामके वश होकर श्रीकृष्ण लक्ष्मी द्वारा, महादेव गंगा द्वारा और ब्रह्मा उर्वशी द्वारा अपना प्रभुत्व—ईश्वरपना खो चुके तब बेचारे साधारण लोगोंकी तो कथा ही क्या कही जाय ?

सागरदत्तकी हालत उसके पिताको जान पड़ी। उसने एक दिन सागरदत्तसे कहा—देखो, जिनदत्त जैनी है, वह कभी अपनी कन्याको अजैनीके साथ नहीं ब्याहेगा। इस लिए तुम्हें यह उचित नहीं कि तुम अप्राप्य वस्तुके लिए इस प्रकार तड़फ तड़फ कर अपनी जानको जोखिममें डालो। तुम्हें यह अनुचित विचार छोड़ देना चाहिए। यह कहकर समुद्रदत्तने पुत्रके उत्तर पानेकी आशासे उसकी ओर देखा। पर जब सागरदत्त उसकी बातका कुछ भी जवाब न देकर नीची नजर किये ही बैठा रहा तब समुद्रदत्तको निराश हो जाना पड़ा। उसने समझ लिया कि इसके दो ही उपाय हैं। या तो पुत्रके जीवनकी आशासे हाथ धो बैठना या किसी तरह सेठकी लड़कीके साथ इसको ब्याह देना। पुत्रके जीनेकी आशाको छोड़ बैठनेकी अपेक्षा उसने किसी तरह नीलीके साथ उसका ब्याह कर देना ही अच्छा समझा। सच है, सन्तानका मोह मनुष्यसे सब कुछ करा सकता है। इस सम्बन्धके लिए समुद्रदत्तके ध्यानमें एक युक्ति आई। वह यह कि इस दशामें उसने अपना और पुत्रका जैनी बन जाना बहुत ही अच्छा समझा और वे बन भी गये। अबसे वे मन्दिर जाने लगे, भगवान्‌की पूजा करने लगे, स्वाध्याय, व्रत, उपवास भी करने लगे। मतलब यह कि थोड़े ही दिनोंमें पिता-पुत्रने अपने जैनी हो जानेका लोगोंको विश्वास करा

दिया और धीरे धीरे जिनदत्तसे भी इन्होंने अधिक परिचय बढ़ा लिया। बेचारा जिनदत्त सरल स्वभावका था और इसी लिए वह सबही को अपनासा ही सरल-स्वभावी समझता था। यही कारण हुआ कि समुद्रदत्तका चक्र उस पर चल गया। उसने सागरदत्तको अच्छा पढ़ा लिखा, खूबसूरत और अपनी पुत्रीके योग्य वर समझकर नीलीको उसके साथ ब्याह दिया। सागरदत्तका मनोरथ सिद्ध हुआ। उसे नया जीवन मिला। इसके बाद थोड़े दिनों तक तो पिता-पुत्रने और अपनेको ढोंगी वेषमें रक्खा, पर फिर कोई प्रसंग लाकर वे पीछे बुद्धधर्मके माननेवाले होगये। सच है, मायाचारियों-पापियोंकी बुद्धि अच्छे धर्म पर स्थिर ही नहीं रहती। यह बात प्रसिद्ध है कि कुत्तेके पेटमें घी नहीं ठहरता।

जब इन पिता-पुत्रने जैनधर्म छोड़ा तब इन दुष्टोंने यहाँ तक अन्याय किया कि बेचारी नीलीका उसके पिताके घरपर जाना-आना भी बन्द कर दिया। सच है, पापी लोग क्या नहीं करते! जब जिनदत्तको इनके मायाचारका यह हाल जान पड़ा तब उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ—बेहद दुःख हुआ। वह सोचने लगा—क्यों मैंने अपनी प्यारी पुत्रीको अपने हाथोंसे कूएमें ढकेल दिया ? क्यों मैंने उसे कालके हाथ सौंप दिया ? सच है, दुर्जनोंकी संगतिसे दुःखके सिवा कुछ हाथ नहीं पड़ता। नीचे जलती हुई अग्नि भी ऊपरकी छतको काली कर देती है।

जिनदत्तने जैसा कुछ किया उसका पश्चात्ताप उसे हुआ। पर इससे क्या नीली दुखी हो ? उसका यह धर्म था क्या ? नहीं। उसे अपने भाग्यके अनुसार जो पति मिला, उसे ही वह अपना

देवता समझती थी और उसकी सेवामें कभी रत्तीभर भी कमी नहीं होने देती थी। उसका प्रेम पवित्र और आदर्श था। यही कारण था कि वह अपने प्राणनाथकी अत्यन्त प्रेम-पात्र थी। विशेष इतना था कि नीलीने बुद्धधर्मके माननेवालोंके यहाँ आकर भी जिनधर्मको न छोड़ा था। वह बराबर भगवान्‌की पूजा, शास्त्र-स्वाध्याय, व्रत, उपवास—आदि पुण्यकर्म करती थी, धर्मात्माओंसे निष्कपट प्रेम करती थी और पात्रोंको दान देती थी। मतलब यह कि अपने धर्म-कर्ममें उसे खूब श्रद्धा थी और भक्तिपूर्वक वह उसे पालती थी। पर खेद है कि समुद्रदत्तकी आँखोंमें नीलीका यह कार्य भी खटका करता था। उसकी इच्छा थी कि नीली भी हमारा ही धर्म पालने लगे। और इसके लिए उसने यह सोचकर, कि बुद्ध साधुओंकी संगतिसे या दर्शनसे या उनके उपदेशसे यह अवश्य बुद्धधर्मको मानने लगेगी। एक दिन नीलीसे कहा—पुत्री, तू पात्रोंको तो सदा दान दिया ही करती है, तब एक दिन अपने धर्मके ही अनुसार बुद्धसाधुओंको भी तो दान दे।

नीलीने श्वसुरकी बात मानली। पर उसे जिनधर्मके साथ उनकी यह ईर्षा ठीक नहीं लगी और इसीलिए उसने कोई ऐसा उपाय भी अपने मनमें सोच लिया, जिससे फिर कभी उससे ऐसा मिथ्या आग्रह किया जाकर उसके धर्मपालनमें किसी प्रकारकी बाधा न दी जाय। फिर कुछ दिनों बाद उसने मौका देखकर कुछ बुद्ध साधुओंको भोजनके लिए बुलाया। वे आये। उनका आदर-सत्कार भी हुआ। वे एक अच्छे सुन्दर कमरेमें बैठाये गये। इधर नीलीने उनके जूतोंको एक दासी द्वारा मँगवा लिया और उनका खूब

बारीक बूरा बनवाकर उसके द्वारा एक किस्मकी बहुत ही बढ़िया मिठाई तैयार करवाई। इसके बाद जब वे साधु भोजन करनेको बैठे तब और और व्यंजन-मिठाइयोंके साथ वह मिठाई भी उन्हें परोसी गई। सबने उसे बहुत पसन्द किया। भोजन समाप्त हुए बाद जब जानेकी तैयारी हुई, तब वे देखते हैं तो जोड़े नहीं हैं। उन्होंने पूछा—जोड़े कहाँ गये? भीतरसे नीलीने आकर कहा—महाराज, सुनती हूँ, साधु लोग बड़े ज्ञानी होते हैं? तब क्या आप अपने ही जूतोंका हाल नहीं जानते हैं? और यदि आपको इतना ज्ञान नहीं तो मैं बतला देती हूँ कि जूते आपके पेटमें हैं। विश्वासके लिए आप उल्टी कर देखें। नीलीकी बात सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उल्टी करके देखा तो उन्हें जूतोंके छोटे छोटे बहुतसे टुकड़े देख पड़े। इससे उन्हें बहुत लज्जित होकर अपने स्थान पर आना पड़ा।

नीलीकी इस कार्रवाईसे—अपने गुरुओंके अपमानसे समुद्रदत्त, नीलीकी सासु, ननद आदिको बहुत ही गुस्सा आया। पर भूल उनकी जो नीली द्वारा उसके धर्मविरुद्ध कार्य उन्होंने करवाना चाहा। इसलिए वे अपना मन मसोसकर रह गये—नीलीसे वे कुछ नहीं कह सके। पर नीलीकी ननदको इससे संतोष नहीं हुआ। उसने कोई ऐसा ही छल-कपटकर नीलीके माथे व्यभिचार का दोष मढ़ दिया। सच है, सत्पुरुषों पर किसी प्रकारका ऐब लगा देनेमें पापियोंको तनिक भी भय नहीं रहता। बेचारी नीली अपने पर झूठ-मूठ महान् कलंक लगा सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसे कलंकित होकर जीते रहनेसे मर जाना ही उत्तम जान पड़ा। वह

उसी समय जिनमन्दिरमें गई और भगवान्‌के सामने खड़ी होकर उसने प्रतिज्ञा की, कि मैं इस कलंकसे मुक्त होकर ही भोजन करूंगी, इसके अतिरिक्त मुझे इस जीवनमें अन्नपानीका त्याग है। इस प्रकार वह संन्यास लेकर भगवान्‌के सामने खड़ी हुई उनका ध्यान करने लगी। इस समय उसकी ध्यान मुद्रा देखनेके योग्य थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानों सुमेरु पर्वतकी स्थिर और सुन्दर जैसी चूलिका हो। सच है, उत्तम पुरुषोंको सुख या दुःखमें जिनेन्द्र भगवान् ही शरण होते हैं, जो अनेक प्रकारकी आपत्तियों के नष्ट करनेवाले और इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य हैं।

नीलीकी इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा और उसके निर्दोष शील के प्रभावसे पुरदेवताका आसन हिल गया। वह रातके समय नीलीके पास आई और बोली—सतियोंकी शिरोमणि, तुझे इस प्रकार निराहार रहकर प्राणोंको कष्टमें डालना उचित नहीं। सुन, मैं आज शहरके बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंको तथा राजाको एक स्वप्न देकर शहरके सब दरवाजे बन्द कर दूंगी। वे तब खुलेंगे जब कि उन्हें कोई शहरकी महासती अपने पाँवोंसे छूएगी। सो जब तुझे राजकर्मचारी यहाँसे उठाकर लेजाँय तब तू उनका स्पर्श करना। तेरे पाँवके लगते ही दरवाजे खुल जायँगे और तू कलंक मुक्त होगी। यह कहकर पुरदेवता चली गई और सब दरवाजोंको बन्दकर उसने राजा वगैरहको स्वप्न दिया।

सवेरा हुआ। कोई घूमनेके लिए, कोई स्नानके लिए और कोई किसी और कामके लिए शहर बाहर जाने लगे। जाकर देखते हैं तो शहर बाहर होनेके सब दरवाजे बन्द हैं। सबको बड़ा आश्चर्य

हुआ। बहुत कुछ कोशिशें की गईं, पर एक भी दरवाजा नहीं खुला। सारे शहरमें शोर मच गया। बातकी बातमें राजाके पास खबर पहुंची। इस खबरके पहुँचते ही राजाको रातमें आये हुए स्वप्नकी याद हो उठी। उसी समय एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई। राजाने सबको अपने स्वप्नका हाल कह सुनाया। शहरके कुछ प्रतिष्ठित पुरुषोंने भी अपनेको ऐसा ही स्वप्न आया बतलाया। आखिर सबकी सम्मतिसे स्वप्नके अनुसार दरवाजोंका खोलना निश्चित किया गया। शहरकी स्त्रियाँ दरवाजोंका स्पर्श करनेको भेजी गईं। सबने उन्हें पाँवोंसे छूआ, पर दरवाजोंको कोई नहीं खोल सकी। तब किसीने, जो कि नीलीके संन्यासका हाल जानता था, नीलीको उठा लेजाकर उसके पावोंका स्पर्श करवाया। दरवाजे खुल गये। जैसे वैद्य सलाईके द्वारा आँखोंको खोल देता है उसी तरह नीलीने अपने चरणस्पर्शसे दरवाजोंको खोल दिया। नीलीके शीलकी बहुत प्रशंसा हुई। नीली कलंक-मुक्त हुई। उसके अखण्ड शीलप्रभावको देखकर लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा तथा शहरके और और प्रतिष्ठित पुरुषोंने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों द्वारा नीलीका खूब सत्कार किया और इन शब्दोंमें उसकी प्रशंसा की—"हे जिन-भगवान्के चरणकमलोंकी भौंरी, तुम खूब फूलो फलो। माता, तुम्हारे शीलका माहात्म्य कौन कह सकता है।" सती नीली अपने धर्मपर दृढ़ रही, उससे उसकी बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंने प्रशंसा की। इस लिए सर्व साधारणको भी सती नीलीका पथ ग्रहण करना चाहिए।

जिनके वचन सारे संसारका उपकार करनेवाले हैं, जो

स्वर्गके देवों और बड़े बड़े राजा महाराजाओंसे पूज्य हैं और जिनका उपदेश किया हुआ पवित्र शील—ब्रह्मचर्य स्वर्ग तथा परम्परा मोक्षका देनेवाला है, वे जिनभगवान् संसारमें सदा काल रहें और उनके द्वारा कर्म-परवश जीवोंको कर्म पर विजय प्राप्त करनेका पवित्र उपदेश सदा मिलता रहे।

२६–कडारपिंगकी कथा।

अर्हन्त, जिनवाणी और गुरुओंको नमस्कार कर, कडार-पिंगकी, जो कि स्वदारसन्तोषव्रत—ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ है, कथा लिखी जाती है।

कांपिल्य नामका एक प्रसिद्ध शहर था। उसके राजाका नाम नरसिंह था। नरसिंह बुद्धिमान और धर्मात्मा थे। अपने राज्यका पालन वे नीतिके साथ करते थे। इस लिए प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी।

राजमंत्रीका नाम सुमति था। इनके धनश्री स्त्री और कडार-पिंग नामका एक पुत्र था। कडारपिंगका चाल-चलन अच्छा नहीं था। वह बड़ा कामी था। इसी नगरमें एक कुबेरदत्त सेठ रहता था। यह बड़ा धर्मात्मा और पूजा, प्रभावनाका करनेवाला था। इसकी स्त्री प्रियंगुसुन्दरी सरल स्वभावकी, पुण्यवती और बहुत सुन्दरी थी।

एक दिन कडारपिंगने प्रियंगुसुन्दरीको कहीं जाते देख लिया। उसकी रूप-मधुरिमाको देखकर इसका मन बेचैन हो उठा।

यह जिधर देखता उधर ही इसे प्रियंगुसुन्दरी दिखने लगी। प्रियंगुसुन्दरीके सिवा इसे और कोई वस्तु अच्छी न लगने लगी। कामने इसे आपेसे भुला दिया। बड़ी कठिनतासे उस दिन यह घर पर पहुंच पाया। इसे इस तरह बेचैन और भ्रम-बुद्धि देखकर इसकी मांको बड़ी चिन्ता हुई। उसने इससे पूछा—कडार, क्यों आज एकाएक तेरी यह दशा होगई? अभी तो तू घरसे अच्छी तरह गया था और थोड़ी ही देरमें तेरी यह हालत कैसे हुई? बतला तो, हुआ क्या? क्यों तेरा मन आज इतना खेदित हो रहा है? कडारपिंगने कुछ न सोचा-विचारा, अथवा यों कह लीजिए कि सोच विचार करनेकी बुद्धि ही उसमें न थी। यही कारण था कि उसने, कौन पूछनेवाली है, इसका भी कुछ खयाल न कर कह दिया कि कुबेरदत्त सेठकी स्त्रीको मैं यदि किसी तरह प्राप्त कर सकूं, तो मेरा जीना हो सकता है। सिवा इसके मेरी मृत्यु अवश्यंभावी है। नीतिकार कहते हैं कि कामसे अन्धे हुए लोगोंको धिक्कार है जो लज्जा और भय रहित होकर फिर अच्छे और बुरे कार्यको भी नहीं सोचते। बेचारी धनश्री पुत्रकी यह निर्लज्जता देखकर दंग रह गई। वह इसका कुछ उत्तर न देकर सीधी अपने स्वामीके पास गई और पुत्रकी सब हालत उसने उनसे कह सुनाई। सुमति एक राजमंत्री था और बुद्धिमान् था। उसे उचित था कि वह अपने पुत्रको पापकी ओरसे हटानेका यत्न करता, पर उसने इस डरसे, कि कहीं पुत्र मर न जाय, उलटा पापकार्यका सहायक बननेमें अपना हाथ बटाया। सच है, विनाशकाल जब आता है तब बुद्धि भी विपरीत हो जाया करती है। ठीक यही हाल सुमतिका हुआ। वह पुत्रकी

आशा पूरी करनेके लिए एक कपट-जाल रचकर राजाके पास गया और बोला—महाराज, रत्नद्वीपमें एक किंजल्क जातिके पक्षी होते हैं, वे जिस शहरमें रहते हैं वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष, रोग, अप-मृत्यु—आदि नहीं होते तथा उस शहर पर शत्रुओंका चक्र नहीं चल पाता, और न चोर वगैरह उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचा सकते हैं। और महाराज, उनकी प्राप्तिका भी उपाय सहज है। अपने शहरमें जो कुबेरदत्त सेठ हैं, उनका जाना आना प्रायः वहाँ हुआ करता है और वे हैं भी कार्यचतुर, इस लिए उन पक्षियोंके लानेको आप उन्हें आज्ञा कीजिये। अपने राजमंत्रीकी एक अभूतपूर्व बात सुनकर राजा तो पक्षियोंको मँगानेको अकुला उठे। भला, ऐसी आश्चर्य उपजानेवाली बात सुनकर किसे ऐसी अपूर्व वस्तुकी चाह न होगी? और इसी लिए महाराजने मंत्रीकी बातोंपर कुछ विचार न किया। उन्होंने उसी समय कुबेरदत्तको बुलवाया और सब बात समझाकर उसे रत्नद्वीप जानेको कहा। बेचारा कुबेरदत्त इस कपट-जालको कुछ न समझ सका। वह राजाज्ञा पाकर घर पर आया और रत्नद्वीप जानेका हाल उसने अपनी विदुषी प्रियासे कहा। सुनते ही प्रियंगुसुन्दरीके मनमें कुछ खटका पैदा हुआ। उसने कहा—नाथ, जरूर कुछ दालमें काला है। आप ठगे गये हो। किंजल्क पक्षीकी बात बिल्कुल असंभव है। भला, कहीं पक्षियोंका भी ऐसा प्रभाव हुआ है? तब क्या रत्नद्वीपमें कोई मरता ही न होगा? बिल्कुल झूठ! अपने राजा सरल-स्वभावके हैं सो जान पड़ता है वे भी किसीके चक्रमें आगये हैं। मुझे जान पड़ता है, यह कारस्तानी राजमंत्रीकी की हुई है। उसका पुत्र कडारपिंग महा

व्यभिचारी है। उसने मुझे एक दिन मन्दिर जाते समय देख लिया था। मैं उसकी पापभरी दृष्टिको उसी समय पहचान गई थी। मैं जितना ही ध्यानसे इस बात पर विचार करती हूँ तो अधिक अधिक विश्वास होता जाता है कि इस षड्यंत्रके रचनेसे मंत्री महाशयकी मंशा बहुत बुरी है। उन्होंने अपने पुत्रकी आशा पूरी करनेका और कोई उपाय न खोज पाकर आपको विदेश भेजना चाहा है। इस लिए अब आप यह करें कि यहाँसे तो आप रवाना हो जाँय, जिससे कि किसीको सन्देह न हो, और रात होते ही जहाजको आगे जाने देकर आप वापिस लौट आइये। फिर देखिये कि क्या गुल खिलता है। यदि मेरा अनुमान ठीक निकले तब तो फिर आपके जानेकी कोई आवश्यकता नहीं और नहीं तो दश-पन्द्रह दिन बाद चले जाइयेगा।

प्रियंगुसुन्दरीकी बुद्धिमानी देखकर कुबेरदत्त बहुत खुश हुआ। उसने उसके कहे अनुसार ही किया। जहाज रवाना होगया। जब रात हुई तब कुबेरदत्त चुपचाप घर पर आकर छुप रहा। सच है, कभी कभी दुर्जनोंकी संगतिसे सत्पुरुषोंको भी वैसा ही हो जाना पड़ता है।

जब यह खबर कडारपिंगके कानोंमें पहुँची कि कुबेरदत्त रत्नद्वीपके लिए रवाना होगया तो उसकी प्रसन्नताका कुछ ठिकाना न रहा। वह जिस दिनके लिए तरस रहा था—बेचैन हो रहा था वही दिन उसके लिए जब उपस्थित हो गया तब वह क्यों न प्रसन्न होगा? प्रियंगुसुन्दरीके रूपका भूखा और कामसे उन्मत्त वह पापी कडारपिंग बड़ी आशा और उत्सुकतासे कुबेरदत्तके घर पर आया।

प्रियंगुसुन्दरीने इसके पहले ही उसके स्वागतकी तैयारीके लिए पाखाना जानेके कमरेको साफ-सुथरा करवाकर और उसमें विना निवारका एक पलंग बिछवाकर उस पर एक चादर डलवा दी थी। जैसे ही मन्द मन्द मुसकाते हुए कुंवर कडारपिङ्ग आये, उन्हें प्रियंगुसुन्दरी उस कमरेमें लिवा लेगई और पलंग पर बैठनेका उनसे उसने इशारा किया। कडारपिंग प्रियंगुसुन्दरीको अपना इस प्रकार स्वागत करते देखकर, जिसका कि उसे स्वप्नमें भी खयाल नहीं था, फूलकर कुप्पा होगया। वह समझने लगा, स्वर्ग अब थोड़ा ही ऊंचा रह गया है। पर उसे यह विचार भी न हुआ कि पापका फल बहुत बुरा होता है। खुशीमें आकर प्रियंगुसुन्दरीके इशारेके साथ ही जैसेही वह पलंग पर बैठा कि धड़ामसे नीचे जा गिरा। जब वहाँकी भीषण दुर्गन्धने उसकी नाकमें प्रवेश किया तब उसे भान हुआ कि मैं कैसे अच्छे स्थान पर आया हूँ। वह अपनी करनी पर बहुत पछताया, उसने बहुत आर्जू-मिन्नत अपने छुटकारा पानेके लिए की, पर उसकी इस आजिजी पर ध्यान देना प्रियंगुसुन्दरीको नहीं भाया। उसने उसे पापकर्मका उपयुक्त प्रायश्चित दिये विना छोड़ना उचित नहीं समझा। नारकी जैसे नरकोंमें पड़कर दुःख उठाते हैं, ठीक वैसे ही एक राजमंत्रीका पुत्र अपनी सब मान-मर्यादा पर पानी फेरकर अपने किये कर्मोंका फल आज पाखानेमें पड़ा पड़ा भोग रहा है। इस तरह कष्ट उठाते उठाते पूरे छह महिने बीत गये। इतनेमें कुबेरदत्तका जहाज भी रत्नद्वीपसे लौट आया। जहाजका आना सुनकर सारे शहरमें इस बातका शोर मच गया कि सेठ कुबेरदत्त किंजल्क पक्षी ले आये। इधर कुबेरदत्तने कडारपिंगको बाहर निकाल

कर उसे अनेक प्रकारके पक्षियोंके पाँखोंसे खूब सजाया और काला मुँह करके उसे एक विचित्र ही जीव बना दिया। इसके बाद उसने कडारपिंगके हाथ पांव बांध कर और उसे एक लोहेके पींजरेमें बन्द-कर राजाके साम्हने ला उपस्थित किया। पश्चात् कुबेरदत्तने मुस-कुराते हुए यह कह कर, कि देव, यह आपका मँगाया किंजल्क पक्षी उपस्थित है, यथार्थ हाल राजासे कह दिया। सच्चा हाल जानकर राजाको मंत्री पुत्र पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उसी समय उसे गधे पर बैठाकर और सारे शहरमें घुमा–फिराकर उसके मार डालने की आज्ञा देदी। वही किया भी गया। कडारपिंगको अपनी करनीका फल मिल गया। वह बड़े खोटे परिणामोंसे मर कर नरक गया। सच है, परस्त्रीआसक्त पुरुषकी नियमसे दुर्गति होती है। इसके विपरीत जो भव्य-पुरुष जिनभगवान्‌के उपदेश किये और सुखोंके देनेवाले शीलव्रतके पालनेका सदा यत्न करते हैं, वे पद पद पर आदर-सत्कारके पात्र होते हैं। इसलिए उत्तम पुरुषोंको सदा परस्त्री-त्याग-व्रत ग्रहण किये रहना चाहिये।

भगवान्‌के उपदेश किये हुए, देवों द्वारा प्रशंसित और स्वर्गमोक्षका सुख देनेवाले पवित्र शीलव्रतका जो मन, वचन, कायकी पवित्रताके साथ पालन करते हैं, वे स्वर्गोंका सुख भोगकर अन्तमें मोक्षके अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं।

३०–देवरतिराजाकी कथा।

केवलज्ञान जिनका नेत्र है, उन जग-पवित्र जिनभगवान्‌को

नमस्कार कर देवरति नामक राजाका उपाख्यान लिखा जाता है, जो अयोध्याके स्वामी थे।

अयोध्या नगरीके राजा देवरति थे। उनकी रानीका नाम रक्ता था। वह बहुत सुन्दरी थी। राजा सदा उसीके नादमें लगे रहते थे। वे बड़े विषयी थे। शत्रु बाहरसे आकर राज्य पर आक्रमण करते, उसकी भी उन्हें कुछ परवा नहीं थी। राज्यकी क्या दशा है, इसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। जो धर्म और अर्थ पुरुषार्थको छोड़कर अनीतिसे केवल कामका सेवन करते हैं—सदा विषयवासना के ही दास बने रहते हैं, वे नियमसे कष्टोंको उठाते हैं। देवरतिकी भी यही दशा हुई। राज्यकी ओरसे उनकी यह उदासीनता मंत्रियों को बहुत बुरी लगी। उन्होंने राजकाजके सम्हालने की राजासे प्रार्थना भी की, पर उसका फल कुछ नहीं हुआ। यह देख मंत्रियोंने विचारकर देवरतिके पुत्र जयसेनको तो अपना राजा नियुक्त किया और देवरतिको उनकी रानीके साथ देश बाहर कर दिया। ऐसे कामको धिक्कार है, जिससे मान–मर्यादा धूलमें मिल जाय और अपने को कष्ट सहना पड़े।

देवरति अयोध्यासे निकल कर एक भयानक वनीमें आये। रानीको भूखने सताया, पास खानेको एक अन्नका कण तक नहीं। अब वे क्या करें ? इधर जैसे-जैसे समय बीतने लगा रानी भूखसे बेचैन होने लगी। रानीकी दशा देवरतिसे नहीं देखी गई। और देख भी वे कैसे सकते थे ? उसीके लिए तो अपना राजपाट तक उन्होंने छोड़ दिया था। आखिर उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने उसी समय अपनी जांघ काटकर उसका मांस पकाया और रानीको

खिलाकर उसकी भूख शान्त की। और प्यास मिटानेके लिए उन्होंने अपनी भुजाओंका खून निकाला और उसे एक औषधि बताकर पिलाया। इसके बाद वे धीरे धीरे यमुनाके किनारे पर आ पहुँचे। देवरतिने रानीको तो एक झाड़के नीचे बैठाया और आप भोजन-सामग्री लेनेको पासके एक गांवमें गये।

यहाँ पर एक छोटासा पर बहुत ही सुन्दर बगीचा था। उसमें एक कोई अपंग मनुष्य चड़स खींचता हुआ और गा रहा था। उसकी आवाज बड़ी मधुर थी। इस लिए उसका गाना बहुत मनोहारी और सुननेवालोंको प्रिय लगता था। उसके गानेकी मधुर आवाज रक्तारानीके भी कानोंसे टकराई। न जाने उसमें ऐसी कौनसी मोहक-शक्ति थी, जो रानीको उसने उसी समय मोह लिया और ऐसा मोहा कि उसे अपने निजत्वसे भी भुला दिया। रानी सब लाज-शरम छोड़कर उस अपंगके पास गई और उससे अपनी पाप-वासना उसने प्रगट की। वह अपंग कोई ऐसा सुन्दर न था, पर रानी तो उस पर जी जानसे न्यौछावर होगई। सच है, "काम न देखे जात कुजात"। राजरानीकी पाप-वासना सुनकर वह घबराकर रानीसे बोला—मैं एक भिखारी और आप राजरानी, तब मेरी आपकी जोड़ी कहाँ? और मुझे आपके साथ देखकर क्या राजा साहब जीता छोड़ देंगे? मुझे आपके शूरवीर और तेजस्वी प्रियतमकी सूरत देखकर कँपनी छूटती है। आप मुझे क्षमा कीजिये। उत्तरमें रानी महाशयाने कहा—इसकी तुम चिन्ता न करो। मैं उन्हें तो अभी ही परलोक पहुँचाये देती हूँ। सच है, दुराचारिणी स्त्रियाँ क्या क्या अनर्थ नहीं कर डालतीं। ये तो इधर बातें कर रहे

थे कि राजा भी इतनेमें भोजन लेकर आगये। उन्हें दूरसे देखते ही कुलटा रानीने मायाचारसे रोना आरम्भ किया। राजा उसकी यह दशा देखकर आश्चर्यमें आगये। हाथके भोजनको एक ओर पटक-कर वे रानीके पास दौड़े आकर बोले—प्रिये, प्रिये, कहो! जल्दी कहो!! क्या हुआ? क्या किसीने तुम्हें कुछ कष्ट पहुँचाया? तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारा आज अकस्मात् रोना देखकर मेरा सब धैर्य छूटा जाता है। बतलाओ, अपने रोनेका कारण, जल्दी बतलाओ? रानी एक लम्बी आह भरकर बोली—प्राणनाथ, आपके रहते मुझे कौन कष्ट पहुँचा सकता है? परन्तु मुझे किसीके कष्ट पहुँचानेसे भी जितना दुःख नहीं होता उससे कहीं बढ़कर आज अपनी इस दशाका दुःख है। नाथ, आप जानते हैं आज आपकी जन्मगांठका दिन है। पर अत्यन्त दुःख है कि पापी दैवने आज मुझे इस भिखारिणीकी दशामें पहुंचा दिया। मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं। बतलाइए, मैं आज ऐसे उत्सवके दिन आपकी जन्मगांठका क्या उत्सव मनाऊं? सच है नाथ, विना पुण्यके जीवों को अथाह शोक-सागरमें डूब जाना पड़ता है। रानीकी प्रेम-भरी बातें सुनकर राजाका गला भर आया, आँखोंसे आँसू टपक पड़े। उन्होंने बड़े प्रेमसे रानीके मुँहको चूमकर कहा—प्रिये, इसके लिए कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं। कभी वह दिन भी आयगा जिस दिन तुम अपनी कामनाओंको पूरी कर सकोगी। और न भी आये तो क्या? जब कि तुम जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया है उसे इस बातकी कुछ परवा भी नहीं है। जिसने अपनी प्रियाकी सेवाके लिए अपना राजपाट तक तुच्छ समझा उसे ऐसी ऐसी छोटी

बातोंका दुःख नहीं होता। उसे यदि दुःख होता है तो अपनी प्यारीको दुखी देखकर। प्रिये, इस शोकको छोड़ो। मेरे लिए तो तुम ही सब कुछ हो। हाय! ऐसे निष्कपट प्रेमका बदला जान लेकर दिया जायगा, इस बातकी खबर या संभावना बेचारे रतिदेवको स्वप्नमें भी नहीं थी। दैवकी विचित्र गति है।

राजाके इस हार्दिक और सच्चे प्रेमका पापिनी रानीके पत्थरके हृदय पर जरा भी असर न हुआ। वह ऊपरसे प्रेम बताकर बोली—अस्तु, नाथ, जो बात हो ही नहीं सकती उसके लिए पछताना तो व्यर्थ ही है। पर तब भी मैं अपने चित्तको सन्तोषित करनेको इस पवित्र फूलकी माला द्वारा नाममात्रके ही लिए कुछ करती हूं। यह कहकर रानीने अपने हाथमें जो फूल गूँथनेकी रस्सी थी, उससे राजाको बाँध दिया। बेचारा वह तब भी यही समझा कि रानी कोई जन्मगांठकी विधि करती होगी और यही समझ उसने खूब मजबूत बांधे जाने पर भी चूं तक नहीं किया। जब राजा बांध दिया गया और उसके निकलनेका कोई भय नहीं रहा तब रानीने इशारेसे उस अपंगको बुलाया और उसकी सहायतासे पास ही बहनेवाली यमुना नदीके किनारेपर लेजाकर बड़े ऊँचेसे राजा को नदीमें ढकेल दिया और आप अब अपने दूसरे प्रियतमके पास रहकर अपनी नीच मनोवृत्तियोंको सन्तुष्ट करने लगी। नीचता और कुलटापनकी हद होगई।

पुण्यका जब उदय होता है तब कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे या कैसी ही भयंकर आपत्तिका क्यों न सामना करना पड़े।

पर तब भी वह रक्षा पा जाता है। देवरतिके भी कोई ऐसा पुण्य-योग था, जिससे रानीके नदीमें डाल देनेपर भी वह बच गया। कोई गहरी चोट उसके नहीं आई। वह नदीसे निकलकर आगे बढ़ा। धीरे धीरे वह मंगलपुर नामक शहरके निकट आ पहुँचा। देवरति कई दिनों तक बराबर चलते रहनेसे बहुत थक गया था, उसे बीचमें कोई अच्छी जगह विश्राम करनेको नहीं मिली थी, इस लिए अपनी थकावट मिटानेके लिए वह एक छायादार वृक्षके नीचे सोगया। मानों जैसे वह सुख देनेवाले जैनधर्मकी छत्रछायामें ही सोया हो।

मंगलपुरका राजा श्रीवर्धन था। उसके कोई सन्तान न थी। इसी समय उसकी मृत्यु होगई। मन्त्रियोंने यह विचार कर, कि पट्टहाथीको एक जलभरा घड़ा दिया जाकर वह छोड़ा जाय और वह जिसका अभिषेक करे वही अपना राजा हो, एक हाथीको छोड़ा। दैवकी विचित्र लीला है, जो राजा है, उसे वह रंक बना देता है और जो रंक है, उसे संसारका चक्रवर्त्ती सम्राट बना देता है। देवरतिका दैव जब उसके विपरीत हुआ तब तो उसे उसने पथ पथका भिखारी बनाया, और अनुकूल होनेपर पीछा सब राज-योग मिला दिया। देवरति भरनींदमें झाड़के नीचे सो रहा था। हाथी उधर ही पहुँचा और देवरतिका उसने अभिषेक कर दिया। देवरति बड़े आनन्द-उत्साहके साथ शहरमें लाया जाकर राज्य-सिंहासन पर बैठाया गया। सच है, पुण्य जब पल्लेमें होता है तब आपत्तियां भी सुखके रूपमें परिणत हो जाती हैं। इस लिए सुखकी चाह करनेवालोंको भगवान्के उपदेश किये हुए मार्ग द्वारा पुण्य-कर्म

करना चाहिए। भगवान्की पूजा, पात्रोंको दान, व्रत, उपवास ये सब पुण्य-कर्म हैं। इन्हें सदा करते रहना चाहिए।

देवरति फिर राजा होगये। पर पहले और अबके राजापनमें बहुत फर्क है। अब वे स्वयं सब राज-काज देखा करते हैं। पहलेसे अब उनकी परिणतिमें भी बहुत भेद पड़ गया है। जो बातें पहले उन्हें बहुत प्यारी थीं और जिनके लिए उन्होंने राज्य-भ्रष्ट होना तक स्वीकार कर लिया था, अब वे ही बातें उन्हें अत्यन्त अप्रिय हो उठीं। अब वे स्त्री-नामसे घृणा करते हैं। वे एक कुल-कलंकिनीका बदला सारे संसारकी स्त्रियोंको कुलकलंकिनी कहकर लेते हैं। वे अब गुणवती स्त्रियोंका भी मुँह देखना पसन्द नहीं करते। सच है, जो एकवार दुर्जनों द्वारा ठगा जाता है वह फिर अच्छे पुरुषोंके साथ भी वैसा ही व्यवहार करने लगता है। गरम दूधका जला हुआ छाछको भी फूँक फूँककर पीता है। देवरतिकी भी अब विपरीत गति है। अब वे स्त्रियोंको नहीं चाहते। वे सबको दान करते हैं, पर जो अपंग, लूला, लँगड़ा होता है, उसे वे एक अन्नका कण तक देना पाप समझते हैं।

इधर रक्तारानीने बहुत दिनों तक तो वहीं रहकर मजा मौज मारी और बाद वह उस अपंगको एक टोकरेमें रखकर देश विदेश घूमने लगी। उस टोकरेको शिरपर रखे हुए वह जहाँ पहुँचती अपनेको महासती जाहिर करती और कहती कि माता-पिताने जिसके हाथ मुझे सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है—देवता है। उसकी इस ठगाईसे बेचारे लोग ठगे जाकर उसे खूब रुपया पैसा

देते। इसी तरह भिक्षा-वृत्ति करती करती रक्तारानी मंगलपुरमें आ निकली। वहाँ भी लोगोंकी उसके सतीत्व पर बड़ी श्रद्धा हो-गई। हाँ सच है, जिन स्त्रियोंने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सरीखे देवताओंको भी ठग लिया, तब साधारण लोग उनके जालमें फँस जायँ इसका आश्चर्य क्या?

एक दिन ये दोनों गाते हुए राजमहलके सामने आये। इनके सुन्दर गानेको सुनकर ड्योढ़ीवानने राजासे प्रार्थना की—महाराज, सिंहद्वार पर एक सती अपने अपंग पतिको टोकरेमें रखकर और उसे सिर पर उठाये खड़ी है। वे दोनों बड़ा ही सुन्दर गाना जानते हैं। महाराजका वे दर्शन करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो मैं उन्हें भीतर आने दूं। इसके साथ ही सभामें बैठे हुए और और प्रतिष्ठित कर्मचारियोंने भी उनके देखनेकी इच्छा जाहिर की। राजाने एक पड़दा डलवाकर उन्हें बुलवानेकी आज्ञा की।

सती सिर पर टोकरा लिए भीतर आई। उसने कुछ गाया। उसके गानेको सुनकर सब मुग्ध होगये और उसकी भूरि भूरि प्रशसा करने लगे। राजाने उसकी आवाज सुनकर उसे पहिचान लिया। उसने पड़दा हटवाकर कहा—अहा, सचमुचमें यह महा-सती है! इसका सतीत्व मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। इसके बाद ही उन्होंने अपनी सारी कथा सभामें प्रगट करदी। लोग सुन-कर दाँतोंतले अँगुली दबा गये। उसी समय महासती रक्ताको शहर बाहर करनेका हुक्म हुआ। देवरतिको स्त्रियोंका चरित देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने अपने पहले पुत्र जयसेनको अयोध्यासे

बुलवाया और उसे ही इस राज्यका भी मालिक कर आप श्रीयम-धराचार्यके पास जिनदीक्षा ले गये, जो कि अनेक सुखोंकी देनेवाली है। साधु होकर देवरतिने खूब तपश्चर्या की, बहुतोंको कल्याणका मार्ग बतलाया और अन्तमें समाधिसे शरीर त्यागकर वे स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंके धारक हुए।

रक्तारानी सरीखी कुलटा स्त्रियोंका घृणित चरित देखकर और संसार, शरीर, भोगादिकोंको इन्द्र-धनुषकी तरह क्षणिक समझकर जिन देवरति राजाने जिनदीक्षा ग्रहण कर मुनिपद स्वीकार किया, वे गुणोंके खजाने मुनिराज मुझे मोक्ष लक्ष्मीका स्वामी बनावें।

३१—गोपवतीकी कथा।

संसार द्वारा वन्दना-स्तुति किये गये और सब सुखोंको देनेवाले जिनभगवान्को नमस्कार कर गोपवतीकी कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर हृदयमें वैराग्य भावना जगती है।

पलासगांवमें सिंहबल नामका एक साधारण गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम गोपवती था। गोपवती बड़े दुष्ट स्वभाव की स्त्री थी। उसकी दिन रातकी खटपटसे बेचारा सिंहबल तबाह होगया। उसे एक पलभरके लिए भी गोपवतीके द्वारा कभी सुख नहीं मिला।

गोपवतीसे तंग आकर एक दिन सिंहबल पासहीके एक

पद्मिनीखेट नामके गांवमें गया। वहां उसने अपनी पहली स्त्रीको बिना कुछ पूछे-ताछे गुप्त रीतिसे सिंहसेन चौधरीकी सुभद्रा नामकी लड़कीसे, जो कि बहुत ही खूब सूरत थी, ब्याह कर लिया। किसी तरह यह बात गोपवतीको मालूम होगई। सुनते ही क्रोधके मारे वह आग-बबूला होगई। उससे सिंहबलका यह अपराध नहीं सहा गया। वह उसे उसके अपराधकी योग्य सजा देनेकी फिराकमें लगी।

एक दिन शामके कोई सात बजे होंगे कि गोपवती अपने घरसे निकलकर पद्मिनीखेट गई। उस समय कोई ग्यारह बज गये होंगे। गोपवती सीधी सिंहसेनके घर पहुंची। घरके लोगोंने समझा कि कोई आवश्यक कामके लिए यह आई होगी, सबेरा होने पर विशेष पूछ-ताछ करेंगे। यह विचार कर वे सब सोगये। गोपवती भी तब लोगोंको दिखानेके लिए सोगई। पर जब सबको नींद आ-गई, तब आप चुपकेसे उठी और जहाँ अपनी माँके पास बेचारी सुभद्रा सोई हुई थी, वहाँ पहुँचकर उस पापिनीने सुभद्राका मस्तक काट लिया और उसे लेकर आप रातहीमें अपने घर पर आगई। सबेरा होते ही यह हाल सिंहबलको मालूम हुआ। सुभद्राके मुर्दे को देखकर उसे बेहद दुःख हुआ। वह खिन्न मन होकर अपने घर आगया। उसे आया देखकर गोपवती अब उसका बड़ा आदर-सत्कार करने लगी। बड़ा स्नेह प्रगट कर उसे भोजन कराने लगी। पर सिंहबलके हृदय पर तो सुभद्राके मरणकी बड़ी गहरी चोट लगी थी, इस लिए उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और वह सदा उदास रहा करता था। और सच भी है, एक महा दुखीको

भोजन वगैरहमें क्या प्रीति होती होगी ? सिंहबलकी सुभद्राके लिए यह दशा देख गोपवतीका क्रोध और भी बढ़ गया। एक दिन बेचारा सिंहबल उदास मनसे भोजन कर रहा था। यह देख गोपवतीने क्रोधसे सुभद्राका मस्तक लाकर उसकी थालीमें डाल दिया और बोली—हाँ बिना इसके देखे तुझे भोजन अच्छा नहीं लगता था; अब तो अच्छा लगेगा न ? सुभद्राके सिरको देखकर सिंहबल काँप गया। वह 'हाय ! यह तो महाराक्षसी है' इस प्रकार जोरसे चिल्लाकर डरके मारे भागने लगा। इतनेमें राक्षसी गोपवती ने पास ही पड़े हुए भालेको उठाकर सिंहबलकी पीठमें इस जोरसे मारा कि वह उसी समय तड़फड़ा कर वहीं पर ढेर होगया। गोपवतीके ऐसे घृणित चरितको देखकर बुद्धिमानोंको उचित है कि वे दुष्ट स्त्रियों पर कभी विश्वास न लावें।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् संसारमें सर्व श्रेष्ठ कहलावें जो कामरूपी हाथीके मारनेको सिंह हैं, संसारका भय मिटानेवाले हैं, शान्ति, स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले हैं और मोक्ष-रूपी रमणी-रत्नके स्वामी हैं। वे मुझे भी शान्ति प्रदान करें।

३२—वीरवतीकी कथा।

संसारके बन्धु, पवित्रता की मूर्ति और मुक्तिका—स्वतंत्रता का सुख देनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर वीरवतीका उपाख्यान लिखा जाता है, जो सत्पुरुषोंके लिए वैराग्यका बढ़ाने-वाला है।

राजगृहमें धनमित्र नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धारिणी और पुत्रका दत्त था। भूमिगृह नामक एक और नगर था। उसमें आनन्द नामका एक साधारण गृहस्थ रहता था। इसकी स्त्री मित्रवती थी। इसके एक वीरवती नामकी कन्या हुई। वीरवतीका ब्याह दत्तके साथ हुआ। सो ठीक ही है, जो सम्बन्ध दैवको मंजूर होता है उसे कौन रोक सकता है।

यहीं एक चोर रहता था। इसका नाम था गारक। किसी समय वीरवतीने इसे देखा। वह इसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो-गई। एक बार दत्त रत्नद्वीपसे धन कमाकर घरकी ओर रवाना हुआ। रास्तेमें इसकी सुसराल पड़ी। इसे अपनी प्रियतमासे मिले बहुत दिन होगये थे, और यह उससे बहुत प्रेम भी करता था, इस लिए इसने सुसराल होकर घर जाना उचित समझा। यह रास्तेमें एक जंगलमें ठहरा। यहीं एक सहस्रभट नामके चोरने इसे देखा। यहांसे चलते समय दत्तके पीछे यह चोर भी विनोदसे हो लिया और साथ साथ भूमिगृहमें आ पहुँचा।

सुसरालमें दत्तका बहुत कुछ आदर-सत्कार हुआ। वीरवती भी बड़े प्रेमके साथ इससे मिली। पर उसका चित्त स्वभाव-प्रसन्न न होकर कुछ बनावटको लिए था। उसका मन किसी गहरी चोटसे जर्जरित है, इस बातको चतुर पुरुष उसके चेहरेके रँगढँगसे बहुत जल्दी ताड़ सकता था। पर सरल-स्वभावी दत्त इसका रत्तीभर भी पता नहीं पा सका। कारण अपनी स्त्रीके सम्बन्धमें उसे स्वप्नमें भी किसी तरहका सन्देह न था। बात यह थी कि जिस चोरके साथ

वीरवतीकी आशनाई थी, वह आज किसी बड़े भारी अपराधके कारण सूलीपर चढ़ाया जानेवाला था। वीरवतीको उसीका बड़ा रंज था और इसीसे उसका चित्त चल-विचल हो रहा था। रातके समय जब सब घरके लोग सोगये तब वीरवती अकेली उठी और हाथमें एक तलवार लिए वहीं पहुँची जहाँ अपराधी सूली पर चढ़ाये जाते थे। इसे घरसे निकलते समय सहस्रभट चोरने देख लिया। वह यह देखनेके लिए कि इतनी रातमें यह अकेली कहाँ जाती है, उसके पीछे पीछे हो लिया। वीरवतीको उसके पाँवोंकी आवाजसे जान पड़ा कि उसके पीछे पीछे कोई आ रहा है, पर रात अँधेरी होनेसे वह उसे देख न सकी। तब उस दुष्टाने अपने हाथकी तलवार का एक वार पीछेकी ओर किया। उससे बेचारे सहस्रभटकी अँगुलियाँ कट गईं। तलवारको झटका लगनेसे उसे और दृढ़ विश्वास हो गया कि पीछे कोई अवश्य आ रहा है। वह देखनेके लिए खड़ी होगई, पर उसे कुछ सफलता प्राप्त न हुई। सहस्रभट कुछ ओर पीछे हट गया। वह फिर आगे बढ़ी। पास ही सूलीका स्थान उसे देख पड़ा। वह पीछे आनेवालेकी बात भूलकर दौड़ी हुई अपने जारके पास पहुँची। उसे सूली पर चढ़ाये बहुत समय नहीं हुआ था, इस लिए उसकी अभी कुछ साँसें बाकी थीं। वीरवती को देखते ही उसने कहा—प्रिये, यही मेरी और तुम्हारी अन्तिम भेंट है। मैं तुम्हारी ही आशा लगाये अब तक जी रहा हूँ, नहीं तो कभीका मरमिटा होता। अब देर न कर मुझ दुखीको अन्तिम प्रेमालिंगन दे सुखी करो और आओ, अपने मुखका पान मेरे मुखमें देओ; जिससे मेरा जीवन जिसके लिए अब तक टिका है उस तुम-सी सुन्दरीका आलिंगन कर शान्तिसे परमधाम सिधारे। हाय! इस कामको धिक्कार है, जो मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ भी उसे चाहता है।

वीरवतीने अपने जारको सूलीपरसे उतारनेका कोई उपाय तत्काळ न देखकर पासमें पड़े हुए कुछ मुर्दोंको इकट्ठा किया और उन्हें ऊपर तले रखकर वह उन पर चढ़ी और अपना मुँह उसके मुँहके पास लेजाकर बोली—प्रियतम, लो अपनी इच्छा पूरी करो। गारकने वीरवतीके मुँहका पान लेनेके लिए उसके ओठोंको अपने मुँहमें लिया था कि कोई ऐसा धक्का लगा जिससे वीरवतीके पाँव नीचेका मुर्दोंका ढेर खिसक जानेसे वीरवती नीचे आ गिरी और उसके ओठ कटकर गारकके ही मुँहमें रह गये। वीरवती वस्त्रसे अपना मुँह छिपाकर दौड़ी दौड़ी घर पर आई और अपने पतिके सिरहाने पहुँचकर उसने एक दम चिल्लाया कि दौड़ो! दौड़ो!! इस पापीने मेरा ओठ काट लिया और साथही बड़े जोरसे वह रोने लगी। उसी समय अड़ोस-पड़ोस और घरके लोगोंने आकर दत्तको बाँध लिया। सच है, पापिनी, कुलटा और अपने वंशका नाश करनेवाली स्त्रियाँ क्या नीच कर्म नहीं कर डालतीं?

सबेरा हुआ। दत्त राजाके सामने उपस्थित किया गया। उसका क्या अपराध है और वह सच है या झूठ, इसकी कुछ विशेष तलाश न की जाकर एकदम उसके मारनेका हुक्म दिया गया। पर यह सबको ध्यानमें रखना चाहिए कि जब पुण्यका उदय

होता है तब मृत्युके समय भी रक्षा हो जाती है। पाठकोंको विनोदी सहस्रभटकी याद होगी। वह वीरवतीके अन्तिम कुकर्म तक उसके आगे पीछे उपस्थित ही रहा है। उसने सच्ची घटना अपनी आँखोंसे देखी है। वह इस समय यहीं उपस्थित था। राजाका दत्तके लिए मारनेका हुक्म सुनकर उससे न रहा गया। उसने अपनी कुछ परवा न कर सब सच्ची घटना राजासे कह सुनाई। राजा सुनकर दंग रह गया। उसने उसी समय अपने पहले हुक्मको रद्दकर निरपराध दत्तको रिहाई दी और वीरवतीको उसके अपराधकी उपयुक्त सजा दी। सच है पुण्यवानोंकी सभी रक्षा करते हैं।

दुष्ट स्त्रियोंका ऐसा घृणित और कलंकित चरित देखकर सबको उचित है कि वे दुःख देनेवाले विषयोंसे अपनी सदा रक्षा करें।

वे महात्मा धन्य हैं, जो भगवान्‌के उपदेश किये हुए पवित्र शील-व्रतसे विभूषित हैं, कामरूपी क्रूर हाथीको मारनेके लिए सिंह हैं—विषयोंको जिन्होंने जीत लिया है, ज्ञान, ध्यान, आत्मानुभवमें जो सदा मग्न हैं, विषयभोगोंसे निरन्तर उदास हैं, भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेमें जो सूर्य हैं और संसार-समुद्रसे पार करनेमें जो बड़े कर्मवीर खेवटिया हैं, वे सबका कल्याण करें।

३३–सुरत राजाकी कथा।

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनभगवान्‌के चरणोंको भक्ति सहित नमस्कार कर सुरत नामके राजाका हाल लिखा जाता है।

सुरत अयोध्याके राजा थे। इनके पाँच सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें पट्टरानीका पद महादेवी सतीको प्राप्त था। राजाका सती पर बहुत प्रेम था। वे रातदिन भोगोंमें ही आसक्त रहा करते थे—उन्हें राज-काजकी कुछ चिन्ता न थी। अन्तःपुरके पहरे पर रहनेवाले सिपाहीसे उन्होंने कह रक्खा था कि जब कोई खास मेरा कार्य हो या कभी कोई साधु-महात्मा यहाँ आवें तो मुझे उनकी सूचना देना। वैसे कभी कुछ कहनेको न आना।

एक दिन पुण्योदयसे एक महिनाके उपवासे दमदत्त और धर्मरुचि मुनि आहारके लिए राजमहलमें आये। उन्हें देखकर द्वारपाल राजाके पास गया और नमस्कार कर उसने मुनियोंके आनेका हाल उनसे कहा। राजा इस समय अपनी प्राणप्रिया सतीके मुख-कमल पर तिलक रचना कर रहे थे। वे सतीसे बोले—प्रिये, जब तक कि तुम्हारा तिलक न सूखे, मैं अभी मुनिराजोंको आहार देकर बहुत जल्दी आया जाता हूँ। यह कहकर राजा चले आये। उन्होंने मुनिराजोंको भक्तिपूर्वक ऊँचे आसन पर बैठाकर नवधा भक्ति-सहित पवित्र आहार कराया, जो कि उत्तम सुखोंका देनेवाला है। सच है, दान, पूजा, व्रत, उपवासादिसे ही श्रावकोंकी शोभा है और जो इनसे रहित हैं वे फलरहित वृक्षकी तरह निरर्थक समझे

जाते हैं। इस लिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे पात्रदान, जिनपूजा, व्रत उपवासादिक सदा अपनी शक्तिके अनुसार करते रहें।

इधर तो राजाने मुनियोंको दान देकर पुण्य उत्पन्न किया और उधर उनकी प्राणप्रिया अपने विषय-सुखके अन्तराय करनेवाले मुनियोंका आना सुनकर बड़ी दुखी हुई। उसने अपना भला-बुरा कुछ न सोचकर मुनियोंकी निन्दा करना शुरू किया और खूब ही मनमानी उन्हें गालियाँ दीं। सन्तोंका यह कहना व्यर्थ नहीं है कि-"इस हाथ दे, उस हाथ ले"। सतीके लिए यह नीति चरितार्थ हुई। अपने बाँधे तीव्र पापकर्मोंका फल उसे उसी समय मिल गया। रानीके कोढ़ निकल आया। सारा शरीर काला पड़ गया। उससे दुर्गन्ध निकलने लगी। आचार्य कहते हैं—हलाहल विष खालेना अच्छा है, जो एक ही जन्ममें कष्ट देता है, पर जन्म जन्ममें दुःख देनेवाली मुनि-निन्दा करना कभी अच्छा नहीं। क्योंकि सन्त-महात्मा तो व्रत, उपवास, शील—आदिसे भूषित होते हैं और सच्चे आत्महितका मार्ग बतानेवाले हैं, वे निन्दा करने योग्य कैसे हों? और ये ही गुरु अज्ञानान्धकारको नष्ट करते हैं इस लिए दीपक हैं, सबका हित करते हैं, इस लिए बन्धु हैं, और संसाररूपी समुद्रसे पार करते हैं, इस लिए कर्मशील खेवटिया हैं। अतः हर प्रयत्न द्वारा इनकी आराधना, सेवा-शुश्रूषा करते रहना चाहिये।

जब राजा मुनिराजोंको आहार देकर निवृत्त हुए तब पीछे वे अपनी प्रियाके पास आगये। आते ही जैसे उन्होंने रानीका काला और दुर्गन्धमय शरीर देखा वे बड़े अंचभेमें पड़ गये। पूछने पर उन्हें उसका कारण मालूम हुआ। सुनकर वे बहुत खिन्न हुए।

संसार, शरीर, भोग उन्हें अब अप्रिय जान पड़ने लगे। उन्हें अपनी रानीका मुनि-निन्दारूप घृणित कर्म देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। वे उसी समय सब राज-पाट छोड़कर योगी बन गये और अपना तथा संसारका हित करनेमें उद्यमी बने।

समय पाकर सतीकी मृत्यु हुई। अपने पापके फलसे वह संसाररूपी वनमें घूमने लगी। सो ठीक ही है, अपने किये पुण्य या पापका फल जीवोंको भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार संसारकी विचित्र स्थिति जानकर आत्महितके चाहनेवाले सत्पुरुषोंको भगवान्‌के उपदेश किये पवित्र धर्म पर सदा विश्वास रखना चाहिए, जो कि स्वर्ग और मोक्षके सुखका प्रधान कारण है।

३४–विषयोंमें फँसे हुए संसारी जीवकी कथा।

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर संक्षेपसे संसारी जीवकी दशा दिखलाई जाती है, जो बहुत ही भयावनी है।

कभी कोई मनुष्य एक भयंकर वनीमें जा पहुँचा। वहाँ वह एक विकराल सिंहको देखकर डरके मारे भागा। भागते भागते अचानक वह एक गहरे कुएमें गिरा। गिरते हुए उसके हाथोंमें एक वृक्षकी जड़ें पड़ गईं। उन्हें पकड़ कर वह लटक गया। वृक्ष पर शहदका एक छत्ता जमा था। सो इस मनुष्यके

पीछे भागे आते हुए सिंहके धक्केसे वृक्ष हिल गया। वृक्षके हिलजानेसे मधुमक्खियाँ उड़ गईं और छत्तेसे शहदकी बूँदें टप टप टपककर उस मनुष्यके मुँहमें गिरने लगीं। इधर कुएमें चार भयानक सर्प थे, सो वे उसे डसनेके लिए मुँह बाये हुए फुंकार करने लगे और जिन जड़ोंको यह अभागा मनुष्य पकड़े हुए था, उन्हें एक काला और एक धोला ऐसे दो चूहे काट रहे थे। इस प्रकारके भयानक कष्टमें वह फँसा था, फिर भी उससे छुटकारा पानेका कुछ यत्न न कर वह मूर्ख स्वादकी लोलुपतासे उन शहदकी बूँदों के लोभको नहीं रोक सका, और उलटा अधिक अधिक उनकी इच्छा करने लगा। इसी समय जाता हुआ कोई विद्याधर उस ओर आ निकला। उस मनुष्यकी ऐसी कष्टमय दशा देखकर उसे बड़ी दया आई। विद्याधरने उससे कहा—भाई, आओ और इस वायुयान में बैठो। मैं तुम्हें निकाले लेता हूँ। इसके उत्तरमें उस अभागेने कहा—हाँ, जरा आप ठहरें, यह शहतकी बूँद गिर रही है, मैं इसे लेकर ही निकलता हूँ। वह बूँद गिर गई। विद्याधरने फिर उससे आनेको कहा। तब भी इसने वही उत्तर दिया कि हाँ यह बूँद आई जाती है, मैं अभी आया। गर्ज यह कि विद्याधरने उसे बहुत समझाया, पर वह "हाँ इस गिरती हुई बूँदको लेकर आता हूं," इसी आशामें फँसा रहा। लाचार होकर बेचारे विद्याधरको लौट जाना पड़ा। सच है, विषयों द्वारा ठगे गये जीवोंकी अपने हितकी ओर कभी प्रीति नहीं होती।

जैसे उस मनुष्यको उपकारी विद्याधरने कुएसे निकालना चाहा, पर वह शहतकी लोलुपतासे अपने हितको नहीं जान सका,

ठीक इसी तरह विषयोंमें फँसा हुआ जीव संसाररूपी कुएमें कालरूपी सिंह द्वारा अनेक प्रकारके कष्ट पा रहा है, उसकी आयुरूपी डालीको दिनरात रूपी दो धोले और काले चूहे काट रहे हैं, कुएके चार सर्परूपी चार गतियाँ इसे डसने के लिए मुँह बाये खड़ी हैं, और गुरु इसे हितका उपदेश दे रहे हैं; तब भी यह अपना हित न कर शहदकी बूँदरूपी विषयोंमें लुब्ध हो रहा है और उनकी ही अधिक अधिक इच्छा करता जाता है। सच तो यह है कि अभी इसे दुर्गतियोंका दुःख बहुत भोगना है। इसी लिए सच्चे मार्गकी ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती।

इस प्रकार यह संसाररूपी भयंकर समुद्र अत्यन्त दुःखोंका देनेवाला है और विषयभोग विष मिले भोजन या दुर्जनोंके समान कष्ट देनेवाले हैं। इस प्रकार संसारकी स्थिति देखकर बुद्धिमानोंको जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश किये हुए पवित्र धर्मको, जो कि अविनाशी अनन्तसुखका देनेवाला है, स्थिर भावोंके साथ हृदयमें धारण करना उचित है।

३५—चारुदत्त सेठकी कथा।

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोंको नमस्कार कर चारुदत्त सेठकी कथा लिखी जाती है।

जिस समयकी यह कथा है, तब चम्पापुरीका राजा शूरसेन था। राजा बड़ा बुद्धिवान् और प्रजाहितैषी था। उसके नीतिमय शासनकी सारी प्रजा एक स्वरसे प्रशंसा करती थी। यहीं एक इज्जत-

दार भानुदत्त सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था। सुभद्राके कोई सन्तान नहीं हुई, इस लिए वह सन्तान प्राप्तिकी इच्छासे नाना प्रकारके देवी-देवताओंकी पूजा किया करती थी, अनेक प्रकारकी मानताएं लिया करती थी; परन्तु तब भी उसका मनोरथ नहीं फला। सच तो है, कहीं कुदेवोंकी पूजा-स्तुतिसे कभी कार्य सिद्ध हुआ है क्या? एक दिन जब वह भगवान्‌के दर्शन करनेको मन्दिर गई तब वहाँ उसने एक चारण मुनि देखे। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—प्रभो, क्या मेरा मनोरथ भी कभी पूर्ण होगा? मुनिराज उसके हृदयके भावोंको जानकर बोले—पुत्री, इस समय तू जिस इच्छासे दिनरात कुदेवोंकी पूजा-मानता किया करती है, वह ठीक नहीं है। उससे लाभकी जगह उलटी हानि हो रही है। तू इस प्रकारकी पूजा-मानता द्वारा अपने सम्यक्त्वको नष्ट मत कर। तू विश्वास कर कि संसारमें अपने पुण्य-पापके सिवा और कोई देवी-देवता किसीको कुछ देने लेनेमें समर्थ नहीं। अब तक तेरे पापका उदय था, इस लिए तेरी इच्छा पूरी न हो सकी। पर अब तेरे महान् पुण्यकर्मका उदय आवेगा, जिससे तुझे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। तू इसके लिए पुण्यके कारण पवित्र धर्मपर विश्वास कर।

मुनिराज द्वारा अपना भविष्य सुनकर सुभद्राको बहुत खुशी हुई। वह उन्हें नमस्कार कर घर चली गई। अबसे उसने सब कुदेवोंकी पूजा-मानता करना छोड़ दिया। वह अब जिन भगवान्‌के पवित्र धर्म पर विश्वास कर दान, पूजा, व्रत वगैरह करने लगी। इस दशामें उसके दिन बड़े सुखके साथ कटने लगे। इसी तरह

कुछ दिन बीतने पर मुनिराजके कहे अनुसार उसके पुत्र हुआ। उसका नाम चारुदत्त रक्खा गया। वह जैसा जैसा बड़ा होता गया, साथमें उत्तम उत्तम गुण भी उसे अपना स्थान बनाते गये। सच है, पुण्यवानोंको अच्छी अच्छी सब बातें अपने आप प्राप्त होती चली आती हैं।

चारुदत्त बचपनहीसे पढ़ने लिखनेमें अधिक योग दिया करता था। यही कारण था कि उसे चौवीस पच्चीस वर्षका होने पर भी किसी प्रकारकी विषय-वासना छू तक न गई थी। उसे तो दिन रात अपनी पुस्तकोंसे प्रेम था। उन्हींके अभ्यास, विचार, मनन, चिन्तनमें वह सदा मग्न रहा करता था और इसीसे बालपनसे ही वह बहुधा करके विरक्त रहता था। उसकी इच्छा नहीं थी कि वह ब्याहकर संसारके माया-जालमें अपनेको फँसावे, पर उसके माता-पिताने उससे ब्याह करनेका बहुत आग्रह किया। उनकी आज्ञाके अनुरोधसे उसे अपने मामाकी गुणवती पुत्री मित्रवतीके साथ ब्याह करना पड़ा।

ब्याह होगया सही, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया। और इसी लिए उसने कभी अपनी प्रियाका मुँह तक नहीं देखा। पुत्रकी युवावस्थामें यह दशा देखकर उसकी माँको बड़ी चिन्ता हुई। चारुदत्तकी विषयोंकी ओर प्रवृत्ति हो, इसके लिए उसने चारुदत्तको ऐसे लोगोंकी संगतिमें डाल दिया, जो व्यभिचारी थे। इससे उसकी मांका अभिप्राय सफल अवश्य हुआ—चारुदत्त विषयोंमें फँस गया और खूब फँस गया। पर अब वह वेश्याका ही प्रेमी बन गया। उसने तबसे घरका मुंह तक नहीं देखा। उसे कोई

लगभग बारह वर्ष वेश्याके यहीं रहते हुए बीत गये। इस अरसेमें उसने अपने घरका सब धन भी गमा दिया। चम्पामें चारुदत्तका घर अच्छे धनिकोंकी गिनतीमें था, पर अब वह एक साधारण स्थितिका आदमी रह गया। अभीतक चारुदत्तके खर्चके लिए उसके घरसे नगद रुपया आया करता था। पर अब रुपया खुट जानेसे उसकी स्त्रीका गहना आने लगा। जिस वेश्याके साथ चारुदत्तका प्रेम था उसकी कुट्टिनी मांने चारुदत्तको अब दरिद्र हुआ समझकर एक दिन अपनी लड़कीसे कहा—बेटी, अब इसके पास धन नहीं रहा, यह भिखारी हो चुका, इस लिए अब तुझे इसका साथ जल्दी छोड़ देना चाहिए। अपने लिए दरिद्र मनुष्य किस कामका। वही हुआ भी। वसन्तसेनाने उसे अपने घरसे निकाल बाहर किया। सच है, वेश्याओंकी प्रीति धनके साथ ही रहती है। जिसके पास जब तक पैसा रहता है उससे तभी तक वह प्रेम करती है। जहाँ धन नहीं वहाँ वेश्याका प्रेम भी नहीं। यह देख चारुदत्तको बहुत दुःख हुआ। अब उसे जान पड़ा कि विषय-भोगोंमें अत्यन्त आसक्तिका कैसा भयंकर परिणाम होता है। वह अब एक पलभरके लिए भी वहां पर न ठहरा और अपनी प्रियाके भूषण ले-लिवाकर विदेश चलता बना। उसे इस हालतमें माताको अपना कलंकित मुँह दिखलाना उचित नहीं जान पड़ा।

यहांसे चलकर चारुदत्त धीरे धीरे उलूख देशके उशिरावर्त नामके शहरमें पहुँचा। चम्पासे जब यह रवाना हुआ तब साथमें इसका मामा भी होगया था। उशिरावर्तमें इन्होंने कपासकी खरीद की। यहाँसे कपास लेकर ये दोनों तामलिप्ता नामक पुरीकी ओर

रवाना हुए। रास्तेमें ये एक भयंकर वनीमें जा पहुँचे। कुछ विश्रामके लिए इन्होंने यहीं डेरा डाल दिया। इतनेमें एक महा आँधी आई। उससे परस्परकी रगड़से बाँसोंमें आग लग उठी। हवा चल ही रही थी, सो आगकी चिनगारियां उड़कर इनके कपासे पर जा पड़ी। देखते देखते वह सब कपास भस्मीभूत होगया। सच है, विना पुण्यके कोई काम सिद्ध नहीं हो पाता है। इस लिए पुण्य कमानेके लिए भगवानके उपदेश किये मार्गपर सबको चलना कर्त्तव्य है। इस हानिसे चारुदत्त बहुत ही दुखी होगया। वह यहाँसे किसी दूसरे देशकी ओर जानेके लिए अपने मामासे सलाह कर समुद्रदत्त सेठके जहाज द्वारा पवनद्वीपमें पहुँचा। यहाँ इसके भाग्यका सितारा चमका। कुछ वर्ष यहां रहकर इसने बहुत धन कमाया। इसकी इच्छा अब देश लौट आनेकी हुई। अपनी माताके दर्शनोंके लिए इसका मन बड़ा अधीर हो उठा। इसने चलनेकी तैयारी कर जहाजमें अपना सब धन-असबाब लाद दिया।

जहाज अनुकूल समय देख रवाना हुआ। जैसे जैसे वह अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमिकी ओर शीघ्र गतिसे बढ़ा हुआ जा रहा था, चारुदत्तको उतनी ही उतनी अधिक प्रसन्नता होती जाती थी। पर यह कोई नहीं जानता कि मनुष्यका चाहा कुछ नहीं होता। होता वही है जो दैवको मंजूर होता है। यही कारण हुआ कि चारुदत्तकी इच्छा पूरी न हो पाई और अचानक जहाज किसीसे टकरा कर फट पड़ा। चारुदत्तका सब माल-असबाब समुद्रके विशाल उदरकी भेंट चढ़ा। वह पीछा पहलेसा ही दरिद्र

होगया। पर चारुदत्तको दुःख उठाते उठाते बड़ी सहन-शक्ति प्राप्त होगई थी। एक पर एक आनेवाले दुःखोंने उसे निराशाके गहरे गढ़ेसे निकाल कर पूर्ण आशावादी और कर्त्तव्यशील बना दिया था। इस लिए अबकी बार उसे अपनी हानिका कुछ विशेष दुःख नहीं हुआ। वह फिर धन कमानेके लिए विदेश चल पड़ा। उसने अबकी बार भी बहुत धन कमाया। घर लौटते समय फिर भी उसकी पहलेसी दशा हुई। इतनेमें ही उसके बुरे कर्मोंका अन्त न हो गया; किन्तु ऐसी ऐसी भयंकर घटनाओंका कोई सात बार उसे सामना करना पड़ा। इसने कष्ट पर कष्ट सहा, पर अपने कर्त्तव्यसे यह कभी विमुख नहीं हुआ। अबकी बार जहाजके फट जानेसे यह समुद्रमें गिर पड़ा। इसे अपने जीवनका भी सन्देह होगया था। इतनेमें भाग्यसे बहकर आता हुआ एक लकड़ेका तख्ता इसके हाथ पड़ गया। उसे पाकर इसके जीमें जी आया। किसी तरह यह उसकी सहायतासे समुद्रके किनारे आ लगा। यहाँसे चलकर यह राजगृहमें पहुँचा। यहाँ इसे एक विष्णुमित्र नामका संन्यासी मिला। संन्यासीने इसके द्वारा कोई अपना काम निकलता देखकर पहले बड़ी सज्जनताका इसके साथ बरताव किया। चारुदत्तने यह समझकर कि यह कोई भला आदमी है, अपनी सब हालत उससे कह दी। चारुदत्तको धनार्थी समझकर विष्णुमित्र उससे बोला— मैं समझा, तुम धन कमानेको घर बाहर हुए हो। अच्छा हुआ तुमने मुझसे अपना सब हाल सुना दिया। पर सिर्फ धनके लिए अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पड़ेगा। आओ, मेरे साथ आओ, यहाँसे कुछ दूरपर जंगलमें एक पर्वत है। उसकी तलहटीमें एक कुआ

है। वह रसायनसे भरा हुआ है। उससे सोना बनाया जाता है। सो तुम उसमेंसे कुछ थोड़ासा रस ले जाओ। उससे तुम्हारी सब दरिद्रता नष्ट हो जायगी। चारुदत्त संन्यासीके पीछे पीछे हो लिया। सच है, दुर्जनों द्वारा धनके लोभी कौन कौन नहीं ठगे गये।

संन्यासी और उसके पीछे पीछे चारुदत्त ये दोनों एक पर्वतके पास पहुँचे। संन्यासीने रस लानेकी सब बातें समझाकर चारुदत्तके हाथमें एक तूँबी दी और एक सींके पर उसे बैठाकर कुएमें उतार दिया। चारुदत्त तूंबीमें रस भरने लगा। इतनेमें वहाँ बैठे हुए एक मनुष्यने उसे रस भरनेसे रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्यने कहा तुम डरो मत, तब कुछ सम्हलकर वह बोला—तुम कौन हो, और इस कुएमें कैसे आये? कुएमें बैठा हुआ मनुष्य बोला, सुनिए, मैं उज्जयिनीमें रहता हूँ। मेरा नाम धनदत्त है। मैं किसी कारणसे सिंहलद्वीप गया था। वहाँसे लौटते समय तूफानमें पड़कर मेरा जहाज फट गया। धन-जनकी बहुत हानि हुई। मेरे हाथ एक लकड़का पटिया लग जानेसे अथवा यों कहिए कि दैवकी दयासे मैं बच गया। समुद्रसे निकलकर मैं अपने शहरकी ओर जा रहा था कि रास्तेमें मुझे यही संन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहाँ लाया। मैंने कुएमेंसे इसे रस भरकर ला दिया। इस पापीने पहले तूँबी मेरे हाथसे लेली और फिर आप रस्सी काटकर भाग गया। मैं आकर कुएमें गिरा। भाग्यसे चोट तो अधिक न आई, पर दो तीन दिन इसमें पड़े रहने से मेरी तबियत बहुत बिगड़ गई और अब मेरे प्राण घुट रहे हैं।

उसकी हालत सुनकर चारुदत्तको बड़ी दया आई। पर वह ऐसी जगहमें फँस चुका था, जिससे उसके जिलानेका कुछ यत्न नहीं कर सकता था। चारुदत्तने उससे पूछा—तो मैं इस संन्यासीको रस भरकर न दूँ ? धनदत्तने कहा—नहीं, ऐसा मत करो; रस तो भरकर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपरसे पत्थर वगैरह मारकर बड़ा कष्ट पहुंचायेगा। तब चारुदत्तने एक बार तो तूंबीको रससे भर-कर सींकेमें रख दिया। संन्यासीने उसे निकाल लिया। अब चारुदत्तको निकालनेके लिए उसने फिर सींका कुएमें डाला। अबकी वार चारुदत्तने स्वयं सींके पर न बैठकर बड़े बड़े वजनदार पत्थरोंको उसमें रख दिया। संन्यासी उस पत्थर भरे सींके पर चारुदत्तको बैठा समझकर, जब सींका आधी दूर आया तब उसे काटकर आप चलता बना। चारुदत्तकी जान बच गई। उसने धनदत्तका बड़ा उपकार मानकर कहा—मित्र, इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज तुमने मुझे जीवन दान दिया और इसके लिए मैं तुम्हारा जन्मजन्म में ऋणी रहूँगा। हाँ और यह तो कहिए कि इससे निकलनेका भी कोई उपाय है क्या ? धनदत्त बोला—यहाँ रस पीनेको प्रतिदिन एक गो आया करती है। तब आज तो वह चली गई। कल सबेरे वह फिर आवेगी सो तुम उसकी पूँछ पकड़कर निकल जाना। इतना कहकर वह बोला—अब मुझसे बोला नहीं जाता। मेरे प्राण बड़े संकटमें हैं। चारुदत्तको यह देख बड़ा दुःख हुआ कि वह अपने उपकारीकी कुछ सेवा नहीं कर पाया। उससे और तो कुछ नहीं बना, पर इतना तो उसने तब भी किया कि धनदत्तको पवित्र जिन-धर्मका उपदेश देकर, जो कि उत्तम गतिका साधन है, पंच नमस्कार

मंत्र सुनाया और साथ ही संन्यास भी लिवा दिया।

सबेरा हुआ। सदाकी भांति आज भी गो रस पीनेके लिए आई। रस पीकर जैसे ही वह जाने लगी चारुदत्तने उसकी पूँछ पकड़ली। उसके सहारेसे वह बाहर निकल आया। यहाँसे इस जंगलको लांघकर यह एक ओर जाने लगा। रास्तेमें इसकी अपने मामा रुद्रदत्तसे भेंट होगई। रुद्रदत्तने चारुदत्तका सब हाल जानकर कहा—तो चलिए अब हम रत्नद्वीपमें चलें। वहाँ अपना मनोरथ अवश्य पूरा होगा। धनकी आशासे ये दोनों अब रत्नद्वीप जानेको तैयार हुए। रत्नद्वीप जानेके लिए पहले एक पर्वत पर जाना पड़ता था, और पर्वत पर जानेका जो रास्ता था, वह बहुत सँकड़ा था। इस लिए पर्वत पर जानेके लिए इन्होंने दो बकरे खरीद किये और उन पर सवार होकर ये रवाना होगये। जब ये पर्वत पर कुशल पूर्वक पहुँच गये तब पापी रुद्रदत्तने चारुदत्तसे कहा—देखो, अब अपनेको यहाँ पर इन दोनों बकरोंको मारकर दो चमड़ेकी थैलियां बनानी चाहिए और उन्हें उलटकर उनके भीतर घुस दोनोंका मुँह सीं लेना चाहिए। मांसके लोभसे यहाँ सदा ही भेरुण्ड-पक्षी आया करते हैं। सो वे अपनेको उठा ले-जाकर उस पार रत्नद्वीपमें ले-जाँयेंगे। वहां जब वे हमें खाने लगें तब इन थैलियोंको चीरकर हम बाहर हो जाँयगे। मनुष्यको देखकर पक्षी उड़ जाँयगे और ऐसा करने से बहुत सीधी तरह अपना काम बन जायगा।

चारुदत्तने रुद्रदत्तकी पापमयी बात सुनकर उसे बहुत फट-कारा और वह साफ इन्कार कर गया कि मुझे ऐसे पाप द्वारा प्राप्त किये धनकी जरूरत नहीं। सच है, दयावान् कभी ऐसा अनर्थ नहीं

करते। रातको ये दोनों सोगये। चारुदत्तको स्वप्नमें भी यह खयाल न था कि रुद्रदत्त सचमुच इतना नीच होगा और इसी लिए वह निःशंक होकर सो गया था। जब चारुदत्तको खूब गाढ़ी नींद आ-गई तब पापी रुद्रदत्त चुपकेसे उठा और जहां बकरे बँधे थे वहां गया। उसने पहले अपने बकरेको मार डाला और चारुदत्तके बकरे का भी उसने आधा गला काट दिया होगा कि अचानक चारुदत्तकी नींद खुल गई। रुद्रदत्तको अपने पास सोया न पाकर उसका सिर ठनका। वह उठकर दौड़ा और बकरोंके पास पहुंचा। जाकर देखता है तो पापी रुद्रदत्त बकरेका गला काट रहा है। चारुदत्तको काटो तो खून नहीं। वह क्रोधके मारे भर्रा गया। उसने रुद्रदत्तके हाथसे छुरी तो छुड़ाकर फैंकी और उसे खूब ही सुनाई। सच है, कौन ऐसा पाप है, जिसे निर्दयी पुरुष नहीं करते ?

उस अधमरे बकरेको टगर टगर देखते देखकर दयासे चारुदत्तका हृदय भर आया। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें टपकने लगीं। पर वह उसके बचानेका प्रयत्न करनेके लिए लाचार था। इस लिए कि वह प्रायः काटा जा चुका था। उसकी शान्तिके साथ मृत्यु होकर वह सुगति लाभ करे, इसके लिए चारुदत्तने इतना अवश्य किया कि उसे पंच नमस्कारमंत्र सुनाकर संन्यास दे दिया। जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवान्के उपदेशका रहस्य समझनेवाले हैं, उनका जीवन सच पूछो तो केवल परोपकारके लिए ही होता है।

चारुदत्तने बहुतेरा चाहा कि मैं पीछा लौट जाऊं, पर वापिस लौटनेका उसके पास कोई उपाय न था। इस लिए अत्यन्त

लाचारीकी दशामें उसे भी रुद्रदत्तकी तरह उस थैलीकी शरण लेनी पड़ी। उड़ते हुए भेरुण्ड-पक्षी पर्वत पर दो मांस-पिण्ड पड़े देखकर आये और उन दोनोंको चोंचोंसे उठा चलते बने। रास्तेमें उनमें परस्पर लड़ाई होने लगी। परिणाम, यह निकला कि जिस थैलीमें रुद्रदत्त था, वह पक्षीकी चोंचसे छूट पड़ी। रुद्रदत्त समुद्रमें गिर कर मर गया। मरकर वह पापके फलसे कुगतिमें गया। ठीक भी है, पापियोंकी कभी अच्छी गति नहीं होती। चारुदत्तकी थैलीको जो पक्षी लिए था, उसने उसे रत्नद्वीपके एक सुन्दर पर्वत पर ले-जाकर रख दिया। इसके बाद पक्षीने उसे चोंचसे चीरना शुरू किया। उसका कुछ भाग चीरते ही उसे चारुदत्त देख पड़ा। पक्षी उसी समय डरकर उड़ भागा। सच है, पुण्यवानोंका कभी कभी तो दुष्ट भी हित करनेवाले हो जाते हैं। जैसे ही चारुदत्त थैलीके बाहर निकला कि धूपमें ध्यान लगाये एक महात्मा उसे देख पड़े। उन्हें ऐसी कड़ी धूपमें मेरुकी तरह निश्चल खड़े देखकर चारुदत्तकी उन पर बहुत श्रद्धा होगई। चारुदत्त उनके पास गया और बड़ी भक्तिसे उसने उनके चरणोंमें अपना सिर नवाया। मुनि-राजका ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्तसे कहा—चारुदत्त, क्यों तुम अच्छी तरह तो हो न ? मुनि द्वारा अपना नाम सुनकर चारुदत्तको कुछ सन्तोष तो इस लिए अवश्य हुआ कि एक अत्यन्त अपरिचित देशमें उसे कोई पहचानता भी है, पर इसके साथ ही उसके आश्चर्यका भी कुछ ठिकाना न रहा। वह बड़े विचारमें पड़ गया कि मैंने तो कभी इन्हें कहीं देखा नहीं, फिर इन्होंने ही मुझे कहाँ देखा था ! अस्तु, जो हो, इन्हींसे पूछता हूँ कि ये मुझे कहाँसे

जानते हैं। वह मुनिराजसे बोला—प्रभो, मालूम होता है आपने मुझे कहीं देखा है, बतलाइए तो आपको मैं कहाँ मिला था ? मुनि बोले—"सुनो, मैं एक विद्याधर हूँ। मेरा नाम अमितगति है। एक दिन मैं चम्पापुरीके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ सैर करनेको गया हुआ था। इसी समय एक धूमसिंह नामका विद्याधर वहाँ आ-गया। मेरी सुन्दर स्त्रीको देखकर उस पापीकी नियत डगमगी। कामसे अंधे हुए उस पापीने अपनी विद्याके बलसे मुझे एक वृक्षमें कील दिया और मेरी प्यारीको विमानमें बैठाकर मेरे देखते देखते आकाश मार्गसे चल दिया। उस समय मेरे कोई ऐसा पुण्यकर्मका उदय आया सो तुम उधर आ निकले। तुम्हें दयावान समझकर मैंने तुमसे इशारा करके कहा—वे औषधियाँ रक्खी हैं, उन्हें पीस-कर मेरे शरीर पर लेप दीजिए। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर वैसा ही किया। उससे दुष्ट विद्याओंका प्रभाव नष्ट हुआ और मैं उन विद्याओंके पंजेसे छूट गया। जैसे गुरुके उपदेशसे जीव, माया, मिथ्याकी कीलसे छूट जाता है। मैं उसी समय दौड़ा हुआ कैलास पर्वत पर पहुँचा और धूमसिंहको उसके कर्मका उचित प्रायश्चित्त देकर उससे अपनी प्रियाको छुड़ा लाया। फिर मैंने आपसे कुछ प्रार्थना की कि आप जो इच्छा हो वह मुझसे माँगें, पर आप मुझसे कुछ भी लेनेके लिए तैयार नहीं हुए। सच तो यह है कि महात्मा लोग दूसरोंका भला किसी प्रकारकी आशासे करते ही नहीं। इसके बाद मैं आपसे बिदा होकर अपने नगरमें आ गया। मैंने इसके पश्चात् कुछ वर्षोंतक और राज्य किया—राज्यश्रीका खूब आनन्द लूटा। बाद आत्मकल्याणकी इच्छासे पुत्रोंको राज्य सौंपकर मैं

दीक्षा ले-गया, जो कि संसारका भ्रमण मिटानेवाली है। चारण-ऋद्धिके प्रभावसे मैं यहाँ आकर तपस्या कर रहा हूँ। मेरा तुम्हारे साथ पुराना परिचय है, इसी लिए मैं तुम्हें पहचानता हूँ।" सुन-कर चारुदत्त बहुत खुश हुआ। वह जब तक वहाँ बैठा रहा, इसी बीचमें इन मुनिराजके दो पुत्र इनकी पूजा करनेको वहाँ आये। मुनिराजने चारुदत्तका कुछ हाल उन्हें सुनाकर उसका उनसे परिचय कराया। परस्परमें मिलकर इन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े ही समयके परिचयसे इनमें अत्यन्त प्रेम बढ़ गया।

इसी समय एक बहुत खूबसूरत युवा यहां आया। सबकी दृष्टि उसके दिव्य तेजकी ओर जा-लगी। उस युवाने सबसे पहले चारुदत्तको प्रणाम किया। यह देख चारुदत्तने उसे ऐसा करने से रोक कर कहा—तुम्हें पहले गुरु महाराजको नमस्कार करना उचित है। आगत युवाने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा आधा गला काट चुका होगा कि उसी समय मेरे भाग्यसे आपकी नींद खुल गई। आपने आकर मुझे नमस्कार मंत्र सुनाया और साथ ही संन्यास दे दिया। मैं शान्त भावोंसे मरकर मंत्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। इस लिए मेरे गुरु तो आप ही हैं—आपही ने मुझे सन्मार्ग बतलाया है। इसके बाद सौधर्म-देव धर्म-प्रेमसे बहुत सुन्दर सुन्दर और मूल्यवान् दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्तको भेंट कर और उसे नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। सच है, जो परोपकारी हैं उनका सब ही बड़ी भक्तिके साथ आदर-सत्कार करते हैं।

इधर वे विद्याधर सिंहयश और वराहग्रीव मुनिराजको

नमस्कार कर चारुदत्तसे बोले—चलिए हम आपको आपकी जन्म-भूमि चम्पापुरीमें पहुँचा आवें। इससे चारुदत्तको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह जानेको सहमत होगया। चारुदत्तने इसके लिए उनसे बड़ी कृतज्ञता प्रगट की। उन्होंने चारुदत्तको उसके सब माल-असबाब सहित बहुत जल्दी विमान द्वारा चम्पापुरीमें ला रक्खा। इसके बाद वे उसे नमस्कार कर और आज्ञा लेकर अपने स्थान लौट गये। सच है, पुण्यसे संसारमें क्या नहीं होता! और पुण्यप्राप्तिके लिए जिनभगवान्‌के द्वारा उपदेश किये दान, पूजा, व्रत, शील-रूप चार प्रकार पवित्र धमका सदा पालन करते रहना चाहिए।

अचानक अपने प्रिय पुत्रके आजानेसे चारुदत्तके माता-पिताको बड़ी खुशी हुई। उन्होंने बारबार उसे छातीसे लगाकर वर्षोंसे वियोगाग्निसे जलते हुए अपने हृदयको ठंडा किया। चारुदत्त की प्रिया मित्रवतीके नेत्रोंसे दिनरात बहती हुई वियोग-दुःखाश्रुओं की धारा और आज प्रियको देखकर बहनेवाली आनन्दाश्रुओंकी धाराका अपूर्व समागम हुआ। उसे जो सुख आज मिला, उसकी समानतामें स्वर्गका दिव्य सुख तुच्छ है। बातकी बातमें चारुदत्तके आनेके समाचार सारी पुरीमें पहुँच गये। और उससे सभीको आनन्द हुआ।

चारुदत्त एक समय बड़ा धनी था। अपने कुकर्मोंसे वह पथ-पथका भिखारी बना। पर जबसे उसे अपनी दशाका ज्ञान हुआ तबसे उसने केवल कर्त्तव्यको ही अपना लक्ष्य बनाया और फिर कर्मशील बनकर उसने कठिनसे कठिन काम किया। उसमें

कई बार उसे असफलता भी प्राप्त हुई, पर वह निराश नहीं हुआ और काम करता ही चला गया। अपने उद्योगसे उसके भाग्यका सितारा फिर चमक उठा और वह आज पूर्ण तेज प्रकाश कर रहा है। इसके बाद चारुदत्तने बहुत वर्षों तक खूब सुख भोगा और जिनधर्मकी भी भक्तिके साथ उपासना की। अन्तमें उदासीन होकर वह अपनी जगह पर अपने सुन्दर नामके पुत्रको नियुक्त कर आप दीक्षा ले-गया! मुनि होकर उसने खूब तप किया और आयुके अन्तमें संन्यास सहित मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग लाभ किया। स्वर्गमें वह सुखके साथ रहता है, अनेक प्रकारके उत्तमसे उत्तम भोगोंको भोगता है, सुमेरु और कैलाशपर्वत आदि स्थानोंके जिनमन्दिरोंकी यात्रा करता है, विदेहक्षेत्रमें जाकर साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवान्‌की स्तुति-पूजा करता है और उनका सुख देनेवाला पवित्र धर्मोपदेश सुनता है। मतलब यह कि उसका प्रायः समय धर्म-साधनहीमें बीतता है। और इसी जिनभगवान्‌के उपदेश किये निर्मल धर्मकी इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि सभी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं, यही धर्म स्वर्ग और मोक्षका देने-वाला है। इस लिए यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुखकी चाह है तो तुम भी इसी धर्मका आश्रय लो।

३६—पाराशरमुनिकी कथा।

जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर अन्यमतोंकी असत्कल्प-नाओंका सत्पुरुषोंको ज्ञान हो, इसलिए उन्हींके शास्त्रोंमें लिखी हुई

पाराशर नामक एक तपस्वीकी कथा यहाँ लिखी जाती है।

हस्तिनागपुरमें गंगभट नामका एक धीवर रहा करता था। एक दिन वह पाप-बुद्धि एक बड़ी भारी मछलीको नदीसे पकड़कर लाया। घर लाकर उस मछलीको जब उसने चीरा तो उसमेंसे एक सुन्दर कन्या निकली। उसके शरीरसे बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी। उस धीवरने उसका नाम सत्यवती रक्खा। वही उसका पालन पोषण भी करने लगा। पर सच पूछो तो यह बात सर्वथा असंभव है। कहीं मछलीसे भी कन्या पैदा हुई है? खेद है कि लोग आँख बन्द किये ऐसी ऐसी बातों पर भी अन्धश्रद्धा किये चले आते हैं।

जब सत्यवती बड़ी होगई तो एक दिनकी बात है कि गंगभट सत्यवतीको नदी किनारे नाव पर बैठा कर आप किसी कामके लिए घर पर आगया। इतनेमें रास्तेका थका हुआ एक पाराशर नामका मुनि, जहाँ सत्यवती नाव लिए बैठी हुई थी, वहाँ आया। वह सत्यवतीसे बोला—लड़की, मुझे नदी पार जाना है, तू अपनी नाव पर बैठाकर पार उतार दे तो बहुत अच्छा हो। भोली सत्यवतीने उसका कहा मान लिया और नावमें उसे अच्छी तरह बैठाकर वह नाव खेने लगी। सत्यवती खूबसूरत तो थी ही और इस पर वह अब तेरह चौदह वर्षकी हो चुकी थी; इस लिए उसकी खिलती हुई नई जवानी थी। उसकी मनोमधुर सुन्दरताने तपस्वीके तपको डगमगा दिया। वह कामवासनाका गुलाम हुआ। उसने अपनी पापमयी मनोवृत्तिको सत्यवती पर प्रगट किया। सत्यवती सुनकर लजा गई, और डरी भी। वह बोली—महाराज,

आप साधु-सन्त, सदा गंगास्नान करनेवाले और शाप देने तथा दया करनेमें समर्थ, और मैं नीच जातिकी लड़की, इस पर भी मेरा शरीर दुर्गन्धमय, फिर मैं आप सरीखोंके योग्य कैसे हो सकती हूँ? पाराशरको इस भोली लड़कीके निष्कपट हृदयकी बात पर भी कुछ शर्म नहीं आई, और कामियोंको शर्म होती भी कहां? उसने सत्यवतीसे कहा—तू इसकी कुछ चिन्ता न कर। मैं तेरा शरीर अभी सुगन्धमय बनाये देता हूं। यह कहकर पाराशरने अपने विद्याबलसे उसके शरीरको देखते देखते सुगन्धमय कर दिया। उसके प्रभावको देखकर सत्यवतीको राजी हो जाना पड़ा। कामी पाराशरने अपनी वासना नावमें ही मिटाना चाही, तब सत्यवती बोली—आपको इसका खयाल नहीं कि सब लोग देखकर क्या कहेंगे? तब पाराशरने आकाशको धुँधला कर, जिससे कोई देख न सके, और अपनी इच्छा .... इसके बाद उसने नदीके बीचमें ही एक छोटासा गाँव बसाया और सत्यवतीके साथ ब्याह कर आप वहीं रहने लगा।

एक दिन पाराशर अपनी वासनाओंकी तृप्ति कर रहा था कि उस समय सत्यवतीके एक व्यास नामका पुत्र हुआ। उसके सिरपर जटाएँ थीं, वह यज्ञोपवीत पहरे हुआ था और उसने उत्पन्न होते ही अपने पिताको नमस्कार किया। पर लोगोंका यह कहना उन्मत्त पुरुषके सरीखा है और न किसी ज्ञान-नेत्रवालेकी समझमें ये बातें आवेंगी ही। क्यों कि वे समझते हैं कि समझदार कभी ऐसी असंभव बातें नहीं कहते; किन्तु भक्तिके आवेशमें आकर असत्तत्त्व पर विश्वास लानेवालोंने ऐसा लिख दिया है। इस लिए बुद्धिवानों

को उचित है कि वे उन विद्वानोंकी संगति करें जो जैनधर्मका रहस्य समझनेवाले हैं, और जैनधर्मसे ही प्रेम करें और उसीके शास्त्रोंका भक्ति और श्रद्धाके साथ अध्ययन करें—उनमें अपनी पवित्र बुद्धिको लगावें, इसीसे उन्हें सच्चा सुख प्राप्त होगा।

३७-सात्यकि और रुद्रकी कथा।

केवलज्ञान ही जिनका नेत्र है, ऐसे जिनभगवान्को नमस्कार कर शास्त्रोंके अनुसार सात्यकि और रुद्रकी कथा लिखी जाती है।

गन्धार देशमें महेश्वरपुर एक सुन्दर शहर था। उसके राजा सत्यन्धर थे। सत्यन्धरकी प्रियाका नाम सत्यवती था। इनके एक पुत्र हुआ उसका नाम सात्यकि था। सात्यकिने राजविद्यामें अच्छी कुशलता प्राप्त की थी। और ठीक भी है, राजा विना राजविद्याके शोभा भी नहीं पाता।

इस समय सिन्धुदेशकी विशाला नगरीका राजा चेटक था। चेटक जैनधर्मका पालक और जिनेन्द्रभगवान्का सच्चा भक्त था। इसकी रानीका नाम सुभद्रा था। सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और धर्मात्मा थी। इसके सात कन्याएँ थीं। उनके नाम थे—पवित्रा, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, जेष्ठा और चन्दना।

सम्राट् श्रेणिकने चेटकसे चेलिनीके लिए मँगनी की थी, पर चेटकने उनकी आयु अधिक देखकर लड़की देनेसे इन्कार कर

दिया। इससे श्रेणिकको बहुत बुरा लगा। अपने पिताके दुःखका कारण जानकर अभयकुमार उनका एक बहुत ही बढ़िया चित्र बनवा कर विशालामें पहुँचा। उसने वह चित्र चेलिनीको बतला कर उसे श्रेणिक पर मुग्ध कर लिया। पर चेलिनीके पिता को उसका ब्याह श्रेणिकसे करना सम्मत नहीं था। इसलिए अभयकुमारने गुप्त मार्गसे चेलिनीको ले जानेका विचार किया। जब चेलिनी उसके साथ जानेको तैयार हुई तब ज्येष्ठाने उससे अपनेको भी ले चलनेके लिए कहा। चेलिनी सहमत तो होगई, पर उसे उसका ले चलना इष्ट नहीं था; इस लिए जब ये दोनों बहिनें थोड़ी दूर गईं होंगी कि धूर्त्ता चेलिनीने ज्येष्ठासे कहा—बहिन, मैं अपने आभूषण तो सब महलहीमें भूल आई हूँ। तू जाकर उन्हें लेआ न? मैं तब तक यहीं खड़ी हूँ। बेचारी भोली जेष्ठा उसके झाँसेमें आकर चली गई। वह थोड़ी दूर ही पहुँची होगी कि इसने इधर आगेका रास्ता पकड़ा और जब तक ज्येष्ठा संकेत स्थानपर आती है तब तक यह बहुत दूर आगे बढ़ आई। अपनी बहिनकी इस कुटिलता या धोखेबाजीसे ज्येष्ठाको बेहद दुःख हुआ। और इसी दुःखके मारे वह यशस्वती आर्यिकाके पास दीक्षा ले-गई। ज्येष्ठाकी सगाई सत्यन्धरके पुत्र सात्यकिसे हो चुकी थी। पर जब सात्यकिने उसका दीक्षा ले-लेना सुना तो वह भी विरक्त होकर समाधिगुप्त मुनि द्वारा दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

एक दिन यशस्वती, ज्येष्ठा आदि आर्यिकाएँ श्रीवर्द्धमान् भगवान्की वन्दना करनेको चलीं। वे सब एक वनीमें पहुँचीं होंगी कि पानी बरसने लगा, और खूब बरसा। इससे इस

आर्यिकासंघको बड़ा कष्ट हुआ। कोई किधर और कोई किधर, इस तरह उनका सब संघ तितर बितर हो गया। ज्येष्ठा एक कालगुहा नामकी गुहामें पहुँची। वह उसे एकान्त समझकर शरीरसे भीगे वस्त्रोंको उतार कर उन्हें निचोड़ने लगी। भाग्यसे सात्यकि मुनि भी इसी गुहामें ध्यान कर रहे थे। सो उन्होंने ज्येष्ठा आर्यिका का खुला शरीर देख लिया। देखते ही विकारभावोंसे उनका मन भ्रष्ट हुआ और उन्होंने अपने शीलरूपी मौलिक रत्नको आर्यिकाके शरीररूपी अग्निमें झोंक दिया। सच है, कामसे अन्धा बना मनुष्य क्या नहीं कर डालता।

गुराणी यशस्वती ज्येष्ठाकी चेष्टा वगैरहसे उसकी दशा जान गई। और इस भयसे कि धर्मका अपवाद न हो, वह ज्येष्ठाको चेलिनीके पास रख आई। चेलिनीने उसे अपने यहाँ गुप्त रीतिसे रख लिया। सो ठीक ही है, सम्यग्दृष्टि निन्दा आदिसे शासनकी सदा रक्षा करते हैं।

नौ महिने होने पर ज्येष्ठाके पुत्र हुआ। पर श्रेणिकने इस रूपमें प्रगट किया कि चेलिनीके पुत्र हुआ। ज्येष्ठा उसे वहीं रखकर आप पीछी आर्यिकाके संघमें चली आई और प्रायश्चित्त लेकर तपस्विनी हो गई। इसका लड़का श्रेणिकके यहीं पलने लगा। बड़ा होने पर वह और और लड़कोंके साथ खेलनेको जाने लगा। पर संगति इसकी अच्छे लड़कोंके साथ नहीं थी, इससे इसके स्वभावमें कठोरता अधिक आ गई। यह अपने साथके खेलनेवाले लड़कोंको रुद्रताके साथ मारने-पीटने लगा। इसकी शिकायत महारानीके

पास आने लगी। महारानीको इस पर बड़ा गुस्सा आया। उसने इसका ऐसा रौद्र स्वभाव देखकर नाम भी इसका रुद्र रख दिया। सो ठीक ही है जो वृक्ष जड़से ही खराब होता है तब उसके फलोंमें मीठापन आ भी कहाँसे सकता है। इसी तरह रुद्रसे एक दिन और कोई अपराध बन पड़ा। सो चेलिनीने अधिक गुस्सेमें आकर यह कह डाला कि किसने तो इस दुष्टको जना और किसे यह कष्ट देता है! चेलिनीके मुँहसे, जिसे कि यह अपनी माता समझता था, ऐसी अचम्भा पैदा करनेवाली बात सुनकर बड़े गहरे विचारमें पड़ गया। इसने सोचा कि इसमें कोई कारण जरूर होना चाहिए। यह सोचकर यह श्रेणिकके पास पहुंचा और उनसे इसने आग्रहके साथ पूछा—पिताजो, सच बतलाइए, मेरे वास्तवमें पिता कौन है और कहाँ है? श्रेणिकने इस बातके बतानेको बहुत आनाकानी की। पर जब रुद्रने बहुत ही उनका पीछा किया और किसी तरह वह नहीं मानने लगा तब लाचार हो उन्हें सब सच्ची बात बता देनी पड़ी। रुद्रको इससे बड़ा वैराग्य हुआ और वह अपने पिताके पास जाकर मुनि होगया।

एक दिन रुद्र ग्यारह अंग और दश पूर्वका बड़े ऊँचेसे पाठ कर रहा था। उस समय श्रुतज्ञानके माहात्म्यसे पाँचसौ तो कोई बड़ी बड़ी विद्याएँ और सातसौ छोटी छोटी विद्याएँ सिद्ध होकर आईं। उन्होंने अपनेको स्वीकार करनेकी रुद्रसे प्रार्थना की। रुद्रने लोभके वश हो उन्हें स्वीकार तो कर लिया, पर लोभ आगे होनेवाले सुख और कल्याणके नाशका कारण होता है, इसका उसने कुछ विचार न किया।

इस समय सात्यकि मुनि गोकर्ण नामके पर्वतकी ऊँची चोटी पर प्रायः ध्यान किया करते थे। समय गर्मीका था। उनकी वन्दनाको अनेक धर्मात्मा भव्य-पुरुष आया जाया करते थे। पर जबसे रुद्रको विद्याएँ सिद्ध हुईं, तबसे वह मुनि-वन्दनाके लिए आनेवाले धर्मात्मा भव्य-पुरुषोंको अपने विद्याबलसे सिंह, व्याघ्र, गेंडा, चीता आदि हिंस्र और भयंकर पशुओं द्वारा डराकर पर्वत पर न जाने देता था। सात्यकि मुनिको जब यह हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने इसे समझाया और ऐसे दुष्ट कार्य करनेसे रोका। पर इसने उनका कहा नहीं माना और अधिक अधिक यह लोगोंको कष्ट देने लगा। सात्यकिने तब कहा—तेरे इस पापका फल बहुत बुरा होगा। तेरी तपस्या नष्ट होगी। तू स्त्रियों द्वारा तपभ्रष्ट होकर आखिर मृत्यु का ग्रास बनेगा। इसलिए अभी तुझे सम्हल जाना चाहिए। जिससे कुगतियोंके दुःख न भोगना पड़ें। रुद्र पर उनके इस कहनेका भी कुछ असर न हुआ। वह और अपनी दुष्टता करता ही चला गया। सच है, पापियोंके हृदयमें गुरुओंका अच्छा उपदेश कभी नहीं ठहरता।

एक दिन रुद्रमुनि प्रकृतिके दृश्योंसे अपूर्व मनोहरता धारण किये हुए कैलास पर्वत पर गया और वहाँ तापन योग द्वारा तप करने लगा। इसके बीचमें एक और कथा है, जिसका इसीसे सम्बन्ध है। विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघनिबद्ध, मेघनिचय और मेघनिदान ऐसे तीन सुन्दर शहर हैं। उनका राजा था कनकरथ। कनकरथकी रानीका नाम मनोहरा था। इसके दो पुत्र हुए। एक देवदारु और दूसरा विद्युज्जिह्व। ये दोनों भाई

खूबसूरत भी थे और विद्वान् भी थे। इन्हें योग्य देखकर इनका पिता कनकरथ राज्यशासनका भार बड़े पुत्र देवदारुको सौंप आप गणधर मुनिराजके पास दीक्षा लेकर योगी बन गया। सबको कल्याणके मार्ग पर लगाना ही एक मात्र अब इसका कर्त्तव्य होगया।

दोनों भाइयोंकी कुछ दिनोंतक तो पटी, पर बादमें किसी कारणको लेकर बिगड़ पड़ी। उसका फल यह निकला कि छोटे भाईने राज्यके लोभमें फँसकर और अपने बड़े भाईके विरुद्ध षड्यंत्र रच उसे राज्यसे निकाल दिया। देवदारुको अपने मानभंगका बड़ा दुःख हुआ। वह वहाँसे चलकर कैलास पर आया और यहीं पर रहने भी लगा। सच है, घरेलू झगड़ोंसे कौन नष्ट नहीं हो जाता। देवदारुके आठ कन्याएँ थीं और सब ही बड़ी सुन्दर थीं। सो एक दिन ये सब बहिनें मिलकर तलाब पर स्नान करनेको आईं। अपने सब कपड़े उतारकर ये नहानेको जलमें घुसीं। रुद्र मुनिने इन्हें खुले शरीर देखा। देखते ही वह कामसे पीड़ा जाकर इन पर मोहित हो गया। उसने अपनी विद्या द्वारा उनके सब कपड़े चुरा मँगाये। कन्याएँ जब नहाकर जल बाहर हुई तब उन्होंने देखा कपड़े वहाँ नहीं; उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे खड़ी खड़ी बेचारी लज्जाके मारे सिकुड़ने लगीं और व्याकुल भी वे अत्यन्त हुईं। इतनेमें उनकी नजर रुद्रमुनि पर पड़ी। उन्होंने मुनिके पास जाकर बड़े संकोचके साथ पूछा—प्रभो, हमारे वस्त्रोंको यहाँसे कौन ले गया? कृपाकर हमें बतलाइए। सच है, पापके उदयसे आपत्ति आ पड़ने पर लज्जा संकोच सब जाता रहता है। पापी रुद्र मुनिने निर्लज्ज होकर उन

कन्याओंसे कहा—हाँ मैं तुम्हारे वस्त्र वगैरह सब बता सकता हूँ, पर इस शर्त पर कि यदि तुम मुझे चाहने लगो। कन्याओंने तब कहा—हम अभी अबोध ठहरीं, इस लिये हमें इस बात पर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं। हमारे पिताजी यदि इस बातको स्वीकार करलें तो फिर हमें कोई उजर नहीं रहेगा। कुलबालिकाओं का यह उत्तर देना उचित ही था। उनका उत्तर सुनकर मुनिने उन्हें उनके वस्त्र वगैरह दे दिये। उन बालिकाओंने घर पर आकर यह सब घटना अपने पितासे कह सुनाई। देवदारुने तब अपने एक विश्वस्त कर्मचारीको मुनिके पास कुछ बातें समझाकर भेजा। उसने जाकर देवदारुकी ओरसे कहा—आपकी इच्छा देवदारु महाराजको जान पड़ी। उसके उत्तरमें उन्होंने यह कहा है कि हाँ मैं अपनी लड़कियोंको आपको अर्पण कर सकता हूं, पर इस शर्त पर कि "आप विद्युज्जिह्वको मारकर मेरा राज्य पीछा मुझे दिलवादें।" रुद्रने यह स्वीकार किया। सच है, कामी पुरुष कौन पाप नहीं करता। रुद्रको अपनी इच्छाके अनुकूल देख देवदारु उसे अपने घर पर लिवा लाया। और बहुत ठीक है, राज्य-भ्रष्ट राजा राज्यप्राप्तिके लिये क्या काम नहीं करता।

इसके बाद रुद्र विजयार्द्ध पर्वत पर गया और विद्याओंकी सहायतासे उसने विद्युज्जिह्वको मारकर उसी समय देवदारुको राज्य सिंहासन पर बैठा दिया। राज्यप्राप्तिके बाद ही देवदारुने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपनी सब लड़कियों का ब्याह आनन्द-उत्सवके साथ उसने रुद्रसे कर दिया। इसके सिवा उसने और भी बहुतसी कन्याओंको उसके साथ ब्याह दिया। रुद्र तब बहुत ही कामी हो

गया। उसके इस प्रकार तीव्र कामसेवनका नतीजा यह हुआ कि सैंकड़ों बेचारी राजबालिकाएँ अकालहीमें मर गईं। पर यह पापी तब भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसने अबकी बार पार्वतीके साथ ब्याह किया। उसके द्वारा इसकी कुछ तृप्ति जरूर हुई।

कामी होनेके सिवा इसे अपनी विद्याओंका भी बड़ा घमंड होगया था। इसने सब राजाओंको विद्याबलसे बड़ा कष्ट दे रक्खा था–बिना ही कारण यह सबको तंग किया करता था। और सच भी है दुष्टसे किसे शान्ति मिल सकती है। इसके द्वारा बहुत तंग आकर पार्वतीके पिता तथा और भी बहुतसे राजाओंने मिलकर इसे मार डालनेका विचार किया। पर इसके पास था विद्याओंका बल, सो उसके सामने होनेकी किसीकी हिम्मत न पड़ती और पड़ती भी तो वे कुछ कर नहीं सकते थे। तब उन्होंने इस बातका शोध लगाया कि विद्याएँ इससे किस समय अलग रहती हैं। इस उपायसे उन्हें सफलता प्राप्त हुई। उन्हें यह ज्ञात होगया कि कामसेवनके समय सब विद्याएँ रुद्रसे पृथक् हो जाती हैं। सो मौका देखकर पार्वतीके पिता वगैरहने खड्ग द्वारा रुद्रको सस्त्रीक मार डाला। सच है, पापियों के मित्र भी शत्रु हो जाया करते हैं।

विद्याएँ अपने स्वामीकी मृत्यु देखकर बड़ी दुखी हुईं और साथ ही उन्हें क्रोध भी अत्यन्त आया। उन्होंने तब प्रजाको दुःख देना शुरू किया और अनेक प्रकारकी बीमारियाँ प्रजामें फैलादीं। उससे बेचारी गरीब प्रजा त्राह त्राह कर उठी। इसी समय एक ज्ञानी मुनि इस ओर आ निकले। प्रजाके कुछ लोगोंने जाकर मुनिसे इस उपद्रवका कारण और उपाय पूछा। मुनिने सब कथा कहकर कहा–

जिस अवस्थामें रुद्र मारा गया है, उसकी एकबार स्थापना करके उससे क्षमा कराओ। वैसा ही किया गया। प्रजाका उपद्रव शान्त हुआ पर तब भी लोगोंकी मूर्खता देखो जो एक बार कोई काम किसी कारणको लेकर किया गया सो उसे अब तक भी गडरिया प्रवाहकी तरह करते चले आते हैं और देवताके रूपमें उसकी सेवा-पूजा करते हैं। पर यह ठीक नहीं। सच्चा देव वही हो सकता है जिसमें राग, द्वेष नहीं, जो सबका जानने और देखनेवाला है और जिसे स्वर्गके देव, चक्रवर्ती, विद्याधर, राजा महाराजा आदि सभी बड़े बड़े लोग मस्तक झुकाते हैं। और ऐसे देव एक अर्हन्त भगवान् ही हैं।

वे जिन भगवान् मुझे शान्ति दें, जो अनन्त उत्तम उत्तम गुणोंके धारक हैं, सब सुखोंके देनेवाले हैं, दुःख, शोक, सन्तापके नाश करनेवाले हैं, केवलज्ञानके रूपमें जो संसारका आताप हर कर उसे शीतलता देनेवाले चन्द्रमा हैं और तीनों लोकोंके स्वामियों द्वारा जो भक्तिपूर्वक पूजे जाते हैं।

३८—लौकिक ब्रह्माकी कथा

संसारके द्वारा पूजे गये भगवान् आदि ब्रह्मा (आदिनाथ स्वामी) को नमस्कार कर, देवपुत्र ब्रह्माकी कथा लिखी जाती है।

कुछ असमझ लोग ऐसा कहते हैं कि एक दिन ब्रह्माजीके मनमें आया कि मैं इंद्रादिकोंका पद छीनकर सर्व श्रेष्ठ हो जाऊँ, और इसके लिये उन्होंने एक भयंकर बनीमें हाथ ऊँचा किये बड़ी घोर तपस्या की। वे कोई साढ़े चार हजार वर्ष पर्यन्त (यह वर्षसंख्या

देवोंके वर्षके हिसाबसे है, जो कि मनुष्योंके वर्षोंसे कई गुणी होती है।) एक ही पाँवसे खड़े रहकर तप करते रहे और केवल वायुका आहार करते रहे। ब्रह्माजीकी यह कठिन तपस्या निष्फल न गई। इन्द्रादिकोंका आसन हिल गया। उन्हें अपने राज्य नष्ट होनेका बड़ा भय हुआ। तब उन्होंने ब्रह्माजीको तपभ्रष्ट करनेके लिये स्वर्गकी एक तिलोत्तमा नामकी वेश्याको, जो कि गन्धर्व देवोंके समान गाने और बड़ी सुन्दर नाचनेवाली थी, भेजा। तिलोत्तमा उनके पास आई और अनेक प्रकारके हाव-भाव-विलास बतला-बतलाकर नाचने लगी। तिलोत्तमाका नृत्य, तिलोत्तमाकी भुवन मनोहारिणी रूपराशि, और उसका हाव-भाव-विलास देखकर ब्रह्माजी तपसे डगमगे। उन्होंने हजारों वर्षोंकी तपस्याको एक क्षणभरमें नष्टकर अपनेको कामके हाथ सौंप दिया। वे आँखें फाड़-फाड़कर तिलोत्तमाकी रूपराशिको बड़े चावसे देखने लगे। तिलोत्तमाने जब देखा कि हाँ योगिराज अब अपने आपेमें नहीं हैं और आँखें फाड़-फाड़कर मेरी ही ओर देख रहे हैं, तब उनकी इच्छाको और जागृत करने के लिये वह उनकी बायीं ओर आकर नाचने लगी। ब्रह्माजीने तब अपनी हजारों वर्षोंकी तपस्याके प्रभावसे अपना दूसरा मुँह बाँयीं ओर बना लिया। तिलोत्तमा जब उनकी पीठ पीछे आकर नाचने लगी। ब्रह्माजीने तब तीसरा मुँह पीछेकी ओर बना लिया। तिलोत्तमा फिर उनकी दाहिनी ओर जाकर नाचने लगी, ब्रह्माजीने उस ओर भी मुँह बना लिया। अन्तमें तिलोत्तमा आकाशमें जाकर नाचने लगी। तब ब्रह्माजीने अपना पाँचवाँ मुँह गधेके मुखके आकारका बनाया। कारण—अब उनकी तपस्याका फल बहुत थोड़ा बच रहा था। मतलब

यह कि तिलोत्तमाने जिस प्रकार ब्रह्माजीको नचाया वे उसी प्रकार नाचे। इस प्रकार उन्हें तपसे भ्रष्टकर और उनके हृदयमें कामकी आग धधकाकर चालाक तिलोत्तमा अछूतीकी अछूती स्वर्गको चली गई और बेचारे ब्रह्माजी कामके तीव्र वेगसे मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर आ गिरे। तिलोत्तमाने सब हाल इन्द्रसे कहकर कहा—प्रभो, अब आप अनन्त कालतक सुखसे रहें। मैं ब्रह्माजीकी खूब ही गति बना आई हूँ। तब इन्द्रने बहुत खुश होकर उससे पूछा—हाँ तिलोत्तमा, तू ब्रह्माजीके पास ठहरी नहीं? तिलोत्तमा बोली—वाह! प्रभो, भली उस बूढ़ेकी और मेरी आपने जोड़ी मिलाई! मैं तो कभी उसके पास खड़ी तक नहीं रह सकती। यह सुन इन्द्रको ब्रह्माजीकी हालत पर बड़ी दया आई। उसने फिर दयाके वश होकर ब्रह्माजीकी शान्तिके लिये उर्वशी नामकी एक दूसरी सुन्दर वेश्याको उनके पास भेजा। इन्द्रकी आज्ञा सिर पर चढ़ाकर उर्वशी ब्रह्माजीके पास आई। उनके पांवोंको छूकर उन्हें उसने सचेत किया। ब्रह्माजी पाँव तले एक स्वर्गीय सुन्दरीको बैठी देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें मानों आज उनकी कड़ी तपस्याका फल मिल गया। ब्रह्माजी अब घर बनाकर उर्वशीके साथ रहने लगे और मनमाने भोग भोगने लगे, तबसे वे लौकिक ब्रह्मा कहलाने लगे।

बड़े दुःखकी बात है कि असमझ लोग देव या देवके सच्चे स्वरूपको जानते नहीं और जैसा अपनी इच्छामें आता है उन्मत्तकी तरह झूठा ही कह दिया करते हैं। क्या कोई हठ करके इन्द्रादिकोंका पद छीन सकता है? और क्या स्वर्गकी देवांगनाएँ व्यभिचार कर सकती हैं? और जो ब्रह्मा तीन लोकका स्वामी देव

कहा जाता है वह क्या ऐसा नीच कर्म करेगा? समझदारों को ये बातें झूठी समझना चाहिए। और जिसमें ऐसी बातें हैं वह कभी ब्रह्मा नहीं हो सकता। जैनशास्त्रोंमें ब्रह्मा उसे कहा है, जो मोक्षमार्गका बतानेवाला, सच्चे ज्ञान और सच्चे चारित्रकी प्राप्ति करानेवाला और आत्माको निजस्वरूपमें स्थिर करनेवाला है। वह अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन अवस्थाओंसे पांच प्रकारका है। इनके सिवा संसारमें और कोई ब्रह्मा नहीं है। क्योंकि राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ—आदि दोषोंसे युक्त कभी ब्रह्मा-देव हो ही नहीं सकता। किन्तु जो इन रागादि दोषोंसे रहित हैं, लोक और अलोकके जानने वाले हैं और केवलज्ञान रूपी नेत्रसे युक्त हैं वे ही ऋषभ भगवान् मेरे सच्चे ब्रह्मा हैं।

वे परम पवित्र आदिनाथ जिनेन्द्र मुझे संसारके दुःखोंसे छुटाकर शांति प्रदान करें, जो भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये सूरजके समान हैं, संसार-समुद्रसे पार करनेवाले हैं, गुणोंके समुद्र हैं, स्वर्ग और मोक्षका पवित्र सुख देनेवाले हैं, इंद्रादि देवों द्वारा पूज्य हैं और केवलज्ञान द्वारा सारे संसारके जानने और देखने वाले हैं।

३६–परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा।

धन, धान्य, दास, दासी, सोना, चांदी, आदि जो संसारके जीवोंको तृष्णाके जालमें फँसाकर कष्ट पर कष्ट देनेवाले हैं, ऐसे परिग्रहसे माया–ममता छोड़ने वाले जो साधु–सन्त हैं, उनसे भी जो ऊँचे हैं—जिनके त्यागसे आगे त्यागकी कोई सीमा नहीं, ऐसे सर्व–श्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा लिखी जाती है।

दशार्ण देशमें बहुत सुन्दर एकरथ नामका एक शहर था। उसमें धनदत्त नामका सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता था। इसके धनदेव और धनमित्र ऐसे दो पुत्र और धनमित्रा नामकी एक सुन्दर लड़की थी।

धनदत्तकी मृत्युके बाद इन दोनों भाइयोंके कोई ऐसा पापकर्मका उदय आया, जिससे इनका सब धन–वन नष्ट होगया—ये महा दरिद्र बन गये। 'कुछ सहायता मिलेगी' इस आशासे ये दोनों भाई अपने मामाके यहाँ कौशाम्बी गये और इन्होंने बड़े दुःखके साथ पिताकी मृत्युका हाल मामाको सुनाया। मामा भी इनकी हालत देखकर बड़ा दुःखी हुआ। उसने अनेक प्रकार समझा–बुझाकर इन्हें धीरज दिया और साथ ही आठ कीमती रत्न दिये, जिससे कि ये अपना संसार चला सकें। सच है, यही बन्धुपना है, यही दयालुपना है, और यही गंभीरता है जो अपने धन द्वारा याचकोंकी आशा पूरी की जाय।

दोनों भाई उन रत्नोंको लेकर पीछे अपने घरकी ओर

रवाना हुए। रास्तेमें आते आते इन दोनोंकी नियत उन रत्नोंके लोभसे बिगड़ी। दोनोंहीके मनमें परस्परके मार डालनेकी इच्छा हुई। इतनेमें गांव पास आजानेसे इन्हें सुबुद्धि सूझ गई। दोनोंने अपने अपने नीच विचारों पर बड़ा ही पश्चात्ताप किया और परस्परमें अपना विचार प्रगट कर मनका मैल निकाल डाला। ऐसे पाप विचारोंके मूल कारण इन्हें वे रत्न ही जान पड़े। इसलिए उन रत्नोंको वेत्रवती नदीमें फैंककर ये अपने घर पर चले आये। उन रत्नोंको मांस समझकर एक मछली निगल गई। यही मछली एक धीवरके जालमें आ फँसी। धीवरने मछलीको मारा। उसमेंसे वे रत्न निकले। धीवरने उन्हें बाजारमें बेच दिया। धीरे धीरे कर्मयोगसे वे ही रत्न इन दोनों भाइयोंकी मांके हाथ पड़े। माताने उनके लोभसे अपने लड़के लड़कीको ही मार डालना चाहा। परन्तु तत्काल सुबुद्धि उपज जानेसे उसने बहुत पश्चात्ताप किया और रत्नोंको अपनी लड़कीको दे दिये। धनमित्राकी भी यही दशा हुई। उसकी भी लोभके मारे नियत बिगड़ गई। उसने माता, भाई—आदिकी जान लेनी चाही। सच है, संसारमें सबसे बड़ा भारी पापका मूल लोभ है। अन्तमें धनमित्राको भी अपने विचार पर बड़ी घृणा हुई और उसने फिर उन रत्नोंको अपने भाइयोंके हाथ दे दिया। वे उन्हें पहिचान गये। उन्हें रत्नोंके प्राप्त होनेका हाल जानकर बड़ा ही वैराग्य हुआ। उसी समय वे संसारकी सब माया–ममता छोड़कर, जो कि महा दुःखका कारण है, दमधर मुनिके पास दीक्षा ले–गये। इन्हें साधु हुए देखकर इनकी माता और बहिन भी आर्यिका हो गईं। आगे चलकर ये दोनों भाई बड़े

तपस्वी—महात्मा हुए। अपना और दूसरोंका संसारके दुःखोंसे उद्धार करना ही एक मात्र इनका कर्त्तव्य हो गया। स्वर्गके देवता और प्रायः सब ही बड़े बड़े राजा महाराजा इनकी सेवा पूजा करने को आने लगे।

यह लोभ संसारके दुःखोंका मूल कारण और अनेक कष्टों का देनेवाला है, माता, पिता, भाई, बहिन, बन्धु, बान्धव-आदिके परस्परमें ठगने और बुरे विचारोंके उत्पन्न करनेका घर है। समझदारोंको, जो कि अपना हित करनेकी इच्छा करते हैं, चाहिए कि वे इस पापके बाप लोभ को मनसा वाचा कर्मणा छोड़कर संसारका हित करनेवाले और स्वर्ग तथा मोक्षका सुख देनेवाले जिनेन्द्र भगवानके उपदेश किये परम पवित्र धर्ममें अपने मनको दृढ़ करनेका यत्न करें।

४०—धनसे डरे हुए सागरदत्तकी कथा।

केवलज्ञानरूपी उज्ज्वल नेत्र द्वारा तीनों लोकोंको देखने और जाननेवाले ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धनके लोभ से डरकर मुनि हो जानेवाले सागरदत्तकी कथा लिखी जाती है।

किसी समय धनमित्र, धनदत्त आदि बहुतसे सेठोंके पुत्र व्यापारके लिए कौशाम्बीसे चलकर राजगृहकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें एक गहन वनीमें चोरोंने इन्हें लूट-लिया-इनका सब माल-असबाब छीन-छानकर वे चलते हुए। सच है, जिनके पल्लेमें

कुछ पुण्य नहीं होता वे कोई भी काम करें, उन्हें नुकसान ही उठाना पड़ता है।

उधर धन पाकर चोरोंकी नियत बिगड़ी। सब परस्परमें यह चाहने लगे कि धन मेरे ही हाथ पड़े और किसीको कुछ न मिले। और इसी लालसासे एक एकके विरुद्ध जान लेनेकी कोशिश करने लगे। रातको जब वे सब खानेको बैठे तो किसीने भोजनमें विष मिला दिया और उसे खाकर सबके सब परलोक सिधार गये। यहाँतक कि जिसने विष मिलाया था, वह भी भ्रमसे उसे खाकर मर गया। उनमें एक सागरदत्त नामक वैश्यपुत्र बच गया। वह इसलिये कि उसे रात्रिमें खाने पीने की प्रतिज्ञा थी। धनके लोभमें फँसनेसे एक साथ सबको मरा देखकर सागरदत्तको बड़ा वैराग्य हुआ। वह उस सब धनको वहीं छोड़-छाड़कर चल दिया और एक साधुके पास जाकर आप मुनि बन गया।

रात्रिभुक्तत्यागव्रती सागरदत्तने संसारकी सब लीलाओंको दुःखकी कारण और जीवनको बिजलीकी तरह पलभरमें नाश होनेवाला समझ सब धन वहीं पर पड़ा छोड़कर आप एक ऊँचे आचरणका धारक साधु हो गया। वह सागरदत्त मुनि आप सज्जनों का कल्याण करें।

४१—धनके लोभसे भ्रममें पड़े कुबेरदत्तकी कथा।

जिनेन्द्र भगवान्‌को, जो कि सारे संसार द्वारा पूज्य हैं, और सबसे उत्तम गिनी जानेवाली जिनवाणीको तथा गुरुओंको

भक्तिपूर्वक नमस्कार कर परिग्रहके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

मणिवत देशमें मणिवत ही नामका एक शहर था। उसके राजाका नाम भी मणिवत था। मणिवतकी रानी पृथिवीमति थी। इसके मणिचन्द्र नामका एक पुत्र था। मणिचन्द्र विद्वान्, बुद्धिवान् और अच्छा शूरवीर था। राजकाजमें उसकी बहुत अच्छी गति थी।

राजा पुण्योदयसे राजकाज योग्यताके साथ चलाते हुए सुखसे अपना समय बिताते थे। धर्म पर उनकी पूरी श्रद्धा थी। वे सुपात्रोंको प्रतिदिन दान देते, भगवान्की पूजा करते और दूसरोंकी भलाई करनेमें भरसक यत्न करते। एक दिन रानी पृथिवीदेवी महाराजके बालोंको सँवार रही थीं कि उनकी नजर एक सफेद बाल पर पड़ी। रानीने उसे निकालकर राजाके हाथमें रख दिया। राजा उस सफेद बालको कालका भेजा दूत समझकर संसार और विषयभोगोंसे बड़े विरक्त होगये। उन्होंने अपने मणिचन्द्र पुत्रको राज्यका सब कारबार सौंप दिया और आप भगवान्की पूजा—अभिषेक कर तथा याचकोंको दान दे जंगलकी ओर रवाना होगये और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे। वे अब दिनोंदिन आत्माको पवित्र बनाते हुए परमात्म-स्मरणमें लीन रहने लगे।

मणिवत मुनि नाना देशोंमें धर्मोपदेश करते हुए एक दिन उज्जैनके बाहर मसानमें आये। रातके समय वे मृतक शय्या द्वारा

ध्यान करते हुए शान्तिके लिए परमात्माका स्मरण-चिन्तन कर रहे थे। इतनेमें वहाँ एक कापालिक वैतालीविद्या साधनके लिए आया। उसे चूला बनानेके लिए तीन मुर्दोंकी जरूरत पड़ी। सो एक तो उसने मुनिको समझ लिया और दो मुर्दोंको वह और घींस लाया। उन तीनोंके सिरका चूल्हा बनाकर उस पर उसने एक नर-कपाल रक्खा और आग सुलगाकर कुछ नैवेद्य पकाने लगा। थोड़ी देर बाद जब आग जोरसे चेती और मुनिकी नसें जलने लगीं तब एकदम मुनिका हाथ ऊपरकी ओर उठ जानेसे सिरपरका कपाल गिर पड़ा। कापालिक उससे डरकर भाग खड़ा हुआ। मुनिराज मेरु सामान वैसेके वैसे ही अचल बने रहे। सवेरा होने पर किसी आते जाते मनुष्यने मुनिकी यह दशा देख जिनदत्तको यह सब हाल कह सुनाया। जिनदत्त उसी समय दौड़ा दौड़ा मसान में गया। मुनिकी दशा देखकर उसे बेहद दुःख हुआ। मुनिको अपने घर पर लाकर उसने एक प्रसिद्ध वैद्यसे उनके इलाजके लिए पूछा। वैद्य महाशयने कहा—सोमशर्मा भट्टके यहाँ लक्षपाक नामका बहुत ही उम्दा तैल है, उसे लाकर लगाओ। उससे बहुत जल्दी आराम होगा—आगका जला उससे फौरन आराम होता है। सेठ सोमशर्मा के घर दौड़ा हुआ गया। घर पर भट्ट महाशय नहीं थे, इस लिए उसने उनकी तुकारी नामकी स्त्रीसे तैलके लिए प्रार्थना की। तैलके कई घड़े उसके यहाँ भरे रक्खे थे। तुकारीने उनमेंसे एक घड़ा ले जानेको जिनदत्तसे कहा। जिनदत्त ऊपर जाकर एक घड़ा उठाकर लाने लगा। भाग्यसे सीढ़ियाँ उतरते समय पाँव फिसल जानेसे घड़ा उसके हाथोंसे छूट पड़ा। घड़ा फूट गया और तैल सब रेलम-ठेल

होगया। जिनदत्तको इससे बहुत भय हुआ। उसने डरते डरते घड़ेके फूट जानेका हाल तुकारीसे कहा। तब तुकारीने दूसरा घड़ा ले आनेको कहा। उसे पहले घड़ेके फूट जानेका कुछ भी खयाल नहीं हुआ। सच है, सज्जनोंका हृदय समुद्रसे भी कहीं अधिक गंभीर हुआ करता है। जिनदत्त दूसरा घड़ा ले कर आ रहा था। अबकी बार तैलसे चिकनी जगह पर पाँव पड़ जानेसे फिर भी वह फिसल गया और घड़ा फूटकर उसका सब तैल बह गया। इसी तरह तीसरा घड़ा भी फूट गया। अब तो जिनदत्तके देवता कूँच कर गये। भयके मारे वह थर थर काँपने लगा। उसकी यह दशा देखकर तुकारीने उससे कहा कि घबराने और डरनेकी कोई बात नहीं। तुमने कोई जानकर थोड़े ही फोड़े हैं। तुम किसी तरहकी चिन्ता-फिकर मत करो। जब तक तुम्हें जरूरत पड़े तुम प्रसन्नताके साथ तैल लेजाया करो। देनेसे मुझे कोई उजर न होगा। कोई कैसा ही सहनशील क्यों न हो, पर ऐसे मौके पर उसे भी गुस्सा आये विना नहीं रहता। फिर इस स्त्रीमें इतनी क्षमा कहाँसे आई ? इसका जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ। जिनदत्तने तुकारीसे पूछा भी, कि माँ, मैंने तुम्हारा इतना भारी अपराध किया, उस पर भी तुमको रत्तीभर क्रोध नहीं आया, इसका कारण क्या है ? तुकारीने कहा—भाई, क्रोध करनेका फल जैसा चाहिए वैसा मैं भुगत चुकी हूँ। इस लिए क्रोधके नामसे ही मेरा जी काँप उठता है। यह सुनकर जिनदत्तका कौतुक और बढ़ा, तब उसने पूछा यह कैसे ? तुकारी कहने लगी—

"चन्दनपुरमें शिवशर्मा ब्राह्मण रहता है। वह धनवान् और

राजाका आदरपात्र है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है। उसके कोई आठ तो पुत्र और एक लड़की है। लड़कीका नाम भट्टा है और वह मैं ही हूँ। मैं थी बड़ी सुन्दरी, पर मुझमें एक बड़ा दुर्गुण था। वह यह कि मैं अत्यन्त मानिनी थी। मैं बोलनेमें बड़ी ही तेज थी और इसी लिए मेरे भयका सिक्का लोगोंके मन पर ऐसा जमा हुआ था कि किसीकी हिम्मत मुझे "तू" कहकर पुकारनेकी नहीं होती थी। मुझे ऐसी अभिमानिनी देखकर मेरे पिताने एकबार शहरमें डौंडी पिटवा दी कि मेरी बेटीको कोई 'तू' कहकर न पुकारे। क्योंकि जहाँ मुझसे किसीने 'तू' कहा कि मैं उससे लड़ने झगड़नेको तैयार ही रहा करती थी और फिर जहाँ-तक मुझमें शक्ति जोर होता मैं उसकी हजारों पीढ़ियोंको एक पलभर में अपने सामने ला खड़ा करती और पिताजी इस लड़ाई-झगड़ेसे सौ हाथ दूर भागनेकी कोशिश करते। जो हो, पिताजीने तो अच्छा ही काम किया था, पर मेरे खोटे भाग्यसे उनका डौंडी पिटवाना मेरे लिए बहुत ही बुरा हुआ। उस दिनसे मेरा नाम ही 'तुकारी' पड़ गया और सब ही मुझे इस नामसे पुकार पुकार कर चिड़ाने लगे। सच है, अधिक मान भी कभी अच्छा नहीं होता। और इसी चिड़के मारे मुझसे कोई ब्याह करने तकके लिए तैयार न होता था। मेरे भाग्यसे इन सोमशर्माजीने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि मैं कभी इसे 'तू' कहकर न पुकारूंगा। तब इनके साथ मेरा ब्याह हो गया। मैं बड़े उत्साहके साथ उज्जैनमें लाई गई। सच कहूँगी कि इस घरमें आकर मैं बड़े सुखसे रही।

भगवान्‌की कृपासे घर सब तरह हरा भरा है। धन सम्पत्ति भी मनमानी है।

पर 'पड़ा स्वभाव जाय जीवसे' इस कहावतके अनुसार मेरा स्वभाव भी सहजमें थोड़े ही मिट जानेवाला था। सो एक दिनकी बात है कि मेरे स्वामी नाटक देखने गये। नाटक देखकर आते हुए उन्हें बहुत देर लग गई। उनकी इस देरी पर मुझे अत्यन्त गुस्सा आया। मैंने निश्चय कर लिया कि आज जो कुछ हो, मैं कभी दरवाजा नहीं खोलूंगी और मैं सो गई। थोड़ी देर बाद वे आये और दरवाजे पर खड़े रहकर वे बारबार मुझे पुकारने लगे। मैं चुप्पी साधे पड़ी रही, पर मैंने किवाड़ न खोले। बाहरसे चिल्लाते चिल्लाते वे थक गये, पर उसका मुझ पर कुछ असर न हुआ। आखिर उन्हें भी बड़ा क्रोध हो आया। क्रोधमें आकर वे अपनी प्रतिज्ञा तक भूल बैठे। सो उन्होंने मुझे 'तू' कहकर पुकार लिया। बस, उनका 'तू' कहना था कि मैं सिरसे पाँवतक जल उठी और क्रोधसे अन्धी बनकर किवाड़ खोलती हुई घरसे निकल भागी। मुझे उस समय कुछ न सूझा कि मैं कहाँ जा रही हूँ। मैं शहर बाहर होकर जंगलकी ओर चल धरी। रास्तेमें चोरोंने मुझे देख लिया। उन्होंने मेरे सब गहने-दागीने और वस्त्र छीन-छानकर विजयसेन नामके एक भीलको सौंप दिया। मुझे खूबसूरत देखकर इस पापीने मेरा धर्म बिगाड़ना चाहा, पर उस समय मेरे भाग्यसे किसी दिव्य स्त्रीने आकर मुझे बचाया—मेरे धर्मकी उसने रक्षा की। भीलने उस दिव्य स्त्रीसे डरकर मुझे एक सेठके हाथ सौंप दिया। उसकी नियत भी मुझ पर बिगड़ी। मैंने उसे खूब ही झाड़े

हाथों लिया। इससे वह मेरा कर तो कुछ न सका, पर गुस्सेमें आकर उस नीचने मुझे एक ऐसे मनुष्यके हाथ सौंप दिया जो जीवोंके खूनसे रँगकर कम्बल बनाया करता था। वह मेरे शरीर पर जौंकें लगा-लगाकर मेरा रोज रोज बहुतसा खून निकाल लेता था और उसमें फिर कम्बलको रँगा करता था। सच है, एक तो वैसे ही पाप कर्मका उदय और उस पर ऐसा क्रोध, तब उससे मुझ सरीखी हतभागिनियोंको यदि पद पद पर कष्ट उठाना पड़े तो उसमें आश्चर्य ही क्या ?

इसी समय उज्जैनके राजाने मेरे भाईको यहांके राजा पारसके पास किसी कार्यके लिये भेजा। मेरा भाई अपना काम पूराकर पीछा उज्जैनकी ओर जा रहा था कि अचानक मेरी उसकी भेंट हो गई। मैंने अपने कर्मों पर बड़ा पश्चात्ताप किया। जब मैंने अपना सब हाल उससे कहा तो उसे भी बहुत दुःख हुआ। उसने मुझे धीरज दिया। इसके बाद वह उसी समय राजाके पास गया और सब हाल उनसे कहकर उस कम्बल बनानेवाले पापीसे उसने मेरा पंजा छुड़ाया। वहाँसे लाकर बड़ी आर्जू-मिन्नतके साथ उसने फिर मुझे अपने स्वामी के घर ला रक्खा। सच है, सच्चे बन्धु वे ही हैं जो कष्टके समय काम आवें। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि मेरे शरीरका प्रायः खून निकल चुका था। इसी कारण घर पर आते ही मुझे लकवा मार गया। तब वैद्यने यह लक्षपाक तैल बनाकर मुझे जिलाया। इसके बाद मैंने एक वीतरागी साधु द्वारा धर्मोपदेश सुनकर सर्वश्रेष्ठ और सुख देनेवाला सम्यक्त्वव्रत ग्रहण किया और साथ ही यह प्रतिज्ञा की कि आजसे मैं किसी पर क्रोध नहीं करूँगी। यही

कारण है कि मैं अब किसी पर क्रोध नहीं करती।" अब आप आइए और इस तैल द्वारा मुनिराजकी सेवा कीजिए। अधिक देरी करना उचित नहीं है।

जिनदत्त भट्टाको नमस्कार कर घर गया और तैलका मालिश वगैरहसे बड़ी सावधानीके साथ मुनिकी सेवा करने लगा। कुछ दिनोंतक बराबर मालिश करते रहनेसे मुनिको आराम हो गया। सेठने भी अपनी इस सेवा-भक्ति द्वारा बहुत पुण्यबन्ध किया। चौमासा आगया था इसलिए मुनिराजने कहीं अन्यत्र जाना ठीक न समझ यहीं जिनदत्त सेठके जिन मन्दिरमें वर्षायोग ले-लिया और यहीं वे रहने लगे।

जिनदत्तका एक लड़का था, नाम इसका कुबेरदत्त था। इसका चालचलन अच्छा न देखकर जिनदत्तने इसके डरसे कीमती रत्नोंका भरा अपना एक घड़ा जहाँ मुनि सोया करते थे वहाँ खोद कर गाड़ दिया। जिनदत्तने यह कार्य किया तो था बड़ी दुपका-चोरी से, पर कुबेरदत्तको इसका पता पड़ गया। उसने अपने पिताका सब कर्म देख लिया और मौका पाकर वहाँसे घड़ेको निकाल मन्दिरके आँगनमें दूसरी जगह गाड़ दिया। कुबेरदत्तको ऐसा करते मुनिने देख लिया था, परन्तु तब भी वे चुपचाप रहे और उन्होंने किसीसे कुछ नहीं कहा। और कहते भी कहाँसे जब कि उनका यह मार्ग ही नहीं है।

जब योग पूरा हुआ तब मुनिराज जिनदत्तको सुख-साता पूछकर वहाँसे विहार कर गये। शहर बाहर जाकर वे ध्यान करने बैठे। इधर मुनिराजके चले जानेके बाद सेठने वह रत्नोंका घड़ा घर

लेजानेके लिए जमीन खोद कर देखा तो वहाँ घड़ा नहीं। घड़ेको एकाएक गायब हो जानेका उसे बड़ा अचंभा हुआ और साथ ही उसका मन व्याकुल भी हुआ। उसने सोचा कि घड़ेका हाल केवल मुनि ही जानते थे, फिर बड़े अचंभेकी बात है कि उनके रहते यहांसे घड़ा गायब हो जाय ? उसे घड़ा गायब करनेका मुनिपर कुछ सन्देह हुआ। तब वह मुनिके पास गया और उनसे उसने प्रार्थना की कि प्रभो, आप पर मेरा बड़ा ही प्रेम है—आप जबसे चले आये हैं तबसे मुझे सुहाता ही नहीं, इसलिए चलकर आप कुछ दिनों तक और वहीं ठहरें तो बड़ी कृपा हो। इसप्रकार मायाचारीसे जिनदत्त मुनिराजको पीछा अपने मन्दिर पर लौटा लाया। इसके बाद उसने कहा, स्वामी, कोई ऐसी धर्म-कथा सुनाइए, जिससे मनोरंजन हो। तब मुनि बोले—हम तो रोज ही सुनाया करते हैं, आज तुम ही कोई ऐसी कथा कहो। तुम्हें इतने दिन शास्त्र पढ़ते हो गये, देखें तुम्हें उनका सार कैसा याद रहता है ? तब जिनदत्त अपने भीतरी कपट-भावों को प्रकट करनेके लिये एक ऐसी ही कथा सुनाने लगा। वह बोला—

"एक दिन पद्मरथपुरके राजा वसुपालने अयोध्याके महाराज जितशत्रुके पास किसी कामके लिए अपना एक दूत भेजा। एक तो गर्मीका समय और ऊपरसे चलनेकी थकावट सो इसे बड़े जोरकी प्यास लग आई। पानी इसे कहीं नहीं मिला। आते आते यह एक घनी वनीमें आकर वृक्षके नीचे गिर पड़ा। इसके प्राण कण्ठगत हो गये। इसको यह दशा देखकर एक बन्दर दौड़ा दौड़ा तालाब पर गया और उसमें डूबकर यह उस वृक्षके नीचे पड़े पथिकके पास आया। आते ही इसने अपने शरीरको उस पर झिड़का दिया। जब

जल उस पर गिरा और उसकी आंखें खुलीं तब बन्दर आगे होकर उसे इशारेसे तालाबके पास ले गया। जल पीकर इसे बहुत शान्ति मिली। अब इसे आगेके लिए जलकी चिन्ता हुई। पर इसके पास कोई बरतन वगैरह न होनेसे यह जल ले जा नहीं सकता था। तब इसे एक युक्ति सूझी। इसने उस बेचारे जीवदान देनेवाले बन्दरको बन्दूकसे मारकर उसके चमड़ेकी थैली बनाई और उसमें पानी भर कर चल दिया।" अच्छा प्रभो, अब आप बतलाइए कि उस नीच, निर्दयी, अधर्मीको अपने उपकारी बन्दरको मार डालना क्या उचित था ? मुनि बोले तुम ठीक कहते हो। उस दूतका यह अत्यन्त कृतघ्नता भरा नीच काम था। इसके बाद अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए मुनिराजने भी एक कथा कहना आरंभ की। वे कहने लगे—

"कौशाम्बीमें किसी समय एक शिवशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कपिला था। इसके कोई लड़का बाला नहीं था। एक दिन शिवशर्मा किसी दूसरे गांवसे अपने शहरकी ओर लौट रहा था। रास्तेमें एक जंगलमें उसने एक नेवलाके बच्चेको देखा। शिवशर्माने उसे घर उठा लाकर अपनी प्रियासे कहा—ब्राह्मणीजी आज मैं तुम्हारे लिए एक लड़का लाया हूँ। यह कहकर उसने नेवलेको कपिलाकी गोदमें रख दिया। सच है, मोहसे अन्धे हुए मनुष्य क्या नहीं करते ? ब्राह्मणीने उसे ले-लिया और पाल-पोस कर उसे कुछ सिखा-विखा भी दिया। नेवलेमें जितना ज्ञान और जितनी शक्ति थी वह उसके अनुसार ब्राह्मणीका बताया कुछ काम भी कर दिया करता था।

भाग्यसे अब ब्राह्मणीके भी एक पुत्र हो गया। सो एक दिन ब्राह्मणी बच्चेको पालनेमें सुलाकर आप धान खाँडनेको चली गई और जाते समय पुत्ररक्षाका भार वह नेवलेको सौंपती गई। इतनेमें एक सर्पने आकर उस बच्चेको काट लिया। बच्चा मर गया। क्रोधमें आकर नेवलेने सर्पके टुकड़े टुकड़े कर डाले। इसके बाद वह खूनभरे मुँहसे ही कपिलाके पास गया। कपिला उसे खून से लथ-पथ भरा देखकर कांप गई। उसने समझा कि इसने मेरे बच्चेको खा लिया। उसे अत्यन्त क्रोध आया। क्रोधके वेगमें उसने न कुछ सोचा-विचारा और न जाकर देखा ही कि असलमें बात क्या है, किन्तु एक साथ ही पासमें पड़े हुए मूसलेको उठा कर नेवले पर दे मारा। नेवला तड़फड़ा कर मर गया। अब वह दौड़ी हुई बच्चेके पास गई। देखती है तो वहां एक काला भुजंग सर्प मरा हुआ पड़ा है। फिर उसे बहुत पछतावा हुआ। ऐसे मूर्खोंको धिक्कार है जो बिना विचारे जल्दीमें आकर हर एक काम कर बैठते हैं।" अच्छा सेठ महाशय, कहिए तो सर्पके अपराध पर बेचारे नेवलेको इसप्रकार निर्दयतासे मार देना ब्राह्मणीको योग्य था क्या ? जिनदत्तने कहा- नहीं। यह उसकी बड़ी गलती हुई। यह कहकर उसने फिर एक कथा कहना आरंभ की—

"बनारसके राजा जितशत्रुके यहां धनदत्त राज्यवैद्य था। इसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता था। वैद्य महाशयके धनमित्र और धनचन्द्र नामके दो लड़के थे। लाड़-प्यारमें रहकर इन्होंने अपनी कुलविद्या भी न पढ़ पाई। कुछ दिनों बाद वैद्यराज काल कर गये। राजाने इन दोनों भाइयोंको मूर्ख देख इनके पिताकी जीविका

पर किसी दूसरेको नियुक्त कर दिया। तब इनकी बुद्धि ठिकाने आई। ये दोनों भाई अब वैद्यशास्त्र पढ़नेकी इच्छासे चम्पापुरीमें शिवभूति वैद्यके पास गये। इन्होंने वैद्यसे अपनी सब हालत कहकर उनसे वैद्यक पढ़नेकी इच्छा जाहिर की। शिवभूति बड़ा दयावान् और परोपकारी था, इसलिए उसने इन दोनों भाइयोंको अपने ही पास रखकर पढ़ाया। और कुछ ही वर्षोंमें इन्हें अच्छा हुशियार कर दिया। दोनों भाई गुरु महाशयके अत्यन्त कृतज्ञ होकर पीछे बनारसकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें आते हुये इन्होंने जंगलमें आंखकी पीड़ासे दुखी एक सिंहको देखा। धनचन्द्र-को उस पर दया आई। अपने बड़े भाईके बहुत कुछ मना करने पर भी धनचन्द्रने सिंहकी आंखोंका इलाज किया। उससे सिंह को आराम हो गया। आंख खोलते ही उसनें धनचन्द्रको अपने पास खड़ा पाया। वह अपने जन्म स्वभावको न छोड़कर क्रूरता के साथ उसे खा गया।" मुनिराज उस दुष्ट सिंहका बेचारे वैद्य को खा जाना क्या अच्छा काम हुआ? मुनिने 'नहीं' कहकर एक और कथा कहना शुरू की।

"चम्पापुरीमें सोमशर्मा ब्राह्मणकी दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम सोमिल्या और दूसरीका सोमशर्मा था। सोमिल्या बाँझ थी और सोमशर्माके एक लड़का था। यहीं एक बैल रहता था। लोग उसे 'भद्र' नामसे बुलाया करते थे। बेचारा बड़ा सीधा था। कभी किसीको मारता नहीं था। वह सबके घर पर घूमा-फिरा करता था। उसे इस तरह जहाँ थोड़ी बहुत घास खानेको मिलती वह उसे ही खाकर रह जाता था। एक दिन उस बाँझ पापिनीने डाहके मारे अपनी सौतके बच्चेको निर्दयतासे मार कर उसका

अपराध बेचारे बैल पर लगा दिया। उसे ब्राह्मण बालकका मारने-वाला समझ कर सब लोगोंने घास खिलाना छोड़ दिया और शहरसे निकाल बाहर कर दिया। बेचारा भूख-प्यासके मारे बड़ा दुःख पाने लगा। बहुत ही दुबला पतला हो गया। पर तब भी किसीने उसे शहर भीतर नहीं घुसने दिया। एक दिन जिनदत्त सेठकी स्त्री पर व्यभिचारका अपराध लगा। वह अपनी निर्दोषता बतलानेके लिए चौराहे पर जाकर खड़ी हुई, जहाँ बहुतसे मनुष्य इकट्ठे हो रहे थे। उसने कोई भयंकर दिव्य लेनेके इरादेसे एक लोहेके टुकड़ेको अग्निमें खूब तपाकर लाल सुर्ख किया। इस मौके को अपने लिए बहुत अच्छा समझ उस बैलने झट वहाँ पहुंच कर जलते हुए उस लोहेके टुकड़ेको मुँहसे उठा लिया। उसकी यह भयंकर दिव्य देखकर सब लोगोंने उसे निर्दोष समझ लिया।" अच्छा सेठ महाशय, बतलाइए तो क्या उन मूर्ख लोगों को बिना समझे-बूझे एक निरपराध पशु पर दोष लगाना ठीक था क्या? जिनदत्तने 'नहीं' कहकर फिर एक कथा छेड़ी। वह बोला—

"गंगाके किनारे कीचड़में एकबार एक हाथीका बच्चा फँस गया। विश्वभूति तापसने उसे तड़फते हुए देखा। वह कीचड़ से उस हाथीके बच्चेको निकालकर अपने आश्रममें लिवा ले आया। उसने उसे बड़ी सावधानीके साथ पाला-पोसा भी। धीरे धीरे वह बड़ा होकर एक महान् हाथीके रूपमें आगया। श्रेणिकने इसकी प्रशंसा सुनकर इसे अपने यहाँ रख लिया। हाथी जब तक तापसके यहां रहा तब तक बड़ी स्वतंत्रतासे रहा। वहाँ इसे कभी

अंकुश वगैरहका कष्ट नहीं सहना पड़ा। पर जब यह श्रेणिकके यहाँ पहुँचा तबसे इसे बन्धन, अंकुश आदिका बहुत कष्ट सहना पड़ता था। इस दुःखके मारे एक दिन यह सांकल तोड़-ताड़ कर तापसके आश्रममें भाग आया। इसके पीछे पीछे राजाके नौकर भी इसे पकड़नेको आये। तापसी मीठे मीठे शब्दोंसे हाथीको समझा कर उसे नौकरोंके सुपुर्द करने लगा। हाथीको इससे अत्यन्त गुस्सा आया। सो इसने उस बेचारे तापसकी ही जान लेली।" तो क्या मुनिराज, हाथीको यह उचित था, कि वह अपने को बचानेवालेको ही मार डाले? इसके उत्तरमें मुनि 'ना' कहकर और एक कथा कहने लगे। उन्होंने कहा—

"हस्तिनागपुरकी पूरब दिशामें विश्वसेन राजाका बनाया आमोंका एक बगीचा था। उसमें आम खूब लग रहे थे। एक दिन एक चील मरे सांपको चोंचमें लिए आमके झाड़पर बैठ गई। उस समय सांपके जहरसे एक आम पक गया—पीलासा पड़ गया। माळीने उस पके फलको ले-जाकर राजाकी भेंट किया। राजाने उसे "प्रेमोपहार" के रूपमें अपनी प्रिय रानी धर्मसेनाको दिया। रानी उसे खाते ही मर गई। राजाको बड़ा गुस्सा आया और उसने एक फलके बदले सारे बगीचेको ही कटवा डाला। मुनिराजने कहा, तो क्या सेठ महाशय, राजाका यह काम ठीक हुआ? सेठने भी 'ना' कहकर और एक कथा कहना शुरू की। वह बोला—

"एक मनुष्य जंगलमें चला जा रहा था। रास्तेमें वह सिंहको देखकर डरके मारे एक वृक्ष पर चढ़ गया। जब सिंह

चला गया, तब यह नीचे उतरा और जाने लगा। रास्तेमें इसे राजाके बहुतसे आदमी मिले, जो कि भेरीके लिए एक अच्छे और बड़े झाड़की तलाशमें आये थे। सो इस दुष्ट मनुष्यने वह वृक्ष इन लोगोंको बता दिया, जिस पर चढ़कर कि इसने अपनी जान बचाई थी। राजाके आदमी उस घनी छायावाले सुन्दर वृक्षको काटकर ले गये।" मुनिराज, जिसने बन्धुकी तरह अपनी रक्षा की—मरनेसे बचाया, उस वृक्षके लिए इस दुष्टको ऐसा करना योग्य था क्या? मुनिराजने 'नहीं' कह कर और एक कथा कही। वे बोले—

"गन्धर्वसेन राजाकी कौशाम्बी नगरीमें एक अंगारदेव सुनार रहता था। जातिका यह ऊँच था। यह रत्नोंकी जड़ाईका काम बहुत ही बढ़िया करता था। एक दिन अंगारदेव राजमुकुटके एक बहुमूल्य मणिको उजाल रहा था। इसी समय उसके घर पर मेदज नामके एक मुनि आहारके लिए आये। वह मुनिको एक ऊँची जगह बैठाकर और उनके सामने उस मणिको रखकर आप भीतर स्त्रीके पास चला गया। इधर मणिको मांसके भ्रमसे कूंज पक्षी निगल गया। जब सुनार सब विधि ठीक-ठाककर पीछा आया तो देखता है वहां मणि नहीं। मणि न देखकर उसके तो होश उड़ गये। उसने मुनिराज से पूछा—मुनिराज, मणिको मैं आपके पास अभी रख कर गया हूँ, इतनेमें वह कहां चला गया? कृपा करके बतलाइए। मुनि चुप रहे। उन्हें चुप्पी साधे देखकर अंगारदेवका उन्हीं पर कुछ शक गया। उसने फिर पूछा—स्वामी, मणिका क्या हुआ? जल्दी कहिए। राजाको मालूम हो जानेसे

वह मेरा और मेरे बाल-बच्चों तकका बुरा हाल कर डालेगा। मुनि तब भी चुप ही रहे। अब तो अंगारदेव से न रहा गया। क्रोधसे उसका चेहरा लाल सुख पड़ गया। उसने जान लिया कि मणिको इसीने चुराया है। सो मुनिको बाँधकर उसने उन पर लकड़ेकी मार मारना शुरू की। उन्हें खूब मारा-पीटा सही, पर तब भी मुनि उसी तरह स्थिर बने रहे। ऐसे धनको, ऐसी मूर्खताको धिक्कार है जिससे मनुष्य कुछ भी सोच-समझ नहीं पाता और हर एक कामको जोशमें आकर कर डालता है। अंगारदेव मुनिको लकड़ेसे पीट रहा था तब एक चोट उस कूंज पक्षीके गले पर भी जाकर लगी। उससे वह मणि बाहर आ गिरा। मणिको देखते ही अंगारदेव आत्मग्लानि, लज्जा और पश्चात्तापके मारे अधमरासा हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। वह मुनिके पांवोंमें गिर पड़ा और रो रो कर उनसे क्षमा कराने लगा।" इतना कह कर मुनिराज बोले—क्यों सेठ महाशय, अब समझे? मेदज मुनिको उस मणिका हाल मालूम था, पर तब भी दयाके वश हो उन्होंने पक्षी का मणि निगल जाना न बतलाया। इसलिए कि पक्षीकी जान न जाय और न मुनियोंका ऐसा मार्ग ही है। इसी तरह मैं भी यद्यपि तुम्हारे घड़ेका हाल जानता हूँ, तथापि कह नहीं सकता। इसलिए कि संयमीका यह मार्ग नहीं है कि वे किसीको कष्ट पहुंचावें। अब जैसा तुम जानते हो और जो तुम्हारे मनमें हो उसे करो। मुझे उसकी परवा नहीं।

घड़ेका छुपानेवाला कुबेरदत्त अपने पिता और मुनिका यह परस्परका कथोपकथन छुपा हुआ सुन रहा था। मुनिका

अन्तिम निश्चय सुन उसकी उन पर बड़ी भक्ति हो गई। वह दौड़ा जाकर झटसे घड़ेको निकाल लाया और अपने पिताके सामने उसे रखकर जरा गुस्सेसे बोला—हाँ देखता हूँ आप मुनिराज पर अब कितना उपसर्ग करते हैं? यह देखकर जिनदत्त बड़ा शरमिन्दा हुआ। उसने अपने भ्रम भरे विचारों पर बड़ा ही पछतावा किया। अन्तमें दोनों पिता पुत्रोंने उन मेरुके समान स्थिर और तपके खजाने मुनिराजके पाँवोंमें पड़कर अपने अपराधकी क्षमा कराई और संसारसे उदासीन होकर उन्हींके पास उन्होंने दीक्षा भी ले ली, जो कि मोक्ष-सुखकी देनेवाली है। दोनों पिता पुत्र मुनि होकर अपना कल्याण करने लगे और दूसरोंको भी आत्मकल्याणका मार्ग बतलाने लगे।

वे साधुरत्न मुझे सुख-शान्ति दें, जो भगवान्के उपदेश किये सम्यग्ज्ञानके उमड़े हुए समुद्र हैं, सम्यक्त्व रूपी रत्नोंको धारण किये हैं, और पवित्र शील जिसकी लहरें हैं। ऐसे मुनिराजोंको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

मूलसंघके मुख्य चलानेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परा में भट्टारक मल्लिभूषण हुये हैं। वे मेरे गुरु हैं, रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धारण किये हैं, और गुणोंकी खान हैं। वे आप लोगोंका कल्याण करें।

४२-पिण्याकगन्धकी कथा।

सुख देनेवाले और सारे संसारके प्रभु श्रीजिनेंद्र भगवान्

को नमस्कार कर धन-लोभी पिण्याकगन्धकी कथा लिखी जाती है।

रत्नप्रभ कांपिल्य नगरके राजा थे। उनकी रानी विद्युत्प्रभा थी। वह सुन्दर और गुणवती थी। यहीं एक जिनदत्त सेठ रहता था। जिनधर्म पर इसकी गाढ़-श्रद्धा थी। अपने योग्य आचार-विचार इसके बहुत अच्छे थे। राजदरबारमें भी इसकी पूछ थी—मान-मर्यादा थी। यहीं एक और सेठ था। इसका नाम पिण्याकगंध था। इसके पास कई करोड़का धन था, पर तब भी यह मूर्ख बड़ा ही लोभी था—कृपण था। यह न किसीको कभी एक कौड़ी देता और न स्वयं आप ही अपने धनको खाने-पीने पहरनेमें खर्च करता; और खाया करता था खल। इसके पास सब सुखकी सामग्री थी, पर अपने पापके उदयसे या यों कहो कि अपनी ही कंजूसीसे यह सदा ही दुःख भोगा करता था। इसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था। इसके एक विष्णुदत्त नामका लड़का था।

एक दिन राजाके तालाबको खोदते वक्त उडु नामके एक मजूर को सोनेके सलाइयोंकी भरी हुई लोहेकी सन्दूक मिल गई। यह सन्दूक यहाँ कोई हजारों वर्षोंसे गड़ी हुई होगी। यही कारण था कि उसे खूब ही कीट खा गया था। उसके भीतरकी सलाइयों की भी यही दशा थी। उन पर भी बहुत मैल जमा हो गया था। मैलसे यह नहीं जान पड़ता था कि वे सोनेकी हैं। उडुने उसमेंसे एक सलाई लाकर जिनदत्त सेठको लोहेके भाव बेचा। सेठने उस समय तो उसे ले लिया, पर जब वह ध्यानसे धो-धाकर देखी गई

तो जान पड़ा कि वह एक सोनेकी सलाई है। सेठने उसे चोरीका माल समझ अपने घरमें उसका रखना उचित नहीं समझा। उसने उसकी एक जिनप्रतिमा बनवाली और प्रतिष्ठा कराकर उसे मंदिर में विराजमान कर दिया। सच है, धर्मात्मा पुरुष पापसे बड़े डरते हैं। कुछ दिनों बाद उडु फिर एक सलाई लिए जिनदत्तके पास आया। पर अबकी बार सेठने उसे नहीं खरीदा। इस लिए कि वह धन दूसरेका है। तब उडुने उसे पिण्याकगंधको बेच दिया। पिण्याकगंधको भी मालूम हो गया कि वह सलाई सोनेकी है, पर तब भी लोभमें आकर उसने उडुसे कहा कि यदि तेरे पास ऐसी सलाइयां और हों तो उन्हें यहां दे जाया करना। मुझे इन दिनों लोहेकी कुछ अधिक जरूरत है। मतलब यह कि पिण्याकगंध ने उडुसे कोई अट्ठानवे सलाइयां खरीद करलीं। बेचारे उडुको उसकी सच्ची कीमत ही मालूम न थी, इस लिए उसने सबकी सब सलाइयां लोहेके भाव बेचदीं।

एक दिन पिण्याकगन्ध अपनी बहिनके विशेष कहने-सुननेसे अपने भानजेके ब्याहमें दूसरे गांव जाने लगा। जाते समय धनके लोभसे पुत्रको वह सलाई बताकर कह गया कि इसी आकार-प्रकारका लोहा कोई बेचने अपने यहां आवे तो तू उसे मोल ले लिया करना। पिण्याकगन्धके पापका घड़ा अब बहुत भर चुका था। अब उसके फूटनेकी तैयारी थी। इसी लिए तो वह पाप-कर्मकी जबरदस्तीसे दूसरे गांव भेजा गया।

उडुके पास अब केवल एक ही सलाई बची थी। वह उसे

भी बेचनेको पिण्याकगन्धके पास आया। पर पिण्याकगन्ध तो वहां था नहीं, तब वह उसके लड़के विष्णुदत्तके हाथ सलाई देकर बोला—आपके पिताजीने ऐसी बहुतेरी सलाइयां मुझसे मोल ली हैं। अब यह केवल एक ही बची है। इसे आप लेकर मुझे इसकी कीमत दे दीजिये। विष्णुदत्तने उसे यह कहकर टाल दिया, कि मैं इसे लेकर क्या करूंगा? मुझे जरूरत नहीं। तुम पीछी इसे ले जाओ। इस समय एक सिपाहीने उड़ुको देख लिया। उसने खोदने के लिए वह सलाई उससे छुड़ाली। एक दिन वह सिपाही जमीन खोद रहा था। उससे सलाई पर जमा हुआ कीट साफ हो जानेसे कुछ लिखा हुआ उसे देख पड़ा। लिखा यह था कि "सोनेकी सौ सलाइयां सन्दूकमें हैं। यह लिखा देखकर सिपाहीने उड़ुको पकड लाकर उससे सन्दूककी बाबत पूछा। उड़ुने सब बातें ठीक ठीक बतला दीं। सिपाही उड़ुको राजाके पास ले गया। राजाके पूछने पर उसने कहा कि मैंने ऐसी अट्ठानवे सलाइयां तो पिण्याकगन्ध सेठको बेची हैं और एक जिनदत्त सेठ को। राजाने पहले जिनदत्त को बुलाकर सलाई मोल लेनेकी बाबत पूछा। जिनदत्तने कहा—महाराज, मैंने एक सलाई खरीदी तो जरूर है, पर जब मुझे यह मालूम पड़ा कि वह सोनेकी है तो मैंने उसकी जिनप्रतिमा बनवाली। प्रतिमा मन्दिरमें मौजूद है। राजा प्रतिमाको देखकर बहुत खुश हुआ। उसने जिनदत्तकी इस सचाई पर उसका बहुत मान किया, उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण दिये। सच है, गुणोंकी पूजा सब जगह हुआ करती है।

इसके बाद राजाने पिण्याकगन्धको बुलवाया। पर वह घर

पर न होकर गांव गया हुआ था। राजाको उसके न मिलनेसे और निश्चय होगया कि उसने अवश्य राजधन धोखा देकर ठग लिया है। राजाने उसी समय उसका घर जप्त करवा कर उसके कुटुम्बको कैद-खानेमें डाल दिया। इसलिए कि उसने पूछ-ताछ करने पर भी सलाइयोंका हाल नहीं बताया था। सच है, जो आशाके चक्करमें पड़कर दूसरोंका धन मारते हैं, वे अपने हाथों ही अपना सर्व नाश करते हैं।

उधर ब्याह होजानेके बाद पिण्याकगंध घरकी ओर वापिस आ रहा था। रास्तेमें ही उसे अपने कुटुम्बकी दुर्दशाका समाचार सुन पड़ा। उसे उसका बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने इस धन-जन की दुर्दशाका मूल कारण अपने पाँवोंको ठहराया। इसलिए कि वह उन्हींके द्वारा दूसरे गांव गया था। पाँवों पर उसे बड़ा गुस्सा आया और इसीलिए उसने एक बड़ा भारी पत्थर लेकर उससे अपने दोनों पाँवोंको तोड़ लिया। मृत्यु उसके सिर पर खड़ी ही थी। वह लोभी आर्त्तध्यान-बुरे भावोंसे मरकर नरक गया। यह कथा शिक्षा देती है कि जो समझदार हैं उन्हें चाहिये कि वे अनीति के कारण और पापको बढ़ानेवाले इस लोभको दूरहीसे छोड़नेका यत्न करें।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिन भगवान् संसारमें सदा काल रहें जो संसारके पदार्थोंको दिखलानेके लिये दीपकके समान हैं, सब दोषोंसे रहित हैं, भव्य-जनोंको स्वर्गमोक्षका सुख देने वाले हैं, जिनके

वचन अत्यन्त ही निर्मल या निर्दोष हैं, जो गुणोंके समुद्र हैं, देवों द्वारा पूज्य हैं और सत्पुरुषोंके लिये ज्ञानके समुद्र हैं।

४३—लुब्धक सेठकी कथा।

केवलज्ञानकी शोभाको प्राप्त हुए और तीनों जगतके गुरु ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर लुब्धक सेठकी कथा लिखी जाती है।

राजा अभयवाहन चम्पापुरीके राजा हैं। इनकी रानी पुण्डरीका है। नेत्र इसके ठीक पुण्डरीक—कमल जैसे हैं। चम्पापुरी में लुब्धक नामका एक सेठ रहता है। इसकी स्त्रीका नाम नागवसु है। लुब्धकके दो पुत्र हैं। इनके नाम गरुड़दत्त और नागदत्त हैं। दोनों भाई सदा हँस-मुख रहते हैं।

लुब्धकके पास बहुत धन था। उसने बहुत कुछ खर्च करके यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊंट, घोड़ा, सिंह, हरिण—आदि पशुओंकी एक एक जोड़ी सोनेकी बनवाई थी। इनके सींग, पूँछ, खुर—आदिमें अच्छे अच्छे बहुमूल्य हीरा, मोती, माणिक आदि रत्नोंको जड़ाकर लुब्धकने देखनेवालोंके लिए एक नया ही आविष्कार कर दिया था। जो इन जोड़ियोंको देखता वह बहुत खुश होता और लुब्धककी तारीफ किये बिना नहीं रहता। स्वयं लुब्धक भी अपनी इस जग-मगाती प्रदर्शनीको देखकर अपनेको बड़ा धन्य मानता था। इसके सिवा लुब्धकको थोड़ासा दुःख इस बातका था कि उसने एक बैलकी जोड़ी बनवाना शुरू की थी और एक बैल बन भी चुका था, पर फिर

सोना न रहनेके कारण वह दूसरा बैल नहीं बनवा सका। बस, इसीकी उसे एक चिन्ता थी। पर यह प्रसन्नताकी बात है कि वह सदा चिन्तासे घिरा न रहकर इसी कमीको पूरी करनेके यत्नमें लगा रहता था।

एकबार सात दिन बराबर पानीकी झड़ी लगी रही। नदी-नाले सब पूर आ गये। पर कर्मवीर लुब्धक ऐसे समय भी अपने दूसरे बैलके लिए लकड़ी लेनेको स्वयं नदी पर गया और बहती नदीमेंसे बहुतसी लकड़ी निकालकर उसने उसकी गठरी बाँधी और उसे आप ही अपने सिर पर लादे लाने लगा। सच है, ऐसे लोभियोंकी तृष्णा कहीं कभी किसीसे मिटी है? नहीं।

इस समय रानी पुण्डरीका अपने महल पर बैठी हुई प्रकृति की शोभाको देख रही थी। महाराज अभयवाहन भी इस समय यहीं पर थे। लुब्धकको सिर पर एक बड़ा भारी काठका भारा लादकर लाते देख रानीने अभयवाहनसे कहा—प्राणनाथ, जान पड़ता है आपके राजमें यह कोई बड़ा ही दरिद्री है। देखिए, बेचारा सिर पर लकड़ियोंका कितना भारी गट्ठा लादे हुए आ रहा है। दया करके इसे कुछ आप सहायता दीजिए, जिससे इसका कष्ट दूर हो जाय। यह उचित ही है कि दयावानोंकी बुद्धि दूसरों पर दया करनेकी होती है। राजाने उसी समय नौकरोंको भेजकर लुब्धकको अपने पास बुलवा मँगाया। लुब्धकके आने पर राजाने उससे कहा—जान पड़ता है तुम्हारे घरकी हालत अच्छी नहीं है। इसका मुझे खेद है कि इतने दिनोंसे मेरा तुम्हारी ओर ध्यान न गया।

अस्तु, तुम्हें जितने रुपये पैसेकी जरूरत हो, तुम खजानेसे ले जाओ। मैं तुम्हें अपनी सहीका एक पत्र लिखे देता हूँ। यह कहकर राजा पत्र लिखनेको तैयार हुए कि लुब्धकने उनसे कहा—महाराज, मुझे और कुछ न चाहिए; किन्तु एक बैलकी जरूरत है। कारण मेरे पास एक बैल तो है, पर उसकी जोड़ी मुझे मिलाना है। राजाने कहा—अच्छी बात है तो, जाओ हमारे बहुतसे बैल हैं, उनमें तुम्हें जो बैल पसन्द आवे उसे अपने घर ले जाओ। राजाके जितने बैल थे उन सबको देख आकर लुब्धकने राजासे कहा—महाराज, उन बैलोंमें मेरे बैल सरीखा तो एक भी बैल मुझे नहीं देख पड़ा। सुनकर राजाको बड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने लुब्धकसे कहा—भाई, तुम्हारा बैल कैसा है, यह मैं नहीं समझा। क्या तुम मुझे अपना बैल दिखाओगे? लुब्धक बड़ी खुशीके साथ अपना बैल दिखाना स्वीकार कर महाराजको अपने घर पर लिवा ले गया। राजाको उस सोनेके बने बैलको देखकर बड़ा अचम्भा हुआ। जिसे उन्होंने एक महा दरिद्री समझा था, वही इतना बड़ा धनी है, यह देखकर किसे अचम्भा न होगा।

लुब्धककी स्त्री नागवसु अपने घर पर महाराजको आये देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने महाराजकी भेंटके लिए एक सोनेका थाल बहुमूल्य सुन्दर सुन्दर रत्नोंसे सजाया और उसे अपने स्वामीके हाथमें देकर कहा—इस थालको महाराजकी भेंट कीजिए। रत्नोंके थालको देखकर लुब्धककी तो छाती बैठ गई, पर पास ही महाराजके होनेसे उसे वह थाल हाथोंमें लेना पड़ा। जैसे ही थालको उसने हाथोंमें लिया उसके दोनों हाथ थर थर धूजने लगे और ज्यों

ही उसने थाल देनेको महाराजके पास हाथ बढ़ाया तो लोभके मारे उसकी अंगुलियाँ महाराजको सांपके फणकी तरह देख पड़ीं। सच है, जिस पापीने कभी किसीको एक कौड़ी तक नहीं दी, उसका मन क्या दूसरेकी प्रेरणासे भी कभी दानकी ओर झुक सकता है? नहीं। राजाको उसके ऐसे बुरे बरताव पर बड़ी नफरत हुई। फिर एक पल पर भी उन्हें वहाँ ठहरना अच्छा न लगा। वे उसका नाम 'फणहस्त' रखकर अपने महल पर आ गये।

लुब्धककी दूसरा बैल बनानेकी उच्चाकांक्षा अभी पूरी नहीं हुई। वह उसके लिए धन कमानेको सिंहलद्वीप गया। लगभग चार करोड़का धन उसने वहाँ रहकर कमाया भी। जब वह अपना धन, माल-असबाब जहाज पर लाद कर लौटा तो रास्तेमें आते आते कर्मयोगसे हवा उलटी बह चली। समुद्रमें तूफान पर तूफान आने लगे। एक जोरकी आँधी आई। उसने जहाजको एक ऐसा जोरका धक्का मारा कि जहाज उलट कर देखते देखते समुद्रके विशाल गर्भमें समा गया। लुब्धक, उसका धन-असबाब, इसके सिवा और भी बहुतसे लोग जहाजके संगी हुए। लुब्धक आर्त्तध्यानसे मरकर अपने धनका रक्षक साँप हुआ। तब भी वह उसमेंसे एक कोड़ी भी किसी को नहीं उठाने देता था।

एक सर्पको अपने धन पर बैठा देखकर लुब्धकके बड़े लड़के गरुड़दत्तको बहुत क्रोध आया और इसी लिए उसने उसे उठाकर मार डाला। यहांसे वह बड़े बुरे भावोंसे मरकर चौथे नरक गया, जहां कि पापकर्मोंका बड़ा ही दुःसह फल भोगना पड़ता है। इस प्रकार

धर्मरहित जीव क्रोध, मान, माया, लोभ—आदिके वश होकर पापके उदयसे इस दुःखोंके समुद्र संसारमें अनन्त कालतक दुःख-कष्ट उठाया करता है। इस लिए जो सुख चाहते हैं—जिन्हें सुख प्यारा है, उन्हें चाहिए कि वे इन क्रोध, लोभ, मान, मायादिकोंको संसारमें दुःख देनेवाले मूल कारण समझकर इनका मन, वचन और शरीरसे त्याग करें और साथ ही जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको भक्ति और शक्तिके अनुसार ग्रहण करें, जो परमशान्ति—मोक्षका प्राप्त करानेवाला है।

४४—वशिष्ठ तापसी की कथा।

भूख, प्यास, रोग, शोक, जनम, मरण, भय, माया, चिन्ता मोह, राग, द्वेष—आदि अठारह दोषोंसे जो रहित हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर वशिष्ठ तापसीकी कथा लिखी जाती है।

उग्रसेन मथुराके राजा थे। उनकी रानीका नाम रेवती था। रेवती अपने स्वामीकी बड़ी प्यारी थी। यहीं एक जिनदत्त सेठ रहता था। जिनदत्तके यहाँ प्रियंगुलता नामकी एक नौकरानी थी।

मथुरामें यमुना किनारे पर वशिष्ठ नामका एक तापसी रहता था। वह रोज नहा-धोकर पञ्चाग्नि तप किया करता था। लोग उसे बड़ा भारी तपस्वी समझकर उसकी खूब सेवा-भक्ति करते थे। सो ठीक ही है, असमझ लोग प्रायः देखा देखी हर एक काम करने लग जाते हैं। यहां तक कि शहरकी दासियां पानी

भरनेको कुए पर जब आतीं तो वे भी तापस महाराजकी बड़ी भक्ति से प्रदक्षिणा करतीं, उनके पांवों पड़ती और उनकी सेवा-सुश्रूषा कर फिर वे घर जातीं। प्रायः सभीका यही हाल था। पर हाँ प्रियंगुलता इससे बरी थी। उसे ये बातें बिलकुल नहीं रुचती थीं। इसलिए कि वह बचपनसे ही जैनीके यहां काम करती रही। उसके साथकी और और स्त्रियोंको प्रियंगुलताका यह हठ अच्छा नहीं जान पड़ा और इसी लिए मौका पाकर वे एक दिन प्रियंगुलता को उस तापसीके पास जबरदस्ती लिवा ले गईं और इच्छा न रहते भी उन्होंने उसका सिर तापसीके पांवों पर रख दिया। अब तो प्रियंगुलतासे न रहा गया। उसने गुस्सा होकर साफ साफ कह दिया कि यदि इस ढोंगीके ही मैं हाथ जोड़ूं, तब फिर मुझे एक धीवर (भोई) के ही क्यों न हाथ जोड़ना चाहिए? इससे तो वह बहुत अच्छा है। एक दासीके द्वारा अपनी निन्दा सुनकर तापसजी को बड़ा गुस्सा आया। वे उन दासियों पर भी बहुत बिगड़े, जिन्होंने जबरदस्ती प्रियंगुलताको उनके पांवों पर पटका था। दासियां तो तापसीजीकी लाल-पीली आंखें देखकर उसी समय वहांसे नौ-दो-ग्यारह हो गईं। पर तापस महाराजकी क्रोधाग्नि तब भी न बुझी।

उसने उग्रसेन महाराजके पास पहुँचकर शिकायत की कि प्रभो, जिनदत्त सेठने मुझे धीवर बतलाकर मेरा बड़ा अपमान किया। उसे एक साधुकी इस तरह बुराई करनेका क्या अधिकार था? उग्रसेनको भी एक दूसरे धर्मके साधुकी बुराई करना अच्छा नहीं जान पड़ा। उन्होंने जिनदत्तको बुलाकर पूछा, जिनदत्तने कहा—

महाराज यदि यह तपस्या करता है तो यह तापसी है ही, इसमें विवाद किसको है। पर मैंने तो इसे धीवर नहीं बतलाया। और सचमुच जिनदत्तने उससे कुछ कहा भी नहीं था। जिनदत्तको इन्कार करते देख तापसी घबराया। तब उसने अपनी सचाई बतलानेके लिए कहा—नाप्रभो, जिनदत्तकी दासीने ऐसा कहा था। तापसीकी बात पर महाराजको कुछ हँसीसी आ गई। उन्होंने तब प्रियंगुलताको बुलवाया। वह आई। उसे देखते ही तापसीके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। वह कुछ न सोचकर एक साथ ही प्रियंगुलता पर बिगड़ खड़ा हुआ। और गाली देते हुए उसने कहा—रांड, तूने मुझे धीवर बतलाया है, तेरे इस अपराधकी सजा तो तुझे महाराज देंगे ही। पर देख, मैं धीवर नहीं हूँ; किन्तु केवल हवाके आधार पर जीवन रखनेवाला एक परम तपस्वी हूँ। बतला तो, तूने मुझे क्या समझकर धीवर कहा? प्रियंगुलताने तब निर्भय होकर कहा—हाँ, बतलाऊं कि मैंने तुझे क्यों मल्लाह बतलाया था? ले सुन, जब कि तू रोज रोज मच्छियां मारा करता है तब तू मल्लाह तो है ही! तुझे ऐसी दशा में कौन समझदार तापसी कहेगा? तू यह कहे कि इसके लिए सुबूत क्या? तू जैनीके यहाँ रहती है, इसलिये दूसरे धर्मोंकी या उनके साधु-सन्तोंकी बुराई करना तो तेरा स्वभाव होना ही चाहिये। पर सुन, मैं तुझे आज यह बतला देना चाहती हूँ कि जैन धर्म सत्यका पक्षपाती है। उसमें सच्चे साधु-सन्त ही पुजते हैं। तेरे से ढोंगी, बेचारे भोले लोगोंको धोखा देनेवालोंकी उसके सामने दाल नहीं गल पाती। ऐसा ही ढोंगी देखकर तुझे मैंने मल्लाह

बतलाया और न मैं तुझमें मछली मारनेवाले मल्लाहोंसे कोई अधिक बात ही पाती हूँ। तब बतला मैंने इसमें कौन तेरी बुराई की? अच्छा, यदि तू मल्लाह नहीं है तो जरा अपनी इन जटाओंको तो झाड़ दे! अब तो तापस महाराज बड़े घबराये और उन्होंने बातें बनाकर इस बातको ही उड़ा देना चाहा। पर प्रियंगुलता ऐसे कैसे रास्ते पर आजानेवाली थी! उसने तापसीसे जटा झड़वा कर ही छोड़ा। जटा झाड़ने पर सचमुच छोटी छोटी मछलियाँ उसमेंसे गिरीं। सब देखकर दंग रह गये। उग्रसेनने तब जैनधर्मकी खूब तारीफ कर तापसीसे कहा—महाराज, जाइए जाइए आपके इस भेषसे पूरा पड़े। मेरी प्रजाको आपसे हृदयके मैले साधुओंकी जरूरत नहीं। तापसीको भरी सभामें अपमानित होनेसे बहुत ही नीचा देखना पड़ा। वह अपनासा मुँह लिये वहाँसे अपने आश्रममें आया पर लज्जा, अपमान, आत्मग्लानिसे वह मरा जाता था। जो उसे देख पाता वही उसकी ओर अंगुली उठाकर बतलाने लगता। तब इसने यहाँका रहना छोड़ देना ही अच्छा समझ कूच कर दिया। यहाँसे यह गंगा और गंधवतीके मिलाप होनेकी जगह आया और वहीं आश्रम बनाकर रहने लगा। एक दिन जैनतत्वके परम जानकार वीरभद्राचार्य अपने संघको लिए इस ओर आ गये। वशिष्ठ-तापसको पंचाग्नि तप करते देख एक मुनिने अपने गुरुसे कहा—महाराज, यह तापसी तो बड़ा ही कठिन और असह्य तप करता है। आचार्य बोले—हाँ यह ठीक है कि ऐसे तपमें भी शरीरको बेहद कष्ट बिना दिये काम नहीं चलता, पर अज्ञानियोंका तप कोई प्रशंसाके लायक नहीं। भला, जिनके मनमें दया नहीं, जो संसारकी सब

माया ममता, और आरंभ-सारंभ छोड़-छाड़कर योगी हुए और फिर वे ऐसा दयाहीन, जिसमें हजारों लाखों जीव रोज रोज जलते हैं, तप करें तो इससे और अधिक दुःखकी बात कौन होगी। वसिष्ठके कानोंमें भी यह आवाज गई। वह गुस्सा होकर आचार्यके पास आया और बोला—आपने मुझे अज्ञानी कहा, यह क्यों? मुझमें आपने क्या अज्ञानता देखी, बतलाइए? आचार्यने कहा—भाई, गुस्सा मत हो। तुम्हें लक्ष्यकर तो मैंने कोई बात नहीं कही है। फिर क्यों इतना गुस्सा करते हो? मेरी धारणा तो ऐसे तप करनेवाले सभी तापसोंके सम्बन्धमें है कि वे बेचारे अज्ञानसे ठगे जाकर ही ऐसे हिंसामय तप को तप समझते हैं। यह तप नहीं है, किन्तु जीवोंका होम करना है। और जो तुम यह कहते हो कि मुझे आपने अज्ञानी क्यों बतलाया, तो अच्छा एक बात तुम ही बतलाओ कि तुम्हारे गुरु, जो सदा ऐसा तप किया करते थे, मरकर तपके फलसे कहां पैदा हुये हैं? तापस बोला—हां, क्यों नहीं कहूँगा? मेरे गुरुजी स्वर्गमें गये हैं। वीरभद्राचार्यने कहा—नहीं तुम्हें इसकी मालूम ही नहीं हो सकती। सुनो, मैं बतलाता हूँ कि तुम्हारे गुरुकी मरे बाद क्या दशा हुई। आचार्यने अवधिज्ञान जोड़कर कहा—तुम्हारे गुरु स्वर्गमें नहीं गये, किन्तु साँप हुये हैं और इस लकड़ेके साथ साथ जल रहे हैं। तापसको विश्वास नहीं हुआ; बल्कि उसे गुस्सा भी आया कि इन्होंने क्यों मेरे गुरुको साँप हुआ बतलाकर उनकी बुराई की। पर आचार्यकी बात सच है या झूठ इसकी परीक्षा कर देखनेके लिये यही उपाय था कि वह उस लकड़ेको चीरकर देखे। तापसीने वैसा ही किया। लकड़ेको चीरा। वीरभद्राचार्यका कहा सत्य हुआ।

सर्प उसमेंसे निकला। देखते ही तापसको बड़ा अचंभा हुआ। उसका सब अभिमान चूर चूर हो गया। उसकी आचार्य पर बहुत ही श्रद्धा हो गई। उसने प्रार्थना कर उनसे जैनधर्मका उपदेश सुना। सुनकर उसके हियेकी आंखें, जो इतने दिनोंसे बन्द थीं, एकदम खुल गईं। हृदयमें पवित्रताका सोता फूट निकला। बहुत दिनोंका कूट-कपट मायाचार रूपी मैलापन देखते देखते न जाने कहाँ बहकर चला गया। वह उसी समय वीरभद्राचार्यसे मुनिदीक्षा लेकर अबसे सच्चा तापसी बन गया।

यहांसे घूमते-फिरते और धर्मोपदेश करते वशिष्ठ मुनि एकबार मथुराकी ओर फिर आये। तपस्याके लिए इन्होंने गोवर्द्धन पर्वत बहुत पसन्द किया। वहीं ये तपस्या किया करते थे। एकबार इन्होंने महीना भरके उपवास किये। तपके प्रभावसे इन्हें कई विद्याएँ सिद्ध हो गईं। विद्याओंने आकर इनसे कहा—प्रभो, हम आपकी दासियाँ हैं। आप हमें कोई काम बतलाइए। वसिष्ठने कहा—अच्छा, इस समय तो मुझे कोई काम नहीं, पर जब होगा तब मैं तुम्हें याद करूंगा। उस समय तुम उपस्थित होना। इस लिए इस समय तुम जाओ। जिन्होंने संसारकी सब माया-ममता छोड़ रक्खी है, सच पूछो तो उनके लिए ऐसी ऋद्धि-सिद्धिकी कोई जरूरत नहीं। पर वशिष्ठ मुनिने लोभमें पड़कर विद्याओंको अपनी आज्ञामें रहनेको कह दिया। पर यह उनके पदस्थ योग्य न था।

महीना भरके उपवासे वशिष्ठमुनि पारणाको शहरमें आये। उग्रसेनको उनके उपवास करनेकी पहलेहीसे मालूम थी।

इसलिए तभीसे उन्होंने भक्तिके वश हो सारे शहरमें ढौंडी पिटवादी थी कि तपस्वी वसिष्ठमुनिको मैं ही पारणा कराऊंगा—उन्हें आहार दूंगा, और कोई न दे। सच है, कभी कभी मूर्खतासे की गई भक्ति भी दुःखकी कारण बन जाया करती है। वसिष्ठ मुनिके प्रति उग्रसेन राजाकी थी तो भक्ति, पर उसमें स्वार्थका भाग होनेसे उसका उलटा परिणाम हो गया। बात यह हुई कि जब वसिष्ठमुनि पारणाके लिए आये, तब अचानक राजाका खास हाथी उन्मत्त हो गया। वह साँकल तुड़ाकर भाग खड़ा हुआ, और लोगोंको कष्ट देने लगा। राजा उसके पकड़वानेका प्रबन्ध करनेमें लग गये। उन्हें मुनिके पारणेकी बात याद न रही। सो मुनि शहरमें इधर उधर घूम-घामकर वापिस वनमें लौट गये। शहरके और किसी गृहस्थने उन्हें इस लिए आहार न दिया कि राजाने उन्हें सख्त मना कर दिया था। दूसरे दिन कर्मसंयोगसे शहरके किसी मुहल्ले में भयंकर आग लग गई, सो राजा इसके मारे व्याकुल हो उठे। मुनि आज भी सब शहरमें तथा राजमहलमें भिक्षाके लिए चक्कर लगाकर लौट गये। उन्हें कहीं आहार न मिला। तीसरे दिन जरासंध राजाका किसी विषयको लिए आज्ञापत्र आ गया, सो आज इसकी चिन्ताके मारे उन्हें स्मरण न आया। सच है, अज्ञानसे किया काम कभी सिद्ध नहीं हो पाता। मुनि आज भी अन्तराय कर लौट गये। शहर बाहर पहुँचते न पहुँचते वे गश खाकर जमीन पर गिर पड़े। मुनिकी यह दशा देखकर एक बुढ़ियाने गुस्सा होकर कहा—यहाँका राजा बड़ा ही दुष्ट है। न तो मुनिको आप ही आहार देता है और न दूसरोंको देने देता है। हाय! एक

निरपराध तपस्वीकी उसने व्यर्थ ही जान लेली। बुढ़ियाकी बातें मुनिने सुनलीं। राजाकी इस नीचता पर उन्हें अत्यन्त क्रोध आया। वे उठकर सीधे पर्वत पर गये। उन्होंने विद्याओंको बुलाकर कहा—मथुराका राजा बड़ा पापी है, तुम जाकर उसे फौरन ही मार डालो। मुनिको इस प्रकार क्रोधकी आग उगलते देख विद्याओंने कहा—प्रभो, आपको कहनेका हमें कोई अधिकार नहीं, पर तब भी आपके अच्छेके लिहाजसे और धर्म पर कोई कलंक न लगे कि एक जैनमुनिने ऐसा अन्याय किया, हम निःसंकोच होकर कहेंगी कि इस वेषके लिए आपकी यह आज्ञा सर्वथा अनुचित है और इसी लिए हम उसका साथ देनेके लिए भी हिचकती हैं। आप क्षमाके सागर हैं, आपके लिए शत्रु और मित्र एकही से हैं। मुनि पर देवियोंकी इस शिक्षाका कुछ असर नहीं हुआ। उन्होंने यह कहते हुए प्राण छोड़ दिये कि अच्छा, तुम मेरी आज्ञाका दूसरे जन्ममें तो पालन करना ही। मैं दानमें विघ्न करनेवाले इस उग्रसेन राजा को मारकर अपना बदला अवश्य चुकाऊंगा। मुनिने तपस्या नाश करनेवाले निदानको—तपका फल परजन्ममें मुझे इस प्रकार मिले, ऐसे संकल्पको—करके रेवतीके गर्भमें जन्म लिया। सच है, क्रोध सब कामोंको नष्ट करनेवाला और पापका मूल कारण है। एक दिन रेवतीको दुर्बल देखकर उग्रसेनने उससे पूछा—प्रिये, दिनों दिन तुम ऐसी दुबली क्यों होती जाती हो? मुझे तुम्हें चिन्तातुर देख बड़ा खेद होता है। रेवतीने कहा—नाथ, क्या कहूँ, कहते हृदय कांपता है। नहीं जान पड़ता कि होनहार कैसा है? स्वामी, मुझे बड़ा ही भयंकर दोहला हुआ है। मैं नहीं कह सकती कि अपने

यहां अबकी बार किस अभागेने जन्म लिया है। नाथ, कहते हुए आत्मग्लानिसे मेरा हृदय फटा पड़ता है। मैं उसे कहकर आपको और अधिक चिन्तामें डालना नहीं चाहती। उग्रसेनको अधिकाधिक आश्चर्य और उत्कण्ठा बढ़ी। उन्होंने बड़े हठके साथ पूछा। आखिर रानीको कहना ही पड़ा। वह बोली–अच्छा नाथ, यदि आपका आग्रह ही है तो सुनिए, जी कड़ा करके कहती हूँ। मेरी अत्यन्त इच्छा होती है कि "मैं आपका पेट चीरकर खून पान करूं।" मुझे नहीं जान पड़ता कि ऐसा दुष्ट दोहला क्यों होता है ? भगवान् जाने! यह प्रसिद्ध है कि जैसा गर्भमें बालक आता है, दोहला भी वैसा ही होता है। सुनकर उग्रसेनको भी चिन्ता हुई, पर उसके लिए इलाज क्या था, उन्होंने सोचा, दोहला बुरा है या भला, इसका निश्चय होना तो अभी असंभव है। पर उसके अनुसार रानीकी इच्छा तो पूरी होनी ही चाहिए। तब इसके लिए उन्होंने यह युक्ति की कि अपने आकारका एक पुतला बनवाकर उसमें कृत्रिम खून भरवाया और रानीको उसकी इच्छा पूरी करनेके लिए उन्होंने कहा। रानीने अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए उस पापकर्मको किया। वह सन्तुष्ट हुई।

थोड़े दिनों बाद रेवतीने एक पुत्र जना। वह देखनेमें बड़ा भयंकर था। उसकी आँखोंसे क्रूरता टपकी पड़ती थी। उग्रसेनने उसके मुँहकी ओर देखा तो वह मुट्ठी बाँधे बड़ी क्रूर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा। उन्हें विश्वास हो गया कि जैसे बाँसोंकी रगड़से उत्पन्न हुई आग सारे वनको जलाकर खाक कर देती है ठीक इसी तरहसे कुलमें उत्पन्न हुआ दुष्ट पुत्र भी सारे कुलको जड़मूल

से उखाड़ फैंक देता है। मुझे इस लड़केकी क्रूरताको देखकर भी यही निश्चय होता है कि अब इस कुलके भी दिन अच्छे नहीं हैं। यद्यपि अच्छा-बुरा होना दैवाधीन है, तथापि मुझे अपने कुलकी रक्षाके निमित्त कुछ न कुछ यत्न करना ही चाहिए। हाथ पर हाथ रखे बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा। यह सोचकर उग्रसेनने एक छोटासा सुन्दर सन्दूक मँगवाया और उस बालकको अपने नामकी एक अँगूठी पहराकर हिफाजतके साथ उस सन्दूकमें रख दिया। इसके बाद सन्दूकको उन्होंने यमुना नदीमें छुड़वा दिया। सच है, दुष्ट किसीको भी प्रिय नहीं लगता।

कौशाम्बीमें गंगाभद्र नामका एक माली रहता था। उसकी स्त्रीका नाम राजोदरी था। एक दिन वह जल भरनेको नदी पर आई हुई थी। तब नदीमें बहती हुई एक सन्दूक उसकी नजर पड़ी। वह उसे बाहर निकाल अपने घर ले आई। सन्दूकको राजोदरीने खोला। उसमेंसे एक बालक निकला। राजोदरी उस बालकको पाकर बड़ी खुश हुई। कारण कि उसके कोई लड़का-बाला नहीं था। उसने बड़े प्रेमसे इसे पाला-पोसा। यह बालक काँसेकी सन्दूकमें निकला था, इस लिए राजोदरीने इसका नाम भी 'कंस' रख दिया।

कंसका स्वभाव अच्छा न होकर क्रूरता लिए हुए था। यह अपने साथके बालकोंको बड़ा मारा-पीटा करता और बात-बात पर उन्हें तंग किया करता था। इसके अड़ोस-पड़ोसके लोग बड़े ही दुखी रहा करते थे। राजोदरीके पास दिनभरमें कंसकी कोई

पचासों शिकायतें आया करती थीं। उस बेचारीने बहुत दिन तक तो उसका उत्पात-उपद्रव सहा, पर फिर उससे भी यह दिन रातका झगड़ा-टंटा न सहा गया। सो उसने कंसको घरसे निकाल दिया। सच है, पापी पुरुषोंसे किसे भी कभी सुख नहीं मिलता। कंस अब सौरीपुर पहुँचा। यहाँ यह वसुदेवका शिष्य बनकर शास्त्राभ्यास करने लगा। थोड़े दिनोंमें यह साधारण अच्छा लिख-पढ़ गया। वसुदेवकी इस पर अच्छी कृपा हो गई। इस कथाके साथ एक और कथाका सम्बन्ध है, इसलिए वह कथा यहाँ लिखी जाती है—

सिंहरथ नामका एक राजा जरासन्धका शत्रु था। जरासन्धने इसे पकड़ लानेका बड़ा यत्न किया, पर किसी तरह यह इसके काबूमें नहीं आता था। तब जरासन्धने सारे शहरमें डौंडी पिटवाई कि जो वीर-शिरोमणि सिंहरथको पकड़कर मेरे सामने ला उपस्थित करेगा, उसे मैं अपनी जीवंजसा लड़कीको ब्याह दूंगा और अपने देशका कुछ हिस्सा भी मैं उसे दूंगा। इसके लिए वसुदेव तैयार हुआ। वह अपने बड़े भाईकी आज्ञासे सब सैनाको साथ लिए सिंहरथके ऊपर जा चढ़ा। उसने जाते ही सिंहरथकी राजधानी पोदनपुरके चारों ओर घेरा डाल दिया। और आप एक व्यापारीके वेषमें राजधानीके भीतर घुसा। कुछ खास खास लोगोंको धनका खूब लोभ देकर उसने उन्हें फोड़ लिया। हाथीके महावत, रथके सारथी, आदिको उसने पैसेका गुलाम बनाकर अपनी मुट्ठीमें कर लिया। सिंहरथको इसका समाचार लगते ही उसने भी उसी समय रणभेरी बजवाई और बड़ी वीरताके साथ वह लड़नेके लिए अपने

शहरसे बाहर हुआ। दोनों ओरसे युद्धके झुमारु बाजे बजने लगे। उनकी गम्भीर आवाज अनन्त आकाशको भेदती हुई स्वर्गोंके द्वारोंसे जाकर टकराई। सुखी देवोंका आसन हिल गया। अमरांगनाओंने समझा कि हमारे यहाँ मेहमान आते हैं, सो वे उनके सत्कारके लिए हाथोंमें कल्पवृक्षोंके फूलोंकी मनोहर मालाएँ ले-लेकर स्वर्गोंके द्वार पर उनकी अगवानीके लिए आ डटीं। स्वर्गोंके दरवाजे उनसे ऐसे खिल उठे मानों चन्द्रमाओंकी प्रदर्शनी की गई है। थोड़ी ही देरमें दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। खूब मारकाट हुई। खूनकी नदी बहने लगी। मृतकोंके सिर और धड़ उसमें तैरने लगे। दोनों ओरकी वीर सेनाने अपने अपने स्वामीके नमकका जी खोलकर परिचय कराया। जिसे न्यायकी जीत कहते हैं, वह किसीको प्राप्त न हुई। पर वसुदेवने जो पोदनपुरके कुछ लोगोंको अपने मुट्ठीमें कर लिया था, उन स्वार्थियों—विश्वासघातियोंने अन्तमें अपने मालिकको दगा दे दिया। सिंहरथको उन्होंने वसुदेवके हाथ पकड़वा दिया। सिंहरथका रथ मौकेके समय बे-कार हो गया। उसी समय वसुदेवने उसे घेरकर कंससे कहा—जो कि उसके रथका सारथी था, कंस, देखते क्या हो ? उतर कर शत्रुको बाँधलो। कंसने गुस्सेके साथ रथसे उतर कर सिंहरथको बाँध लिया और रथमें रखकर उसी समय वे वहांसे चल दिये। सच है, अग्नि एक तो वैसे ही तपी हुई होती है और ऊपरसे यदि वायु बहने लगे तब तो उसके तपनेका पूछना ही क्या ? सिंहरथको बाँध लाकर वसुदेवने जरासंधके सामने उसे रख दिया। देखकर जरासंध बहुत ही प्रसन्न हुआ। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए उसने वसुदेवसे कहा—

मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। अब आप कृपाकर मेरी कुमारीका पाणिग्रहण कर मेरी इच्छा पूरी कीजिए। और मेरे देशके जिस प्रदेशको आप पसन्द करें मैं उसे भी देनेको तैयार हूँ। वसुदेवने कहा—प्रभो, आपकी इस कृपाका मैं पात्र नहीं। कारण मैंने सिंहरथको नहीं बाँधा है। इसे बाँधा है मेरे प्रिय शिष्य इस कंसने, सो आप जो कुछ देना चाहें इसे देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। जरासंधने कंसकी ओर देखकर उससे पूछा—भाई, तुम्हारी जाति-कुल क्या है? कंसको अपने विषयमें जो बात ज्ञात थी, उसने वही स्पष्ट बतला दी कि प्रभो, मैं तो एक मालिनका लड़का हूँ। जरासंधको कंसकी सुन्दरता और तेजस्विता देखकर यह विश्वास नहीं हुआ कि वह सचमुच ही एक मालिनका लड़का होगा। इसका निश्चय करनेके लिए जरासंधने उसकी मांको बुलवाया। यह ठीक है कि राजा लोग प्रायः बुद्धिमान् और चतुर हुआ करते हैं। कंसकी माँको जब यह खबर मिली कि उसे राजदरबारमें बुलाया है, तब तो उसकी छाती धड़कने लग गई। वह कंसकी शैतानीका हाल तो जानती ही थी, सो उसने सोचा कि जरूर कंसने कोई बड़ा भारी गुनाह किया है और इसीसे वह पकड़ा गया है। अब उसके साथ मेरी भी आफत आई। वह घबराई और पछताने लगी कि हाय? मैंने क्यों इस दुष्टको अपने घर लाकर रक्खा? अब न जाने राजा मेरा क्या हाल करेगा? जो हो, बेचारी रोती-झींकती राजाके पास गई और अपने साथ उस सन्दूकको भी लिवा ले गई, जिसमें कि कंस निकला था। उसने राजाके सामने होते ही काँपते काँपते कहा—दुहाई है महाराजकी! महाराज, यह पापी मेरा लड़का नहीं

है, मैं सच कहती हूँ। इस सन्दूकमेंसे यह निकला है। सन्दूकको आप लीजिए और मुझे छोड़ दीजिए। मेरा इसमें कोई अपराध नहीं। मालिनको इतनी घबराई देखकर राजाको कुछ हँसीसी आ गई। उसने कहा—नहीं, इतने डरने-घबरानेकी कोई बात नहीं। मैंने तुम्हें कोई कष्ट देनेको नहीं बुलाया है। बुलाया है सिर्फ कंसकी खरी खरी हकीकत जाननेके लिए। इसके बाद राजाने सन्दूक उठाकर खोला तो उसमें एक कम्बल और एक अँगूठी निकली। अँगूठी पर खुदा हुआ नाम बाँचकर राजाको कंसके सम्बन्धमें अब कोई शंका न रह गई। उसने उसे एक अच्छे राजकुलमें जन्मा समझ उसके साथ अपनी जीवंजसा कुमारीका ब्याह बड़े ठाटबाटसे कर दिया। जरासंधने उसे अपना राजका कुछ हिस्सा भी दिया। कंस अब राजा हो गया।

राजा होनेके साथ ही अब उसे अपनी राज्यसीमा और प्रभुत्व बढ़ानेकी महत्वाकांक्षा हुई। मथुराके राजा उग्रसेनके साथ उसकी पूर्व जन्मकी शत्रुता है। कंस जानता था कि उग्रसेन मेरे पिता हैं, पर तब भी उन पर वह जला करता है और उसके मनमें सदा यह भावना उठती है कि मैं उग्रसेनसे लड़ूं और उनका राज्य छीनकर अपनी आशा पूरी करूं। यही कारण था कि उसने पहली चढ़ाई अपने पितापर ही की। युद्धमें कंसकी विजय हुई। उसने अपने पिताको एक लोहेके पींजरेमें बंदकर और शहरके दरवाजेके पास उस पींजरेको रखवा दिया। और आप मथुराका राजा बनकर राज्य करने लगा। कंसको इतने पर भी सन्तोष न हुआ सो अपना बैर चुकानेका अच्छा मौका समझ वह उग्रसेनको

बहुत कष्ट देने लगा। उन्हें खानेके लिए वह केवल कोदूकी रोटियाँ और छाछ देता। पीनेके लिए गन्दा पानी और पहरनेके लिए बड़े ही मैले-कुचेले और फटे-पुराने चिथड़े देता। मतलब यह कि उसने एक बड़ेसे बड़े अपराधीकी तरह उनकी दशा कर रक्खी थी। उग्रसेन की इस हालतको देखकर उनके कट्टर दुश्मनकी भी छाती फटकर उसकी आँखोंसे सहानुभूतिके आँसू गिर सकते थे, पर पापी कंसको उनके लिए रत्तीभर भी दया या सहानुभूति नहीं थी। सच है, कुपुत्र कुलका काल होता है। अपने भाईकी यह नीचता देखकर कंसके छोटे भाई अतिमुक्तकको संसारसे बड़ी घृणा हुई। उन्होंने सब मोह-माया छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ली। वसुदेव कंसके गुरु थे। इसके सिवा उन्होंने उसका बहुत कुछ उपकार किया था; इस लिए कंसकी उन पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने उन्हें अपने ही पास बुलाकर रख लिया।

मृतकावती पुरीके राजा देवकीके एक कन्या थी। वह बड़ी सुन्दर थी। राजाका उस पर बहुत प्यार था। इस लिए उसका नाम उन्होंने अपने ही नाम पर देवकी रख दिया था। कंसने उसे अपनी बहिन करके मानी थी, सो वसुदेवके साथ उसने उसका ब्याह कर दिया। एक दिनकी बात है कि कंसकी स्त्री जीवंजसा देवकीके और अपने देवर अतिमुक्तककी स्त्री पुष्पवतीके वस्त्रोंको आप पहरकर नाच रही थी—हँसी-मजाक कर रही थी। इसी समय कंसके भाई अतिमुक्तक मुनि आहारके लिए आये। जीवंजसाने हँसते हँसते मुनिसे कहा—अजी ओ देवरजी, आइए! आइए!! मेरे साथ साथ आप भी नाचिये। देखिए, फिर बड़ा ही आनन्द आवेगा। मुनिने

गंभीरतासे उत्तर दिया—बहिन, मेरा यह मार्ग नहीं है। इसलिए अलग हो जा और मुझे जाने दे। पापिनी जीवंजसाने मुनिको जाने न देकर उलटा हठ पकड़ लिया और बोली—नहीं, मैं तब तक आप को कभी न जाने दूंगी जब तक कि आप मेरे साथ न नाचेंगे। मुनिको इससे कुछ कष्ट हुआ और इसीसे उन्होंने आवेगमें आ उससे कह दिया कि मूर्खे, नाचती क्या है! जाकर अपने स्वामीसे कह कि आपकी मौत देवकीके लड़के द्वारा होगी और वह समय बहुत नजदीक आ रहा है। सुनकर जीवंजसाको बड़ा गुस्सा आया। उसने गुस्सेमें आकर देवकीके वस्त्रको, जिसे कि वह पहरे हुए थी, फाड़कर दो टुकड़े कर दिये। मुनिने कहा—मूर्ख स्त्री, कपड़ेको फाड़ देनेसे क्या होगा? देख और सुन, जिस तरह तूने इस कपड़ेके दो टुकड़े कर दिये हैं उसी तरह देवकीके होनेवाला वीर पुत्र तेरे बापके दो टुकड़े करेगा। जीवंजसाको बड़ा ही दुःख हुआ। वह नाचना गाना सब भूल गई। अपने पतिके पास दौड़ी जाकर वह रोने लगी। सच है यह जीव अज्ञानदशामें हँसता हँसता जो पाप कमाता है उसका फल भी इसे बड़ा ही बुरा भोगना पड़ता है। कंस जीवंजसाको रोती देखकर बड़ा घबराया। उसने पूछा—प्रिये, क्यों रोती हो? बतलाओ, क्या हुआ? संसारमें ऐसा कौन धृष्ट होगा जो कंसकी प्राणप्यारीको रुला सके! प्रिये, जल्दी बतलाओ, तुम्हें रोती देखकर मैं बड़ा दुखी हो रहा हूँ। जीवंजसाने मुनि द्वारा जो जो बातें सुनी थीं, उन्हें कंससे कह दिया। सुनकर कंसको भी बड़ी चिन्ता हुई। वह जीवंजसासे बोला—प्रिये, घबरानेकी कोई बात नहीं, मेरे पास इस रोगकी भी दवा है। इसके बाद ही वह

वसुदेवके पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार कर बोला—गुरुमहाराज, आपने मुझे पहले एक 'वर' दिया था। उसकी मुझे अब जरूरत पड़ी है। कृपा कर मेरी आशा पूरी कीजिए। इतना कहकर कंसने कहा—मेरी इच्छा देवकीके होनेवाले पुत्रके मार डालनेकी है। इस लिए कि मुनिने उसे मेरा शत्रु बतलाया है। सो कृपाकर देवकीकी प्रसूति मेरे महलमें हो, इसके लिए अपनी अनुमति दीजिए। कंसकी—अपने एक शिष्यकी इस प्रकार नीचता—गुरुद्रोह देखकर वसुदेवकी छाती धड़क उठी। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। पर करते क्या ? वे क्षत्रिय थे और क्षत्रिय लोग इस व्रतके व्रती होते हैं कि 'प्राण जाँहि पर वचन न जांहि।" तब उन्हें लाचार होकर कंसका कहना बिना कुछ कहे-सुने मान लेना पड़ा। क्योंकि सत्पुरुष अपने वचनोंका पालन करनेमें कभी कपट नहीं करते। देवकी ये सब बातें खड़ी खड़ी सुन रही थी। उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह वसुदेव से बोली—प्राणनाथ, मुझसे यह दुःसह पुत्र-दुःख नहीं सहा जायगा। मैं तो जाकर जिनदीक्षा ले लेती हूं। वसुदेवने कहा—प्रिये, घबरानेकी कोई बात नहीं है, चलो, हम चलकर मुनिराजसे पूछें कि बात क्या है ? फिर जैसा कुछ होगा विचार करेंगे। वसुदेव अपनी प्रियाके साथ वनमें गये। वहां अतिमुक्तक मुनि एक फले हुए आमके झाड़के नीचे स्वाध्याय कर रहे थे। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वसुदेवने पूछा—हे जिनेन्द्रभगवान्के सच्चे भक्त योगिराज, कृपा कर मुझे बतलाइए कि मेरे किस पुत्र द्वारा कंस और जरासंधकी मौत होगी ? इस समय देवकी आमकी एक डाली पकड़े हुए थी। उस पर आठ आम लगे थे। उनमें छह आम तो दो-दोकी जोड़ीसे

लगे थे और उनके ऊपर दो आम जुदा जुदा लगे थे। इन दो आमों मेंसे एक आम इसी समय पृथिवी पर गिर पड़ा और दूसरा आम थोड़ी ही देर बाद पक गया। इस निमित्त ज्ञान पर विचार कर अवधिज्ञानी मुनि बोले—भव्य वसुदेव, सुनो, मैं तुम्हें सब खुलासा समझाये देता हूँ। देखो, देवकीके आठ पुत्र होंगे। उनमें छह तो नियमसे मोक्ष जाँयगे। रहे दो, सो इनमें सातवाँ तो जरासंध और कंसका मारनेवाला होगा और आठवां कर्मोंका नाश कर मुक्ति-महिलाका पति होगा। मुनिराजसे इस सुख-समाचारको सुनकर वसुदेव और देवकीको बहुत आनन्द हुआ। वसुदेवको विश्वास था कि मुनिका कहा कभी झूंठ नहीं हो सकता। मेरे पुत्र द्वारा कंस और जरासंधकी होनेवाली मौतको कोई नहीं टाल सकता। इसके बाद वे दोनों भक्तिसे मुनिको नमस्कार कर अपने घर लौट आये। सच है, जिनभगवानके धर्म पर विश्वास करना ही सुख का कारण है।

देवकीके जबसे सन्तान होनेकी संभावना हुई तबसे उसके रहनेका प्रबन्ध कंसके ही महल पर हुआ। कुछ दिनों बाद पवित्र-मना देवकीने दो पुत्रोंको एक साथ जना। इसी समय कोई ऐसा पुण्य-योग मिला कि भद्रिलापुरमें श्रुतदृष्टि सेठकी स्त्री अलकाके भी पुत्र-युगल हुआ। पर यह युगल मरा हुआ था। सो देवकीके पुत्रोंके पुण्यसे प्रेरित होकर एक देवता इस मृत-युगलको उठा कर तो देवकीके पास रख आया और उसके जीते पुत्रोंको अलकाके पास ला रक्खा। सच है, पुण्यवानोंकी देव भी रक्षा करते हैं। इस लिए कहना पड़ेगा कि जिन भगवान्ने जो पुण्यमार्गमें चलनेका उपदेश

दिया है वह वास्तवमें सुखका कारण है। और पुण्य भगवान्‌की पूजा करनेसे होता है, दान देनेसे होता है और व्रत, उपवासादि करनेसे होता है। इस लिए इन पवित्र कर्मों द्वारा निरन्तर पुण्य कमाते रहना चाहिए। कंसको देवकीकी प्रसूतिका हाल मालूम होते ही उसने उस मरे हुए पुत्र-युगलको उठा लाकर बड़े जोरसे शिला-पर दे मारा। ऐसे पापियोंके जीवनको धिक्कार है। इसी तरह देवकीके जो दो और पुत्र-युगल हुए, उन्हें देवता वहीं अलका सेठानीके यहाँ रख आई और उसके मरे पुत्र-युगलोंको उसने देवकी के पास ला रक्खा। कंसने इन दोनों युगलोंकी भी पहले युगल-की सी दशा की। देवकीके ये छहों पुत्र इसी भवसे मोक्ष जायँगे, इस लिए इनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। ये सुख-पूर्वक यहीं रहकर बढ़ने लगे।

अब सातवें पुत्रकी प्रसूतिका समय नजदीक आने लगा। अबकी बार देवकीके सातवें महीनेमें ही पुत्र हो गया। यही शत्रुओं का नाश करनेवाला था; इस लिए वसुदेवको इसकी रक्षाकी अधिक चिन्ता थी। समय कोई दो तीन बजे रातका था। पानी बरस रहा था। वसुदेव उसे गोदमें लेकर चुपकेसे कंसके महलसे निकल गये। बलभद्रने इस होनहार बच्चेके ऊपर छत्री लगाई। चारों ओर गाढ़ान्धकारके मारे हाथसे हाथ तक भी न देख पड़ता था। पर इस तेजस्वी बालकके पुण्यसे वही देवता, जिसने कि इसके छह भाइयों की रक्षा की है, बैलके रूपमें सींगों पर दीया रक्खे आगे आगे हो चला। आगे चलकर इन्हें शहर बाहर होनेके दरवाजे बन्द मिले, पर भाग्यकी लीला अपरम्पार है। उससे असंभव भी संभव हो

जाता है। वही हुआ। बच्चेके पाँवोंका स्पर्श होते ही दरवाजा भी खुल गया। आगे चले तो नदी अथाह बह रही थी। उसे पार करनेका कोई उपाय न था। बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। उन्होंने होना-करना सब भाग्यके भरोसे पर छोड़कर नदीमें पांव दिया। पुण्यकी कैसी महिमा जो यमुनाका अथाह जल घुटनों प्रमाण हो गया। पार होकर ये एक देवीके मन्दिरमें गये। इतनेमें इन्हें किसीके आनेकी आहट सुनाई दी। ये देवीके पीछे छुप गये।

इसीसे संबन्ध रखनेवाली एक और घटनाका हाल सुनिये। एक नन्द नामका गुवाल यहीं पासके गांवमें रहता है। उसकी स्त्रीका नाम यशोदा है। यशोदाके प्रसूति होनेवाली थी, सो वह पुत्रकी इच्छा से देवीकी पूजा वगैरह कर गई थी। आज ही रातको उसके प्रसूति हुई। पुत्र न होकर पुत्री हुई। उसे बड़ा दुःख हुआ कि मैंने पुत्रकी इच्छासे देवीकी इतनी तो आराधना-पूजा की और फिर भी लड़की हुई। मुझे देवीके इस प्रसादकी जरूरत नहीं। यह विचार कर वह उठी और गुस्सामें आकर उस लड़कीको लिए देवीके मन्दिर पहुँची। लड़कीको देवीके सामने रखकर वह बोली—देवीजी, लीजिए आपकी पुत्रीको? मुझे इसकी जरूरत नहीं है। यह कहकर यशोदा मंदिरसे चली गई। वसुदेवने इस मौकेको बहुत ही अच्छा समझ पुत्रको देवीके सामने रख दिया और लड़कीको आप उठाकर चल दिये। जाते हुए वे यशोदासे कहते गये कि अरी, जिसे तू देवताके पास रख आई है वह लड़की नहीं है; किन्तु एक बहुत ही सुन्दर लड़का है। जा उसे जल्दी लेआ; नहीं तो और कोई उठा ले

जायगा। यशोदाको पहले तो आश्चर्यसा हुआ। पर फिर वह अपने पर देवीकी कृपा समझ झटपट दौड़ी गई और जाकर देखती है तो सचमुच ही वह एक बहुत सुन्दर बालक है। यशोदाके आनन्दका अब कुछ ठिकाना न रहा। वह पुत्रको गोदमें लिए उसे चूमती हुई घर पर आ गई। सच है, पुण्यका कितना वैभव है इसका कुछ पार नहीं। जिसकी स्वप्नमें भी आशा न हो वही पुण्यसे सहज मिल जाता है।

इधर वसुदेव और बलभद्रने घर पहुँचकर उस लड़कीको देवकीको सौंप दिया। सवेरा होते ही जब लड़कीके होनेका हाल कंसको मालूम हुआ तो उस पापीने आकर बेचारी उस लड़कीकी नाक काट ली।

यशोदाके यहां वह पुत्र सुखसे रहकर दिनों दिन बढ़ने लगा। जैसे जैसे वह उधर बढ़ता है कंसके यहाँ वैसे ही अनेक प्रकारके अपशकुन होने लगे। कभी आकाशसे तारा टूटकर पड़ता, कभी बिजली गिरती, कभी उल्का गिरती और कभी और कोई भयानक उपद्रव होता। यह देख कंसको बड़ी चिन्ता हुई। वह बहुत घबराया। उसकी समझमें कुछ न आया कि यह सब क्या होता है? एक दिन विचार कर उसने एक ज्योतिषीको बुलाया और उसे सब हाल कहकर पूछा कि पंडितजी, यह सब उपद्रव क्यों होते हैं? इसका कारण क्या आप मुझे कहेंगे? ज्योतिषीने निमित्त विचार कर कहा—महाराज, इन उपद्रवोंका होना आपके लिए बहुत ही बुरा है। आपका शत्रु दिनों दिन बढ़ रहा है। उसके लिए कुछ प्रयत्न कीजिए। और वह कोई बड़ी दूर न होकर यहीं गोकुलमें है। कंस

बड़ी चिन्तामें पड़ा। वह अपने शत्रुके मारनेका क्या यत्न करे, यह उसकी समझमें न आया। उसे चिन्ता करते हुए अपनी पूर्व सिद्ध हुई विद्याओंकी याद हो उठी। एकदम चिन्ता मिटकर उसके मुँह पर प्रसन्नताकी झलक देख पड़ी। उसने उन विद्याओंको बुलाकर कहा—इस समय तुमने बड़ा काम दिया। जाओ, अब पलभरकी भी देरी न कर जहाँ मेरा शत्रु हो उसे ठार मारकर मुझे बहुत जल्दी उसकी मौतके शुभ समाचार दो। विद्याएँ वासुदेवको मारनेको तैयार हो गईं। उनमें पहली पूतना विद्याने धायके वेषमें जाकर वासुदेवको दूधकी जगह विष पिलाना चाहा। उसने जैसे ही उसके मुँहमें स्तन दिया, वासुदेवने उसे इतने जोरसे काटा कि पूतनाके होश गुम हो गये। वह चिल्लाकर भाग खड़ी हुई। उसकी यहाँतक दुर्दशा हुई कि उसे अपने जीनेमें भी सन्देह होने लगा। दूसरी विद्या कौए के वेषमें वासुदेवकी आँखें निकाल लेनेके यत्नमें लगी, सो उसने उसकी चोंच, पींख वगैरहको नोंच नाचकर उसे भी ठीक कर दिया। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छटी और सातवीं देवी जुदा जुदा वेषमें वासुदेवको मारनेका यत्न करने लगीं, पर सफलता किसीको भी न हुई। इसके विपरीत देवियोंको ही बहुत कष्ट सहना पड़ा। यह देख आठवीं देवीको बड़ा गुस्सा आया। वह तब कालिकाका वेष लेकर वासुदेवको मारनेके लिए तैयार हुई। वासुदेवने उसे भी गोवर्द्धन पर्वत उठाकर उसके नीचे दाब दिया। मतलब यह है कि विद्याओंने जितनी भी कुछ वासुदेवके मारनेकी चेष्टा की वह सब व्यर्थ गई। वे सब अपनासा मुँह लेकर कंसके पास पहुँची और उससे बोली—देव, आपका शत्रु कोई ऐसा वैसा साधारण

मनुष्य नहीं। वह बड़ा बलवान् है। हम उसे किसी तरह नहीं मार सकतीं। देवियाँ इतना कहकर चल दीं। उनकी इस विभीषिका को सुनकर कंस हतबुद्धि हो गया। वह इस बातसे बड़ा घबराया कि जिसे देवियाँ तक जब न मार सकीं तब तो उसका मारना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। तब क्या मैं उसीके हाथों मारा जाऊंगा? नहीं, जब तक मुझमें दम है, मैं उसे बिना मारे कभी नहीं छोड़ूँगा। देवियाँ आखिर थीं तो स्त्री-जाति ही न? जो स्वभावसे ही कायर-डरपोंक होती हैं, वे बेचारी एक वीर पुरुषको क्या मार सकेंगी! अस्तु, अब मैं स्वयं उसके मारनेका यत्न करता हूँ। फिर देखता हूँ कि वह कहाँ तक मुझसे बचता है! आखिर वह है एक गुवालका छोकरा और मैं वीर राजपूत! तब क्या मैं उसे न मार सकूँगा? यह असंभव है। उद्यमसे सब काम सिद्ध हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कंसने अपने मनकी खूब समझौती कर वासुदेवके मारनेकी एक नई योजना की। उसके यहाँ दो बड़े प्रसिद्ध पहलवान थे। उनके साथ कुश्ती लड़कर जीतनेवालेको एक बड़ा भारी पारितोषिक देना उसने प्रसिद्ध किया। कंसने सोचा था कि पहले तो मेरे ये पहलवान ही उसे मच्छरकी तरह पीस डालेंगे और कोई दैवयोगसे इनके हाथसे वह बच भी गया तो मैं तो उसकी छाती पर ही तलवार लिये खड़ा रहूँगा, सो उस समय उसका सिर धड़से जुदा करनेमें मुझे बार ही क्या लगेगी? इससे बढ़कर और कोई उपाय शत्रुके मारनेका नहीं है। कंसको इस विचारसे बड़ा धीरज बँधा।

कुश्तीका जो दिन नियत था, उस दिन नियत किये स्थान पर हजारों आलम ठसाठस भर गये। सारी मथुरा उस वीरके देखनेको उमड़ पड़ी कि देखें इन पहलवानोंके साथ कौन वीर लड़ेगा। सबके मन बड़े उत्सुक हो उठे। आँखें उस वीर पुरुषकी बाट जोहने लगीं। पर उन्हें अब तक कोई लड़नेको तैयार नहीं देख पड़ा। कंसका मन कुछ निराश होने लगा। कुश्तीका समय भी बहुत नजदीक आ गया। पर अभीतक उसने किसीको अखाड़ेमें उतरते नहीं देखा। यह देख उसकी छाती धड़की। लोग जानेकी तैयारीहीमें होंगे कि इतनेमें एक चौबीस पच्चीस वर्षका जवान भीड़को चीरता हुआ आया और गर्जकर बोला—हाँ जिसे कुश्ती लड़ना हो वह अखाड़ेमें उतर कर अपना बल बतावे! उपस्थित मंडली इस आये हुए युवा पुरुषकी देव-दुर्लभ सुन्दरता और वीरताको देखकर दंग रह गई। बहुतोंको उसकी छोटी उमर और सुन्दरता तथा उन पहलवानों की भीम काय देखकर नाना तरहकी कुशंका भी होने लगी। और साथ ही उनका हृदय सहानुभूतिसे भर आया। पर उसे रोक देनेका उनके पास कोई उपाय न था। इस लिए उन्हें दुःख भी हुआ। जो हो, आगन्तुक युवाकी उस हृदय हिलानेवाली गर्जनाको सुनकर एक भीमकाय पहलवानने अखाड़ेमें उतरकर खम ठोका। और सामनेवाले वीरको अखाड़ेमें उतरनेके लिए ललकारा। युवा भी बिजलीकी तरह चपलतासे झटसे अखाड़ेमें दाखिल हो गया। इशारा होते ही दोनोंकी मुठभेड़ हुई। युवाकी वीरश्री और चपलता इस समय देखनेके ही योग्य थी। उस मूर्तिमान वीरश्रीने कुछ देर तक तो उस पहलवानको खेल खिलाया और अन्तमें उठाकर ऐसा पछाड़ा

कि उसे आसमानके तारे दीख पड़ने लगे। इतनेमें ही उसका साथी दूसरा पहिलवान अखाड़ेमें उतरा। वासुदेवने उसकी भी यही दशा की। उपस्थित मंडलीके आनन्दकी सीमा न रही। तालियोंसे उसका खूब जयजयकार मनाया गया। अब तो कंससे किसी तरह न रहा गया। उसके हृदयमें ईर्षा, द्वेष, प्रतिहिंसा और मत्सरताकी आग भड़क उठी। वह तलवार हाथमें लिये ललकार कर बोला, हाँ ठहरो! अभी लड़ाई बाकी है। यह कहकर वह स्वयं हाथमें शमशेर लिये अखाड़ेमें उतरा। उसे देखकर सब भौंचकसे रह गये। किसी की समझमें न आया कि यह रहस्य क्या है? क्यों ऐसा किया जा रहा है? किसीको कुछ कहने विचारनेका अधिकार न था। इस लिए वे सब लाचार होकर उस भयंकर समयकी प्रतीक्षा करने लगे कि अन्तमें देखें ऊँट किस करवट बैठता है। जो हो, पर इतना अवश्य है कि प्रकृतिको अधिक अन्याय, अत्याचार सहन नहीं होता, और इस लिए वह फिर एक ऐसी शक्ति पैदा करती है जो उन अत्याचारोंके अंकुरको जड़मूलसे ही उखाड़ फैंक देती है। कंसके भयानक अत्याचारोंसे सारी प्रजा त्राह त्राह कर उठी थी। शान्ति—सुखका कहीं नाम निशान भी न रह गया था। इसी लिए प्रकृतिने वासुदेव सरीखी एक महाशक्तिको उत्पन्न किया। कंसको अखाड़ेमें उतरा देखकर वासुदेव भी तलवार उठा उसके सामने हुआ। दोनोंने अपनी अपनी तलवारको सम्हाला। कंसका हृदय क्रोधकी आगसे जल ही रहा था, सो उसने झपट कर वासुदेव पर पहला वार किया। श्रीकृष्णने उसके वारको बड़ी बुद्धिमानीसे बचाकर उस पर एक ऐसा जोरका वार किया कि पहला ही वार कंससे सम्हालते न बना और

देखते देखते वह धड़ामसे गिरकर सदाके लिए पृथिवीकी गोदमें सो गया। प्रकृतिको सन्तोष हुआ। उसने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लोगों को भी यह शिक्षा देदी कि देखो, निर्बलों पर अत्याचार करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं। मैं ऐसे पापियोंका पृथिवी पर नाम निशान भी नहीं रहने देता। यदि तुम सुखी रहना पसन्द करते हो तो दूसरोंको सुखी करनेका यत्न करो। यह मेरा आदेश है।

कंसको निरीह प्रजा पर अत्याचार करनेका उपयुक्त प्रायश्चित्त मिल गया। अशान्तिका छत्र भंग होकर फिरसे शान्तिके पवित्र शासनकी स्थापना हुई। वासुदेवने उसी समय कंसके पिता उग्रसेनको लाकर पीछा राज्यसिंहासन पर अधिष्ठित किया। इसके बाद ही श्रीकृष्णने जरासन्ध पर चढ़ाई करके उसे भी कंसका रास्ता बतलाया और आप फिर अर्धचक्रवर्त्ती होकर प्रजाका नीतिके साथ शासन करने लगा।

यह कथा प्रसंगवश यहाँ संक्षेपमें लिख दी गई है, जिन्हें विस्तारके साथ पढ़ना हो उन्हें हरिवंशपुराणका स्वाध्याय करना चाहिए।

जो क्रोधी, मायाचारी, ईर्षा करनेवाले, द्वेष करनेवाले और मानी थे, धर्मके नामसे जिन्हें चिढ़ थी, जो धर्मसे उलटा चलते थे, अत्याचारी थे, जड़बुद्धि थे, और खोटे कर्मोंकी जालमें सदा फँसे रह कर कोई पाप करनेसे नहीं डरते थे, ऐसे कितने मनुष्य अपने ही कर्मोंसे कालके मुँहमें नहीं पड़े? अर्थात् कोई बुरा काम करे या अच्छा, कालके हाथ तो सभीको पड़ना ही पड़ता है। पर दोनोंमें

विशेषता यह होती है कि एक मरे बाद भी जन साधारणकी श्रद्धा का पात्र होता है और सुगति लाभ करता है। और दूसरा जीतेजी ही अनेक तरहकी निन्दा, बुराई, तिरस्कार आदि दुर्गुणोंका पात्र बनकर अन्तमें कुगतिमें जाता है। इसलिए जो विचारशील हैं—सुख प्राप्त करना जिनका ध्येय है, उन्हें तो यही उचित है कि वे संसारके दुःखोंका नाश कर स्वर्ग या मोक्षका सुख देनेवाले जिन-भगवान्‌का उपदेश किया पवित्र जिनधर्मका सेवन करें।

४५—लक्ष्मीमतीकी कथा।

जिन जगद्बन्धुका ज्ञान लोक और अलोकका प्रकाशित करनेवाला है—जिनके ज्ञान द्वारा सब पदार्थ जाने जा सकते हैं, अपने हितके लिए उन जिनेन्द्रभगवान्‌को नमस्कार कर मान करनेके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

मगधदेशके लक्ष्मी नामके सुन्दर गाँवमें एक सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था। लक्ष्मीमती सुन्दरी थी। अवस्था इसकी जवान थी। इसमें सब गुण थे, पर एक दोष भी था। वह यह कि इसे अपनी जातिका बड़ा अभिमान था और यह सदा अपनेको सिंगारने-सजानेमें मस्त रहती थी।

एक दिन पन्द्रह दिनके उपवास किये हुए श्रीसमाधिगुप्त मुनिराज आहारके लिए इसके यहाँ आये। सोमशर्मा उन्हें आहार करानेके लिए भक्तिसे ऊँचे आसन पर विराजमान कर और अपनी

स्त्रीको उन्हें आहार करा देनेके लिए कहकर आप कहीं बाहर चला गया। उसे किसी कामकी जल्दी थी।

इधर ब्राह्मणी बैठी बैठी काचमें अपना मुँख देख रही थी। उसने अभिमानमें आकर मुनिको बहुतसी गालियाँ दीं, उनकी निन्दा की और किवाड़ बन्द कर लिए। हाय! इससे अधिक और क्या पाप होगा? मुनिराज शान्त-स्वभावी थे, तपके समुद्र थे, सबका हित करनेवाले थे, अनेक गुणोंसे युक्त थे, और उच्च चारित्रके धारक थे; इसलिए ब्राह्मणीकी उस दुष्टता पर कुछ ध्यान न देकर वे लौट गये। सच है, पापियोंके यहाँ आई हुई निधि भी चली जाती है। मुनि-निन्दाके पापसे लक्ष्मीमतीके सातवें दिन कोढ़ निकल आया। उसकी दशा बड़ी बिगड़ गई। सच है, साधु-सन्तोंकी निन्दा-बुराईसे कभी शान्ति नहीं मिलती। लक्ष्मीमतीकी बुरी हालत देखकर घरके लोगोंने उसे घरसे बाहर कर दिया। यह कष्ट पर कष्ट उससे न सहा गया, सो वह आगमें बैठकर जल मरी। उसकी मौत बड़े बुरे भावों से हुई। उस पापसे वह इसी गांवमें एक धोबीके यहाँ गधी हुई। इस दशामें इसे दूध पीनेको नहीं मिला। यह मरकर सूअरी हुई। फिर दो बार कुत्तीकी पर्याय इसने ग्रहण की। इसी दशामें यह वन-में दावाग्निसे जल मरी। अब वह नर्मदा नदीके किनारे पर बसे हुए भृगुकच्छ गाँवमें एक मल्लाहके यहाँ काणा नामकी लड़की हुई। शरीर इसका जन्मसे ही बड़ा दुर्गन्धित था। किसीकी इच्छा इसके पास तक बैठनेकी नहीं होती थी। देखिये अभिमानका फल, कि लक्ष्मीमती ब्राह्मणी थी, पर उसने अपनी जातिका अभिमान कर

अब मल्लाहके यहाँ जन्म लिया। इस लिए बुद्धिमानोंको कभी जातिका गर्व न करना चाहिए।

एक दिन काणा लोगोंको नाव द्वारा नदी पार कर रही थी। इसने नदी किनारे पर तपस्या करते हुए उन्हीं मुनिको देखा, जिनकी कि लक्ष्मीमतीकी पर्यायमें इसने निन्दा की थी। उन ज्ञानी मुनिको नमस्कार कर इसने पूछा–प्रभो, मुझे याद आता है कि मैंने कहीं आपको देखा है? मुनिने कहा बच्चो, तू पूर्वजन्ममें ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था, और सोमशर्मा तेरा भर्त्ता था। तूने अपने जातिके अभिमानमें आकर मुनि-निन्दा की। उसके पापसे तेरे कोढ़ निकल आया। तू उस दुःखको न सहकर आगमें जल मरी। इस आत्महत्याके पापसे तुझे गधी, सूअरी और दो बार कुत्ती होना पड़ा। कुत्तीके भवसे मरकर तू इस मल्लाहके यहाँ पैदा हुई है। अपना पूर्व भवका हाल सुनकर काणाको जातिस्मरण ज्ञान हो गया–पूर्वजन्मकी सब बातें उसे याद हो उठीं। वह मुनिको नमस्कार कर बड़े दुःखके साथ बोली–प्रभो, मैं बड़ी पापिनी हूं। मैंने साधु महात्माओंकी बुराई कर बड़ा ही नीच काम किया है। मुनिराज, मेरी पापसे अब रक्षा करो–मुझे कुगतियोंमें जानेसे बचाओ। तब मुनिने उसे धर्मका उपदेश दिया। काणा सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई। उसे बहुत वैराग्य हुआ। वह वहीं मुनिके पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिका हो गई। उसने फिर अपनी शक्ति के अनुसार खूब तपस्या की, अन्तमें शुभ भावोंसे मरकर वह स्वर्ग गई। यही काणा फिर स्वर्गसे आकर कुण्ड नगरके राजा भीष्मकी महारानी यशस्वतीके रूपिणी नामकी बहुत सुन्दर कन्या हुई। रूपिणीका ब्याह वासुदेवके

साथ हुआ। सच है, पुण्यके उदयसे जीवोंको सब धन-दौलत मिलती है।

जैनधर्म सबका हित करनेवाला सर्वोच्च धर्म है। जो इसे पालते हैं वे अच्छे कुलमें जन्म लेते हैं, उन्हें यश-सम्पत्ति प्राप्त होती है, वे कुगतिमें न जाकर उच्च गतिमें जाते हैं, और अन्तमें मोक्षका सर्वोच्च सुख लाभ करते हैं।

४६–पुष्पदत्ताकी कथा।

अनन्त सुखके देनेवाले और तीनों जगत्के स्वामी श्रीजिनेंद्र भगवान्को नमस्कार कर मायाको नाश करनेके लिए मायाविनी पुष्पदत्ताकी कथा लिखी जाती है।

प्राचीन समयसे प्रसिद्ध अजितावर्त नगरके राजा पुष्पचूल की रानीका नाम पुष्पदत्ता था। राजसुख भोगते हुए पुष्पचूलने एक दिन अमरगुरु मुनिके पास जिनधर्मका स्वरूप सुना, जो धर्म स्वर्ग और मोक्षके सुखकी प्राप्तिका कारण है। धर्मोपदेश सुनकर पुष्पचूलको संसार, शरीर, भोगादिकोंसे बड़ा वैराग्य हुआ। वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उनकी रानी पुष्पदत्ताने भी उनकी देखा-देखी ब्रह्मिला नामकी आर्यिकाके पास आर्यिकाकी दीक्षा लेली। दीक्षा ले-लेने पर भी इसे अपने बड़प्पन—राजकुलका अभिमान जैसाका तैसा ही बना रहा। धार्मिक आचार-व्यवहारसे यह विपरीत चलने लगी। और और आर्यिकाओंको नमस्कार, विनय करना इसे अपने अपमानका कारण जान पड़ने लगा। इस लिए यह किसीको नम-

स्कारादि नहीं करती थी। इसके सिवा इस योग अवस्थामें भी यह अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओं द्वारा अपने शरीरको सिंगारा करती थी। इसका इस प्रकार बुरा-धर्मविरुद्ध आचार विचार देखकर एक दिन धर्मात्मा अर्जिलाने इसे समझाया कि इस योगदशामें तुझे ऐसा शरीरका सिंगार आदि करना उचित नहीं है। ये बातें धर्मविरुद्ध और पापकी कारण हैं। इस लिए कि इनसे विषयोंकी इच्छा बढ़ती है। पुष्पदत्ताने कहा—नहीं जी, मैं कहाँ सिंगार-विंगार करती हूँ। मेरा तो शरीर ही जन्मसे ऐसी सुगन्ध लिये है। सच है, जिनके मनमें स्वभावसे धर्म-वासना न हो उन्हें कितना भी समझाया जाय, उन पर उस समझानेका कुछ असर नहीं होता। उनकी प्रवृत्ति और अधिक बुरे कामोंकी ओर जाती है। पुष्पदत्ताने यह मायाचार कर ठीक न किया। इसका फल इसके लिए बुरा हुआ। वह मरकर इस मायाचारके पापसे चम्पापुरीमें सागरदत्त सेठके यहां दासी हुई। इसका नाम जैसा पूतिमुखी था, इसके मुँहसे भी सदा वैसी दुर्गन्ध निकलती रहती थी। इस लिए बुद्धिमानोंको चाहिए कि वे मायाको पापकी कारण जानकर उसे दूरसे ही छोड़ दें। यही माया पशु-गतिके दुःखोंकी कारण है और कुल, सुन्दरता, यश, माहात्म्य, सुगति, धन-दौलत तथा सुख आदिका नाश करनेवाली है और संसारके बढ़ानेवाली लता है। यह जानकर मायाको छोड़े हुए जैनधर्मके अनुभवी विद्वानोंको उचित है कि वे धर्मकी ओर अपनी बुद्धिको लगावें।

४७—मरीचिकी कथा।

सुख रूपी धानको हरा-भरा करनेके लिए जो मेघ समान हैं, ऐसे जिनभगवानके चरणोंको नमस्कार कर भरत-पुत्र मरीचिकी कथा लिखी जाती है, जैसी कि वह और शास्त्रोंमें लिखी है।

अयोध्यामें रहनेवाले सम्राट् भारतेश्वर भरतके मरीचि नामका पुत्र हुआ। मरीचि भव्य था और सरलमना था। जब आदिनाथ भगवान, जो कि इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजा किये जाते थे, संसार छोड़कर योगी हुए तब उनके साथ कोई चार हजार राजा और भी साधु हो गये। इस कथाका नायक मरीचि भी इन साधुओंमें था।

भरतराज एक दिन भगवान् आदिनाथ तीर्थंकरका उपदेश सुननेको समवसरणमें गये। भगवान्को नमस्कार कर उन्होंने पूछा—भगवन्, आपके बाद तेईस तीर्थंकर और होंगे, ऐसा मुझे आपके उपदेशसे जान पड़ा। पर इस सभामें भी कोई ऐसा महापुरुष है जो तीर्थंकर होनेवाला हो? भगवान् बोले—हाँ, है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि, जो अन्तिम तीर्थंकर महावीरके नामसे प्रख्यात होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। सुनकर भरतकी प्रसन्नताका तो कुछ ठिकाना न रहा और इसी बातसे मरीचिकी मति-गति उलटी ही हो गई। उसे अभिमान आ गया कि अब तो मैं तीर्थंकर होऊंगा ही, फिर मुझे नंगे रहना, दुःख सहना, पूरा खाना-पीना नहीं, यह सब कष्ट क्यों? किसी दूसरे वेषमें रहकर मैं क्यों न

सुख—आराम पूर्वक रहूँ। बस, फिर क्या था, जैसे ही विचारोंका हृदयमें उदय हुआ, उसी समय वह सब व्रत, संयम, आचार-विचार, सम्यक्त्व आदिको छोड़-छाड़ कर तापसी बन गया और सांख्य, परिव्राजक आदि कई मतोंको अपनी कल्पनासे चला कर संसारके घोर दुःखोंका भोगनेवाला हुआ। इसके बाद वह अनेक कुगतियोंमें घूमा किया। सच है, प्रमाद-असावधानी या कषाय जीवोंके कल्याण-मार्गमें बड़ा ही विघ्न करनेवाली है। और अज्ञानसे भव्यजन भी प्रमादी बनकर दुःख भोगते हैं। इस लिए ज्ञानियोंको धर्मकार्योंमें तो कभी भूलकर भी प्रमाद करना ठीक नहीं है। मोहकी लीलासे मरीचिको चिरकाल तक संसारमें घूमना पड़ा। इसके बाद पाप-कर्मकी कुछ शान्ति होनेसे उसे जैनधर्मका फिर योग मिल गया। उसके प्रसादसे वह नन्द नामका राजा हुआ। फिर किसी कारणसे इसे संसारसे वैराग्य हो गया। मुनि होकर इसने सोलह कारण भावना द्वारा तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया। यहाँसे यह स्वर्ग गया। स्वर्गायु पूरी होने पर इसने कुण्डलपुरमें सिद्धार्थ राजाकी प्रियकारिणी प्रियाके यहाँ जन्म लिया। ये ही संसार-पूज्य महावीर भगवान्‌के नामसे प्रख्यात हुए। इन्होंने कुमारपनमें ही दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देव, विद्याधर चक्रवर्त्तियों द्वारा ये पूज्य हुए। अनेक जीवोंको इन्होंने कल्याणके मार्ग पर लगाया। अपने समयमें धर्मके नाम पर होनेवाली बे-शुमार पशुहिंसाका इन्होंने घोर विरोध कर उसे जड़-मूलसे उखाड़ फेंक दिया। इनके समयमें अहिंसा धर्मकी पुनः स्थापना हुई। अन्तमें ये अघातिया कर्मोंका भी नाशकर परमधाम-

मोक्ष चले गये। इस लिए हे आत्मसुखके चाहनेवालों, तुम्हें सच्चे मोक्ष सुखकी यदि चाह है तो तुम सदा हृदयमें जिनभगवान्‌के पवित्र उपदेशको स्थान दो। यही तुम्हारा कल्याण करेगा। विषयों की ओर ले जानेवाले उपदेश, कल्याण-मार्गकी ओर नहीं झुका सकते।

वे वर्द्धमान-महावीर भगवान् संसारमें सदा जय लाभ करें—उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकारका नाश कर चमकता रहे, जो भगवान् जीवमात्रका हित करनेवाले हैं, ज्ञानके समुद्र हैं, राजों, महाराजों द्वारा पूजा किये जाते हैं और जिनकी भक्ति स्वर्गादिका उत्तम सुख देकर अन्तमें अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मीसे मिला देती है।

४८—गन्धमित्रकी कथा।

अनन्त गुण-विराजमान और संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर गन्धमित्र राजाकी कथा लिखी जाती है, जो घ्राणेन्द्रियके विषयमें फँसकर अपनी जान गँवा बैठा है।

अयोध्याके राजा विजयसेन और रानी विजयवतीके दो पुत्र थे। इनके नाम थे जयसेन और गन्धमित्र। इनमें गन्धमित्र बड़ा लम्पटी था। भौंरेकी तरह नाना प्रकारके फूलोंके सूँघनेमें वह सदा मस्त रहता था।

इनके पिता विजयसेन एक दिन कोई कारण देखकर

संसारसे विरक्त हो गये। इन्होंने अपने बड़े लड़के जयसेनको राज्य देकर और गन्धमित्रको युवराज बनाकर सागरसेन मुनिराजसे योग ले लिया। सच है, जो अच्छे पुरुष होते हैं उनकी धर्मकी ओर स्वभावहीसे रुचि होती है।

जयसेनके छोटे भाई गन्धमित्रको युवराज पद अच्छा नहीं लगा। इस लिये कि उसकी महत्वाकांक्षा राजा होनेकी थी तब उसने राज्यके लोभमें पड़कर अपने बड़े भाईके विरुद्ध षड्यंत्र रचा। कितने ही बड़े बड़े कर्मचारियोंको उसने धनका लोभ देकर उभारा, प्रजामेंसे भी बहुतोंको उल्टी-सीधी सुझाकर बहकाया। गन्धमित्रको इसमें सफलता प्राप्त हुई। उसने मौका पाकर बड़े भाई जयसेनको सिंहासनसे उतार राज्य बाहर कर दिया और आप राजा बन बैठा। राजवैभव सचमुच ही महापापका कारण है। देखिये न, इस राज्य-वैभवके लोभमें पड़कर मूर्खजन अपने सगे भाईको जान तक लेनेकी कोशिशमें रहते हैं।

राज्य-भ्रष्ट जयसेनको अपने भाईके इस अन्यायसे बड़ा दुःख हुआ। इसका उसे ठीक बदला मिले, इस उपायमें अब वह भी लगा। प्रतिहिंसासे अपने कर्त्तव्यको वह भूल बैठा। उस दिन का रास्ता वह बड़ी उत्सुकतासे देखने लगा जिस दिन गन्धमित्रको वह ठार मारकर अपने हृदयको सन्तुष्ट करे।

गन्धमित्र लम्पटी तो था ही, सो वह रोज रोज अपनी स्त्रियोंको साथ लिए जाकर सरयू नदीमें उनके साथ जलक्रीड़ा हँसी दिल्लगी किया करता था। जयसेनने इस मौकेको अपना बदला चुकानेके लिए बहुत ही अच्छा समझा। एक दिन उसने जहरके पुट

दिये अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे मनोहर फूलोंको ऊपरकी ओरसे नदीमें बहा दिया। फूल गन्धमित्रके पास होकर बहे जा रहे थे। गन्धमित्र उन्हें देखते ही उनके लेनेके लिए झपटा। कुछ फूलोंको हाथमें ले वह सूँघने लगा। फूलोंके विषका उस पर बहुत जल्दी असर हुआ और देखते देखते वह चल बसा। मरकर गन्धमित्र घ्राणेन्द्रियके विषयकी अत्यन्त लालसासे नरक गया। सो ठीक है, इन्द्रियोंके अधीन हुए लोगोंका नाश होता ही है।

देखिये, गन्धमित्र केवल एक विषयका सेवन कर नरकमें गया, जो कि अनन्त दुःखोंका स्थान है। तब जो लोग पाँचों इन्द्रियों के विषयोंका सेवन करनेवाले हैं, वे क्या नरकोंमें न जायँगे? अवश्य जाँयगे। इस लिए जिन बुद्धिवानोंको दुःख सहना अच्छा नहीं लगता या वे दुःखोंको चाहते ही नहीं, तो उन्हें विषयोंकी ओरसे अपने मन को खींचकर जिनधर्मकी ओर लगाना चाहिये।

४९–गन्धर्वसेनाकी कथा।

सब सुखोंके देनेवाले जिनभगवान्के चरणोंको नमस्कार कर मूर्खिणी गन्धर्वसेनाका चरित लिखा जाता है। गन्धर्वसेना भी एक ही विषयकी अत्यासक्तिसे मौतके पंजेमें फँसी थी।

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा गन्धर्वदत्तकी रानी गन्धर्वदत्ताके गन्धर्वसेना नामकी एक कन्या थी। गन्धर्वसेना गान विद्याकी बड़ी अच्छी जानकार थी। और इसी लिए उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जो मुझे गानेमें जीत लेगा वही मेरा स्वामी

होगा—उसीकी मैं अंकशायिनी बनूंगी। गन्धर्वसेनाकी खूब सूरती की मनोहारी सुगन्धकी लालसासे अनेक क्षत्रिय-कुमार भौंरेकी तरह खिंचे हुए आते थे, पर यहाँ आकर उन सबको निराश-मुँह लौट जाना पड़ता था। गन्धर्वसेनाके सामने गानेमें कोई नहीं ठहरने पाता था।

एक पांचाल नामका उपाध्याय गानशास्त्रका बहुत अच्छा अभ्यासी था। उसकी इच्छा भी गन्धर्वसेनाको देखनेकी हुई। वह अपने पाँचसौ शिष्योंको साथ लिये पटना आकर एक बगीचेमें ठहरा। समय गर्मीका था और बहुत दूरकी मंजिल करनेसे पांचाल थक भी गया था। इस लिए वह अपने शिष्योंसे यह कहकर, कि कोई यहाँ आये तो मुझे जगा देना, एक वृक्षकी ठंडी छायामें सो गया। इधर तो यह सोया और उधर इसके बहुतसे विद्यार्थी शहर देखनेको चल दिये।

गन्धर्वसेनाको जब पांचालके आने और उसके पाण्डित्यकी खबर लगी। वह इसे देखनेको आई। उसने इसे बहुतसी वीणाओं को आस-पास रखे सोया देख कर समझा तो सही कि यह विद्वान् तो बहुत भारी है, पर जब उसके लार बहते हुए मुँह पर उसकी नजर गई, तो उसे पांचालसे बड़ी नफरत हुई। उसने फिर उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा और जिस झाड़के नीचे पांचाल सोया हुआ था। उसकी चन्दन, फूल वगैरहसे पूजा कर वह उसी समय अपने महल लौट आई। गन्धर्वसेनाके जाने बाद जब पांचाल की नींद खुली और उसने वृक्षको गन्ध-पुष्पादिसे पूजा हुआ पाया तो उसे कुछ सन्देह हुआ। एक विद्यार्थीसे इसका कारण पूछा तो

उसने एक स्त्रीके आने और इस वृक्षकी पूजा कर उसके चले जानेका हाल पांचालसे कहा। पांचालने समझ लिया कि गन्धर्वसेना आकर चली गई। तब उसने सोचा यह तो ठीक नहीं हुआ। सोनेने सब बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। खैर, जो हुआ, अब पीछे लौट जाना भी ठीक नहीं। चलकर प्रयत्न जरूर करना चाहिए। इसके बाद यह राजाके पास गया और प्रार्थना कर अपने रहनेको एक स्थान उसने माँगा। स्थान उसकी प्रार्थनाके अनुसार गन्धर्वसेना के महलके पास ही मिला। कारण राजासे पांचालने कह दिया था कि आपकी राजकुमारी गानेमें बड़ी होशियार है, ऐसा मैं सुनता हूँ। और मैं भी आपकी कृपासे थोड़ा बहुत गाना जानता हूँ, इस लिए मेरी इच्छा राजकुमारीका गाना सुनकर यह बात देखनेकी है कि इस विषयमें उसकी कैसी गति है। यही कारण था कि राजाने कुमारीके महलके समीप ही उसे रहनेकी आज्ञा देदी। अस्तु।

एक दिन पांचाल कोई रातके तीन चार बजे के समय वीणाको हाथमें लिए बड़ी मधुरतासे गाने लगा। उसके मधुर मनोहर गानेकी आवाज शान्त रात्रिमें आकाशको भेदती हुई गन्धर्वसेनाके कानोंसे जाकर टकराई। गन्धर्वसेना इस समय भरनींदमें थी। पर इस मनोमुग्ध करनेवाली आवाजको सुनकर वह सहसा चौंक कर उठ बैठी। न केवल उठ बैठनेहीसे उसे सन्तोष हुआ। वह उठकर उधर दौड़ी भी गई जिधरसे आवाज गूँजती हुई आ रही थी। इस बे-भान अवस्थामें दौड़ते हुए उसका पाँव खिसक गया और वह धड़ामसे आकर जमीन पर गिर पड़ी।

देखते देखते उसका आत्माराम उसे छोड़ कर चला गया। इस विषयासक्तिसे उसे फिर संसारमें चिर समय तक रुलना पड़ा।

गन्धर्वसेना एक कर्णेन्द्रियके विषयकी लम्पटतासे जब अथाह संसार-सागरमें डूबी, तब जो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें सदा काल मस्त रहते हैं, वे यदि डूबें तो इसमें नई बात क्या ? इस लिए बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है कि वे इन दुःखोंके कारण विषयभोगों को छोड़कर सुखके सच्चे स्थान जिनधर्मका आश्रय लें।

५०—भीमराजकी कथा।

केवलज्ञानरूपी नेत्रोंकी अपूर्व शोभाको धारण किये हुए श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर भीमराजकी कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर सत्पुरुषोंको इस दुःखमय संसारसे वैराग्य होगा।

कांपिल्य नगरमें भीम नामका एक राजा हो गया है। वह दुर्बुद्धि बड़ा पापी था। उसकी रानीका नाम सोमश्री था। इसके भीमदास नामका एक लड़का था। भीमने कुल-क्रमके अनुसार नन्दीश्वर पर्वमें मुनादी पिटवाई कि कोई इस पर्वमें जीवहिंसा न करे। राजाने मुनादी तो पिटवा दी, पर वह स्वयं महा लम्पटी था। मांस खाये बिना उसे एक दिन भी चैन नहीं पड़ता था। उसने इस पर्वमें भी अपने रसोइयेसे मांस पकानेको कहा। पर दुकानें सब बन्द थीं, अतः उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह मांस लाये कहाँसे ? तब उसने एक युक्ति की। वह मसानसे एक बच्चेकी

लाश उठा लाया और उसे पकाकर राजाको खिलाया। राजाको वह मांस बड़ा ही अच्छा लगा। तब उसने रसोइयेसे कहा—क्योंरे, आज यह मांस और और दिनोंकी अपेक्षा इतना स्वादिष्ट क्यों है ? रसोइयेने डरकर सच्ची बात राजासे कह दी। राजाने तब उससे कहा—आजसे तू बालकोंका ही मांस पकाया करना।

राजाने तो झटसे कह दिया कि अबसे बालकोंका ही मांस खानेके लिए पकाया करना। पर रसोइयेको इसकी बड़ी चिन्ता हुई कि वह रोज रोज बालकोंको लाये कहाँसे ? और राजाज्ञाका पालन होना ही चाहिये। तब उसने यह प्रयत्न किया कि रोज शामके वक्त शहरके मुहल्लोंमें जाना और जहाँ बच्चे खेल रहे हों उन्हें मिठाईका लोभ देकर झटसे किसी एकको पकड़ कर उठा लाना। इसी तरह वह रोज रोज एक बच्चेकी जान लेने लगा। सच है, पापी लोगोंकी संगति दूसरोंको भी पापी बना देती है। जैसे भीमराजकी संगतिसे उसका रसोइया भी उसीके सरीखा पापी हो गया।

बालकोंको प्रतिदिन इस प्रकार एकाएक गायब होनेसे शहरमें बड़ी हलचल मच गई। सब इसका पता लगानेकी कोशिश में लगे। एक दिन इधर तो रसोइया चुपकेसे एक गृहस्थके बालक को उठाकर चला कि पीछेसे उसे किसीने देख लिया। रसोइया झट-पट पकड़ लिया गया। उससे जब पूछा गया तो उसने सब बातें सच्ची सच्ची बतलादीं। यह बात मंत्रियोंके पास पहुँची। उन्होंने सलाह कर भीमदासको तो अपना राजा बनाया और भीमको रसोइयेके साथ शहरसे निकाल बाहर किया। सच है,

पापियोंका कोई साथ नहीं देता। माता, पुत्र, भाई, बहिन, मित्र, मंत्री, प्रजा—आदि सब ही विरुद्ध होकर उसके शत्रु बन जाते हैं।

भीम यहाँसे चलकर अपने रसोइयेके साथ एक जंगलमें पहुँचा। यहाँ इसे बहुत ही भूख लगी। इसके पास खानेको कुछ नहीं था। तब यह अपने रसोइयेको ही मारकर खा गया। यहाँसे घूमता-फिरता यह मेखलपुर पहुँचा और वहाँ वासुदेवके हाथ मारा जाकर नरक गया।

अधर्मी पुरुष अपने ही पापकर्मोंसे संसार-समुद्रमें रुलते हैं। इस लिए सुखकी चाह करनेवाले बुद्धिवानोंको चाहिए कि वे सुखके स्थान जैनधर्मका पालन करें।

५१—नागदत्ताकी कथा।

देवों, विद्याधरों, चक्रवर्त्तियों और राजों महाराजों द्वारा पूजा किये गये जिनभगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर नागदत्ताकी कथा लिखी जाती है।

आभीर देशके नासक्य नगरमें सागरदत्त नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था। इसके एक लड़का और एक लड़की थी। दोनोंके नाम थे श्रीकुमार और श्रीषेणा। नागदत्ताका चाल-चलन अच्छा न था। अपनी गौएँको चरानेवाले नन्द नामके गुवालके साथ उसकी आशनाई थी। नागदत्ताने उसे एक दिन कुछ सिखा-सुझा दिया। सो वह बीमारीका बहाना

बनाकर गौएँ चरानेको नहीं आया। तब बेचारे सागरदत्तको स्वयं गौएँ चरानेको जाना पड़ा। जंगलमें गौओंको चरते छोड़कर वह एक झाड़के नीचे सो गया। पीछेसे नन्दगुवालने आकर उसे मार डाला। बात यह थी कि नागदत्ताने ही अपने पतिको मार डालनेके लिए उसे उकसाया था। और फिर परस्त्री-लम्पटी पुरुष अपने सुखमें आनेवाले विघ्नको नष्ट करनेके लिए कौन बुरा काम नहीं करता।

नागदत्ता और पापी नन्द इस प्रकार अनर्थ द्वारा अपने सिर पर एक बड़ा भारी पापका बोझा लादकर अपनी नीच मनोवृत्तियोंको प्रसन्न करने लगे। श्रीकुमार अपनी माताकी इस नीचतासे बे-हद कष्ट पाने लगा। उसे लोगोंको मुँह दिखाना तक कठिन हो गया। उसे बड़ी लज्जा आने लगी और इसके लिए उसने अपनी माताको बहुत कुछ कहा सुना भी। पर नागदत्ताके मन पर उसका कुछ असर नहीं हुआ। वह पिचली हुई नागिनकी तरह उसी पर दाव खाने लगी। उसने नाराज होकर श्रीकुमारको भी मार डालनेके लिए नन्दको उभारा। नन्द फिर बीमारीका बहाना बनाकर गोएँ चरानेको नहीं आया। तब श्रीकुमार स्वयं ही जानेको तैयार हुआ। उसे जाता देखकर उसकी बहिन श्रीषेणाने उसे रोककर कहा—भैया, तुम मत जाओ। मुझे माताका इसमें कुछ कपट दिखता है। उसने जैसे नन्द द्वारा अपने पिताजीको मरवा डाला है, वह तुम्हें भी मरवा डालनेके लिए दाँत पीस रही है। मुझे जान पड़ता है नन्द इसी लिए बहाना बनाकर आज गौएँ चरानेको नहीं आया। श्रीकुमार बोला—बहिन, तुमने मुझे आज सावधान कर दिया यह बड़ा ही

अच्छा किया। तुम मत घबराओ। मैं अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकूँगा। अब मुझे रंचमात्र भी डर नहीं रहा। और मैं तुम्हारे कहनेसे नहीं भी जाता, पर इससे माताको अधिक सन्देह होता और वह फिर कोई दूसरा ही यत्न मुझे मरवानेका करती। क्योंकि वह चुप तो कभी बैठी ही न रहती। आज बहुत ही अच्छा मौका हाथ लगा है। इस लिए मुझे जाना ही उचित है। और जहाँ तक मेरा बस चलेगा मैं जड़मूलसे उस अंकुरको ही उखाड़कर फैंक दूँगा, जो हमारी माताके अनर्थका मूल कारण है। बहिन, तुम किसी तरहकी चिन्ता मनमें न लाओ। अनाथोंका नाथ अपना भी मालिक है।

श्रीकुमार बहिनको समझा कर जंगलमें गौएँ चरानेको गया। उसने वहाँ एक बड़े लकड़ेको वस्त्रोंसे ढककर इस तरह रख दिया कि वह दूसरोंको सोया हुआ मनुष्य जान पड़ने लगे और आप एक ओर छिप गया। श्रीषेणाकी बात सच निकली। नन्द नंगी तलवार लिए दबे पाँव उस लकड़ेके पास आया और तलवार उठा कर उसने उस पर दे मारी। इतनेमें पीछेसे आकर श्रीकुमारने उसकी पीठमें इस जोरकी एक भालेकी जमाई कि भाला आर-पार हो गया। और नन्द देखते देखते तड़फड़ाकर मर गया। इधर श्रीकुमार गौओंको लेकर घर लौट आया। आज गौएँ दोहनेके लिए भी श्रीकुमार ही गया। उसे देखकर नागदत्ताने उससे पूछा—क्यों कुमार, नन्द नहीं आया? मैंने तो तेरे ढूँढ़नेके लिए उसे जंगलमें भेजा था। क्या तूने उसे देखा है कि वह कहाँ पर है? श्रीकुमार से तब न रहा गया और गुस्सेमें आकर उसने कह डाला—माता,

मुझे तो मालूम नहीं कि नन्द कहाँ है। पर मेरा यह भाला अवश्य जानता है। नागदत्ताकी आंखें जैसे ही उस खूनसे भरे हुए भाले पर पड़ीं तो उसकी छाती धड़क उठी। उसने समझ लिया कि इसने उसे मार डाला है। अब तो क्रोधसे वह भी भर्रा गई। उसके सामने एक मूसला रक्खा था। उस पापिनीने उसे ही उठाकर श्रीकुमारके सिर पर इस जोरसे मारा कि सिर फटकर तत्काल वह भी धराशायी हो गया। अपने भाईकी इस प्रकार हत्या हुई देखकर श्रीषेणा दौड़ी हुई आई और नागदत्ताके हाथसे झटसे मूसला छुड़ाकर उसने उसके सिर पर एक जोरकी मार जमाई, जिससे वह भी अपने कियेकी योग्य सजा पा गई। नागदत्ता मरकर पापके फलसे नरक गई। सच है, पापीको अपना जीवन पापमें ही बिताना पड़ता है। नागदत्ता इसका उदाहरण है। उस दुराचारको धिक्कार, उस कामको धिक्कार, जिसके वश मनुष्य महा पापकर्म कर और फिर उसके फलसे दुर्गतिमें जाता है। इस लिए सत्पुरुषों को उचित है कि वे जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश किये, सबको प्रसन्न करनेवाले और सुख-प्राप्तिके साधन ब्रह्मचर्य व्रतका सदा पालन करें।

५२—द्वीपायन मुनिकी कथा।

संसारके स्वामी और अनन्त सुखोंके देनेवाले श्रीजिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर द्वीपायन मुनिका चरित लिखा जाता है, जैसा पूर्वाचार्योंने उसे लिखा है।

सोरठदेशमें द्वारका प्रसिद्ध नगरी है। नेमिनाथ भगवान्‌का जन्म यहीं हुआ है। इससे यह बड़ी पवित्र समझी जाती है। जिस समयकी यह कथा लिखी जाती है उस समय द्वारकाका राज्य नवमें नारायण बलभद्र और वासुदेव करते थे। एक दिन ये दोनों राज-रानेश्वर गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ भगवान्‌की पूजा-वन्दना करनेको गये। भगवान्‌की इन्होंने भक्तिपूर्वक पूजा की और उनका उपदेश सुना। उपदेश सुनकर इन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। इसके बाद बलभद्रने भगवान्‌से पूछा—हे संसारके अकारण बन्धो, हे केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक, हे! तीन जगतके स्वामी, हे करुणाके समुद्र, और हे लोकालोकके प्रकाशक, कृपाकर कहिए, कि वासुदेवको पुण्यसे जो संपत्ति प्राप्त है वह कितने समय तक ठहरेगी? भगवान् बोले—बारह वर्ष पर्यन्त वासुदेवके पास रहकर फिर नष्ट हो जायगी। इसके सिवा मद्य-पानसे यदुवंशका समूल नाश होगा, द्वारका द्वीपायन मुनिके सम्बन्धसे जलकर खाक हो जायगी, और बलभद्र, तुम्हारी इस छुरी द्वारा जरत्कुमारके हाथोंसे श्रीकृष्णकी मृत्यु होगी। भगवान्‌के द्वारा यदुवंश, द्वारका और वासुदेवका भविष्य सुनकर बलभद्र द्वारका आये। उस समय द्वारकामें जितनी शराब थी, उसे उन्होंने गिरनार पर्वतके जंगलोंमें ढलवा दिया। उधर द्वीपायन अपने सम्बन्धसे द्वारकाका भस्म होना सुन मुनि हो गये और द्वारकाको छोड़कर कहीं अन्यत्र चल दिये। मूर्ख लोग न समझकर कुछ यत्न करें, पर भगवान्‌का कहा कभी झूठा नहीं होता। बलभद्रने शराबको तो फिकवा ही दिया था। अब एक छुरी और उनके पास रह गई थी, जिसके द्वारा भगवान्‌ने श्रीकृष्ण

की मौत होना बतलाई थी। बलभद्रने उसे भी खूब घिस-घिसाकर समुद्रमें फिकवा दिया। कर्मयोगसे उस छुरीको एक मच्छ निगल गया और वही मच्छ फिर एक मल्लाहकी जालमें आ फँसा। उसे मारने पर उसके पेटसे वह छुरी निकली और धीरे धीरे वह जरत्कुमारके हाथ तक भी पहुँच गई। जरत्कुमारने उसका बाणके लिए फला बनाकर उसे अपने बाण पर लगा लिया।

बारह वर्ष हुए नहीं, पर द्वीपायनको अधिक महीनोंका खयाल न रहनेसे बारह वर्ष पूरे हुए समझ वे द्वारकाकी ओर लौट आकर गिरनार पर्वतके पास ही कहीं ठहरे और तपस्या करने लगे। पर तपस्या द्वारा कर्मोंका ऐसा योग कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। एक दिनकी बात है कि द्वीपायन मुनि आतापन योग द्वारा तपस्या कर रहे थे। इसी समय मानों पापकर्मों द्वारा उभारे हुए यादवोंके कुछ लड़के गिरनार पर्वतसे खेल-कूद कर लौट रहे थे। रास्तेमें इन्हें बहुत जोरकी प्यास लगी। यहाँ तक कि ये बेचैन हो गये। इनके लिए घर आना मुश्किल पड़ गया। आते आते इन्हें पानीसे भरा एक गढ़ा देख पड़ा। पर वह पानी नहीं था; किन्तु बलभद्रने जो शराब ढुलवा दी थी वही बहकर इस गढ़ेमें इकट्ठी हो गई थी। इस शराबको ही उन लड़कोंने पानी समझ पी लिया। शराब पीकर थोड़ी देर हुई होगी कि उसने इन पर अपना रंग जमाना शुरू किया। नशेसे ये सुध-बुध भूलकर उन्मत्तकी तरह कूदते-फाँदते आने लगे। रास्तेमें इन्होंने द्वीपायन मुनिको ध्यान करते देखा। मुनिकी रक्षाके लिए बलभद्रने उनके चारों ओर एक पत्थरोंका कोटसा बनवा दिया था। एक ओर उसके आने-जानेका दरवाजा था। इन शैतान लड़कोंने मजाकमें आ उस जगहको पत्थरोंसे पूर

दिया। सच है, शराब पीनेसे सब सुध-बुध भूलकर बड़ी बुरी हालत हो जाती है। यहाँ तक कि उन्मत्त पुरुष अपनी माता बहिनोंके साथ भी बुरी वासनाओंको प्रगट करनेमें नहीं लजाता है। शराब पीने-वाले पापी लोगोंको हित अहितका कुछ ज्ञान नहीं रहता। इन लड़कोंकी शैतानीका हाल जब बलभद्रको मालूम हुआ तो वे वासुदेव को लिये दौड़े दौड़े मुनिके पास आये और उन पत्थरोंको निकाल कर उनसे उन्होंने क्षमाकी प्रार्थना की। इस क्षमा करानेका मुनि पर कुछ असर नहीं हुआ। उनके प्राण निकलनेकी तैयारी कर रहे थे। मुनिने सिर्फ दो उंगुलियाँ उन्हें बतलाई। और थोड़ी ही देर बाद वे मर गये। क्रोधसे मर कर तपस्याके फलसे ये व्यन्तर हुए। इन्होंने कुअवधि द्वारा अपने व्यन्तर होनेका कारण जाना तो इन्हें उन लड़कों के उपद्रवकी सब बातें ज्ञात हो गईं। यह देख व्यन्तरको बड़ा क्रोध आया। उसने उसी समय द्वारकामें आकर आग लगा दी। सारी द्वारका धन-जन सहित देखते देखते खाक हो गई। सिर्फ बलभद्र और वासुदेव ही बच पाये, जिनके लिये कि द्वीपायनने दो उंगलियाँ बतलाई थीं। सच है, क्रोधके वश हो मूर्ख पुरुष सब कुछ कर बैठते हैं। इसलिये भव्यजनोंको शान्ति-लाभके लिए क्रोधको कभी पास भी न फटकने देना चाहिये। उस भयंकर अग्नि लीलाको देखकर बलभद्र और वासुदेवका भी जी ठिकाने न रहा। ये अपना शरीर मात्र लेकर भाग निकले। यहाँ से निकल कर ये एक घोर जंगलमें पहुँचे। सच है, पापका उदय आने पर सब धन-दौलत नष्ट होकर जी बचाना तक मुश्किल पड़ जाता है। जो पलभर पहले सुखी रहा हो वह दूसरे ही पल में पापके उदयसे अत्यन्त दुखी

हो जाता है इसलिए जिन लोगोंके पास बुद्धिरूपी धन है, उन्हें चाहिये कि वे पापके कारणोंको छोड़कर पुण्यके कामोंमें अपने हाथों को बटावें। पात्र-दान, जिन-पूजा, परोपकार, विद्या-प्रचार, शील, व्रत, संयम आदि ये सब पुण्यके कारण हैं। बलभद्र और वासुदेव जैसे ही उस जंगलमें आये, वासुदेवको यहाँ अत्यन्त प्यास लगी। प्यासके मारे वे गश खाकर गिर पड़े। बलभद्र उन्हें ऐसे ही छोड़ कर जल लाने चले गये। इधर जरत्कुमार न जाने कहांसे इधर ही आ निकला। उसने श्रीकृष्णको हरिणके भ्रमसे बाण द्वारा वेध दिया। पर जब उसने आकर देखा कि वह हरिण नहीं, किन्तु श्री कृष्ण हैं तब तो उसके दुःखका कोई पार न रहा। पर अब वह कुछ करने-धरनेको लाचार था। वह बलभद्रके भयसे फिर उसी समय वहांसे भाग लिया। इधर बलभद्र जब पानी लेकर लौटे और उन्होंने श्रीकृष्णकी यह दशा देखी तब उन्हें जो दुःख हुआ वह लिखकर नहीं बताया जा सकता। यहां तक कि वे भ्रातृप्रेमसे सिड़ीसे हो गये और श्रीकृष्णको कन्धों पर उठाये महीनों पर्वतों और जंगलोंमें घूमते फिरे। बलभद्रकी यह हालत देख उनके पूर्व जन्म के मित्र एक देव को बहुत खेद हुआ। उसने आकर इन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया और इनसे भाईका दहन-संस्कार करवाया। संस्कार कर जैसे ही ये निवृत्त हुए, इन्हें संसारकी दशा पर बड़ा वैराग्य हुआ। ये उसी समय सब दुःख, शोक, माया-ममता छोड़कर योगी हो गये। इन्होंने फिर पर्वतों पर खूब दुस्सह तप किया। अन्तमें धर्मध्यान सहित मरण कर ये माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुए। वहां ये प्रति दिन नित नये और मूल्यवान् सुन्दर सुन्दर वस्त्रा-

भूषण पहरते हैं, अनेक देव-देवी इनकी आज्ञामें सदा हाजिर रहते हैं, नाना प्रकारके उत्तमसे उत्तम स्वर्गीय भोगोंको ये भोगते हैं, विमान द्वारा कैलास, सम्मेद-शिखर, हिमालय, गिरनार, आदि पर्वतोंकी यात्रा करते हैं, और विदेह क्षेत्रमें जाकर साक्षाज्जिन-भगवान्‌की पूजा-भक्ति करते हैं। मतलब यह है कि पुण्यके उदयसे उन्हें सब कुछ सुख प्राप्त हैं और वे आनन्द-उत्सवके साथ अपना समय बिताते हैं।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप इन तीन महान रत्नोंसे भूषित हैं, जो जिन भगवान्‌के चरणोंके सच्चे भक्त हैं, चारित्र धारण करनेवालोंमें जो सबसे ऊंचे हैं, जिनकी परम पवित्र बुद्धि गुणरूपी रत्नोंसे शोभाको धारण किये है, और जो ज्ञानके समुद्र हैं, ऐसे बलभद्र मुनिराज मुझे वह सुख, वह शांति और वह मंगल दें, जिससे मन सदा प्रसन्न रहे।

५३—शराब पीनेवालोंकी कथा।

सब सुखोंके देनेवाले सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर शराब पीकर नुकसान उठानेवाले एक ब्राह्मणकी कथा लिखी जाती है। वह इसलिए कि इसे पढ़कर सर्व साधारण लाभ उठावें।

वेद और वेदांगोंका अच्छा विद्वान् एकपात नामका एक संन्यासी एकचक्रपुरसे चलकर गंगानदीकी यात्रार्थ जा रहा था। रास्तेमें जाता हुआ यह दैवयोगसे विन्ध्याटवीमें पहुँच गया। यहाँ जवानीसे मस्त हुए कुछ चाण्डाल लोग दारु पी पीकर एक अपनी

जातिकी स्त्रीके साथ हँसी-मजाक करते हुए नाच-कूद रहे थे, गा रहे थे और अनेक प्रकारकी कुचेष्टाओंमें मस्त हो रहे थे। अभागा संन्यासी इस टोलीके हाथ पड़ गया। इन लोगोंने उसे आगे न जाने देकर कहा—अहा! आप भले आये! आपहीकी हम लोगोंमें कसर थी। आइए, मांस खाइए, दारु पीजिए और जिन्दगीका सुख देनेवाली इस खूबसूरत औरतका मजा लूटिए। महाराजजी, आज हमारे लिए बड़ी खुशी का दिन है और ऐसे समय में जब आप स्वयं यहाँ आ गए तब तो हमारा यह सब करना-धरना सफल हो गया। आप सरीखे महात्माओंका आना सहजमें थोड़े ही होता है? और फिर ऐसे खुशीके समयमें। लीजिए, अब देर न कर हमारी प्रार्थनाको पूरी कीजिए इनकी बातें सुनकर बेचारे संन्यासीके तो होश उड़ गए। वह इन शराबियोंको कैसे समझाए, क्या कहे, और यह कुछ कहे सुने भी तो वे मानने वाले कब? यह बड़े संकट में फँस गया। तब भी उसने इन लोगोंसे कहा—भाइयों! सुनो! एक तो मैं ब्राह्मण उस पर संन्यासी, फिर बतलाओ मैं मांस मदिरा कैसे खा पी सकता हूं? इसलिये तुम मुझे जाने दो। उन चाण्डालों ने कहा—महाराज कुछ भी हो, हम तो आपको बिना कुछ प्रसाद लिये तो जाने नहीं देंगे। आपसे हम यहां तक कह देते हैं कि यदि आप अपनी खुशीसे खायेंगे तो बहुत अच्छा होगा, नहीं तो फिर जिसतरह बनेगा हम आपको खिलाकर ही छोड़ेंगे। बिना हमारा कहना किये आप जीतेजी गंगाजी नहीं देख सकते। अब तो सन्यासीजी घबराये। वे कुछ विचार करने लगे, तभी उन्हें स्मृतियोंके कुछ प्रमाण वाक्य याद आ गए—

"जो मनुष्य तिल या सरसोंके बराबर मांस खाता है वह नरकोंमें तब तक दुःख भोगा करेगा, जब तक कि पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्र रहेंगे। अर्थात् अधिक मांस खाने वाला नहीं। ब्राह्मण लोग यदि चाण्डालीके साथ विषय सेवन करें तो उनकी 'काष्ट-भक्षण' नामके प्रायश्चित द्वारा शुद्धि हो सकती है। जो आंवले, गुड़ आदिसे बनी हुई शराब पीते हैं, वह शराब पीना नहीं कहा जा सकता—आदि।"

इसलिए जैसा ये कहते हैं, उसके करनेमें शास्त्रों, स्मृतियों से तो कोई दोष नहीं आता। ऐसा विचार कर उस मूर्खने शराब पी ली। थोड़ी ही देर बाद उसे नशा चढ़ने लगा। बेचारेको पहले कभी शराब पीनेका काम पड़ा नहीं था इसीलिये उसका रंग इस पर और अधिकता से चढ़ा। शराबके नशेमें चूर होकर यह सब सुध-बुध भूल गया, अपनेपनका इसे कुछ ज्ञान न रहा। लंगोटी आदि फेंक कर यह भी उन लोगोंकी तरह नाचने कूदने लगा जैसे कोई भूत-पिशाचके पंजेमें पड़ा हुआ उन्मत्तकी भांति नाचने कूदने लगता है। सच है, कुसंगति कुल, धर्म, पवित्रता आदि सभीका नाश कर देती है। संन्यासी बड़ी देर तक तो इसी तरह नाचता कूदता रहा पर जब वह थोड़ा थक गया तो उसे जोर की भूख लगी। वहां खानेके लिये मांसके सिवा कुछ भी नहीं था। संन्यासी ने तब मांस ही खा लिया। पेट भरनेके बाद उसे कामने सताया। तब उसने यौवनकी मस्तीसे मत्त उस स्त्रीके साथ अपनी नीच वासना पूरी की। मतलब यह कि एक शराब पीनेसे उसे ये सब नीचकर्म करने पड़े। दूसरे ग्रन्थोंमें भी इस एकपात संन्यासीके सम्बन्धमें लिखा है कि "मूर्ख एकपात संन्यासीने स्मृतियोंके वचनोंको प्रमाण मानकर शराब पी, मांस खाया और चाण्डालिनीके साथ विषय सेवन किया।" इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सहसा किसी प्रमाण पर विश्वास न कर बुद्धिसे काम लें। क्योंकि मीठे पानीमें मिला हुआ विष भी जान लिए बिना नहीं छोड़ता।

देखिये, एकपात् संन्यासी गंगा-गोदावरीका नहानेवाला था, विष्णुका सच्चा भक्त था, वेदों और स्मृतियोंका अच्छा विद्वान् था, पर अज्ञानसे स्मृतियोंके वचनोंको हेतु-शुद्ध मानकर अर्थात् ऐसी शराबके पीनेमें पाप नहीं, चाण्डालिनीका सेवन करने पर भी प्राय-श्चित द्वारा ब्राह्मणोंकी शुद्धि हो सकती है, थोड़ा मांस खानेमें दोष है, न कि ज्यादा खानेमें-इसप्रकार मनकी समझौती करके उसने मांस खाया, शराब पी, और अपने वर्षोंके ब्रह्मचर्यको नष्ट कर वह कामी हुआ। इसलिये बुद्धिवानोंको उन सच्चे शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिए जो पापसे बचाकर कल्याणका रास्ता बतलानेवाले हैं और ऐसे शास्त्र जिनभगवानने ही उपदेश किये हैं।

५४—सगरचक्रवर्त्तीकी कथा।

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर दूसरे चक्रवर्त्ती सगरका चरित लिखा जाता है।

जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध और सुन्दर विदेह क्षेत्रकी पूरब दिशामें सीता नदीके पश्चिमकी ओर वत्सकावती नामका एक देश है। वत्सकावतीकी बहुत पुरानी राजधानी पृथिवीनगरके राजाका नाम

जयसेन था। जयसेनकी रानी जयसेना थी। इसके दो लड़के हुए। इनके नाम थे रतिषेण और धृतिषेण। दोनों भाई बड़े सुन्दर और गुणवान् थे। कालकी कराल गतिसे रतिषेण अचानक मर गया। जयसेनको इसके मरनेका बड़ा दुःख हुआ। और इसी दुःखके मारे वे धृतिषेणको राज्य देकर मारुत और मिथुन नामके राजोंके साथ यशोधर मुनिके पास दीक्षा ले साधु हो गये। बहुत दिनों तक इन्होंने तपस्या की। फिर संन्यास सहित शरीर छोड़ स्वर्गमें ये महाबल नामके देव हुए। इनके साथ दीक्षा लेनेवाला मारुत भी इसी स्वर्गमें मणिकेतु नामक देव हुआ जो कि भगवान्के चरण-कमलोंका भौंरा था—अत्यन्त भक्त था। ये दोनों देव स्वर्गकी सम्पत्ति प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन इन दोनोंने विनोद करते करते धर्म-प्रेमसे एक प्रतिज्ञा की कि जो हम दोनोंमें पहले मनुष्य-जन्म धारण करे तब स्वर्गमें रहनेवाले देवका कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह मनुष्य-लोकमें जाकर उसे समझावे और संसारसे उदासीनता उत्पन्न करा कर जिनदीक्षाके सम्मुख करे।

महाबलकी आयु बाईस सागरकी थी। तब तक उसने खूब मनमाना स्वर्गका सुख भोगा। अन्तमें आयु पूरी कर बचे हुए पुण्य-प्रभावसे वह अयोध्याके राजा समुद्रविजयकी रानी सुबलाके सगर नामका पुत्र हुआ। इसकी उमर सत्तरलाख पूर्व वर्षोंकी थी। इसके सोनेके समान चमकते हुए शरीरकी ऊँचाई साढ़े चारसौ धनुष्य अर्थात् १५७५ हाथोंकी थी। संसारकी सुन्दरताने इसीमें आकर अपना डेरा दिया था—यह बड़ा ही सुन्दर था। जो इसे देखता उसके नेत्र बड़े आनन्दित होते। सगरने राज्य श्री प्राप्त कर छहों

खण्ड पृथ्वी विजय की। अपनी भुजाओंके बल इसने दूसरे चक्रवर्त्ती का मान प्राप्त किया। सगर चक्रवर्त्ती हुआ, पर इसके साथ वह अपना धर्म-कर्म भूल न गया था। इसके साठ हजार पुत्र हुए। इसे कुटुम्ब, धन-दौलत, शरीर सम्पत्ति आदि सभी सुख प्राप्त थे। समय इसका खूब ही सुखके साथ बीतता था। सच है, पुण्यसे जीवों को सभी उत्तम उत्तम सम्पदायें प्राप्त होती हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि वे जिनभगवान्के उपदेश किये पुण्यमार्गका पालन करें।

इसी अवसरमें सिद्धवनमें चतुर्मुख महामुनिको केवलज्ञान हुआ। स्वर्गके देव, विद्याधर और राजे-महाराजे उनकी पूजाके लिए आये। सगर भी भगवान्के दर्शन करनेको आया था। सगरको आया देख मणिकेतुने उससे कहा—क्यों राजराजेश्वर, क्या अच्युत स्वर्गकी बात याद है? जहाँ कि तुमने और मैंने प्रेमके वश हो प्रतिज्ञा की थी कि जो हम दोनोंमेंसे पहले मनुष्य जन्म ले उसे स्वर्गका देव जाकर समझावे और संसारसे उदासीन कर तपस्याके सम्मुख करे। अब तो आपने बहुत समय तक राज्य-सुख भोग लिया। अब तो इसके छोड़नेका यत्न कीजिए। क्या आप नहीं जानते कि ये विषय-भोग दुःखके कारण और संसारमें घुमानेवाले हैं? राजन, आप तो स्वयं बुद्धिमान हैं। आपको मैं क्या अधिक समझा सकता हूँ। मैंने तो सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा-पालनके लिए आपसे इतना निवेदन किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इन क्षण-भंगुर विषयोंसे अपनी लालसाको कम करके जिन भगवान्का परम पवित्र तपोमार्ग ग्रहण करेंगे और बड़ी सावधानीके साथ मुक्ति कामिनीके

साथ ब्याहकी तैयारी करेंगे। मणिकेतुने उसे बहुत कुछ समझाया पर पुत्रमोही सगरको संसारसे नाममात्रके लिए भी उदासीनता न हुई। मणिकेतुने जब देखा कि अभी यह पुत्र, स्त्री, धन-दौलत के मोहमें खूब फँस रहा है। अभी इसे संसारसे—विषयभोगोंसे उदासीन बना देना कठिन ही नहीं किन्तु एक प्रकार असंभवको संभव करनेका यत्न है। अस्तु, फिर देखा जायगा। यह विचार कर मणिकेतु अपने स्थान चला गया। सच है, काललब्धिके बिना कल्याण हो भी तो नहीं सकता।

कुछ समय के बाद मणिकेतुके मनमें फिर एक बार तरंग उठी कि अब किसी दूसरे प्रयत्न द्वारा सगरको तपस्याके सम्मुख करना चाहिए। तब वह चारण मुनिका वेष लेकर, जो कि स्वर्ग-मोक्षके सुखका देनेवाला है, सगरके जिन मन्दिरमें आया और भगवान्का दर्शन कर वहीं ठहर गया। उसकी नई उमर और सुन्दरता को देखकर सगरको बड़ा अचंभा हुआ। उसने मुनिरूप धारण करने वाले देवसे पूछा, मुनिराज, आपकी इस नई उमरने, जिसने कि संसारका अभी कुछ सुख नहीं देखा, ऐसे कठिन योगको किस लिए धारण किया? मुझे तो आपको योगी हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है। तब देवने कहा—राजन्, तुम कहते हो, वह ठीक है। पर मेरा विश्वास है कि संसारमें सुख है ही नहीं। जिधर मैं आँखें खोलकर देखता हूँ मुझे दुःख या अशान्ति ही देख पड़ती है। यह जवानी बिजलीकी तरह चमककर पलभरमें नाश होनेवाली है। यह शरीर, जिसे कि तुम भोगोंमें लगानेको कहते हो, महा अपवित्र है। ये विषय-भोग, जिन्हें तुम सुखरूप समझते हो, सर्पके

समान भयंकर हैं, और यह संसाररूपी समुद्र अथाह है, नाना तरह के दुःखरूपी भयंकर जलजीवोंसे भरा हुआ है और मोह जालमें फँसे हुए जीवोंके लिए अत्यन्त दुस्तर है। तब जो पुण्यसे यह मनुष्य देह मिला है, इसे इस अथाह समुद्रमें बहने देना या जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा बतलाये इस अथाह समुद्रके पार होनेके साधन तपरूपी जहाज द्वारा उसके पार पहुँचा देना। मैं तो इसके लिये यही उचित समझता हूँ कि, जब संसार असार है और उसमें सुख नहीं है, तब संसारसे पार होनेका उपाय करना ही कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्य-देहके प्राप्त करनेका फल है। मैं तो तुम्हें भी यही सलाह दूँगा कि तुम इस नाशवान् माया-ममताको छोड़ छाड़कर कभी नाश न होनेवाली लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये यत्न करो। मणिकेतुने इसके सिवा और भी बहुत कहने सुनने या समझानेमें कोई कसर न की। पर सगर सब कुछ जानता हुआ भी पुत्र-प्रेमके वश हो संसारको न छोड़ सका। मणिकेतुको इससे बड़ा दुःख हुआ कि सगरकी दृष्टिमें अभी संसार की तुच्छता नजर न आई और वह उलटा उसीमें फँसता जाता है। लाचार हो वह स्वर्ग चला गया।

एक दिन सगर राज सभामें सिंहासन पर बैठे हुए थे। इतनेमें उनके पुत्रोंने आकर उनसे सविनय प्रार्थना की—पूज्यपाद पिताजी, उन वीर क्षत्रिय-पुत्रोंका जन्म किसी कामका नहीं—व्यर्थ है, जो कुछ काम न कर पड़े पड़े खाते-पीते और ऐशोआराम उड़ाया करते हैं। इसलिये आप कृपाकर हमें कोई काम बतलाइए। फिर वह कितना ही कठिन या एक बार वह असाध्य ही क्यों न हो, उसे हम करेंगे। सगरने उन्हें जवाब दिया—पुत्रों, तुमने कहा वह ठीक

है और तुमसे वीरोंको यही उचित भी है। पर अभी मुझे कोई कठिन या सीधा ऐसा काम नहीं देख पड़ता जिसके लिए मैं तुम्हें कष्ट दूं। और न छहों खण्ड पृथ्वी में मेरे लिये कुछ असाध्य ही है। इसलिये मेरी तो तुमसे यही आज्ञा है कि पुण्यसे जो यह धन-सम्पत्ति प्राप्त है, इसे तुम भोगो। इस दिन तो ये सब लड़के पिताकी बातका कुछ जबाब न देकर चुपचाप इसलिये चले गये कि पिताकी आज्ञा तोड़ना ठीक नहीं। परन्तु इनका मन इससे रहा अप्रसन्न ही।

कुछ दिन बीतने पर एक दिन ये सब फिर सगरके पास गये और उन्हें नमस्कार कर बोले—पिताजी, आपने जो आज्ञा की थी, उसे हमने इतने दिनों उठाई, पर अब हम अत्यन्त लाचार हैं। हमारा मन यहाँ बिलकुल नहीं लगता। इसलिये आप अवश्य कुछ काममें हमें लगाइये। नहीं तो हमें भोजन न करनेको भी बाध्य होना पड़ेगा। सगरने जब इनका अत्यन्त ही आग्रह देखा तो उसने इनसे कहा—मेरा इच्छा नहीं कि तुम किसी कष्टके उठानेको तैयार हो। पर जब तुम किसी तरह माननेके लिये तैयार ही नहीं हो, तो अस्तु, मैं तुम्हें यह काम बताता हूँ कि श्रीमान् भरत सम्राटने कैलास पर्वत पर चौबीस तीर्थंकरोंके चौबीस मन्दिर बनवाये हैं। वे सब सोनेके हैं। उनमें बे-शुमार धन खर्च किया गया है। उनमें जो अर्हन्त भगवान्‌की पवित्र प्रतिमाएँ हैं वे रत्नमयी हैं। उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है। इसलिए तुम जाओ और कैलासके चारों ओर एक गहरी खाई खोदकर उसे गंगाका प्रवाह लाकर भरदो। जिससे कि फिर दुष्ट लोग मन्दिरोंको कुछ हानि न

पहुँचा सकें। सगरके सब ही पुत्र पिताजीकी इस आज्ञासे बहुत खुश हुए। वे उन्हें नमस्कार कर आनन्द और उत्साहके साथ अपने कामके लिए चल पड़े। कैलास पर पहुँच कर कई वर्षोंके कठिन परिश्रम द्वारा उन्होंने चक्रवर्तीके दण्डरत्नकी सहायतासे अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करली।

अच्छा, अब उस मणिकेतुकी बात सुनिए—उसने सगरको संसार से उदासीन कर योगी बनानेके लिये दोबार यत्न किया, पर दोनों ही बार उसे निराश हो जाना पड़ा। अबकी बार उसने एक बड़ा ही भयंकर काण्ड रचा। जिस समय सगरके ये साठ हजार लड़के खाई खोदकर गंगाका प्रवाह लानेको हिमवान पर्वत पर गये और इन्होंने दण्ड-रत्न द्वारा पर्वत फोड़नेके लिए उस पर एक चोट मारी उस समय मणिकेतुने एक बड़े भारी और महाविषधर सर्पका रूप धर, जिसकी कि फुंकार मात्रसे कोसोंके जीव-जन्तु भस्म हो सकते थे, अपनी विषैली हवा छोड़ी। उससे देखते देखते वे सब ही जलकर खाक हो गये। सच है, अच्छे पुरुष दूसरेका हित करनेके लिये कभी कभी तो उसका अहित कर उसे हितकी ओर लगाते हैं। मंत्रियोंको इनके मरनेकी बात मालूम हो गई। पर उन्होंने राजासे इसलिए नहीं कहा कि वे ऐसे महान् दुःखको न सह सकेंगे। तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप लेकर सगरके पास पहुंचा और बड़े दुःख के साथ रोता रोता बोला—राजाधिराज, आप सरीखे न्यायी और प्रजाप्रिय राजाके रहते मुझे अनाथ हो जाना पड़े, मेरी आँखोंके एक मात्र तारेको पापी लोग जबरदस्ती मुझसे छुड़ा ले जायँ, मेरी सब आशाओं पर पानी फेर कर मुझे द्वार द्वारका भिखारी बना जायँ

और मुझे रोता छोड़ जायँ तो इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी ! प्रभो, मुझे आज पापियोंने बे-मौत मार डाला है। मेरी आप रक्षा कीजिये-अशरण-शरण, मुझे बचाइये ! सगरने उसे इसप्रकार दुःखी देखकर धीरज दिया और कहा—ब्राह्मण देव, घबराइये मत वास्तवमें बात क्या है उसे कहिए। मैं तुम्हारे दुःख दूर करनेका यत्न करूँगा। ब्राह्मणने कहा—महाराज क्या कहूँ ? कहते छाती फटी जाती है, मुंहसे शब्द नहीं निकलता। यह कहकर वह फिर रोने लगा। चक्रवर्त्तीको इससे बड़ा दुःख हुआ। उसके अत्यन्त आग्रह करने पर मणिकेतु बोला—अच्छा तो महाराज, मेरी दुःख कथा सुनिए—मेरे एक मात्र लड़का था। मेरी सब आशा उसी पर थी। वही मुझे खिलाता-पिलाता था। पर मेरे भाग्य आज फूट गये। उसे एक काल नामका लुटेरा मेरे हाथोंसे जबरदस्ती छीन भागा। मैं बहुत रोया व कलपा, दयाकी मैंने उससे भीख मांगी, बहुत आजू-मिन्नत की, पर उस पापी चाण्डालने मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखा। राजराजेश्वर, आपसे, मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप मेरे पुत्रको उस पापीसे छुड़ा ला दीजिए। नहीं तो मेरी जान न बचेगी। सगरको काल-लुटेरेका नाम सुनकर कुछ हँसी आ गई। उसने कहा—महाराज, आप बड़े भोले हैं। भला, जिसे काल ले जाता है—जो मर जाता है—वह फिर कभी जीता हुआ है क्या ? ब्राह्मण देव, काल किसीसे नहीं रुक सकता। वह तो अपना काम किये ही चला जाता है। फिर चाहे कोई बूढ़ा हो, या जवान हो, या बालक, सबके प्रति उसके समान भाव हैं। आप तो अभी अपने लड़केके लिए रोते हैं, पर मैं कहता हूँ कि वह तुम पर भी बहुत जल्दी सवारी करने वाला है।

इसलिए यदि आप यह चाहते हों कि मैं उससे रक्षा पा सकूँ, तो इसके लिये यह उपाय कीजिए कि आप दीक्षा लेकर मुनि हो जाँय और अपना आत्महित करें। इसके सिवा काल पर विजय पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। सब कुछ सुन-सुनाकर ब्राह्मणने कुछ लाचारी बतलाते हुए कहा कि यदि यह बात सच है और वास्तवमें कालसे कोई मनुष्य विजय नहीं पा सकता तो लाचारी है। अस्तु, हाँ एक बात तो राजाधिराज, मैं आपसे कहना ही भूल गया और वह बड़ी ही जरूरी बात थी। महाराज, इस भूलकी मुझ गरीब पर क्षमा कीजिए। बात यह है कि मैं रास्तेमें आता आता सुनता आ रहा हूँ, लोग परस्परमें बातें करते हैं कि हाय ! बड़ा बुरा हुआ जो अपने महाराजके लड़के कैलास पर्वतकी रक्षाके लिए खाई खोदने को गये थे, वे सबके सब ही एक साथ मर गये ! ब्राह्मणका कहना पूरा भी न हुआ कि सगर एक दम गश खाकर गिर पड़े। सच है, ऐसे भयंकर दुःख-समाचारसे किसे गश न आ जायगा—कौन मूर्छित न होगा। उसी समय उपचारों द्वारा सगर होशमें लाये गये। इसके बाद मौका पाकर मणिकेतुने उन्हें संसारकी दशा बतलाकर खूब उपदेश किया। अबकी बार वह सफल प्रयत्न हो गया। सगरको संसारकी इस क्षण-भंगुर दशा पर बड़ा ही वैराग्य हुआ ! उन्होंने भगीरथको राज देकर और सब माया-ममता छुड़ाकर दृढ़धर्म केवली द्वारा दीक्षा ग्रहण करली, जो कि संसारका भटकना मिटाने वाली है।

सगरको दीक्षा लिए बाद ही मणिकेतु कैलास पर्वत पर पहुंचा और उन लड़कोंको माया-मौतसे सचेत कर बोला—सगर

सुतों, जब आपकी मृत्युका हाल आपके पिताने सुना तो उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। और इसी दुःखके मारे वे संसारकी विनाशीक लक्ष्मीको छोड़-छाड़कर साधु हो गये। मैं आपके कुलका ब्राह्मण हूँ। महाराजके दीक्षा लेजानेकी खबर पाकर आपको ढूँढनेको निकला था। अच्छा हुआ जो आप मुझे मिल गये। अब आप राजधानीमें जल्दी चलें। ब्राह्मणरूपधारी मणिकेतु द्वारा पिताका अपने लिए दीक्षित हो जाना सुनकर सगरसुतोंने कहा महाराज, आप जायें। हम लोग अब घर नहीं जाँयगे। जिस लिए पिताजी सब राज्य-पाश छोड़कर साधु हो गये तब हम किस मुँहसे उस राजको भोग सकते हैं? हमसे इतनी कृतघ्नता न होगी, जो पिताजीके प्रेमका बदला हम ऐसा आराम भोगकर दें। जिस मार्गको हमारे पूज्य पिताजीने उत्तम समझकर ग्रहण किया है वही हमारे लिए भी शरण है। इस लिए कृपाकर आप हमारे इस समाचारको भैया भगीरथसे जाकर कह दीजिए कि वह हमारे लिए कोई चिन्ता न करें। ब्राह्मणसे इस प्रकार कहकर वे सब भाई दृढ़धर्म भगवान्‌के समवशरणमें आये और पिताकी तरह दीक्षा लेकर साधु बन गये।

भगीरथको भाइयोंका हाल सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ। उसकी इच्छा भी योग ले लेनेकी हुई, पर राज्य-प्रबन्ध उसी पर निर्भर रहनेसे वह दीक्षा न ले सका। परन्तु उसने उन मुनियों द्वारा जिनधर्मका उपदेश सुनकर श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये। मणिकेतुका सब काम जब अच्छी तरह सफल हो गया तब वह प्रगट हुआ और उन सब मुनियोंको नमस्कार कर बोला—भगवन्

आपका मैंने बड़ा भारी अपराध जरूर किया है। पर आप जैनधर्मके तत्त्वको यथार्थ जाननेवाले हैं। इस लिए सेवक पर क्षमा करें। इसके बाद मणिकेतुने आदिसे इति पर्यन्त सबकी सब घटना कह सुनाई। मणिकेतुके द्वारा सब हाल सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उससे बोले—देवराज, इसमें तुम्हारा अपराध क्या हुआ, जिसके लिए क्षमा की जाय? तुमने तो उलटा हमारा उपकार किया है। इसलिए हमें तुम्हारा कृतज्ञ होना चाहिए। मित्रपनेके नातेसे तुमने जो कार्य किया है वैसा करनेके लिए तुम्हारे बिना और समर्थ ही कौन था? इस लिए देवराज, तुम ही सच्चे धर्म-प्रेमी हो, जिन भगवान्‌के भक्त हो, और मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्तिके कारण हो। सगर-सुतोंका इस प्रकार सन्तोष-जनक उत्तर पा मणिकेतु बहुत प्रसन्न हुआ। वह फिर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। यह मुनिसंघ विहार करता हुआ सम्मेदशिखर पर आया और यहीं कठिन तपस्या कर शुक्लध्यानके प्रभावसे इसने निर्वाण लाभ किया।

उधर भगीरथने जब अपने भाइयोंका मोक्ष प्राप्त करना सुना तो उसे भी संसारसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह फिर अपने वरदत्त पुत्रको राज्य सौंप आप कैलास पर शिवगुप्त मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण कर मुनि हो गया। भगीरथने मुनि होकर गंगाके सुन्दर किनारों पर कभी प्रतिमा-योगसे, कभी आतापन योगसे और कभी और किसी आसनसे खूब तपस्या की। देवता लोग उसकी तपस्यासे बहुत खुश हुए। और इसी लिए उन्होंने भक्तिके वश हो भगीरथके चरणोंका क्षीर-समुद्रके जलसे अभिषेक किया, जो कि

अनेक प्रकारके सुखोंका देनेवाला है। उस अभिषेकके जलका प्रवाह बहता हुआ गंगामें गया। तभीसे गंगा तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हुई और लोग उसके स्नानको पुण्यका कारण समझने लगे। भगीरथने फिर कहीं अन्यत्र विहार न किया। वह वहीं तपस्या करता रहा और अन्तमें कर्मोंका नाशकर उसने जन्म, जरा मरणादि रहित मोक्षका सुख भी यहींसे प्राप्त किया।

केवलज्ञानरूपी नेत्र द्वारा संसारके पदार्थोंको जानने और देखनेवाले, देवों द्वारा पूजा किये गये और मुक्तिरूप रमणीरत्नके स्वामी श्रीसगरमुनि तथा जैनतत्वके परम विद्वान् वे सगरसुत मुनिराज मुझे वह लक्ष्मी दें, जो कभी नाश होनेवाली नहीं है और सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है।

५५–मृगध्वजकी कथा।

सारे संसार द्वारा भक्ति सहित पूजा किये गये जिन भगवान्को नमस्कार कर प्राचीनाचार्योंके कहे अनुसार मृगध्वज राजकुमारकी कथा लिखी जाती है।

सीमन्धर अयोध्याके राजा थे। उनकी रानीका नाम जिनसेना था। इनके एक मृगध्वज नामका पुत्र था। यह मांसका बड़ा लोलुपी था। इसे बिना मांस खाये एक दिन भी चैन न पड़ता था। यहाँ एक राजकीय भैंसा था। वह बुलानेसे पास चला आता, लौट जानेको कहनेसे चला जाता और लोगोंके पाँवोंमें लोटने लगता। एक दिन यह भैंसा एक तालाबमें क्रीड़ा कर रहा था। इतने

में राजकुमार मृगध्वज, मंत्री और सेठके लड़कोंको साथ लिए यहाँ आया। इस भैंसेके पाँवोंको देखकर मृगध्वजके मनमें न जाने क्या धुन समाई सो इसने अपने नौकरसे कहा—देखो, आज इस भैंसेका पिछला पाँव काट कर इसका मांस खानेको पकाना। इतना कहकर मृगध्वज चल दिया। नौकर उसके कहे अनुसार भैंसेका पाँव काटकर ले गया। उसका मांस पका। उसे खाकर राजकुमार और उसके साथी बड़े प्रसन्न हुए।

इधर बेचारा भैंसा बड़े दुःखके साथ लँगड़ाता हुआ राजाके सामने जाकर गिर पड़ा। राजाने देखा कि उसकी मौत आ लगी है। इस लिए उस समय उसने विशेष पूछ-पाछ न कर, कि किसने उसकी ऐसी दशा की है, दयाबुद्धिसे उसे संन्यास देकर नमस्कार मंत्र सुनाया। सच है, संसारमें बहुतसे ऐसे भी गुणवान् परोपकारी हैं, जो चन्द्रमा, सूर्य, कल्पवृक्ष, पानी—आदि उपकारक वस्तुओंसे भी कहीं बढ़कर हैं। भैंसा मरकर नमस्कार मंत्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ। सच है, जिनेन्द्रभगवान्का उपदेश किया पवित्र धर्म जीवोंका वास्तवमें हित करनेवाला है।

इसके बाद राजाने इस बातका पता लगाया कि भैंसेकी यह दशा किसने की! उन्हें जब यह नीच काम अपने और मंत्री तथा सेठके पुत्रोंका जान पड़ा तब तो उनके गुस्सेका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने उसी समय तीनोंको मरवा डालनेके लिए मंत्रीको आज्ञा की। इस राजाज्ञाकी खबर उन तीनोंको भी लग गई। तब उन्होंने झटपट मुनिदत्त मुनिके पास जाकर उनसे जिन दीक्षा लेली। इनमें मृगध्वज महामुनि बड़े तपस्वी हुए। उन्होंने कठिन तपस्या

कर ध्यानाग्नि द्वारा घातिया कर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर संसार द्वारा वे पूज्य हुए। सच है, जिनधर्मका प्रभाव ही कुछ ऐसा अचिन्त्य है जो महापापीसे पापी भी उसे धारण कर त्रिलोक-पूज्य हो जाता है। और ठीक भी है, धर्मसे और उत्तम है ही क्या?

वे मृगध्वज मुनि मुझे और आप भव्य-जनोंको महा मंगलमय मोक्ष-लक्ष्मी दें, जो भव्य-जनोंका उद्धार करनेवाले हैं, केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्रके धारक हैं, देवों, विद्याधरों और बड़े बड़े राजों-महाराजोंसे पूज्य हैं, संसारका हित करनेवाले हैं, बड़े धीर हैं, और अनेक प्रकारका उत्तम से उत्तम सुख देनेवाले हैं।

५६—परशुरामकी कथा।

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार कर परशुरामका चरित्र लिखा जाता है। जिसे सुनकर आश्चर्य होता है।

अयोध्याका राजा कार्तवीर्य अत्यन्त मूर्ख था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। अयोध्याके जंगलमें यमदग्नि नामके एक तपस्वीका आश्रम था। इस तपस्वीकी स्त्रीका नाम रेणुका था। इसके दो लड़के थे। इसमें एकका नाम श्वेतराम था और दूसरेका महेन्द्रराम। एक दिनकी बात है कि रेणुकाके भाई वरदत्त मुनि उस ओर आ निकले। वे एक वृक्षके नीचे ठहरे। उन्हें देखकर

रेणुका बड़े प्रेमसे उनसे मिलनेको आई और उनके हाथ जोड़कर वहीं बैठ गई। बुद्धिमान वरदत्त मुनिने उससे कहा—बहिन, मैं तुझे कुछ धर्मका उपदेश सुनाता हूँ। तू उसे जरा सावधानीसे सुन। देख, सब जीव सुखको चाहते हैं, पर सच्चे सुखके प्राप्त करनेकी कोई बिरला ही खोज करता है। और इसी लिए प्रायः लोग दुखी देखे जाते हैं। सच्चे सुखका कारण पवित्र सम्यग्दर्शनका ग्रहण करना है। जो पुरुष सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं, वे दुर्गतियोंमें फिर नहीं भटकते। संसारका भ्रमण भी उनका कम हो जाता है। उनमें कितने तो उसी भवसे मोक्ष चले जाते हैं। सम्यक्त्वका साधारण स्वरूप यह है कि सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र पर विश्वास लाना। सच्चे देव वे हैं, जो भूख और प्यास, राग और द्वेष, क्रोध और लोभ, मान और माया—आदि अठारह दोषोंसे रहित हों, जिनका ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा हो कि उससे संसारका कोई पदार्थ अजाना न रह गया हो, जिन्हें स्वर्गके देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती और बड़े बड़े राजे-महाराजे भी पूजते हों, और जिनका उपदेश किया पवित्र धर्म इस लोकमें और परलोकमें भी सुखका देनेवाला हो तथा जिस पवित्र धर्मकी इन्द्रादि देव भी पूजा-भक्ति कर अपना जीवन कृतार्थ समझते हों। धर्मका स्वरूप उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव—आदि दश लक्षणों द्वारा प्रायः प्रसिद्ध है। और सच्चे गुरु वे कहलाते हैं, जो शील और संयमके पालनेवाले हों, ज्ञान और ध्यानका साधन ही जिनके जीवनका खास उद्देश्य हो और जिनके पास परिग्रह रत्तीभर भी न हो। इन बातों पर विश्वास करनेको सम्यक्त्व कहते हैं। इसके सिवा

गृहस्थोंके लिए पात्र-दान करना, भगवान्‌की पूजा करना, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत धारण करना, पर्वोंमें उपवास वगैरह करना—आदि बातें भी आवश्यक हैं। यह गृहस्थ-धर्म कहलाता है। तू इसे धारण कर। इससे तुझे सुख प्राप्त होगा। भाईके द्वारा धर्मका उपदेश सुन रेणुका बहुत प्रसन्न हुई। उसने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सम्यक्त्व-रत्न द्वारा अपने आत्माको विभूषित किया। और सच भी है, यही सम्यक्त्व तो भव्यजनोंका भूषण है। रेणुका का धर्म-प्रेम देखकर वरदत्त मुनिने उसे एक 'परशु' और दूसरी 'कामधेनु' ऐसी दो महाविद्याएँ दीं, जो कि नाना प्रकारका सुख देनेवाली हैं। रेणुकाको विद्या देकर जैनतत्वके परम विद्वान् वरदत्तमुनि विहार कर गये। इधर सम्यक्त्वशालिनी रेणुका घर आकर सुखसे रहने लगी। रेणुकाको धर्म पर अब खूब प्रेम हो गया। वह भगवान्‌की बड़ी भक्त हो गई।

एक दिन राजा कार्त्तवीर्य हाथी पकड़नेको इसी वनकी ओर आ निकला। घूमता हुआ वह रेणुकाके आश्रममें आ गया। यमदग्नि तापसने उसका अच्छा आदर-सत्कार किया और उसे अपने यहीं जिमाया भी। भोजन कामधेनु नामकी विद्याकी सहायतासे बहुत उत्तम तैयार किया गया था। राजा भोजन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। और क्यों न होता? क्योंकि सारी जिन्दगीमें उसे कभी ऐसा भोजन खानेको ही न मिला था। उस कामधेनुको देखकर इस पापी राजाके मनमें पाप आया। यह कृतघ्न तब उस बेचारे तापसीको जानसे मारकर गौको ले गया। सच है, दुर्जनोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो उनका उपकार करते हैं, वे दूध पिलाये

सर्प की तरह अपने उन उपकारककी ही जानके लेनेवाले हो उठते हैं।

राजाके जानेके थोड़ी देर बाद ही रेणुकाके दोनों लड़के जंगलसे लकड़ियाँ वगैरह लेकर आ गये। माताको रोती हुई देखकर उन्होंने उसका कारण पूछा। रेणुकाने सब हाल उनसे कह दिया। माताकी दुःखभरी बातें सुनकर श्वेतरामके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। वह कार्त्तवीर्यसे अपने पिताका बदला लेनेके लिए उसी समय मातासे 'परशु' नामकी विद्याको लेकर अपने छोटे भाईको साथ लिए चल पड़ा। राजाके नगरमें पहुँच कर उसने कार्त्तवीर्यको युद्धके लिए ललकारा। यद्यपि एक ओर कार्त्तवीर्यकी प्रचण्डसेना थी और दूसरी ओर सिर्फ ये दो ही भाई थे; पर तब भी परशु-विद्याके प्रभावसे इन दोनों भाइयोंने ही कार्त्तवीर्यकी सारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया और अन्तमें कार्तवीर्यको मारकर अपने पिताका बदला लिया। मरकर पापके फलसे कार्त्तवीर्य नरक गया। सो ठीक ही है, पापियोंकी ऐसी गति होती ही है। उस तृष्णाको धिक्कार है जिसके वश हो लोग न्याय अन्यायको कुछ नहीं देखते और फिर अनेक कष्टोंको सहते हैं। ऐसे ही अन्यायों द्वारा तो पहले भी अनेक राजों-महाराजोंका नाश हुआ। और ठीक भी है जिस वायुसे बड़े बड़े हाथी तक उड़ जाते हैं तब उसके सामने बेचारे कीट-पतंगादि छोटे छोटे जीव तो ठहर ही कैसे सकते हैं। श्वेतरामने कार्त्तवीर्यको परशु विद्यासे मारा था, इस लिए फिर अयोध्यामें वह 'परशुराम' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ।

संसारमें जो शूरवीर, विद्वान्, सुखी, धनी हुए देखे जाते हैं

वह पुण्यकी महिमा है। इस लिए जो सुखी, विद्वान्, धनवान्, वीर—आदि बनना चाहते हैं, उन्हें जिनभगवान्का उपदेश किया पुण्य-मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

५७—सुकुमाल मुनिकी कथा।

जिनके नाम मात्रहीका ध्यान करनेसे हर प्रकारकी धन-सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है, उन परम पवित्र जिनभगवानको नमस्कार कर सुकुमाल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

अतिबल कौशाम्बीके जब राजा थे, तबहीका यह आख्यान है। यहाँ एक सोमशर्मा पुरोहित रहता था। इसकी स्त्रीका नाम काश्यपी था। इसके अग्निभूत और वायुभूति नामक दो लड़के हुए। मा-बापके अधिक लाड़ले होनेसे ये कुछ पढ़-लिख न सके। और सच है पुण्यके बिना किसीको विद्या आती भी तो नहीं। कालकी विचित्र गतिसे सोमशर्माकी असमयमें ही मौत हो गई। ये दोनों भाई तब निरे मूर्ख थे। इन्हें मूर्ख देकर अतिबलने इनके पिताका पुरोहित पद, जो इन्हें मिलता, किसी औरको दे दिया। यह ठीक है कि मूर्खोंका कहीं आदर-सत्कार नहीं होता। अपना अपमान हुआ देखकर इन दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ। तब इनकी कुछ अकल ठिकाने आई। अब इन्हें कुछ लिखने पढ़नेकी सूझी। ये राजगृहमें अपने काका सूर्यमित्रके पास गये और अपना सब हाल इन्होंने उनसे कहा। इनकी पढ़नेकी इच्छा देखकर सूर्यमित्रने स्वयं इन्हें पढ़ाना शुरू किया और कुछ ही वर्षोंमें इन्हें अच्छा विद्वान बना

दिया। दोनों भाई जब अच्छे विद्वान हो गये तब ये पीछे अपने शहर लौट आये। आकर इन्होंने अतिबलको अपनी विद्याका परिचय कराया। अतिबल इन्हें विद्वान् देखकर बहुत खुश हुआ और इनके पिताका पुरोहित-पद उसने पीछा इन्हें ही दे दिया। सच है सरस्वती की कृपासे संसारमें क्या नहीं होता!

एक दिन सन्ध्याके समय सूर्यमित्र सूर्यको अर्घ चढ़ा रहा था। उसकी अंगुलीमें राजकीय एक रत्नजड़ी बहुमूल्य अंगूठी थी। अर्घ चढ़ाते समय वह अँगूठी अंगुलीमेंसे निकलकर महलके नीचे तालाबमें जा गिरी। भाग्यसे वह एक खिले हुए कमलमें पड़ी। सूर्य अस्त होने पर कमल मुँद गया। अंगूठी कमलके अन्दर बन्द हो गई जब वह पूजा पाठ करके उठा और उसकी नजर उंगली पर पड़ी तब उसे मालूम हुआ कि अंगूठी कहीं पर गिर पड़ी। अब तो उसके डरका कुछ ठिकाना न रहा। राजा जब अंगूठी माँगेगा तब उसे क्या जवाब दूंगा, इसकी उसे बड़ी चिन्ता होने लगी। अंगूठीकी शोधके लिए इसने बहुत कुछ यत्न किया, पर इसे उसका कुछ पता न चला। तब किसीके कहनेसे यह अवधिज्ञानी सुधर्म मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर इसने उनसे अंगूठीके बाबत पूछा कि प्रभो, क्या कृपा कर मुझे आप यह बतलावेंगे कि मेरी अँगूठी कहाँ चली गई और हे करुणाके समुद्र, वह कैसे प्राप्त होगी? मुनिने उत्तरमें यह कहा कि सूर्यको अर्घ देते समय तालाबमें एक खिले हुए कमलमें अंगूठी गिर पड़ी है। वह सबेरे मिल जायेगी। वही हुआ। सूर्योदय होते ही जैसे कमल खिला सूर्यमित्रको उसमें अंगूठी मिली। सूर्यमित्र बड़ा खुश हुआ। उसे इस बातका बड़ा अचंभा होने लगा कि मुनिने यह बात

कैसे बतलाई ? हो न हो, उनसे अपनेको भी यह विद्या सीखनी चाहिये। यह विचार कर सूर्यमित्र, मुनिराजके पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने प्रार्थना की कि हे योगिराज, मुझे भी आप अपनी विद्या सिखा दीजिये, जिससे मैं भी दूसरेके ऐसे प्रश्नोंका उत्तर दे सकूं। आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी, यदि आप मुझे अपनी यह विद्या पढ़ा देंगे। तब मुनिराजने कहा—भाई, मुझे इस विद्याके सिखानेमें कोई इंकार नहीं है। पर बात यह है कि बिना जिन-दीक्षा लिये यह विद्या आ नहीं सकती। सूर्यमित्र तब केवल विद्याके लोभसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर इसने गुरुसे विद्या सिखानेको कहा। सुधर्म मुनिराजने तब सूर्यमित्रको मुनियोंके आचार-विचारके शास्त्र तथा सिद्धान्त-शास्त्र पढ़ाये। अब तो एकदम सूर्यमित्रकी आंखें खुल गईं। यह गुरुके उपदेश रूपी दियेके द्वारा अपने हृदयके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर जैनधर्मका अच्छा विद्वान हो गया। सच है, जिन भव्य पुरुषोंने सच्चे मार्गको बतलानेवाले और संसारके अकारण बन्धु गुरुओंकी भक्ति सहित सेवा-पूजा की है, उनके सब काम नियमसे सिद्ध हुए हैं।

जब सूर्यमित्र मुनि अपने मुनिधर्ममें खूब कुशल हो गये तब वे गुरुकी आज्ञा लेकर अकेले ही विहार करने लगे। एक बार वे विहार करते हुए कौशाम्बीमें आये। अग्निभूतिने इन्हें भक्तिपूर्वक दान दिया। उसने अपने छोटे भाई वायुभूतिसे बहुत प्रेरणा और आग्रह इसलिये किया कि वह सूर्यमित्र मुनिकी वन्दना करे—उसे जैनधर्मसे कुछ प्रेम हो। कारण वह जैनधर्मसे सदा विरुद्ध रहता था। पर अग्निभूतिके इस आग्रहका परिणाम उलटा हुआ। वायुभूतिने

और खिसियाकर मुनिकी अधिक निन्दा की और उन्हें बुरा भला कहा। सच है, जिन्हें दुर्गतियोंमें जाना होता है प्रेरणा करने पर भी ऐसे पुरुषोंका श्रेष्ठ धर्मकी ओर झुकाव नहीं होता, किन्तु वह उलटा पाप कीचड़में अधिक अधिक फँसता है। अग्निभूतिको अपने भाई की ऐसी दुर्बुद्धि पर बड़ा दुःख हुआ। और यही कारण था कि जब मुनिराज आहारकर वनमें गये तब अग्निभूति भी उनके साथ साथ चला गया। और वहाँ धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य होजानेसे दीक्षा लेकर वह भी तपस्वी हो गया। अपना और दूसरोंका हित करना अबसे अग्निभूतिके जीवनका उद्देश्य हुआ।

अग्निभूतिके मुनि हो जानेकी बात जब इसकी स्त्री सती सोमदत्ताको ज्ञात हुई तो उसे अत्यन्त दुःख हुआ। उसने वायुभूतिसे जाकर कहा—देखो, तुमने मुनिको वन्दना न कर उनकी बुराई की सुनती हूँ उससे दुखी होकर तुम्हारे भाई भी मुनि हो गये। यदि वे अब तक मुनि न हुए हों तो चलो उन्हें तुम हम समझा लावें। वायुभूतिने गुस्सा होकर कहा—हाँ तुम्हें गर्ज हो तो तुम भी उस बदमाश नंगेके पास जाओ। मुझे तो कुछ गर्ज नहीं है। यह कहकर वायुभूति अपनी भौजीके एक लात मारकर चलता बना। सोमदत्ताको उसके मर्म भेदी वचनोंको सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसे क्रोध भी अत्यन्त आया। पर अबला होनेसे वह उस समय कर कुछ नहीं सकी। तब उसने निदान किया कि पापी, तूने जो इस समय मेरा मर्म भेदा है और मुझे लातोंसे ठुकराया है, और इसका बदला स्त्री होनेसे मैं इस समय न भी ले सकी तो कुछ चिन्ता नहीं, पर याद रख इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें सही, पर बदला लूंगी

अवश्य । और तेरे इसी पाँवको, जिससे कि तूने मुझे लात मारी है और मेरे हृदय भेदनेवाले तेरे इसी हृदय को मैं खाऊँगी तभी मुझे सन्तोष होगा। ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसी मूर्खताको धिक्कार है जिसके वश हुए प्राणी अपने पुण्य-कर्मको ऐसे नीच निदानों द्वारा भस्म कर डालते हैं।

'इस हाथ दे उस हाथ ले' इस कहावतके अनुसार तीव्र पापका फल प्रायः तुरत मिल मिल जाता है। वायुभूतिने मुनिनिन्दा द्वारा जो तीव्र पाप-कर्म बाँधा, उसका फल उसे बहुत जल्दी मिल गया। पूरे सात दिन भी न हुए होंगे कि वायुभूतिके सारे शरीरमें कोढ़ निकल आया। सच है, जिनकी सारा संसार पूजा करता है और जो धर्मके सच्चे मार्गको दिखानेवाले हैं ऐसे महात्माओंकी निन्दा करने वाला पापी पुरुष किन महाकष्टोंको नहीं सहता। वायुभूति कोढ़के दुःखसे मरकर कौशाम्बीमें ही एक नटके यहाँ गधा हुआ। गधा मरकर वह जंगली सूअर हुआ। इस पर्यायसे मरकर इसने चम्पापुरमें एक चाण्डालके यहाँ कुत्ती का जन्म धारण किया, कुत्ती मरकर चम्पापुरीमें ही एक दूसरे चाण्डालके यहाँ लड़की हुई। यह जन्महीसे अन्धी थी। इसका सारा शरीर बदबू कर रहा था। इस लिये इसके माता-पिताने इसे छोड़ दिया। पर भाग्य सभीका बलवान् होता है। इसलिए इसकी भी किसी तरह रक्षा हो गई। यह एक जांबूके झाड़ नीचे पड़ी पड़ी जांबू खाया करती थी।

सूर्यमित्र मुनि अग्निभूतिको साथ लिये हुए भाग्यसे इस ओर आ निकले। उस जन्मकी दुःखिनी लड़कीको देखकर अग्निभूतिके हृदयमें कुछ मोह कुछ दुःख हुआ। उन्होंने गुरुसे पूछा–

प्रभो, इसकी दशा बड़ी कष्टमें है। यह कैसे जी रही है? ज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने कहा –तुम्हारे भाई वायुभूतिने धर्मसे पराङ्मुख होकर जो मेरी निन्दा की थी, उसी पापके फलसे उसे कई भव पशुपर्यायमें लेना पड़े। अन्तमें वह कुत्तीकी पर्यायसे मरकर यह चाण्डालकन्या हुई है। पर अब इसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। इसलिये जाकर तुम इसे व्रत लिवाकर संन्यास दे आओ। अग्निभूतिने वैसा ही किया। उस चाण्डालकन्याको पांच अणुव्रत देकर उन्होंने संन्यास लिवा दिया।

चाण्डालकन्या मरकर व्रतके प्रभावसे चम्पापुरीमें नागशर्मा ब्राह्मणके यहाँ नागश्री नामकी कन्या हुई। एक दिन नागश्री वनमें नागपूजा करनेको गई थी। पुण्यसे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि भी विहार करते हुए इस ओर आ गये। उन्हें देखकर नागश्रीके मनमें उनके प्रति अत्यन्त भक्ति हो गई। वह उनके पास गई और हाथ जोड़कर उनके पाँवोंके पास बैठ गई। नागश्रीको देखकर अग्निभूति मुनिके मनमें कुछ प्रेमका उदय हुआ। और होना उचित ही था। क्योंकि थी तो वह उनके पूर्वजन्मकी भाई न? अग्निभूति मुनिने इसका कारण अपने गुरुसे पूछा। उन्होंने प्रेम होनेका कारण जो पूर्व जन्मका भातृ-भाव था, वह बता दिया। तब अग्निभूतिने उसे धर्मका उपदेश किया और सम्यक्त्व तथा पाँच अणुव्रत उसे ग्रहण करवाये। नागश्री व्रत ग्रहणकर जब जाने लगी तब उन्होंने उससे कह दिया कि हाँ, देख बच्ची, तुझसे यदि तेरे पिताजी इन व्रतोंको लेनेके लिए नाराज हों तो तू हमारे व्रत हमें ही आकर

सौंप जाना। सच है, मुनि लोग वास्तवमें सच्चे मार्गके दिखानेवाले होते हैं।

इसके बाद नागश्री उन मुनिराजोंके भक्तिसे हाथ जोड़कर और प्रसन्न होती हुई अपने घर पर आ गई। नागश्रीके साथकी और और लड़कियोंने उसके व्रत लेनेकी बातको नागशर्मासे जाकर कह दिया। नागशर्मा तब कुछ क्रोधकासा भाव दिखाकर नागश्रीसे बोला—बच्ची, तू बड़ी भोली है, जो झटसे हरएकके बहकानेमें आ जाती है। भला, तू नहीं जानती कि अपने पवित्र ब्राह्मण-कुलमें उन नंगे मुनियोंके दिये व्रत नहीं लिये जाते। वे अच्छे लोग नहीं होते। इस लिए उनके व्रत तू छोड़ दे। तब नागश्री बोली—तो पिताजी, उन मुनियोंने मुझे आते समय यह कह दिया था कि यदि तुझसे तेरे पिताजी इन व्रतोंको छोड़ देनेके लिए आग्रह करें तो तू पीछे हमारे व्रत हमें ही दे जाना। तब आप चलिए मैं उन्हें उनके व्रत दे आती हूँ। सोमशर्मा नागश्रीका हाथ पकड़े क्रोधसे गुर्राता हुआ मुनियोंके पास चला। रास्तेमें नागश्रीने एक जगह कुछ गुल-गपाड़ा होता सुना। उस जगह बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे और एक मनुष्य उनके बीचमें बँधा हुआ पड़ा था। उसे कुछ निर्दयी लोग बड़ी क्रूरतासे मार रहे थे। नागश्रीने उसकी यह दशा देखकर सोमशर्मासे पूछा—पिताजी, बेचारा यह पुरुष इस प्रकार निर्दयतासे क्यों मारा जा रहा है? सोमशर्मा बोला—बच्ची, इस पर एक बनियेके लड़के वरसेनका कुछ रुपया लेना था। उसने इससे अपने रुपयोंका तकादा किया। इस पापीने उसे रुपया न देकर जानसे मार डाला। इस लिए उस अपराधके बदले अपने राजा साहबने इसे प्राणदंडकी

सजा दी है, और वह योग्य है। क्योंकि एकको ऐसी सजा मिलनेसे अब दूसरा कोई ऐसा अपराध न करेगा। तब नागश्रीने जरा जोर देकर कहा—तो पिताजी, यही व्रत तो उन मुनियोंने मुझे दिया है, फिर आप उसे क्यों छुड़ानेको कहते हैं? सोमशर्मा लाजबाब होकर बोला—अस्तु पुत्री, तू इस व्रतको न छोड़, चल बाकीके व्रत तो उनके उन्हें दे आवें। आगे चलकर नागश्रीने एक और पुरुषको बँधा देखकर पूछा—और पिताजी, यह पुरुष क्यों बाँधा गया है? सोमशर्माने कहा—पुत्री, यह झूठ बोलकर लोगोंको ठगा करता था। इसके फन्देमें फँसकर बहुतोंको दर-दरका भिखारी बनना पड़ा है। इस लिए झूठ बोलनेके अपराधमें इसकी यह दशा की जा रही है। तब फिर नागश्रीने कहा—तो पिताजी, यही व्रत तो मैंने भी लिया है। अब तो मैं उसे कभी नहीं छोड़ूँगी। इसी प्रकार चोरी, परस्त्री, लोभ आदिसे दुःख पाते हुए मनुष्योंको देखकर नागश्रीने अपने पिताको लाजबाब कर दिया और व्रतोंको नहीं छोड़ा। तब सोमशर्माने हार खाकर कहा—अच्छा, यदि तेरी इच्छा इन व्रतोंको छोड़नेकी नहीं है तो न छोड़, पर तू मेरे साथ उन मुनियोंके पास तो चल। मैं उन्हें दो बातें कहूँगा कि तुम्हें क्या अधिकार था जो तुमने मेरी लड़कीको बिना मेरे पूछे व्रत दे दिये? फिर वे आगेसे किसीको इस प्रकार व्रत न दे सकेंगे। सच है, दुर्जनोंको कभी सत्पुरुषोंसे प्रीति नहीं होती। तब ब्राह्मण देवता अपनी हौंश निकालनेको मुनियोंके पास चले। उसने उन्हें दूरसे ही देखकर गुस्सेमें आ कहा—क्यों रे नंगेओ! तुमने मेरी लड़कीको व्रत देकर क्यों ठग लिया? बतलाओ, तुम्हें इसका क्या अधिकार था? कवि कहता है कि ऐसे पापियोंके

विचारोंको सुनकर बड़ा ही खेद होता है। भला, जो व्रत, शील, पुण्यके कारण हैं, उनसे क्या कोई ठगाया जा सकता है ? नहीं। सोमशर्माको इस प्रकार गुस्सा हुआ देखकर सूर्यमित्र मुनि बड़ी धीरता और शान्तिके साथ बोले—भाई, जरा धीरज धर, क्यों इतनी जल्दी कर रहा है। मैंने इसे व्रत दिये हैं, पर अपनी लड़की समझकर, और सच पूछो तो यह है भी मेरी ही लड़की। तेरा तो इस पर कुछ भी अधिकार नहीं है। तू भले ही यह कह कि यह मेरी लड़की है, पर वास्तवमें यह तेरी लड़की नहीं है। यह कहकर सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीको पुकारा। नागश्री झटसे आकर उनके पास बैठ गई। अब तो ब्राह्मण देवता बड़े घबराये। वे 'अन्याय' 'अन्याय' चिल्लाते हुए राजाके पास पहुँचे और हाथ जोड़कर बोले—देव, नंगे साधुओंने मेरी नागश्री लड़कीको जबरदस्ती छुड़ा लिया। वे कहते हैं कि यह तेरी लड़की नहीं, किन्तु हमारी लड़की है। राजाधिराज, सारा शहर जानता है कि नागश्री मेरी लड़की है। महाराज, उन पापियोंसे मेरी लड़की दिलवा दीजिए। सोमशर्माकी बातसे सारी राज-सभा बड़े विचारमें पड़ गई। राजाकी भी अकलमें कुछ न आया। तब वे सबको साथ लिए मुनिके पास आये और उन्हें नमस्कार कर बैठ गये। फिर वही झगड़ा उपस्थित हुआ। सोमशर्मा तो नागश्रीको अपनी लड़की बताने लगा और सूर्यमित्र मुनि अपनी। मुनि बोले—अच्छा, यदि यह तेरी लड़की है तो बतला तूने इसे क्या पढ़ाया ? और सुन, मैंने इसे सब शास्त्र पढ़ाया है, इस लिए मैं अभिमानसे कहता हूँ कि यह मेरी ही लड़की है। तब राजा बोले—अच्छा प्रभो, वह आपहीकी लड़की सही, पर आपने इसे जो पढ़ाया है उसकी

परीक्षा इसके द्वारा दिलवाइए। जिससे कि हमें विश्वास हो। तब सूर्यमित्र मुनि अपने वचनरूपी किरणों द्वारा लोगोंके चित्तमें ठसे हुए मूर्खतारूप गाढ़े अन्धकारको नाश करते हुए बोले—हे नागश्री—हे पूर्वजन्ममें वायुभूतिका भव धारण करनेवाली, पुत्री, तुझे मैंने जो पूर्वजन्ममें कई शास्त्र पढ़ाये हैं, उनकी इस उपस्थित मंडलीके सामने तू परीक्षा दे। सूर्यमित्र मुनिका इतना कहना हुआ कि नागश्रीने जन्मान्तरका पढ़ा-पढ़ाया सब विषय सुना दिया। राजा तथा और सब मंडलीको इससे बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने मुनिराजसे हाथ जोड़कर कहा—प्रभो, नागश्रीकी परीक्षासे उत्पन्न हुआ विनोद हृदय-भूमि में अठखेलियाँ कर रहा है। इस लिए कृपाकर आप अपने और नागश्रीके सम्बन्धकी सब बातें खुलासा कहिए। तब अवधिज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने वायुभूतिके भवसे लगाकर नागश्रीके जन्मतककी सब घटना उनसे कह सुनाई। सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें यह सब मोहकी लीला जान पड़ी। मोहको ही सब दुःखका मूल कारण समझकर उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ। वे उसी समय और भी बहुतसे राजाओंके साथ जिनदीक्षा ग्रहण कर गये। सोमशर्मा भी जैनधर्मका उपदेश सुनकर मुनि हो गया और तपस्या कर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। इधर नागश्रीको भी अपना पूर्वका हाल सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ। वह दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई और अन्तमें शरीर छोड़कर तपस्याके फलसे अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई। अहा! संसारमें गुरु चिन्तामणिके समान हैं, सबसे श्रेष्ठ हैं। यही कारण है कि जिनकी कृपासे जीवोंको सब सम्पदाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

यहाँसे विहार कर सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज अग्निमन्दिर नामके पर्वत पर पहुँचे। वहाँ तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया, और त्रिलोकपूज्य हो अन्तमें बाकीके कर्मोंका भी नाशकर परम सुखमय, अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया। वे दोनों केवलज्ञानी मुनिराज मुझे और आप लोगोंको उत्तम सुखकी भीख दें।

अवन्ति देशके प्रसिद्ध उज्जैन शहरमें एक इन्द्रदत्त नामका सेठ है। वह बड़ा धर्मात्मा और जिनभगवान्का सच्चा भक्त है। उसकी स्त्रीका नाम गुणवती है। वह नामके अनुसार सचमुच गुणवती और बड़ी सुन्दरी है। सोमशर्माका जीव, जो अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था वह, वहाँ अपनी आयु पूरी कर पुण्यके उदयसे इस गुणवती सेठानीके सुरेन्द्रदत्त नामका सुशील और गुणी पुत्र हुआ। सुरेन्द्रदत्त का ब्याह उज्जैनहीमें रहनेवाले सुभद्रसेठकी लड़की यशोभद्राके साथ हुआ। इनके घरमें किसी बातकी कमी नहीं थी। पुण्यके उदयसे इन्हें सब कुछ प्राप्त था। इस लिए बड़े सुखके साथ इनके दिन बीतते थे। ये अपनी इस सुख अवस्थामें भी धर्मको न भूलकर सदा उसमें सावधान रहा करते थे।

एक दिन यशोभद्राने एक अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा—क्यों योगिराज, क्या मेरी आशा इस जन्ममें सफल होगी? मुनिराजने यशोभद्राका अभिप्राय जानकर कहा—हाँ होगी, और अवश्य होगी। तेरे होनेवाला पुत्र भव्य—मोक्षमें जानेवाला, बुद्धिमान् और अनेक अच्छे अच्छे गुणोंका धारक होगा। पर साथ

ही एक चिन्ताकी बात यह होगी कि तेरे स्वामी पुत्रका मुख देखकर ही जिनदीक्षा ग्रहण कर जाँयगे, जो दीक्षा स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाली है। अच्छा, और एक बात यह है कि तेरा पुत्र भी जब कभी किसी जैनमुनिको देख पायगा तो वह भी उसी समय सब विषय-भोगोंको छोड़-छाड़कर योगी बन जायगा।

इसके कुछ महीनों बाद यशोभद्रा सेठानीके पुत्र हुआ। नागश्रीके जीवने, जो स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ था, अपनी स्वर्गकी आयु पूरी हुए बाद यशोभद्राके यहाँ जन्म लिया। भाई-बन्धुओंने इसके जन्मका बहुत कुछ उत्सव मनाया। इसका नाम सुकुमाल रक्खा गया। उधर सुरेन्द्र पुत्रके पवित्र दर्शन कर और उसे अपने सेठ-पदका तिलक कर आप मुनि हो गया।

जब सुकुमाल बड़ा हुआ तब उसकी मांको यह चिन्ता हुई कि कहीं यह भी कभी किसी मुनिको देखकर मुनि न हो जाय, इसके लिए यशोभद्राने अच्छे घरानेकी कोई बत्तीस सुन्दर कन्याओं-के साथ उसका ब्याह कर उन सबके रहनेको एक जुदा ही बड़ा भारी महल बनवा दिया और उसमें सब प्रकारकी विषय-भोगोंकी एकसे एक उत्तम वस्तु इकट्ठी करवादी, जिससे कि सुकुमालका मन सदा विषयोंमें फँसा रहे। इसके सिवा पुत्रके मोहसे उसने इतना और किया कि अपने घरमें जैनमुनियोंका आना जाना भी बन्द करवा दिया।

एक दिन किसी बाहरके सौदागरने आकर राजा प्रद्योतनको एक बहु-मूल्य रत्न-कम्बल दिखलाया, इस लिए कि वह उसे खरीदले। पर उसकी कीमत बहुत ही अधिक होनेसे राजाने उसे

नहीं लिया। रत्न-कम्बलकी बात यशोभद्रा सेठानीको मालूम हुई। उसने उस सौदागरको बुलवाकर उससे वह कम्बल सुकुमालके लिए मोल ले-लिया। पर वह रत्नोंकी जड़ाईके कारण अत्यन्त ही कठोर था, इस लिए सुकुमालने उसे पसन्द न किया। तब यशोभद्रा ने उसके टुकड़े करवा कर अपनी बहुओंके लिए उसकी जूतियाँ बनवादीं। एक दिन सुकुमालकी प्रिया जूतियाँ खोलकर पाँव धो रही थी। इतनेमें एक चील मांसके लोभसे एक जूतीको उठा ले-उड़ी। उसकी चोंचसे छूटकर वह जूती एक वेश्याके मकानकी छत पर गिरी। उस जूतीको देखकर वेश्याको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसे राजघरानेकी समझकर राजाके पास ले-गई। राजा भी उसे देखकर दंग रह गये कि इतनी कीमती जिसके यहाँ जूतियाँ पहरी जाती हैं तब उसके धनका क्या ठिकाना होगा। मेरे शहरमें इतना भारी धनी कौन है ? इसका अवश्य पता लगाना चाहिए। राजाने जब इस विषयकी खोज की तो उन्हें सुकुमाल सेठका समाचार मिला कि इनके पास बहुत धन है और वह जूती उनकी स्त्रीकी है। राजाको सुकुमालके देखनेकी बड़ी उत्कंठा हुई। वे एक दिन सुकुमालसे मिलनेको आये। राजाको अपने घर आये देख सुकुमालकी मां यशोभद्राको बड़ी खुशी हुई। उसने राजाका खूब अच्छा आदर-सत्कार किया। राजाने प्रेमवश हो सुकुमालको भी अपने पास सिंहासन पर बैठा लिया। यशोभद्राने उन दोनोंकी एक ही साथ आरती उतारी। दियेकी तथा हारकी ज्योतिसे मिलकर बढ़े हुए तेज को सुकुमालकी आँखें न सह सकीं—उनमें पानी आ गया। इसका कारण पूछने पर यशोभद्राने राजासे कहा—महाराज, आज इसकी

इतनी उमर हो गई, कभी इसने रत्नमयी दीयेको छोड़कर ऐसे दीयेको नहीं देखा। इसलिए इसकी आँखोंमें पानी आ गया है। यशोभद्रा जब दोनोंको भोजन कराने बैठी तब सुकुमाल अपनी थालीमें परोसे हुए चावलोंमेंसे एक एक चावलको बीन-बीनकर खाने लगा। देखकर राजाको बड़ा अचंभा हुआ। उसने यशोभद्रा से इसका भी कारण पूछा। यशोभद्राने कहा—राजराजेश्वर, इसे जो चावल खानेको दिये जाते हैं वे खिले हुए कमलोंमें रखे जाकर सुगन्धित किये होते हैं। पर आज वे चावल थोड़े होनेसे मैंने उन्हें दूसरे चावलोंके साथ मिलाकर बना लिया। इससे यह एक एक चावल चुन-चुनकर खाता है। राजा सुनकर बड़े ही खुश हुए। उन्होंने पुण्यात्मा सुकुमालकी बहुत प्रशंसा कर कहा—सेठानीजी, अब तक तो आपके कुँवर साहब केवल आपके ही घरके सुकुमाल थे, पर अब मैं इनका अवन्ति-सुकुमाल नाम रखकर इन्हें सारे देशका सुकुमाल बनाता हूँ। मेरा विश्वास है कि मेरे देशभरमें इस सुन्दरताका—इस सुकुमारताका यही आदर्श है। इसके बाद राजा सुकुमालको संग लिए महलके पीछे जलक्रीड़ा करने बावड़ी पर गये। सुकुमालके साथ उन्होंने बहुत देरतक जलक्रीड़ा की। खेलते समय राजाकी उँगलीमेंसे अँगूठी निकलकर क्रीड़ा सरोवरमें गिर गई। राजा उसे ढूँढ़ने लगे। वे जलके भीतर देखते हैं तो उन्हें उसमें हजारों बड़े बड़े सुन्दर और कीमती भूषण देख पड़े। उन्हें देखकर राजाकी अकल चकरा गई। वे सुकुमालके अनन्त-वैभवको देखकर बड़े चकित हुए। वे यह सोचते हुए, कि यह सब पुण्यकी लीला है, कुछ शरमिन्दासे होकर महल लौट आये।

सज्जनो, सुनो—धन-धान्यादि सम्पदाका मिलना, पुत्र, मित्र, और सुन्दर स्त्रीका प्राप्त होना, बन्धु बान्धवोंका सुखी होना, अच्छे अच्छे वस्त्र और आभूषणोंका होना, दुमँजले, तिमँजले आदि मनोहर महलोंमें रहनेको मिलना, खाने पीनेको अच्छीसे अच्छी वस्तुएँ प्राप्त होना, विद्वान् होना, नीरोग होना—आदि जितनी सुख-सामग्री हैं, वह सब जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश किये मार्ग पर चलनेसे जीवोंको मिल सकती है। इसलिये दुःख देने वाले खोटे मार्गको छोड़कर बुद्धिमानोंको सुखका मार्ग और स्वर्ग-मोक्षके सुखका बीज पुण्यकर्म करना चाहिये। पुण्य जिन भगवान् की पूजा करनेसे, पात्रोंको दान देनेसे तथा व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य के धारण करनेसे होता है।

एक दिन जैनतत्वके परम विद्वान सुकुमालके मामा गण-धराचार्य सुकुमालकी आयु बहुत थोड़ी रही जानकर उसके महलके पीछेके बगीचेमें आकर ठहरे और चतुर्मास लग जानेसे उन्होंने वहीं योग धारण कर लिया। यशोभद्राको उनके आनेकी खबर हुई। वह जाकर उनसे कह आई कि प्रभो, जब तक आपका योग पूरा न हो तब तक आप कभी ऊँचेसे स्वाध्याय या पठन-पाठन न कीजिएगा। जब उनका योग पूरा हुआ तब उन्होंने अपने योग-सम्बन्धी सब क्रियाओंके अन्तमें लोकप्रज्ञप्तिका पाठ करना शुरू किया। उसमें उन्होंने अच्युतस्वर्गके देवोंकी आयु, उनके शरीरकी ऊंचाई आदिका खूब अच्छी तरह वर्णन किया। उसे सुनकर सुकुमालको जातिस्मरण हो गया। पूर्व जन्ममें पाये दुःखोंको याद कर वह काँप उठा। वह उसी समय चुपकेसे महलसे निकल कर

मुनिराजके पास गया और उन्हें भक्तिसे नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। और मुनिने उससे कहा—बेटा, अब तुम्हारी आयु सिर्फ तीन दिनको रह गई है, इसलिये अब तुम्हें इन विषय-भोगोंको छोड़कर अपना आत्महित करना उचित है। ये विषय-भोग पहले कुछ अच्छेसे मालूम होते हैं, पर इनका अन्त बड़ा ही दुःखदायी है। जो विषय-भोगोंकी धुनमें ही मस्त रहकर अपने हितकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें कुगतियोंके अनन्त दुःख उठाना पड़ते हैं। तुम समझो सियालेमें आग बहुत प्यारी लगती है, पर जो उसे छूएगा वह तो जलेहीगा। यही हाल इन ऊपरके स्वरूपसे मनको लुभानेवाले विषयोंका है। इसलिये ऋषियोंने इन्हें 'भोगा भुजंग-भोगाभाः' अर्थात् सर्पके समान भयंकर कहकर उल्लेख किया है। विषयोंको भोगकर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ, तब फिर ऐसी आशा करना कि इनसे सुख मिलेगा, नितान्त भूल है। मुनिराज का उपदेश सुनकर सुकुमालको बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय सुख देनेवाली जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर सुकुमाल वनकी ओर चल दिया। उसका यह अन्तिम जीवन बड़ा ही करुणासे भरा हुआ है। कठोरसे कठोर चित्तवाले मनुष्यों तकके हृदयोंको हिला देनेवाला है। सारी जिन्दगीमें कभी जिनकी आँखोंसे आँसू न झरे हों, उन आँखोंमें भी सुकुमालका यह जीवन आँसू ला देनेवाला है। पाठकोंको सुकुमालकी सुकुमारताका हाल मालूम है कि यशोभद्राने जब उसकी आरती उतारी थी, तब जो मंगल द्रव्य सरसों उस पर डाली गई थी, उन सरसोंके चुभनेको भी सुकुमाल न सह सका था। यशोभद्राने उसके लिये रत्नोंका बहुमूल्य कम्बल खरीदा था,

पर उसने उसे कठोर होनेसे ही ना-पास कर दिया था। उसकी माँका उस पर इतना प्रेम था—उसने उसे इसप्रकार लाड़-प्यारसे पाला था कि सुकुमालको कभी जमीन पर तक पांव देनेका मौका नहीं आया था। उसी सुकुमार सुकुमालने अपने जीवन भरके एक रूपसे बहे प्रवाहको कुछ ही मिनटोंके उपदेशसे बिलकुल ही उल्टा बहा दिया। जिसने कभी यह नहीं जाना कि घर बाहर क्या है, वह अब अकेला भयंकर जंगलमें जा बसा। जिसने स्वप्नमें भी कभी दुःख नहीं देखा, वही अब दुःखोंका पहाड़ अपने सिर पर उठा लेनेको तैयार हो गया। सुकुमाल दीक्षा लेकर वनकी ओर चला। कंकरीली जमीन पर चलनेसे उसके फूलोंसे कोमल पांवोंमें कंकर-पत्थरोंके गड़नेसे घाव हो गये। उनसे खूनकी धारा बह चली। पर धन्य सुकुमालकी सहनशीलता जो उसने उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं झांका। अपने कर्तव्यमें वह इतना एकनिष्ठ हो गया—इतना तन्मय हो गया कि उसे इस बातका भान ही न रहा कि मेरे शरीरकी क्या दशा हो रही है। सुकुमालकी सहनशीलताकी इतनेमेंही समाप्ति नहीं हो गई। अभी और आगे बढ़िये और देखिये कि वह अपनेको इस परीक्षामें कहांतक उत्तीर्ण करता है।

पांवोंसे खून बहता जाता है और सुकुमाल मुनि चले जा जा रहे हैं। चलकर वे एक पहाड़की गुफामें पहुँचे। वहाँ वे ध्यान लगाकर बारह भावनाओंका विचार करने लगे। उन्होंने प्रायोपगमन संन्यास एक पांवसे खड़े रहनेका लेलिया, जिसमें कि किसीसे अपनी सेवा-शुश्रूषा भी कराना मना किया है। सुकुमाल मुनि तो इधर आत्म-ध्यानमें लीन हुए। अब जरा इनके वायुभूतिके जन्मकी याद कीजिये।

जिस समय वायुभूतिके बड़े भाई अग्निभूति मुनि हो गये थे, तब इनकी स्त्रीने वायुभूतिसे कहा था कि देखो, तुम्हारे कारणसे ही तुम्हारे भाई मुनि हो गये सुनती हूँ। तुमने अन्याय कर मुझे दुःखके सागरमें ढकेल दिया। चलो, जब तक वे दीक्षा न ले जाँय उसके पहले उन्हें हम तुम समझा-बुझाकर घर लौटा लावें। इस पर गुस्सा होकर वायुभूतिने अपनी भौजीको बुरी-भली सुना डाली थी, और फिर ऊपरसे उस पर लात भी जमा दी थी। तब उसने निदान किया था कि पापी, तूने मुझे निर्बल समझ मेरा जो अपमान किया है—मुझे कष्ट पहुंचाया है, यह ठीक है कि मैं इस समय इसका बदला नहीं चुका सकती। पर याद रख कि इस जन्ममें नहीं तो परजन्ममें सही, पर बदला लूँगी और घोर बदला लूँगी।

इसके बाद वह मरकर अनेक कुयोनियोंमें भटकी। अन्तमें वायुभूति तो यह सुकुमाल हुए और उसकी भौजी सियारनी हुई। जब सुकुमाल मुनि वनकी ओर रवाना हुए और उनके पावों में कंकर, पत्थर, काँटे वगैरह लगकर खून बहने लगा, तब यही सियारनी अपने पिल्लोंको साथ लिए उस खूनको चाटती चाटती वहीं आ गई जहाँ सुकुमाल मुनि ध्यानमें मग्न हो रहे थे। सुकुमालको देखते ही पूर्वजन्मके संस्कारसे सियारनीको अत्यन्त क्रोध आया। वह उनकी ओर घूरती हुई उनके बिलकुल नजदीक आ गई। उसका क्रोधभाव उमड़ा। उसने सुकुमालको खाना शुरू कर दिया। उसे खाते देखकर उसके पिल्ले भी खाने लग गये। जो कभी एक तिनकेका चुभ जाना भी नहीं सह सकता था, वह आज ऐसे घोर कष्टको

सहकर भी सुमेरुसा निश्चल बना हुआ था। जिसके शरीरको एक साथ चार हिंसक जीव बड़ी निर्दयतासे खा रहे हैं, तब भी जो रंचमात्र हिलता-डुलता तक नहीं। उस महात्माकी इस अलौकिक सहन-शक्तिका किन शब्दोंमें उल्लेख किया जाय, यह बुद्धिमें नहीं आता। तब भी जो लोग एक ना-कुछ चीज काँटेके लग जानेसे तलमला उठते हैं, वे अपने हृदयमें जरा गंभीरताके साथ विचार कर देखें कि सुकुमाल मुनिकी आदर्श सहनशक्ति कहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी और उनका हृदय कितना उच्च था! सुकुमाल मुनिकी यह सहनशक्ति उन कर्त्तव्यशील मनुष्योंको अप्रत्यक्ष रूपमें शिक्षा कर रही है कि अपने उच्च और पवित्र कामोंमें आनेवाले विघ्नोंकी परवा मत करो। विघ्नोंको आने दो और खूब आने दो। आत्माकी अनन्त शक्तियोंके सामने ये विघ्न कुछ चीज नहीं—किसी गिनतीमें नहीं। तुम अपने पर विश्वास करो। भरोसा करो। हरएक कामोंमें आत्मदृढ़ता, आत्म-विश्वास, उनके सिद्ध होनेका मूलमन्त्र है। जहां ये बातें नहीं वहाँ मनुष्यता भी नहीं। तब कर्त्तव्यशीलता तो फिर योजनोंकी दूरी पर है। सुकुमाल यद्यपि सुखिया जीव थे, पर कर्त्तव्यशीलता उनके पास थी। इसी लिए देखनेवालोंके भी हृदयको हिला देनेवाले कष्टमें भी वे अचल रहे।

सुकुमाल मुनिको उस सियारनीने पूर्व वैरके सम्बन्धसे तीन दिन तक खाया। पर वे मेरुके समान धीर रहे। दुःखकी उन्होंने कुछ पर्वा न की। यहां तक कि अपनेको खानेवाली सियारनी पर भी उनके बुरे भाव न हुए। शत्रु और मित्रको समभावोंसे देख-कर उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। तीसरे दिन सुकुमाल

शरीर छोड़कर अच्युतस्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए।

वायुभूतिकी भौजीने निदानके वश सियारनी होकर अपने वैरका बदला चुका लिया। सच है, निदान करना अत्यन्त दुःखों का कारण है। इस लिए भव्यजनोंको यह पापका कारण निदान कभी नहीं करना चाहिए। इस पापके फलसे सियारनी मरकर कुगतिमें गई।

कहाँ वे मनको अच्छे लगनेवाले भोग और कहाँ यह दारुण तपस्या! सच तो यह है कि महापुरुषोंका चरित कुछ विलक्षण हुआ करता है। सुकुमाल मुनि अच्युतस्वर्गमें देव होकर अनेक प्रकारके दिव्य सुखोंको भोगते हैं और जिनभगवान्की भक्तिमें सदा लीन रहते हैं। सुकुमाल मुनिकी इस वीर मृत्युके उपलक्षमें स्वर्गके देवोंने आकर उनका बड़ा उत्सव मनाया। 'जय जय' शब्द द्वारा महा कोलाहल हुआ। इसी दिनसे उज्जैनमें महाकाल नामके कुतीर्थकी स्थापना हुई, जिसके कि नामसे अगणित जीव रोज वहां मारे जाने लगे। और देवोंने जो सुगन्ध जलकी वर्षा की थी, उससे वहांकी नदी गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई।

जिसने दिनरात विषय-भोगोंमें ही फँसे रहकर अपनी सारी जिन्दगी बिताई, जिसने कभी दुःखका नाम भी न सुना था, उस महापुरुष सुकुमालने मुनिराज द्वारा अपनी तीन दिनकी आयु सुन-कर उसी समय माता, स्त्री, पुत्र—आदि स्वजनोंको, धन-दौलतको और विषय-भोगोंको छोड़-छाड़कर जिनदीक्षा लेली और अन्तमें पशुओं द्वारा दुःसह कष्ट सहकर भी जिसने बड़ी धीरज और शांतिके

साथ मृत्युको अपनाया। वे सुकुमाल मुनि मुझे कर्त्तव्यके लिए कष्ट सहनेकी शक्ति प्रदान करें।

५८—सुकौशल मुनिकी कथा।

जगपवित्र जिनेन्द्र भगवान्, जिनवानी और गुरुओंको नमस्कार कर सुकौशल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्यामें प्रजापाल राजाके समयमें एक सिद्धार्थ नामके नामी सेठ हो गये हैं। उनके कोई बत्तीस अच्छी अच्छी सुन्दर स्त्रियां थीं। पर खोटे भाग्यसे इनमें किसीके कोई सन्तान न थी। स्त्री कितनी भी सुन्दर हो, गुणवती हो, पर बिना सन्तानके उसकी शोभा नहीं होती। जैसे बिना फल-फूलके लताओंकी शोभा नहीं होती। इन स्त्रियोंमें जो सेठकी खास प्राणप्रिया थी—जिस पर कि सेठ महाशयका अत्यन्त प्रेम था, वह पुत्र-प्राप्तिके लिए सदा कुदेवों की पूजा-मानता किया करती थी। एक दिन उसे कुदेवोंकी पूजा करते एक मुनिराजने देख लिया। उन्होंने तब उससे कहा—बहिन, जिस आशासे तू इन कुदेवोंकी पूजा करती है वह आशा ऐसा करने से सफल न होगी। कारण सुख-सम्पत्ति, सन्तानप्राप्ति, नीरोगता, मान-मर्यादा, सद्बुद्धि आदि जितनी अच्छी बातें हैं, उन सबका कारण पुण्य है। इस लिए यदि तू पुण्य-प्राप्तिके लिए कोई उपाय करे तो अच्छा हो। मैं तुझे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि इन यक्षादिक कुदेवोंकी पूजा-मानता छोड़कर, जो कि पुण्य-बन्धका कारण नहीं है, जिनधर्मका विश्वास कर। इससे तू सत्पथ पर

आजायगी और फिर तेरी आशा भी पूरी होने लगेगी। जयावतीको मुनिका उपदेश रुचा और वह अबसे जिनधर्म पर श्रद्धा करने लगी। चलते समय उसे ज्ञानी मुनिने यह भी कह दिया था कि जिसकी तुझे चाह है वह चीज तुझे सात वर्षके भीतर भीतर अवश्य प्राप्त होगी। तू चिन्ता छोड़कर धर्मका पालन कर। मुनिका यह अंतिम वाक्य सुनकर जयावतीको बड़ी भारी खुशी हुई। और क्यों न हो? जिसकी कि वर्षोंसे उसके हृदयमें भावना थी वही भावना तो अब सफल होनेको है न! अस्तु।

मुनिका कथन सत्य हुआ। जयावतीने धर्मके प्रसादसे पुत्र-रत्नका मुँह देख पाया। उसका नाम रक्खा गया सुकोशल। सुकोशल खूबसूरत और साथ ही तेजस्वी था।

सिद्धार्थ सेठ विषय-भोगोंको भोगते भोगते कंटाल गये थे। उनके हृदयकी ज्ञानमयी आंखोंने उन्हें अब संसारका सच्चा स्वरूप बतलाकर बहुत डरा दिया था। वे चाहते तो नहीं थे कि एक मिनट भी संसारमें रहें, पर अपनी सम्पत्तिको सम्हाल लेनेवाला कोई न होनेसे पुत्र-दर्शन तक, उन्हें लाचारीसे घरमें रहना पड़ा। अब सुकोशल हो गया, इसका उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। वे पुत्रका मुखचन्द्र देखकर और अपने सेठपदका उसके ललाट पर तिलक कर आप श्री नयंधर मुनिराजके पास दीक्षा ले गये।

अभी बालकको जन्मते ही तो देर न हुई कि सिद्धार्थ सेठ घर-बार छोड़कर योगी हो गये। उनकी इस कठोरता पर जयावती को बड़ा गुस्सा आया। न केवल सिद्धार्थ पर ही उसे गुस्सा आया,

किन्तु नयंधर मुनि पर भी। इस लिए कि उन्हें इस समय सिद्धार्थ को दीक्षा देना उचित न था; और इसी कारण मुनि मात्र पर उसकी अश्रद्धा हो गई। उसने अपने घरमें मुनियोंका आना-जाना तक बन्द कर दिया। बड़े दुःखकी बात है कि यह जीव मोहके वश हो धर्मको भी छोड़ बैठता है। जैसे जन्मका अन्धा हाथमें आये चिन्तामणिको खो बैठता है।

वय प्राप्त होने पर सुकोशलका अच्छे अच्छे घरानेकी कोई बत्तीस कन्या-रत्नोंसे ब्याह हुआ। सुकोशलके दिन अब बड़े ऐशो आरामके साथ बीतने लगे। माताका उस पर अत्यन्त प्यार होनेसे नित नई वस्तुएँ उसे प्राप्त होती थीं। सैकड़ों दास-दासियाँ उसकी सेवामें सदा उपस्थित रहा करती थीं। वह जो कुछ चाहता वह कार्य उसकी आँखोंके इशारे मात्रसे होता था। सुकोशलको कभी कोई बातके लिए चिन्ता न करनी पड़ती थी। सच है, जिनके पुण्यका उदय होता है उन्हें सब सुख-सम्पत्ति सहजमें प्राप्त हो जाती हैं।

एक दिन सुकोशल, उसकी मां, उसकी स्त्री, और उसकी धायके साथ महल पर आ बैठा अयोध्याकी शोभा तथा मनको लुभानेवाली प्रकृतिदेवीकी नई नई सुन्दर छटाओंको देख देखकर बड़ा खुश हो रहा था। उसकी दृष्टि कुछ दूर तक गई। उसने एक मुनिराजको देखा। ये मुनि इसके पिता सिद्धार्थ ही थे। इस समय कई अन्य नगरों और गाँवोंमें विहार करते हुए ये आ रहे थे। इनके बदन पर नाममात्रके लिए भी वस्त्र न देखकर सुकोशल बड़ा चकित हुआ। इसलिए कि पहले कभी उसने मुनिको देखा नहीं

था। उनका अजब वेष देखकर सुकोशलने मांसे पूछा—माँ, यह कौन है? सिद्धार्थको देखते ही जयावतीकी आँखोंमें खून बरस गया। वह कुछ घृणा और कुछ उपेक्षाको लिए बोली—बेटा, होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलब! परन्तु अपनी मांके इस उत्तरसे सुकोशलको सन्तोष नहीं हुआ। उसने फिर पूछा—मां, यह तो बड़ा खूबसूरत और तेजस्वी देख पड़ता है। तुम इसे भिखारी कैसे बताती हो? जयावतीको अपने स्वामी पर ऐसी घृणा करते देख सुकोशलकी धाय सुनन्दासे न रहा गया। वह बोल उठी—अरी ओ, तू इन्हें जानती है कि ये हमारे मालिक हैं। फिर भी तू इनके सम्बन्धमें ऐसा उलटा सुझा रही है? तुझे यह योग्य नहीं। क्या हो गया यदि ये मुनि हो गये तो? इसके लिए क्या तुझे इनकी निन्दा करनी चाहिए? इसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि सुकोशलकी मांने उसे आँखके इशारेसे रोककर कह दिया कि चुप क्यों नहीं रह जाती। तुझे कौन पूछता है, जो बीचमें ही बोल उठी! सच है, दुष्ट स्त्रियोंके मनमें धर्म-प्रेम कभी नहीं होता। जैसे जलती हुई आगका बीचका भाग ठंडा नहीं होता।

सुकोशल ठीक तो न समझ पाया, पर उसे इतना ज्ञान हो गया कि मांने मुझे सच्ची बात नहीं बतलाई। इतनेमें रसोइया सुकोशलको भोजन कर आनेके लिए बुलाने आया। उसने कहा—प्रभो, चलिए। बहुत समय हो गया। सब भोजन ठंडा हुआ जाता है। सुकोशलने तब भोजनके लिए इंकार कर दिया। माता और स्त्रियोंने भी बहुत आग्रह किया, पर वह भोजन करनेको नहीं गया।

उसने साफ साफ कह दिया कि जब तक मैं उस महापुरुषका सच्चा सच्चा हाल न सुन लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। जयावतीको सुकोशलके इस आग्रहसे कुछ गुस्सा आ गया, सो वह तो वहाँसे चल दी। पीछे सुनन्दाने सिद्धार्थ मुनिकी सब बातें सुकोशलसे कहदीं। सुनकर सुकोशलको कुछ दुःख भी हुआ, पर साथ ही वैराग्यने उसे सावधान कर दिया। वह उसी समय सिद्धार्थ मुनिराजके पास गया और उन्हें नमस्कार कर धर्मका स्वरूप सुननेकी उसने इच्छा प्रगट की। सिद्धार्थने उसे मुनिधर्म और गार्हस्थ्य-धर्मका खुलासा स्वरूप समझा दिया। सुकोशलको मुनिधर्म बहुत पसन्द पड़ा। वह मुनिधर्मकी भावना भाता हुआ घर आया और सुभद्राकी गर्भस्थ सन्तानको अपने सेठपदका तिलक कर तथा सब माया-ममता, धन-दौलत और स्वजन-परिजनको छोड़-छाड़कर श्री सिद्धार्थ मुनिके पास ही दीक्षा लेकर योगी बन गया। सच है, जिसे पुण्योदयसे धर्म पर प्रेम है और जो अपना हित करनेके लिए सदा तैयार रहता है, उस महापुरुषको कौन झूठी-सच्ची सुझाकर अपने कैदमें रख सकता है—उसे धोखा दे ठग सकता है ?

एक मात्र पुत्र और वह भी योगी बन गया। इस दुःखकी जयावतीके हृदय पर बड़ी गहरी चोट लगी। वह पुत्र दुःखसे पगली सी बन गई। खाना-पीना उसके लिए जहर हो गया। उसकी सारी जिन्दगी ही धूल-धानी हो गई। वह दुःख और चिन्ताके मारे दिनों-दिन सूखने लगी। जब देखो तब ही उसकी आँखें आँसुओंसे भरी रहतीं। मरते दम तक वह पुत्र-शोकको न भूल सकी। इसी चिन्ता, दुःख, आर्त्तध्यानसे उसके प्राण निकले। इस प्रकार बुरे भावोंसे

मरकर मगध देशके मौद्गिलनामके पर्वत पर उसने व्याघ्रीका जन्म लिया। इसके तीन बच्चे हुए। यह अपने बच्चोंके साथ पर्वत पर ही रहती थी। सच है, जो जिनेन्द्र भगवान्के पवित्र धर्मको छोड़ बैठते हैं, उनकी ऐसी ही दुर्गति होती है।

विहार करते हुए सिद्धार्थ और सुकोशल मुनिने भाग्यसे इसी पर्वत पर आकर योग धारण कर लिया। योग पूरा हुए बाद जब ये भिक्षाके लिए शहरमें जानेके लिए पर्वत परसे नीचे उतर रहे थे उसी समय वह व्याघ्री, जो कि पूर्वजन्ममें सिद्धार्थकी स्त्री और सुकोशलकी माता थी, इन्हें खानेको दौड़ी और जब तक कि ये संन्यास लेकर बैठते हैं, उसने इन्हें खा लिया। ये पिता पुत्र समाधि से शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर देव हुए। वहाँसे आकर अब वे निर्वाण लाभ करेंगे। ये दोनों मुनिराज आप भव्यजनोंको और मुझे शान्ति प्रदान करें।

जिस समय व्याघ्रीने सुकोशलको खाते खाते उनका हाथ खाना शुरू किया, उससमय उसकी दृष्टि सुकोशलके हाथोंके लाञ्छनों (चिन्हों) पर जा पड़ी। उन्हें देखते ही इसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान हो गया। जिसे वह खा रही है, वह उसीका पुत्र है—जिस पर उसका बेहद प्यार था, उसे ही वह खा रही है यह ज्ञान होते ही उसे जो दुःख, जो आत्म-ग्लानि हुई वह लिखी नहीं जा सकती। वह सोचती है, हाय! मुझसी पापिनी कौन होगी जो अपने ही प्यारे पुत्रको मैं आप ही खा रही हूँ! धिक्कार है मुझसी मूर्खिनीको जो पवित्र धर्मको छोड़कर अनन्त संसारको अपना वास बनाती है। उस मोहको, उस संसारको धिक्कार है जिसके वश हो यह जीव

अपने हित अहितको भूल जाता है और फिर कुमार्गमें फँसकर दुर्गतियोंमें दुःख उठाता है। इसप्रकार अपने किये कर्मोंकी बहुत कुछ आलोचना कर उस व्याघ्रीने संन्यास ग्रहण कर लिया और अन्तमें शुद्ध भावोंसे मरकर वह सौधर्मस्वर्गमें देव हुई। सच है, जीवोंकी शक्ति अद्भुत ही हुआ करती है और जैनधर्मका प्रभाव भी संसारमें बड़ा ही उत्तम है। नहीं तो कहाँ तो पापिनी व्याघ्री और कहाँ उसे स्वर्गकी प्राप्ति! इसलिये जो आत्मसिद्धिके चाहनेवाले हैं, उन भव्य जनोंको स्वर्ग-मोक्षको देनेवाले पवित्र जैनधर्मका पालन करना चाहिए।

श्री मूलसंघरूपी अत्यन्त ऊँचे उदयाचलसे उदय होनेवाले मेरे गुरु श्रीमल्लिभूषणरूपी सूर्य संसारमें सदा प्रकाश करते रहें।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजयलाभ करें जो ज्ञानके समुद्र हैं। देखिए, समुद्रमें रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शन रूपी श्रेष्ठ रत्नको धारण किये हैं। समुद्रमें तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभंगी रूपी तरंगोंसे युक्त हैं—स्याद्वाद विद्याके बड़े ही विद्वान् हैं। समुद्रकी तरंगें जैसे कूड़ा-करकट निकाल बाहर फैंक देती हैं, इसी तरह ये अपनी सप्तभंगवाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकटको हटा दूर करते थे—अन्यमतोंके बड़े बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर विजयलाभ करते थे। समुद्रमें मगरमच्छ घड़ियाल-आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्रमें उससे यह विशेषता थी—अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष,—आदि भयानक मगरमच्छ न थे। समुद्रमें अमृत रहता है और इनमें जिनेन्द्र भगवान्का वचनमयी निर्मल अमृत समाया हुआ था। और

समुद्रमें अनेक तरहकी बिकनेयोग्य वस्तुएँ रहती हैं, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रेय-वस्तुको धारण किये थे।

५९—गजकुमार मुनिकी कथा।

जिन्होंने अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और सब कामोंको करके सिद्धि—कृत्यकृत्यता लाभ की है, उन जिन भगवानको नमस्कार कर गजकुमार मुनिकी कथा लिखी जाती है।

नेमिनाथ भगवान्के जन्मसे पवित्र हुई प्रसिद्ध द्वारकाके अधचक्री वासुदेवकी रानी गन्धर्वसेनासे गजकुमारका जन्म हुआ था। गजकुमार बड़ा वीर था। उसके प्रतापको सुनकर ही शत्रुओंकी विस्तृत मानरूपी बेल भस्म हो जाती थी।

पोदनपुरके राजा अपराजितने तब बड़ा सिर उठा रक्खा था। वासुदेवने उसे अपने काबूमें लानेके लिए अनेक यत्न किये, पर वह किसी तरह इनके हाथ न पड़ा। तब इन्होंने शहरमें यह डोंडी पिटवाई कि जो मेरे शत्रु अपराजितको पकड़ लाकर मेरे सामने उपस्थित करेगा, उसे उसका, मन चाहा वर मिलेगा। गजकुमार डौंडी सुनकर पिताके पास गया और हाथ जोड़कर उसने स्वयं अपराजित पर चढ़ाई करनेकी प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना मंजूर हुई। वह सेना लेकर अपराजित पर जा चढ़ा। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें विजयलक्ष्मीने गजकुमारका साथ दिया। अपराजितको पकड़ लाकर उसने पिताके सामने उपस्थित कर दिया।

गजकुमारकी इस वीरताको देखकर वासुदेव बहुत खुश हुए। उन्होंने उसकी इच्छानुसार वर देकर उसे सन्तुष्ट किया।

ऐसे बहुत कम अच्छे पुरुष निकलते हैं जो मनचाहा वर लाभकर सदाचारी और सन्तोषी बने रहें। गजकुमारकी भी यही दशा हुई। उसने मनचाहा वह पिताजीसे लाभ कर अन्यायकी ओर कदम बढ़ाया। वह पापी जबरदस्ती अच्छे अच्छे घरोंकी सती स्त्रियोंकी इज्जत लेने लगा। वह ठहरा राजकुमार, उसे कौन रोक सकता था! और जो रोकनेकी कुछ हिम्मत करता तो वह उसकी आंखोंका कांटा होकर खटकने लगता और फिर गजकुमार उसे जड़मूलसे उखाड़कर फेंकनेका यत्न करता। उस कामको, उस दुराचारको धिक्कार है, जिसके वश हो मूर्ख-जनोंको लज्जा और भय भी नहीं रहता है।

इसी तरह गजकुमारने अनेक अच्छी अच्छी कुलीन स्त्रियोंकी इज्जत ले डाली। पर इसके दबदबेसे किसीने चूं तक न किया। एक दिन पांसुल सेठकी सुरति नामकी स्त्री पर इसकी नजर पड़ी और इसने उसे खराब भी कर दिया। यह देख पांसुलका हृदय क्रोधाग्निसे जलने लगा। पर वह बेचारा इसका कुछ कर नहीं सकता था। इसलिए उसे भी चुपचाप घरमें बैठ रह जाना पड़ा।

एक दिन भगवान् नेमिनाथ भव्य-जनोंके पुण्योदयसे द्वारकामें आये। बलभद्र, वासुदेव तथा और भी बहुतसे राजे-महाराजे बड़े आनन्दके साथ भगवान्की पूजा करनेको गये। खूब भक्तिभावोंसे उन्होंने स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले भगवान्की पूजा-स्तुति की, उनका ध्यान-स्मरण किया। बाद गृहस्थ और मुनि धर्मका भगवान्के

द्वारा उन्होंने उपदेश सुना, जो कि अनेक सुखोंका देनेवाला है। उपदेश सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बार बार भगवान्की स्तुति की। सच है, साक्षात् सर्वज्ञ भगवान्का दिया धर्मोपदेश सुनकर किसे आनन्द या खुशी न होगी। भगवान्के उपदेशका गजकुमारके हृदय पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। वह अपने किये पापकर्मों पर बहुत पछताया। संसारसे उसे बड़ी घृणा हुई। वह उसी समय भगवान्के पास ही दीक्षा लेगया, जो संसारके भटकनेको मिटानेवाली है। दीक्षा लेकर गजकुमार मुनि विहार कर गये। अनेक देशों और नगरोंमें विहार करते, और भव्य-जनोंको धर्मोपदेश द्वारा शान्तिलाभ कराते अन्तमें वे गिरनार पर्वतके जगलमें आये। उन्हें अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी। इसलिए वे प्रायोपगमन संन्यास लेकर आत्म-चिन्तवन करने लगे। तब इनकी ध्यान-मुद्रा बड़ी निश्चल और देखने योग्य थी।

इनके संन्यासका हाल पांसुल सेठको जान पड़ा, जिसकी कि स्त्रीको गजकुमारने अपने दुराचारीपनेकी दशामें खराब किया था। सेठको अपना बदला चुकानेका बड़ा अच्छा मौका हाथ लग गया। वह क्रोधसे भर्राता हुआ गजकुमार मुनिके पास पहुंचा और उनके सब सन्धिस्थानोंमें लोहेके बड़े बड़े कीले ठोककर चलता बना। गजकुमार मुनि पर उपद्रव तो बड़ा ही दुःसह हुआ, पर वे जनतत्त्वके अच्छे अभ्यासी थे—अनुभवी थे, इसलिये उन्होंने इस घोर कष्टको एक तिनकेके चुभनेकी बराबर भी न गिन बड़ी शान्ति और धीरताके साथ शरीर छोड़ा। यहाँसे ये स्वर्गमें गये। वहाँ अब चिरकाल तक वे सुख भोगेंगे। अहा! महापुरुषोंका चरित बड़ा ही

अचंभा पैदा करनेवाला होता है। देखिये, कहां तो गजकुमार मुनिको ऐसा दुःसह कष्ट और कहां सुख देनेवाली पुण्य-समाधि ! इसका कारण सच्चा तत्वज्ञान है। इसलिये इस महत्ताको प्राप्त करनेके लिए तत्वज्ञानका अभ्यास करना सबके लिए आवश्यक है।

सारे संसारके प्रभु कहलानेवाले जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा सुखके कारण धर्मका उपदेश सुनकर जो गजकुमार अपनी दुर्बुद्धिको छोड़कर पवित्र बुद्धिके धारक और बड़े भारी सहनशील योगी हो गये, वे हमें भी सुबुद्धि और शान्ति प्रदान करें, जिससे हम भी कर्त्तव्यके लिये कष्ट सहनेमें समर्थ हो सकें।

६०—पणिक मुनिकी कथा।

सुखके देनेवाले और सत्पुरुषोंसे पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर श्री पणिक नामके मुनिकी कथा लिखी जाती है, जो सबका हित करनेवाली है।

पणीश्वर नामक शहरके राजा प्रजापालके समय वहां सागरदत्त नामका एक सेठ हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम पणिका था। इसके एक लड़का था। उसका नाम भी पणिक था। पणिक सरल, शांत और पवित्र हृदयका था। पाप कभी उसे छू भी न गया था। सदा अच्छे रास्ते पर चलना उसका कर्त्तव्य था। एक दिन वह भगवान्के समवसरणमें गया, जो कि रत्नोंके तोरणोंसे बड़ी ही सुन्दरता धारण किये हुए था और अपनी मानस्तंभादि शोभासे सबके चित्तको आनन्दित करनेवाला था। वहां उसने वर्द्धमान भगवान्को गंधकुटी पर विराजे हुए देखा। भगवान्की इस समयकी

शोभा अपूर्व और दर्शनीय थी। वे रत्न-जड़े सोनेके सिंहासन पर विराजे हुए थे, पूनमके चन्द्रमाको शरमिन्दा करनेवाले तीन छत्र उन पर शोभा दे रहे थे, मोतियोंके हारके समान उज्ज्वल और दिव्य चँवर उन पर ढुर रहे थे, एक साथ उदय हुए अनेक सूर्योंके तेजको जिनके शरीरकी कान्ति दबाती थी, नाना प्रकारकी शंकाओंको मिटानेवाली दिव्यध्वनि द्वारा जो उपदेश कर रहे थे, देवोंके बजाये दुंदुभि नामके बाजोंसे आकाश और पृथ्वीमण्डल शब्दमय बन गया था, इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर और बड़े बड़े राजे-महाराजे आदि आ-आकर जिनकी पूजा करते थे, अनेक निर्ग्रन्थ मुनिराज उनकी स्तुति कर अपनेको कृतार्थ कर रहे थे, चौंतीस प्रकारके अतिशयोंसे जो शोभित थे, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य ऐसे चार अनन्त चतुष्टय आत्म-सम्पत्तिको धारण किये थे, जिन्हें संसारके सर्वोच्च महापुरुषका सम्मान प्राप्त था, तीनों लोकोंको स्पष्ट देख-जानकर उसका स्वरूप भव्य-जनोंको जो उपदेश कर रहे थे और जिनके लिये मुक्ति-रमणी वरमाला हाथमें लिए उत्सुक हो रही थी।

पणिकने भगवान्का ऐसा दिव्य स्वरूप देखकर उन्हें अपना सिर नवाया, उनकी स्तुति-पूजा की, प्रदक्षिणा दी और बैठकर धर्मोपदेश सुना। अन्तमें उसने अपनी आयुके सम्बन्धमें भगवान्से प्रश्न किया। भगवान्के उत्तरसे उसे अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी। ऐसी दशामें आत्महित करना बहुत आवश्यक समझ पणिक वहीं दीक्षा ले साधु हो गया। यहांसे विहार कर अनेक देशों और नगरोंमें धर्मोपदेश करते हुए पणिकमुनि एक दिन गंगा किनारे

आये। नदी पार होनेके लिये ये एक नावमें बैठे। मल्लाह नाव खेये जा रहा था कि अचानक एक प्रलयकीसी आंधीने आकर नावको खूब डगमगा दिया, उसमें पानी भर आया, नाव डूबने लगी। जब तक नाव डूबती है पणिक मुनिने अपने भावोंको खूब उन्नत किया। यहां तक कि उन्हें उसी समय केवलज्ञान हो गया और तुरन्त ही वे अघातिया कर्मोंका नाशकर मोक्ष चले गये। वे सेठ पुत्र पणिकमुनि मुझे भी अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी दें, जिन्होंने मेरु समान स्थिर रहकर कर्म शत्रुओंका नाश किया।

सागरदत्त सेठकी स्त्री पणिका सेठानीके पुत्र पवित्रात्मा पणिक मुनि, वर्द्धमान भगवान्‌के दर्शनकर, जो कि मोक्षके देनेवाले हैं, और उनसे अपनी आयु बहुत ही थोड़ी जानकर संसारकी सब माया-ममता छोड़ मुनि हो गये और अन्तमें कर्मोंका नाशकर मोक्ष गये, वे मुझे भी सुखी करें।

६१—भद्रबाहु मुनिराजकी कथा।

संसारका कल्याण करनेवाले और देवों द्वारा नमस्कार किये गये श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर पंचम श्रुतकेवली श्रीभद्र-बाहु मुनिराजकी कथा लिखी जाती है, जो कथा सबका हित करने वाली है।

पुण्ड्रवर्द्धन देशके कोटीपुर नामक नगरके राजा पद्मरथके समयमें वहाँ सोमशर्मा नामका एक पुरोहित ब्राह्मण हो गया है। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था। कथा-नायक भद्रबाहु इसीके लड़के थे। भद्रबाहु बचपनसे ही शान्त और गंभीर प्रकृतिके थे। उनके भव्य चेहरेको देखनेसे यह झटसे कल्पना होने लगती थी कि ये

आगे चलकर कोई बड़े भारी प्रसिद्ध महापुरुष होंगे। क्योंकि यह कहावत बिलकुल सच्ची है कि "पूतके पग पालनेमें ही नजर आ जाते हैं।" अस्तु।

जब भद्रबाहु आठ वर्षके हुए और इनका यज्ञोपवीत और मौञ्जीबन्धन हो चुका था तब एक दिनकी बात है कि ये अपने साथी बालकोंके साथ खेल रहे थे। खेल था गोलियोंका। सब अपनी अपनी हुशियारी और हाथोंकी सफाई गोलियोंको एक पर एक रख कर दिखला रहे थे। किसीने दो, किसीने चार, किसीने छह, और किसी किसीने अपनी हुशियारीसे आठ गोलियाँ तक ऊपर तले चढ़ादीं। पर हमारे कथा-नायक भद्रबाहु इन सबसे बढ़कर निकले। इन्होंने एक साथ कोई चौदह गोलियां तले ऊपर चढ़ादीं। सब बालक देखकर दंग रह गये। इसी समय एक घटना हुई। वह यह कि—श्री वर्द्धमान भगवान्‌को निर्वाणलाभ किये बाद होनेवाले पाँच श्रुतकेवलियोंमें चौदह महापूर्वके जाननेवाले चौथे श्रुतकेवली श्रीगोवर्द्धनाचार्य गिरनारकी यात्राको जाते हुए इस ओर आ गये। उन्होंने भद्रबाहुके खेलकी इस चकित करनेवाली चतुरताको देख कर निमित्तज्ञानसे समझ लिया कि पांचवें होनेवाले श्रुतकेवली भद्रबाहु ये ही होने चाहिए। भद्रबाहुसे उनका नाम वगैरह जानने पर उन्हें और भी दृढ़ निश्चय हो गया। वे भद्रबाहुको साथ लिए उसके घर पर गये। सोमशर्मासे उन्होंने भद्रबाहुको पढ़ानेके लिए माँगा। सोमशर्माने कुछ आनाकानी न कर अपने लड़केको आचार्य महाराजके सुपुर्द कर दिया। आचार्यने भद्रबाहुको अपने स्थान पर लाकर खूब पढ़ाया और सब विषयोंमें उसे आदर्श विद्वान् बना

दिया। जब आचार्यने देखा कि भद्रबाहु अच्छा विद्वान हो गया तब उन्होंने उसे वापिस घर लौटा दिया। इस लिए की कहीं सोमशर्मा यह न समझले कि मेरे लड़केको बहका कर इन्होंने साधु बना लिया। भद्रबाहु घर गये सही, पर अब उनका मन घरमें न लगने लगा। उन्होंने माता-पितासे अपने साधु होने की प्रार्थना की। माता-पिताको उनकी इस इच्छासे बड़ा दुःख हुआ। भद्रबाहुने उन्हें समझा बुझा-कर शान्त किया और आप सब माया-मोह छोड़कर गोवर्द्धनाचार्य द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। सच है, जिसने तत्वोंका स्वरूप समझ लिया वह फिर गृहजंजालको क्यों अपने सिर पर उठायेगा ? जिसने अमृत चख लिया है वह फिर क्यों खारा जल पीयेगा ? मुनि हुए बाद भद्रबाहु अपने गुरुमहाराज गोवर्द्धनाचार्यकी कृपासे चौदह महापूर्वके भी विद्वान् हो गये। जब संघाधीश गोवर्द्धनाचार्यका स्वर्गवास हो गया तब उनके बाद उनके पट्ट पर भद्रबाहु श्रुतकेवली ही बैठे। अब भद्रबाहु आचार्य अपने संघको साथ लिए अनेक देशों और नगरोंमें अपने उपदेशामृत द्वारा भव्य-जनरूपी धानको बढ़ाते हुए उज्जैनकी ओर आये और सारे संघको एक पवित्र स्थानमें ठहरा कर आप आहारके लिए शहरमें गये। जिस घरमें इन्होंने पहले ही पाँव दिया वहाँ एक बालक पलनेमें झूल रहा था, और जो अभी स्पष्ट बोलना तक न जानता था; इन्हें घरमें पाँव देते देख वह सहसा बोल उठा कि "महाराज, जाइए ! जाइए !! एक अबोध बालकको बोलता देखकर भद्रबाहु आचार्य बड़े चकित हुए। उन्होंने उसपर निमित्तज्ञानसे विचार किया तो उन्हें जान पड़ा कि यहाँ बारह वर्षका भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा और वह इतना

भीषणरूप धारण करेगा कि धर्म-कर्मकी रक्षा तो दूर रहे, पर मनुष्योंको अपनी जान बचाना भी कठिन हो जायगा। भद्रबाहु आचार्य उसी समय अन्तराय कर लौट आये। शामके समय उन्होंने अपने सारे संघको इकट्ठा कर उनसे कहा—साधुओ, यहाँ बारह वर्षका बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, और तब धर्म-कर्मका निर्वाह होना कठिन ही नहीं असंभव हो जायगा। इस लिए आप लोग दक्षिण दिशाकी ओर जायें और मेरी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई है, इस लिए मैं इधर ही रहूंगा। यह कहकर उन्होंने दशपूर्वके जाननेवाले अपने प्रधान शिष्य श्रीविशाखाचार्यको चारित्रकी रक्षाके लिए सारे संघसहित दक्षिणकी ओर रवाना कर दिया। दक्षिणकी ओर जानेवाले मुनि उधर सुख-शान्तिसे रहे। उनका चारित्र निर्विघ्न पला। और सच है, गुरुके वचनोंको माननेवाले शिष्य सदा सुखी रहते हैं।

सारे संघको चला गया देख उज्जैनके राजा चन्द्रगुप्तको उसके वियोगका बहुत रंज हुआ। उससे फिर वे भी दीक्षा ले मुनि बन गये और भद्रबाहु आचार्यकी सेवामें रहे। आचार्यकी आयु थोड़ी रह गई थी, इस लिए उन्होंने उज्जैनमें ही किसी एक बड़के झाड़के नीचे समाधि लेली और भूख-प्यास आदिकी परीषह जीतकर अन्तमें स्वर्गलाभ किया। वे जैनधर्मके सार तत्वको जाननेवाले महान् तपस्वी श्रीभद्रबाहु आचार्य हमें सुखमयी सन्मार्ग में लगावें।

सोमशर्मा ब्राह्मणके वंशके एक चमकते हुए रत्न, जिनधर्म-रूप समुद्रके बढ़ानेको पूर्ण चन्द्रमा और मुनियोंके—योगियोंके

शिरोमणि श्रीभद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली हमें वह लक्ष्मी दें जो सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है—सब धन-दौलत, विभव-सम्पत्तिमें श्रेष्ठ है।

६२–बत्तीस सेठ पुत्रोंकी कथा।

लोक और अलोकके प्रकाश करनेवाले—उन्हें देख जानकर उनके स्वरूपको समझानेवाले श्रीसर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर बत्तीस सेठ पुत्रोंकी कथा लिखी जाती है।

कौशाम्बीमें बत्तीस सेठ थे। उनके नाम थे इन्द्रदत्त, जिनदत्त, सागरदत्त—आदि। इनके पुत्र भी बत्तीस ही थे। उनके नाम समुद्रदत्त, वसुमित्र, नागदत्त, जिनदास—आदि थे। ये सब ही धर्मात्मा थे, जिनभगवान्‌के सच्चे भक्त थे, विद्वान् थे, गुणवान् थे और सम्यक्त्वरूपी रत्नसे भूषित थे। इन सबकी परस्परमें बड़ी मित्रता थी। यह एक इनके पुण्यका उदय कहना चाहिए जो सब ही धनवान्, सब ही गुणवान्, सब ही धर्मात्मा और सबकी परस्परमें गाढ़ी मित्रता। बिना पुण्यके ऐसा योग कभी मिल ही नहीं सकता।

एक दिन ये सब ही मित्र मिलकर एक केवलज्ञानी योगिराज की पूजा करनेको गये। भक्तिसे इन्होंने भगवान्‌की पूजा की और फिर उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना। भगवान्‌से पूछने पर इन्हें जान पड़ा कि इनकी उमर अब बहुत थोड़ी रह गई है। तब इस अन्तसमयके आत्महित साधनेके योगको जाने देना उचित न समझ

इन सबहीने संसारका भटकना मिटानेवाली जिनदीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर तपस्या करते हुए ये यमुना नदीके किनारे पर आए। यहीं इन्होंने प्रायोपगमन संन्यास ले लिया। भाग्य से इन्हीं दिनोंमें खूब जोरकी वर्षा हुई। नदी नाले सब पूर आगए। यमुना भी खूब चढ़ी। एक जोरका ऐसा प्रवाह आया कि ये सभी मुनि उसमें बह गए। अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्ग गए। सच है—महापुरुषोंका चरित्र सुमेरुसे कहीं स्थिरशाली होता है। स्वर्गमें दिव्य–सुखोंको भोगते हुए वे सब जिनेन्द्र भगवानकी भक्तिमें सदा लीन रहते हैं।

कर्मोंको जीतने वाले जिनेंद्र भगवान् सदा जयलाभ करें। उनका पवित्र शासन संसारमें सदा रहकर जीवोंका हित साधन करे। उनका सर्वोच्च चारित्र अनेक प्रकारके दुःसह कष्टोंको सह-कर भी मेरु सदृश स्थिर रहता है, उसकी तुलना किसीके साथ नहीं की जा सकती, वह संसारमें सर्वोत्तम आदर्श है, भव-भ्रमण मिटाने वाला है, परम सुखका स्थान है और मोह, क्रोध, मान, माया लोभ, राग–द्वेष आदि आत्मशत्रुओंका नाश करने वाला है—उन्हें जड़ मूलसे उखाड़ फैंक देनेवाला है। हे भव्यजन! आप भी इस उच्च आदर्शको प्राप्त करनेका प्रयत्न करिए, ताकि आप भी परमसुख-मोक्षके पात्र बन सकें। जिनेन्द्र भगवान् इसके लिए आप सबको

शक्ति प्रदान करें, यही भावना है।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञान भास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥

[दूसरा भाग समाप्त]

आराधना-कथाकोश ।

[तीसरा भाग]

६३-धर्मघोष मुनिकी कथा ।

सत्य धर्मका उपदेश करनेवाले अतएव सारे संसारके स्वामी जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर श्रीधर्मघोष मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

एक महीनाके उपवासे धर्ममूर्ति श्रीधर्मघोष मुनि एक दिन चम्पापुरीके किसी मुहल्लेमें पारणा कर तपोवनकी ओर लौट रहे थे । रास्ता भूल जानेसे उन्हें बड़ी दूरतक हरी हरी घास पर चलना पड़ा । चलनेमें अधिक परिश्रम होनेसे थकावटके मारे उन्हें प्यास लग आई । वे आकर गंगाके किनारे एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गये । उन्हें प्यासले कुछ व्याकुलसे देखकर गंगा देवी पवित्र जलका भरा एक लोटा लेकर उनके पास आई । वह उनसे बोली—योगिराज, मैं आपके लिए ठंडा पानी लाई हूँ, आप इसे पीकर प्यास शान्त कीजिए । मुनिने कहा—देवी, तूने अपना कर्त्तव्य बजाया, वह तेरे लिए उचित ही था; पर हमारे लिए देवों द्वारा दिया गया आहार-पानी काम नहीं आता । देवी सुनकर बड़ी चकित हुई । वह उसी समय इसका कारण जाननेके लिए विदेहक्षेत्रमें गई और

वहाँ सर्वज्ञ भगवान्को नमस्कार कर उसने पूछा—भगवन्, एक प्यासे मुनिको मैं जल पिलाने गई, पर उन्होंने मेरे हाथका पानी नहीं पिया; इसका क्या कारण है ? तब भगवान्ने इसके उत्तरमें कहा—देवोंका दिया आहार मुनिलोग नहीं कर सकते। भगवान्‌का उत्तर सुन देवी निरुपाय हुई। तब उसने मुनिको शान्ति प्राप्त हो, इसके लिए उनके चारों ओर सुगन्धित और ठन्डे जलकी वर्षा करना शुरू की। उससे मुनिको शान्ति प्राप्त हुई। इसके बाद शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। स्वर्गके देव उनकी पूजा करनेको आये। अनेक भव्य-जनों को आत्म-हितके रास्ते पर लगा कर अन्तमें उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

वे धर्मघोष मुनिराज आपको तथा मुझे भी सुखी करें, जो पदार्थोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थिति देखनेके लिए केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं, भव्य-जनोंको हितमार्गमें लगानेवाले हैं, लोक तथा अलोकके जाननेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं और भव्य-जनोंके मिथ्यात्व, मोहरूपी गाढ़े अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्य हैं।

६४–श्रीदत्त मुनिकी कथा।

केवलज्ञानरूपी सर्वोच्च लक्ष्मीके जो स्वामी हैं, ऐसे जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार कर श्रीदत्त मुनिकी कथा लिखी जाती है, जिन्होंने देवों द्वारा दिये हुए कष्टको बड़ी शान्तिसे सहा।

श्रीदत्त इलावर्द्धन पुरीके राजा जितशत्रुकी रानी इला के पुत्र थ। अयोध्याके राजा अंशुमानकी राजकुमारी अंशुमतीसे इनका ब्याह हुआ था। अंशुमतीने एक तोतेको पाल रक्खा था। जब ये पति-पत्नी विनोदके लिए चौपड़ वगैरह खेलते तब तोता कौन कितनी बार जीता, इसके लिए अपने पैरके नखसे रेखा खींच दिया करता था। पर इसमें यह दुष्टता थी कि जब श्रीदत्त जीतता तब तो यह एक ही रेखा खींचता और जब अपनी मालकिनकी जीत होती तब दो रेखाएँ खींच दिया करता था। आश्चर्य है कि पक्षी भी ठगाई कर सकते हैं। श्रीदत्त तोतेकी इस चालाकीको कई बार तो सहन कर गया। पर आखिर उसे तोते पर बहुत गुस्सा आया। सो उसने तोतेकी गरदन पकड़ कर मरोड़दी। तोता उसी दम मर गया। बड़े कष्टके साथ मरकर वह व्यन्तरदेव हुआ।

इधर साँझको एक दिन श्रीदत्त अपने महल पर बैठा हुआ प्रकृतिदेवीकी सुन्दरताको देख रहा था। इतनेमें एक बादलका बड़ा भारी टुकड़ा उसकी आँखोंके सामनेसे गुजरा। वह थोड़ी दूर न गया होगा कि देखते देखते छिन्नभिन्न हो गया। उसकी इस क्षण नश्वरताका श्रीदत्तके चित्त पर बहुत असर पड़ा। संसारकी सब वस्तुएँ उसे बिजलीकी तरह नाशवान् देख पड़ने लगीं। सर्पके समान भयंकर विषय-भोगोंसे उसे डर लगने लगा। शरीर जिसे कि वह बहुत प्यार करता था सर्व अपवित्रताका स्थान जान पड़ने लगा। उसे ज्ञान हुआ कि ऐसे दुःखमय और देखते देखते नष्ट होनेवाले संसारके साथ जो प्रेम करते हैं—माया-ममता बढ़ाते हैं, वे बड़े बे-समझ हैं। वह अपने लिए भी बहुत पछताया कि हाय! मैं

कितना मूर्ख हूँ जो अब तक अपने हितको न शोध सका। मतलब यह कि संसारकी दशासे उसे बड़ा वैराग्य हुआ और अन्तमें वह सुखकी कारण जिनदीक्षा ले ही गया।

इसके बाद श्रीदत्त मुनिने बहुतसे देशों और नगरोंमें भ्रमण कर अनेक भव्य-जनोंको सम्बोधा—उन्हें आत्महितकी ओर लगाया। घूमते फिरते वे एक बार अपने शहरकी ओर आ गये। समय जाड़ेका था। एक दिन श्रीदत्त मुनि शहर बाहर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे, उन्हें ध्यानमें खड़ा देख उस तोतेके जीवको, जिसे श्रीदत्तने गरदन मरोड़ मार डाला था और जो मरकर व्यन्तर हुआ था, अपने बैरी पर बड़ा क्रोध आया। उस बैरका बदला लेनेके अभिप्रायसे उसने मुनि पर बड़ा उपद्रव किया। एक तो वैसे ही जाड़ेका समय, उस पर इसने बड़ा जोरकी ठंढी गार हवा चलाई, पानी बरसाया, ओले गिराये। मतलब यह कि उसने अपना बदला चुकानेमें कोई बात उठा न रखकर मुनिको बहुत ही कष्ट दिया। श्रीदत्त मुनिराजने इन सब कष्टोंको बड़ी शान्ति और धीरजके साथ सहा। व्यन्तर इनका पूरा दुश्मन था, पर तब भी इन्होंने उस पर रंच मात्र भी क्रोध न किया। वे वैरी और हितूको सदा समान भावसे देखते थे। अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर वे कभी नाश न होनेवाले मोक्ष स्थानको चले गये।

जितशत्रु राजाके पुत्र श्रीदत्त मुनि देवकृत कष्टोंको बड़ी शान्तिके साथ सहकर अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा सब कर्मोंका नाश

कर मोक्ष गये। वे केवलज्ञानी भगवान् मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें, जिससे मुझे भी शान्ति प्राप्त हो।

६५—वृषभसेनकी कथा।

जिन्हें सारा संसार बड़े आनन्दके साथ सिर झुकाता है, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर वृषभसेनका चरित लिखा जाता है।

उज्जैनके राजा प्रद्योत एक दिन उन्मत्त हाथी पर बैठकर हाथी पकड़नेके लिए स्वयं किसी एक घने जंगलमें गये। हाथी इन्हें बड़ी दूर ले भागा और आगे आगे भागता ही चला जाता था। इन्होंने उसके ठहरानेकी बड़ी कोशिश की, पर उसमें ये सफल नहीं हुए। भाग्यसे हाथी एक झाड़के नीचे होकर जा रहा था कि इन्हें सुबुद्धि सूझ गई। ये उसकी टहनी पकड़ कर लटक गये और फिर धीरे धीरे नीचे उतर आये। यहांसे चलकर ये खेट नामके एक छोटेसे पर बहुत सुन्दर गाँवके पास पहुँचे। एक पनघट पर जाकर ये बैठ गये। इन्हें बड़ी प्यास लग रही थी। इन्होंने उसी समय पनघट पर पानी भरनेको आई हुई जिनपालकी लड़की जिनदत्तासे जल पिला देनेके लिए कहा। उसने इनके चेहरेके रंग-ढंगसे इन्हें कोई बड़ा आदमी समझ जल पिला दिया। बाद अपने घर पर आकर उसने प्रद्योतका हाल अपने पितासे कहा। सुनकर जिनपाल दौड़ा हुआ आकर इन्हें अपने घर लिवा लाया और बड़े आदर सत्कारके साथ इसने उन्हें स्नान-भोजन कराया। प्रद्योत उसकी

इस मेहमानीसे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जिनपालको अपना सब परिचय दिया। जिनपालने ऐसे महान् अतिथि द्वारा अपना घर पवित्र होनेसे अपनेको बड़ा भाग्यशाली माना। वे कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इतनेमें उनके सब नौकर चाकर भी उन्हें लिवानेको आ गये। प्रद्योत अपने शहर जानेको तैयार हुए। इसके पहले एक बात यह कह देनेकी है कि जिनदत्ताको जबसे प्रद्योतने देखा तबहीसे उनका उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया था और इसीसे जिनपालकी सम्मति पा उन्होंने उसके साथ ब्याह भी कर लिया था। दोनों नव दम्पति सुखके साथ अपने राज्यमें आ गये। जिनदत्ताको तब प्रद्योत ने अपनी पट्टरानीका सम्मान दिया। सच है, समय पर दिया हुआ थोड़ा भी दान बहुत ही सुखोंका देनेवाला होता है। जैसे वर्षाकालमें बोया हुआ बीज बहुत फलता है। जिनदत्ताके उस जलदानसे, जो उसने प्रद्योतको किया था, जिनदत्ताको एक राजरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये नये दम्पति सुखसे संसार-यात्रा बिताने लगे—प्रतिदिन नये नये सुखोंका स्वाद लेनेमें इनके दिन कटने लगे।

कुछ दिनों बाद इनके एक पुत्र हुआ। जिस दिन पुत्र होने वाला था, उसी रातको राजा प्रद्योतने सपनेमें एक सफेद बैलको देखा था। इस लिए पुत्रका नाम भी उन्होंने वृषभसेन रख दिया। पुत्र-लाभ हुए बाद राजाकी प्रवृत्ति धर्म-कार्योंकी ओर और अधिक झुक गई। वे प्रतिदिन पूजा-प्रभावना, अभिषेक, दान-आदि पवित्र कार्योंको बड़ी भक्ति श्रद्धाके साथ करने लगे। इसी तरह सुखके साथ कोई आठ बरस बीत गये। जब वृषभसेन कुछ होशियार हुआ

तब एक दिन राजाने उससे कहा—बेटा, अब तुम अपने इस राज्यके कारभारको सम्हालो। मैं अब जिन भगवान्के उपदेश किये पवित्र तपको ग्रहण करता हूँ। वही शान्ति प्राप्तिका कारण है। वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, आप तप क्यों ग्रहण करते हैं, क्या परलोक-सिद्धि—मोक्षप्राप्ति राज्य करते हुए नहीं हो सकती? राजाने कहा—बेटा हाँ, जिसे सच्ची सिद्धि या मोक्ष कहते हैं, वह बिना तप किये नहीं होती। जिन भगवान्ने मोक्षका कारण एक मात्र तप बताया है। इस लिए आत्महित करनेवालोंको उसका ग्रहण करना अत्यन्त ही आवश्यक है। राजपुत्र वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, यदि यह बात है तो फिर मैं ही इस दुःखके कारण राज्य को लेकर क्या करूँगा? कृपाकर यह भार मुझ पर न रखिए राजाने वृषभसेनको बहुत समझाया, पर उसके ध्यानमें तप छोड़कर राज्यग्रहण करनेकी बात बिलकुल न आई। लाचार हो राजा राज्यभार अपने भतीजेको सौंपकर आप पुत्रके साथ जिन-दीक्षा ले गये।

यहाँसे वृषभसेन मुनि तपस्या करते हुए अकेले ही देश, विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ घूमते-फिरते एक दिन कौशाम्बीके पास आ एक छोटीसी पहाड़ी पर ठहरे। समय गर्मीका था। बड़ी तेज धूप पड़ती थी। मुनिराज एक पवित्र शिला पर कभी बैठे और कभी खड़े इस कड़ी धूपमें योग साधा करते थे। उनकी इस कड़ी तपस्या और आत्मतेजसे दिपते हुए उनके शारीरिक सौन्दर्यको देख लोगोंकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई। जैनधर्म पर उनका विश्वास खूब दृढ़ जम गया।

एक दिन चारित्र-चूडामणि श्रीवृषभसेन मुनि भिक्षार्थ शहर में गये हुये थे कि पीछेसे किसी जैनधर्मके प्रभावको न सहनेवाले बुद्धदास नामके बुद्धधर्मीने मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको आगसे तपाकर लाल सुर्ख कर दिया। सच है, साधु-महात्माओंका प्रभाव दुर्जनोंसे नहीं सहा जाता। जैसे सूरजके तेजको उल्लू नहीं सह सकता। जब मुनिराज आहार कर पीछे लौटे और उन्होंने शिलाको अग्निसे तपी हुई देखा, यदि वे चाहते—भौतिक शरीरसे उन्हें मोह होता तो बिलाशक वे अपनी रक्षा कर सकते थे। पर उनमें यह बात न थी; वे कर्त्तव्यशील थे अपनी प्रतिज्ञाओंका पालना वे सर्वोच्च समझते थे। यही कारण था कि वे सन्यासकी शरण ले उस आग से धधकती शिला पर बैठ गये। उस समय उनके परिणाम इतने ऊँचे चढ़े कि उन्हें शिला पर बैठते ही केवलज्ञान हो गया और उसी समय अघातिया कर्मोंका नाशकर उन्होंने निर्वाण-लाभ किया। सच है, महा पुरुषोंका चारित्र मेरुसे भी कहीं अधिक स्थिर होता है।

जिसके चित्तरूपी अत्यन्त ऊँचे पर्वतकी तुलनामें बड़े बड़े पर्वत एक ना कुछ चीज परमाणुकी तरह दीखने लगते हैं, समुद्र दूबाकी अणी पर ठहरे जलकणसा प्रतीत होता है, वे गुणोंके समुद्र और कर्मोंको नाश करनेवाले वृषभसेन जिन मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो सब मनचाही सिद्धियोंके देनेवाले हैं।

६६—कार्तिकेय मुनिकी कथा।

संसारके सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंको देखने जाननेके लिए केवलज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है और जो पवित्रताकी प्रतिमा और सब सुखोंके दाता हैं, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर कार्तिकेय मुनिकी कथा लिखी जाती है।

कार्तिकपुरके राजा अग्निदत्तकी रानी वीरवतीके कृत्तिका नामकी एक लड़की थी। एक बार अठाईके दिनोंमें उसने आठ दिनके उपवास किये। अन्तके दिन वह भगवान्‌की पूजा कर शेषाको-भगवान् के लिए चढ़ाई फूलमालाको लाई। उसे उसने अपने पिताको दिया। उस समय उसकी दिव्य रूपराशिको देखकर उसके पिता अग्निदत्त की नियत ठिकाने न रही। कामके वश हो उस पापीने बहुतसे अन्य धर्मी और कुछ जैन साधुओंको इकट्ठा कर उनसे पूछा-योगी-महात्माओं, आप कृपा कर मुझे बतलावें कि मेरे घरमें पैदा हुये रत्नका मालिक मैं ही हो सकता हूं या कोई और? राजाका प्रश्न पूरा होता है कि सब ओरसे एक ही आवाज आई कि महाराज, उस रत्नके तो आप ही मालिक हो सकते हैं, न कि दूसरा। पर जैनसाधुओंने राजाके प्रश्न पर कुछ गहरा विचार कर इस रूपमें राजाके प्रश्नका उत्तर दिया—राजन्, यह बात ठीक है कि अपने यहां उत्पन्न हुए रत्नके मालिक आप हैं, पर एक कन्या-रत्नको छोड़ कर। उसकी मालिकी पिताके नाते से ही आप कर सकते हैं और रूपमें नहीं। जैन साधुओं का यह हितभरा उत्तर राजाको बड़ा बुरा लगा और लगना ही चाहिए; क्योंकि पापियोंको हितकी बात कब सुहाती है?

राजाने गुस्सा होकर उन मुनियोंको देश बाहर कर दिया और अपनी लड़कीके साथ स्वयं ब्याह कर लिया। सच है, जो पापी हैं, कामी हैं जिन्हें आगामी दुर्गतियोंमें दुःख उठाना है, उनमें कहाँ धर्म, कहाँ लाज, कहां नीति-सदाचार और कहाँ सुबुद्धि ?

कुछ दिनों बाद कृत्तिकाके दो सन्तान हुईं। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्रका नाम रखा कार्तिकेय और पुत्रीका नाम वीरमती। वीरमती बड़ी खूबसूरत थी। उसका ब्याह रोहेड़ नगरके राजा क्रौंच के साथ हुआ। वीरमती वहां रहकर सुखके साथ दिन बिताने लगी।

इधर कार्तिकेय भी बड़ा हुआ। अब उसकी उम्र कोई १४ वर्ष की हो गई थी। एक दिन वह अपने साथी राजकुमारोंके साथ खेल रहा था। वे सब अपने नाना के यहाँ से आए हुए अच्छे अच्छे कपड़े और आभूषण पहने हुए थे। पूछने पर कार्तिकेयको ज्ञात हुआ कि वे वस्त्राभरण उन सब राजकुमारोंके नाना-मामाके यहांसे आए हैं। तब उसने अपनी माँ से जाकर पूछा—क्यों माँ! मेरे साथी राजपुत्रोंके लिए तो उनके नाना मामा अच्छे अच्छे वस्त्राभरण भेजते हैं, भला फिर मेरे नाना-मामा मेरे लिए क्यों नहीं भेजते हैं ? अपने प्यारे पुत्र की ऐसी भोली बात सुनकर कृत्तिका का हृदय भर आया। आँखोंसे आँसू बह चले। अब वह उसे क्या कह कर समझाये और कहनेको जगह ही कौनसी बच रही थी। परन्तु अबोध पुत्रके आग्रह से उसे सच्ची हालत कहनेको बाध्य होना पड़ा। वह रोती हुई बोली—बेटा, मैं इस महापापकी बात तुझसे क्या कहूँ। कहते हुए छाती फटती है। जो बात कभी नहीं हुई, वही बात मेरे तेरे सम्बन्धमें है। वह केवल यही कि जो मेरे पिता हैं वे ही तेरे भी पिता हैं। मेरे

पिताने मुझसे बलात् ब्याह कर मेरी जिन्दगी कलंकित की। उसीका तू फल है। कार्तिकेयको काटो तो खून नहीं। उसे अपनी माँ का हाल सुनकर बेहद दुःख हुआ। लज्जा और आत्मग्लानिसे उसका हृदय तिलमिला उठा। इसके लिए वह लाइलाज था। उसने फिर अपनी माँ से पूछा—तो क्यों माँ! उस समय मेरे पिताको ऐसा अनर्थ करते किसीने रोका नहीं—सब कानोंमें तेल डाले पड़े रहे ? उसने कहा—बेटा! रोका क्यों नहीं ? मुनियोंने उन्हें रोका था, पर उनकी कोई बात नहीं सुनी गई—उलटे वे ही देशसे निकाल दिये गए।

कार्तिकेयने तब पूछा—माँ! वे गुणवान् मुनि कैसे होते हैं ? कृत्तिका बोली—बेटा! वे शान्त रहते हैं, किसीसे लड़ते झगड़ते नहीं। कोई दुम गालियाँ भी उन्हें दे जाय तो वे उससे भी कुछ नहीं कहते और न क्रोध ही करते हैं। बेटा! वे बड़े पण्डित होते हैं, उनके पास धन-दौलत तो दूर रहा, एक फूटी कौड़ी भी नहीं रहती। वे कभी कपड़े नहीं पहिनते, उनका वस्त्र केवल यह आकाश है। चाहे कैसी ही ठण्ड या गर्मी पड़े, चाहे कैसी ही बरसात हो उनके लिए सब समान है। बेटा! वे बड़े दयावान होते हैं, कभी किसी जीवको जरा भी नहीं सताते। इसी दयाको पूरी तौरसे पालनेके लिए वे अपने पास सदा मोरके अत्यन्त कोमल पंखोंकी एक पाछी रखते हैं और जहां उठते बैठते हैं, वहांकी जमीनको पहले उस पीछीसे झाड़-पौंछकर साफ कर लेते हैं। उनके हाथमें लकड़ीका एक कमण्डलु होता है, जिसमें वे शौच वगैरहके लिए प्रासुक (जीवरहित) पानी रखते हैं। बेटा, उनकी चर्या बड़ी ही कठिन है। वे भिक्षाके लिये

श्रावकोंके यहां जाते हैं जरूर, पर कभी मांगकर नहीं खाते। किसीने उन्हें आहार नहीं दिया तो वे भूखे ही पीछे तपोवनमें लौट आते हैं। वे आठ आठ, पन्द्रह पन्द्रह दिनके उपवास करते हैं। बेटा, मैं तुझे उनके आचार-विचारकी बातें कहां तक बताऊँ। तू इतनेमें ही समझले कि संसारके सब साधुओं में वे ही सच्चे साधु हैं। अपनी माता द्वारा जैन साधुओंकी तारीफ सुनकर कार्तिकेयकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई। उसे अपने पिताके कार्यसे वैराग्य तो पहले ही हो चुका था, उस पर माताके इसप्रकार समझानेसे उसकी जड़ और मजबूत हो गई। वह उसी समय सब मोह-ममता तोड़कर घरसे निकल गया और मुनियोंके स्थान तपोवनमें जा पहुँचा। मुनियोंका संघ देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने बड़ी भक्तिसे उन सब साधुओंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दीक्षाके लिए उनसे प्रार्थना की। संघके आचार्यने उसे होनहार जान दीक्षा देकर मुनि बना लिया। कुछ दिनोंमें ही कार्तिकेय मुनि, आचार्यके पास शास्त्राभ्यास कर बड़े विद्वान हो गए।

कार्तिकेयकी माताने पुत्रके सामने मुनियोंकी बहुत प्रशंसा की थी, पर उसे यह मालूम न था कि उसकी की हुई प्रशंसा का कार्त्तिकेय पर यह प्रभाव पड़ेगा कि वह दीक्षा लेकर मुनि बन जाए। इसलिये जब उसने जाना कि कार्तिकेय योगी बनना चाहता है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ। वह कार्तिकेयके सामने बहुत रोई, गिड़गिड़ाई कि वह दीक्षा न ले, परन्तु कार्तिकेय अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं हुआ और तपोवनमें जाकर साधु बन ही गया। कार्तिकेयकी जुदाईका दुःख सहना उसकी मां के लिये बड़ा कठिन

हो गया। दिनोंदिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और आखिर वह पुत्र शोकसे मृत्युको प्राप्त हुई। मरते समय भी वह पुत्रके आर्त्तध्यानसे मरी अतः मरकर व्यन्तर देवी हुई।

उधर कार्तिकेय मुनि घूमते-फिरते एक बार रोहेड़ नगरी की ओर आगए, जहां इनकी बहिन ब्याही थी। ज्येष्ठका महीना था। खूब गर्मी थी। अमावस्याके दिन कार्तिकेय मुनि शहरमें भिक्षाके लिए गए। राजमहलके नीचे होकर वे जा रहे थे कि उन पर महल पर बैठी हुई उनकी बहिन वीरमती की नजर पड़ गई। वह उसी समय अपनी गोदमें सिर रखकर लेटे हुए पतिके सिरको नीचे रखकर दौड़ी हुई भाईके पास आई और बड़ी भक्तिसे उसने भाईको हाथ जोड़कर नमस्कार किया। प्रेमके वशीभूत हो वह उनके पांवोंमें गिर पड़ी। और ठीक है—भाई होकर फिर मुनि हो तब किसका प्रेम उन पर न हो? क्रौंचराजने जब एक नंगे भिखारीके पांव पड़ते अपनी रानीको देखा तब उसके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने आकर मुनिको खूब मार लगाई। यहां तक कि मुनि मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। सच है; पापी, मिथ्यात्वी और जैनधर्मसे द्वेष करनेवाले लोग ऐसा कौन नीच कर्म नहीं कर गुजरते जो जन्म-जन्ममें अनन्त दुःखोंका देनेवाला न हो।

कार्तिकेयको अचेत पड़े देखकर उनकी पूर्वजन्मकी माँ, जो इस जन्ममें व्यन्तर देवी हो गई थी, मोरनीका रूप ले उनके पास आई और उन्हें उठा लाकर बड़े यत्नसे शीतलनाथ भगवानके मंदिर में एक निरापद जगहमें रख दिया। कार्तिकेय मुनिकी हालत बहुत

खराब हो चुकी थी। उनके अच्छे होनेकी कोई सूरत न थी। इसलिये ज्योंही मुनिको मूर्च्छासे चेत हुआ उन्होंने समाधि ले ली। उसी दशामें शरीर छोड़कर वे स्वर्गधाम सिधारे। तब देवोंने आ कर उनकी भक्तिसे बड़ी पूजा की। उसी दिनसे वह स्थान भी कार्तिकेय तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ और वे वीरमतीके भाई थे इसलिए 'भाई बीज' के नामसे दूसरा लौकिक पर्व प्रचलित हुआ।

आप लोग जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट ज्ञानका अभ्यास करें। वह सब सन्देहोंका नाश करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाला है। जिनका ऐसा उच्च ज्ञान संसारके पदार्थों का स्वरूप दिखानेके लिये दिये की तरह सहायता करनेवाला है वे, देवों द्वारा पूजे जानेवाले, जिनेन्द्र भगवान मुझे भी कभी नाश न होनेवाला सुख देकर अविनाशी बनावें।

६७—अभयघोष मुनिकी कथा।

देवों द्वारा पूजा भक्ति किये गये जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर अभयघोष मुनिका चरित्र लिखा जाता है।

अभयघोष काकन्दीके राजा थे। उनकी रानीका नाम अभयमती था। दोनोंमें परस्पर बहुत प्यार था।

एक दिन अभयघोष घूमनेको जंगलमें गए हुये थे। इसी समय एक मल्लाह एक बड़े और जीवित कछुएके चारों पांव बांध कर उसे लकड़ीमें लटकाये हुए लिये जा रहा था। पापी अभयघोषकी उस पर नजर पड़ गई। उन्होंने मूर्खताके वश हो अपनी

तलवारसे उसके चारों पाँवोंको काट दिया। बड़े दुःखकी बात है कि पापी लोग बेचारे ऐसे निर्दोष जीवोंको निर्दयताके साथ मार डालते हैं और न्याय अन्यायका कुछ विचार नहीं करते! कछुआ उसी समय तड़फड़ा कर गत प्राण हो गया। मरकर वह अकाम-निर्जराके फलसे इन्हीं अभयघोषके यहां चंडवेग नामका पुत्र हुवा।

एक दिन राजाको चन्द्र-ग्रहण देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। उन्होंने विचार किया—जो एक महान तेजस्वी ग्रह है, जिसकी तुलना कोई नहीं कर सकता, और जिसकी गणना देवोंमें है, वह भी जब दूसरोंसे हार खा जाता है तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या? जिनके कि सिर पर काल सदा चक्कर लगाता रहता है। हाय, मैं बड़ा ही मूर्ख हूँ जो आज तक विषयों में फँसा रहा और कभी अपने हितकी ओर मैंने ध्यान नहीं दिया। मोहरूपी गाढ़े अँधेरेने मेरी दोनों आँखोंको ऐसी अन्धी बना डाला, जिससे मुझे अपने कल्याणका रास्ता देखने या उस पर सावधानीके साथ चलनेको सूझ ही न पड़ा। इसी मोहके पापमय जालमें फँस कर मैंने जैनधर्मसे विमुख होकर अनेक पाप किये। हाय, मैं अब इस संसाररूपी अथाह समुद्र को पारकर सुखमय किनारेको कैसे प्राप्त कर सकूँगा? प्रभो, मुझे शक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं आत्मिक सच्चा सुख लाभ कर सकूँ। इस विचारके बाद उन्होंने स्थिर किया कि जो हुआ सो हुआ। अब भी मुझे अपने कर्त्तव्य के लिये बहुत समय है। जिस प्रकार मैंने संसारमें रहकर विषय सुख भोगा—शरीर और इन्द्रियोंको खूब सन्तुष्ट किया, उसी तरह अब मुझे अपने आत्महितके लिए कड़ीसे कड़ी तपस्या कर अनादि

कालसे पीछा किये हुए इन आत्मशत्रु कर्मोंका नाश करना उचित है—यही मेरे पहले किये कर्मोंका पूर्ण प्रायश्चित्त है, और ऐसा करनेसे ही मैं शिव-रमणीके हाथोंका सुख-स्पर्श कर सकूँगा। इस प्रकार स्थिर विचार कर अभयघोषने सब राजभार अपने कुँवर चण्डवेगको सौंप जिन दीक्षा ग्रहण करली, जो कि इन्द्रियोंको विषयों की ओरसे हटाकर उन्हें आत्मशक्तिके बढ़ानेको सहायक बनाती है। इसके बाद अभयघोष मुनि संसार-समुद्रसे पार करनेवाले और जन्म-जरा-मृत्युको नष्ट करनेवाले अपने गुरु महाराजको नमस्कार कर और उनकी आज्ञा ले देश विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विहार कर गये। इसके कितने ही वर्षों बाद वे घूमते-फिरते फिर एक बार अपनी राजधानी काकन्दीकी ओर आ निकले। एक दिन ये वीरासनसे तपस्या कर रहे थे। इसी समय इनका पुत्र चण्डवेग इस ओर आ निकला। पाठकोंको याद होगा कि चण्डवेगकी और इसके पिता अभयघोषकी शत्रुता है। कारण—चण्डवेग पूर्व जन्ममें कछुआ था और उसके पाँव अभयघोषने काट डाले थे। सो चण्डवेग की जैसे ही इन पर नजर पड़ी उसे अपने पूर्वकी याद आ गई। उसने क्रोधसे अन्धे होकर उनके भी हाथ पाँवोंको काट डाला। सच है धर्महीन अज्ञानी जन कौन पाप नहीं कर डालते।

अभयघोष मुनि पर महान् उपसर्ग हुआ, पर वे तब भी मेरुके समान अपने कर्त्तव्यमें दृढ़ बने रहे। अपने आत्मध्यानसे वे रत्तीभर भी न चिगे। इसी ध्यान बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर अंतमें उन्होंने अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया। सच है, आत्मशक्ति बड़ी गहन है—आश्चर्य पैदा करनेवाली है। देखिए कहाँ तो अभयघोष

मुनि पर दुःसह कष्टका आना और कहाँ मोक्ष प्राप्तिका कारण दिव्य आत्मध्यान!

सत्पुरुषों द्वारा सेवा किये गये वे अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्षका सुख दें, जिन्होंने दुःसह परीषहको जीता, आत्मशत्रु राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ—आदिको नष्ट किया, और जन्म जन्ममें दारुण दुःखोंके देनेवाले कर्मोंका क्षय कर मोक्षका सर्वोच्च सुख, जिस सुखकी कोई तुलना नहीं कर सकता, प्राप्त किया।

६८—विद्युच्चर मुनिकी कथा।

सब सुखोंके देनेवाले और संसारमें सर्वोच्च गिने जानेवाले जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर शास्त्रोंके अनुसार विद्युच्चर मुनिकी कथा लिखी जाती है।

मिथिलापुरके राजा वामरथके राज्यमें इनके समय कोतवाल के ओहदे पर एक यमदण्ड नामका मनुष्य नियुक्त था। यहीं एक विद्युच्चर नामका चोर रहता था। यह अपने चोरीके फनमें बड़ा चलता हुआ था। सो यह क्या करता कि दिनमें तो एक कोढ़ीके वेषमें किसी सुनसान मन्दिरमें रहता और ज्यों ही रात होती कि एक सुन्दर मनुष्यका वेष धारण कर खूब मजा-मोज मारता। यही ढंग इसका बहुत दिनोंसे चला आता था। पर इसे कोई पहिचान न सकता था। एक दिन विद्युच्चर राजाके देखते देखते खास उन्हींके ही हारको चुरा लाया। पर राजासे तब कुछ भी न बन पड़ा। सुबह

उठकर राजाने कोतवालको बुलाकर कहा—देखो, कोई चोर अपनी सुन्दर वेषभूषासे मुझे मुग्ध बनाकर मेरा रत्न-हार उठा ले गया है। इस लिए तुम्हें हिदायत की जाती है कि सात दिनके भीतर उस हारको या उसके चुरा लेजानेवालेको मेरे सामने उपस्थित करो, नहीं तो तुम्हें इसकी पूरी सजा भोगनी पड़ेगी। जान पड़ता है तुम अपने कर्तव्य पालनमें बहुत त्रुटि करते हो। नहीं तो राजमहलमेंसे चोरी हो जाना कोई कम आश्चर्यकी बात नहीं है! 'हुक्म हुजूरका' कहकर कोतवाल चोरके ढूँढ़नेको निकला। उसने सारे शहरकी गली-कूँची, घर-बार आदि एक एक करके छान डाला पर उसे चोरका पता कहीं न चला। ऐसे उसे छह दिन बीत गये। सातवें दिन वह फिर घर बाहर हुआ। चलते चलते उसकी नजर एक सुनसान मन्दिर पर पड़ी। वह उसके भीतर घुस गया। वहाँ उसने एक कोढ़ीको पड़ा पाया। उस कोढ़ीका रंगढंग देखकर कोतवालको कुछ सन्देह हुआ। उसने उससे कुछ बातें-चीतें इस ढंगसे की कि जिससे कोतवाल उसके हृदयका कुछ पता पासके। यद्यपि उस बात-चीतसे कोतवालको जैसी चाहिए थी वैसी सफलता न हुई, पर तब भी उसके पहले शकको सहारा अवश्य मिला। कोतवाल उस कोढ़ीको राजाके पास ले गया और बोला—महाराज, यही आपके हारका चोर है। राजाके पूछने पर उस कोढ़ीने साफ इंकार कर दिया कि मैं चोर नहीं हूँ। मुझे ये जबरदस्ती पकड़ लाये हैं। राजाने कोतवालकी ओर तब नजर की। कोतवालने फिर भी दृढ़ताके साथ कहा कि महाराज, यही चोर है। इसमें कोई सन्देह नहीं। कोतवालको बिना कुछ सुबूतके इस प्रकार जोर देकर

कहते देखकर कुछ लोगोंके मनमें यह विश्वास जम गया कि यह अपनी रक्षाके लिए जबरन इस बेचारे गरीब भिखारीको चोर बताकर सजा दिलवाना चाहता है। उसकी रक्षा हो जाय, इस आशयसे उन लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि महाराज, कहीं ऐसा न हो कि बिना ही अपराधके इस गरीब भिखारीको कोतवाल साहबकी मार खाकर बेमौत मर जाना पड़े और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये इसे मारेंगे अवश्य। तब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे अपना हार भी मिल जाय और बेचारे गरीबकी जान भी न जाय। जो हो, राजाने उन लोगोंकी प्रार्थना पर ध्यान दिया या नहीं, पर यह स्पष्ट है कि कोतवाल साहब उस गरीब कोढ़ीको अपने घर लिवा ले गये और जहाँ तक उनसे बन पड़ा उन्होंने उसके मारने-पीटने, सजा देने, बाँधने आदिमें कोई कसर न की। वह कोढ़ी इतने दुःसह कष्ट दिये जाने पर भी हर बार यही कहता रहा कि मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ। दूसरे दिन कोतवालने फिर उसे राजाके सामने खड़ा करके कहा—महाराज, यही पक्का चोर है। कोढ़ीने फिर भी यही कहा कि महाराज मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ। सच है, चोर बड़े ही कट्टर साहसी होते हैं।

तब राजाने उससे कहा—अच्छा, मैं तेरा सब अपराध क्षमाकर तुझे अभय देता हूँ, तू सच्चा सच्चा हाल कहदे कि तू चोर है या नहीं? राजासे जीवदान पाकर उस कोढ़ी या विद्युच्चरने कहा—यदि ऐसा है तो लीजिए कृपानाथ, मैं सब सच्ची बात आपके सामने प्रगट करे देता हूँ। यह कहकर वह बोला—राजाधिराज, अपराध क्षमा हो। वास्तवमें मैं ही चोर हूँ। आपके कोतवाल साहब

का कहना सत्य है। सुनकर राजा चकित हो गये। उन्होंने तब विद्युच्चरसे पूछा—जब कि तू चोर था तब फिर तूने इतनी मार-पीट कैसे सहली रे? विद्युच्चर बोला—महाराज, इसका तो कारण यह है कि मैंने एक मुनिराज द्वारा नरकोंके दुःखोंका हाल सुन रक्खा था। तब मैंने विचारा कि नरकोंके दुःखोंमें और इन दुखोंमें तो पर्वत और राईकासा अन्तर है। और जब मैंने अनन्त बार नरकोंके भयंकर दुःख, जिनके कि सुनने मात्रसे ही छाती दहल उठती है, सहे हैं तब इन तुच्छ—ना कुछ चीज दुखोंका सहलेना कौन बड़ी बात है! यही विचार कर मैंने सब कुछ सहकर चूँ तक भी नहीं की। विद्युच्चरसे उसकी सच्ची घटना सुनकर राजाने खुश होकर उसे वर दिया कि तुझे 'जो कुछ माँगना हो मांग'। मुझे तेरी बातें सुननेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। तब विद्युच्चरने कहा—महाराज, आपकी इस कृपाका मैं अत्यन्त उपकृत हूँ। इस कृपाके लिए आप जो कुछ मुझ देना चाहते हैं वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहबको दीजिए। राजा सुनकर और भी अधिक अचम्भेमें पड़ गये। उन्होंने विद्युच्चरसे कहा—क्यों यह तेरा मित्र कैसे है? विद्युच्चरने तब कहा—सुनिए महाराज, मैं सब आपको खुलासा सुनाता हूँ। यहाँसे दक्षिणकी ओर आभीर प्रान्तमें बहनेवाली वेना नदीके किनारे पर बेनातट नामका एक शहर बसा हुआ है। उसके राजा जितशत्रु और उनकी रानी जयावती, ये मेरे माता पिता हैं। मेरा नाम विद्युच्चर है। मेरे शहरमें ही एक यमपाश नामके कोतवाल थे। उनकी स्त्री यमुना थी। ये आपके कोतवाल यमदण्ड साहब उन्हींके पुत्र हैं। हम दोनों एक ही गुरुके पास पढ़े हुए हैं। इस लिए तभीसे मेरी

इनके साथ मित्रता है। विशेषता यह है कि इन्होंने तो कोतवाली सम्बन्धी शास्त्राभ्यास किया था और मैंने चौर्यशास्त्रका। यद्यपि मैंने यह विद्या केवल विनोदके लिए पढ़ी थी, तथापि एक दिन हम दोनों अपनी अपनी चतुरताकी तारीफ कर रहे थे; तब मैंने जरा घमण्डके साथ कहा—भाई, मैं अपने फनमें कितना होशियार हूँ, इसकी परीक्षा मैं इसीसे कराऊँगा कि जहाँ तुम कोतवालीके ओहदे पर नियुक्त होगे, वहीं मैं आकर चोरी करूँगा। तब इन महाशयने कहा—अच्छी बात है, मैं भी उसी जगह रहूँगा जहाँ तुम चोरी करोगे और मैं तुमसे शहरकी अच्छी तरह रक्षा करूँगा—तुम्हारे द्वारा मैं उसे कोई तरहकी हानि न पहुँचने दूँगा।

इसके कुछ दिनों बाद मेरे पिता जितशत्रु मुझे सब राज-भार दे जिनदीक्षा ले गये। मैं तब राजा हुआ। और इनके पिता यमपाश भी तभी जिनदीक्षा लेकर साधु बन गये। इनके पिताकी जगह तब इन्हें मिली। पर ये मेरे डरके मारे मेरे शहरमें न रह-कर यहाँ आकर आपके कोतवाल नियुक्त हुए। मैं अपनी प्रतिज्ञाके वश चोर बनकर इन्हें ढूँढ़नेको यहाँ आया। यह कहकर फिर विद्युच्चरने उनके हारके चुरानेकी सब बातें कह सुनाईं और फिर यमदण्डको साथ लिए वह अपने शहरमें आ गया।

विद्युच्चरको इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने राज महलमें पहुँचते ही अपने पुत्रको बुलाया और उसके साथ जिनेन्द्र भगवान्का पूजा-अभिषेक किया। इसके बाद वह सब राजभार पुत्रको सौंपकर आप और बहुतसे राजकुमारोंके साथ जिनदीक्षा ले मुनि बन गया।

यहाँसे विहार कर विद्युच्चर मुनि अपने सारे संघको साथ लिए देश विदेशोंमें बहुत घूमे-फिरे। बहुतसे बे-समझ या मोह-मायामें फँसे हुए जनोंको इन्होंने आत्महितके मार्ग पर लगाया और स्वयं भी काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेषादि आत्मशत्रुओंका प्रभुत्व नष्ट कर उन पर विजय लाभ किया। आत्मोन्नतिके मार्गमें दिन बदिन बे-रोक टोक ये बढ़ने लगे। एक दिन घूमते-फिरते ये तामलिप्तपुरीकी ओर आये। अपने संघके साथ ये पुरीमें प्रवेश करनेको ही थे कि इतनेमें वहाँकी चामुण्डा देवीने आकर भीतर घुसनेसे इन्हें रोका और कहा—योगिराज, जरा ठहरिए, अभी मेरी पूजाविधि हो रही है। इस लिए जब तक वह पूरी न हो जाये तब तक आप यहीं ठहरें—भीतर न जायें। देवीके इस प्रकार मना करने पर भी अपने शिष्योंके आग्रहसे वे न रुककर भीतर चले गये और पुरीके पश्चिम तरफके परकोटेके पास कोई पवित्र जगह देखकर वहीं सारे संघने ध्यान करना शुरू कर दिया। अब तो देवीके क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। उसने अपनी मायासे कोई कबूतरके बराबर डाँस तथा मच्छर आदि खून पीनेवाले जीवोंकी सृष्टि रचकर मुनि पर घोर उपद्रव किया। विद्युच्चर मुनिने इस कष्टको बड़ी शान्तिसे सहकर बारह भावनाओंके चिन्तनसे अपने आत्माको वैराग्यकी ओर खूब दृढ़ किया और अन्तमें शुक्ल-ध्यानके बलसे कर्मोंका नाश कर अक्षय और अनन्त मोक्षके सुखको अपनाया।

उन देवों, विद्याधरों, चक्रवर्त्तियों, तथा राजों—महाराजों द्वारा, जो अपने मुकुटोंमें जड़े हुए बहुमूल्य दिव्य रत्नोंकी कांतिसे

चमक रहे हैं, बड़ी भक्तिसे पूजा किये गये और केवलज्ञानसे विराजमान वे विद्युच्चर मुनि मुझे और आप भव्य-जनोंको मंगल—मोक्ष सुख दें, जिससे संसारका भटकना छूटकर शान्ति मिले।

६९—गुरुदत्त मुनिकी कथा।

जिनकी कृपासे केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति हो सकती है, उन पञ्च परमेष्ठी—अरहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार कर गुरुदत्त मुनिका पवित्र चरित लिखा जाता है।

गुरुदत्त हस्तिनापुरके धर्मात्मा राजा विजयदत्तकी रानी विजया के पुत्र थे। बचपनसे ही इनकी प्रकृतिमें गम्भीरता, धीरता सरलता तथा सौजन्यता थी। सौन्दर्यमें भी ये अद्वितीय थे। अस्तु, पुण्यकी महिमा अपरम्पार है।

विजयदत्त अपना राज्य गुरुदत्त को सौंप कर स्वयं मुनि हो गए और आत्महित करने लगे। राज्यकी बागडोर गुरुदत्तने अपने हाथमें लेकर बड़ी सावधानी और नीतिके साथ शासन आरम्भ किया। प्रजा उनसे बहुत खुश हुई। वह अपने नए राजाको हजार हजार साधुवाद देने लगी। दुःख किसे कहते हैं, यह बात गुरुदत्त की प्रजा जानती ही न थी। कारण—किसीको कुछ, थोड़ा भी कष्ट होता था तो गुरुदत्त फौरन ही उसकी सहायता करता। तनसे, मन से और धनसे वह सभीके काम आता था।

लाट देशमें द्रोणीमान पर्वतके पास चन्द्रपुरी नामकी एक सुन्दर नगरी बसी हुई थी। उसके राजा थे चन्द्रकीर्ति। इनकी रानीका नाम चन्द्रलेखा था। इनके अभयमती नामकी एक पुत्री थी। गुरुदत्तने चन्द्रकीर्तिसे अभयमतीके लिए प्रार्थना की कि वे अपनी कुमारीका ब्याह उसके साथ कर दें। परन्तु चन्द्रकीर्तिने उनकी इस बातसे साफ इन्कार कर दिया—वे गुरुदत्तके साथ अभयमतीका ब्याह करनेको राजी न हुए। गुरुदत्त ने इससे कुछ अपना अपमान हुआ समझा। चन्द्रकीति पर उसे गुस्सा आया। उसने उसी समय चन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर दी और उसे चारों ओर से घेर लिया। कुमारी अभयमती गुरुदत्त पर पहले ही से मुग्ध थी और जब उसने उसके द्वारा चन्द्रपुरीका घेरा जाना सुना तो वह अपने पिताके पास आकर बोली—पिताजी! अपने सम्बन्धमें मैं आपसे कुछ कहना उचित नहीं समझती; पर मेरे संसारको सुखमय होनेमें कोई बाधा या विघ्न न आए, इसलिए कहना या प्रार्थना करना उचित जान पड़ता है। क्योंकि मुझे दुःखमें देखना तो आप सपनेमें भी पसन्द नहीं करेंगे। वह प्रार्थना यह है कि आप गुरुदत्त-जीके साथ ही मेरा ब्याह करदें—इसीमें मुझे सुख होगा। उदार-हृदय चन्द्रकीर्तिने अपनी पुत्रीकी बात मान ली। इसके बाद अच्छा दिन देख खूब आनन्दोत्सवके साथ उन्होंने अभयमतीका ब्याह गुरु-दत्त के साथ कर दिया। इस सम्बन्धसे कुमार और कुमारी दोनोंही सुखी हुए। दोनोंकी मनचाही बात पूरी हुई।

ऊपर जिस द्रोणीमान पर्वतका उल्लेख हुआ है, उसमें एक बड़ा ही भयंकर सिंह रहता था। उसने सारे शहरको बहुत ही

आतंकित कर रखा था। सबके प्राण सदा मुट्ठीमें रहा करते थे। कौन जाने कब आकर सिंह खाले, इस चिन्तासे सब हर समय घबराए हुएसे रहते थे। इस समय कुछ लोगोंने गुरुदत्त से जाकर प्रार्थना की कि राजाधिराज, इस पर्वत पर एक बड़ा भारी हिंसक सिंह रहता है। उससे हमें बड़ा कष्ट है। इस लिए आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे हम लोगोंका कष्ट दूर हो।

गुरुदत्त उन लोगोंको धीरज बँधाकर आप अपने कुछ वीरों को साथ लिये पर्वत पर पहुँचा। सिंहको उसने सब ओरसे घेर लिया। पर मौका पाकर वह भाग निकला और जाकर एक अँधेरी गुफामें घुसकर छिप गया। गुरुदत्तने तब इस मौकेको अपने लिए और भी अच्छा समझा। उसने उसी समय बहुतसे लकड़े गुहामें भरवाकर सिंहके निकलनेका रास्ता बन्द कर दिया। और बाहर गुहाके मुंह पर भी एक लकड़ोंका ढेर लगवा कर उसमें आग लगवा दी। लकड़ोंकी खाकके साथ साथ उस सिंहकी भी देखते देखते खाक हो गई। सिंह बड़े कष्टके साथ मरकर इसी चन्द्रपुरीमें भरत नामके ब्राह्मणकी विश्वदेवी स्त्रीके कपिल नामका लड़का हुआ। यह जन्मसे ही बड़ा क्रूर हुआ और यह ठीक भी है कि पहले जैसा संस्कार होता है, वह दूसरे जन्ममें भी आता है।

इसके बाद गुरुदत्त अपनी प्रियाको लिए राजधानीमें लौट आया। दोनों नव दम्पती बड़े सुखसे रहने लगे। कुछ दिनों बाद अभयमतीके एक पुत्रने जन्म लिया। इसका नाम रखा गया सुवर्ण भद्र। यह सुन्दर था, सरलता और पवित्रताकी प्रतिमा था और बुद्धिमान् था। इसीलिये सब ही इसे बहुत प्यार करते थे। जब

इसकी उमर योग्य हो गई और सब कामोंमें यह हुशियार हो गया तब जिनेन्द्र भगवान्के सच्चे भक्त इसके पिता गुरुदत्तने अपना राज्यभार इसे देकर आप वैरागी बन मुनि हो गये । इसके कुछ वर्षों बाद ये अनेक देशों, नगरों और गाँवोंमें धर्मोपदेश करते, भव्य-जनोंको सुलटाते एक बार चन्द्रपुरीकी ओर आये ।

एक दिन गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणके खेत पर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे । इसीसमय कपिल घर पर अपनी स्त्रीसे यह कह कर, कि प्रिये, मैं खेत पर जाता हूँ, तुम वहाँ भोजन लेकर जल्दी आना, खेत पर आ गया । जिस खेत पर गुरुदत्त मुनि ध्यान कर रहे थे, उसे तब जोतने योग्य न समझ वह दूसरे खेत पर जाने लगा । जाते समय मुनिसे वह यह कहता गया कि मेरी स्त्री यहां भोजन लिए हुये आवेगी सो उसे आप कह दीजियेगा कि कपिल दूसरे खेत पर गया है । तू भोजन वहीं लेजा । सच है, मूर्ख लोग महामुनिके मार्गको न समझ कर कभी कभी बड़ा ही अनर्थ कर बैठते हैं । इसके बाद जब कपिलकी स्त्री भोजन लेकर खेत पर आई और उसने अपने स्वामीको खेत पर न पाया तब मुनिसे पूछा—क्यों साधु महाराज, मेरे स्वामी यहाँसे कहाँ गये हैं ? मुनि चुप रहे, कुछ बोले नहीं । उनसे कुछ उत्तर न पाकर वह घर पर लौट आई । इधर समय पर समय बीतने लगा ब्राह्मण देवता भूखके मारे छट-पटाने लगे पर ब्राह्मणीका अभी तक पता नहीं; यह देख उन्हें बड़ा गुस्सा आया। वे क्रोधसे गुर्राते हुए घर आये और लगे बेचारी ब्राह्मणी पर गालियोंकी बोछार करने ! रांड, मैं तो भूखके मारे मरा जाता हूँ और तेरा अभी तक आनेका ठिकाना ही नहीं ! उस नंगेको पूछकर खेत पर चली

आती । बेचारी ब्राह्मणी घबराती हुई बोली—अजी तो इसमें मेरा क्या अपराध था ! मैंने उस साधुसे तुम्हारा ठिकाना पूछा । उसने कुछ न बताया । तब मैं वापिस घर पर आ गई । ब्राह्मणने दांत पीसकर कहा—हां उस नंगेने तुझे मेरा ठिकाना नहीं बताया ! और मैं तो उससे कह गया था । अच्छा, मैं अभी ही जाकर उसे इसका मजा चखाता हूं । पाठकोंको याद होगा कि कपिल पहले जन्ममें सिंह था, और उसे इन्हीं गुरुदत्त मुनिने राज अवस्थामें जलाकर मार डाला था । तब इस हिसाबमें कपिलके वे शत्रु हुए । यदि कपिलको किसी तरह यह जान पड़ता कि ये मेरे शत्रु हैं, तो उस शत्रुताका बदला उसने कभीका ले लिया होता । पर उसे इसके जाननेका न तो कोई जरिया मिला और न था ही । तब उस शत्रुताको जाग्रत करनेके लिए कपिलकी स्त्रीको कपिलके दूसरे खेत पर जानेका हाल जो मुनिने न बताया, यह घटना सहायक हो गई । कपिल गुस्सेसे लाल होता हुआ मुनिके पास पहुँचा । वहाँ बहुतसी सेमलकी रुई पड़ी हुई थी । कपिलने उस रुईसे मुनिको लपेट कर उसमें आग लगादी । मुनि पर बड़ा उपसर्ग हुआ । पर उसे उन्होंने बड़ी धीरतासे सहा । उस समय शुक्लध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका नाश होकर उन्हें केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया । देवोंने आकर उन पर फूलोंकी वर्षा की, आनन्द मनाया । कपिल ब्राह्मण यह सब देखकर चकित हो गया । उसे तब जान पड़ा कि जिन साधुको मैंने अत्यन्त निर्दयतासे जला डाला उनका कितना महात्म्य था ! उसे अपनी इस नीचता पर बड़ा ही पछतावा हुआ । उसने बड़ी भक्तिसे भगवानको हाथ जोड़कर अपने अपराधकी उनसे क्षमा माँगी । भगवान्के उपदेशको उसने बड़े

चावसे सुना। उसे वह बहुत रुचा भी। वैराग्य पूर्ण भगवान्‌के उपदेशने उसके हृदय पर गहरा असर किया। वह उसी समय सब छोड़ छाड़ कर अपने पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये मुनि हो गया। सच है, सत्पुरुषों—महात्माओंकी संगति सदा सुख देनेवाली होती है। यही तो कारण था कि एक महाक्रोधी ब्राह्मण पल भरमें सब छोड़-छाड़ कर योगी बन गया। इसलिये भव्य-जनोंको सत्पुरुषोंकी संगतिसे अपनेको, अपनी सन्तानको और अपने कुलको सदा पवित्र करनेका यत्न करते रहना चाहिए। यह सत्सग परम सुखका कारण है।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् सदा ससारमें रहें—उनका शासन चिरकाल तक जय लाभ करे जो सारे संसारको सुख देनेवाले हैं, सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हैं और देवों द्वारा जो पूजा स्तुति किये जाते हैं। तथा दुःसह उपसर्ग आने पर भी जो मेरुकी तरह स्थिर रहे और जिन्होंने अपना आत्मस्वभाव प्राप्त किया ऐसे गुरुदत्त मुनि तथा मेरे परम गुरु श्रीप्रभाचन्द्राचार्य, ये मुझे आत्मीक सुख प्रदान करें।

७०—चिलात-पुत्रकी कथा।

केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर चिलातपुत्रकी कथा लिखी जाती है।

राजगृहके राजा उपश्रेणिक एक बार हवाखोरीके लिए शहर बाहर गए। वे जिस घोड़े पर सवार थे, वह बड़ा दुष्ट था। सो उसने उन्हें एक भयानक वनमें जा छोड़ा। उस वनका मालिक एक यमदंड

नामका भील था। इसके एक लड़की थी। उसका नाम तिलकवती था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उपश्रेणिक उसे देखकर कामके बाणोंसे अत्यन्त बींधे गये। उनकी यह दशा देखकर यमदण्डने उनसे कहा—राजाधिराज, यदि आप इससे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका मालिक बनाना मंजूर करें तो मैं इसे आपके साथ ब्याह सकता हूँ। उपश्रेणिकने यमदण्डकी शर्त मंजूर करली। यमदण्डने तब तिलकवतीका ब्याह उनके साथ कर दिया। वे प्रसन्न होकर उसे साथ लिये राजगृह लौट आये।

बहुत दिनों तक उन्होंने तिलकवतीके साथ सुख भोगा, आनन्द मनाया। तिलकवतीके एक पुत्र हुआ। उसका नाम चिलात पुत्र रक्खा गया। उपश्रेणिकके पहली रानियोंसे उत्पन्न हुये और भी कई पुत्र थे। यद्यपि राज्य वे तिलकवतीके पुत्रको देनेका संकल्प कर चुके थे, तो भी उनके मनमें यह खटका सदा बना रहता था कि कहीं इसके हाथमें राज्य जाकर धूलधानी न हो जाय! जो हो, पर वे अपनी प्रतिज्ञाके तोड़नेको लाचार थे। एक दिन उन्होंने एक अच्छे विद्वान् ज्योतिषीको बुलाकर उससे पूछा—पंडितजी, अपने निमित्त-ज्ञानको लगाकर मुझे आप यह समझाइए कि मेरे इन पुत्रोंमें राज्य का मालिक कौन होगा? ज्योतिषीजी बहुत कुछ सोच-विचारके बाद राजासे बोले—सुनिये महाराज, मैं आपको इसका खुलासा कहता हूँ। आपके सब पुत्र खीरका भोजन करनेको एक जगह बैठाये जायँ और उस समय उन पर कुत्तोंका एक झुंड छोड़ा जाय। तब उन सबमें जो निडर होकर वहीं रखे हुए सिंहासन पर बैठ नगारा बजाता जाय और भोजन भी करता जाय और दूसरे कुत्तोंको भी डालकर

खिलाता जाय, उसमें राजा होनेकी योग्यता है। मतलब यह कि अपनी बुद्धिमानीसे कुत्तोंके स्पर्शसे अछूता रहकर आप भोजन करले।

दूसरा निमित्त यह होगा कि आग लगने पर जो सिंहासन, छत्र, चँवर आदि राज्यचिन्होंको निकाल सके, वह राजा हो सकेगा। इत्यादि और भी कई बातें है, पर उनके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं।

कुछ दिन बीतने पर उपश्रेणिकने ज्योतिषीजीके बताये निमित्तकी जाँच करनेका उद्योग किया। उन्होंने सिंहासनके पास ही एक नगारा रखवाकर वहीं अपने सब पुत्रोंको खीर खानेको बैठाया। वे जीमने लगे कि दूसरी ओरसे कोई पाँच सौ कुत्तोंका झुण्ड दौड़-कर उन पर लपका। उन कुत्तोंको देखकर राजकुमारोंके तो होश गायब हो गये। वे सब चीख मारकर भाग खड़े हुये। पर हाँ एक श्रेणिक जो इन सबसे वीर और बुद्धिमान् था, उन कुत्तोंसे डरा नहीं और बड़ी फुरतीसे उठकर उसने खीर परोसी हुई बहुतसी पत्तलोंको एक ऊँची जगह रख कर आप पास ही रखे हुए सिंहासन पर बैठ गया और आनन्दसे खीर खाने लगा। साथमें वह उन कुत्तोंको भी थोड़ी थोड़ी देर बाद एक एक पत्तल उठा उठा डालता गया और नगारा बजाता गया, जिससे कि कुत्ते उपद्रव न करें।

इसके कुछ दिनों बाद उपश्रेणिकने दूसरे निमित्तकी भी जाँच की। अबकी बार उन्होंने कहीं कुछ थोड़ीसी आग लगवा लोगों द्वारा शोरोगुल करवा दिया कि राजमहलमें आग लग गई। श्रेणिक ने जैसे ही आग लगनेकी बात सुनी वह दौड़ा गया और झटपट राज

महलसे सिंहासन, छत्र, चवँर—आदि राज्यचिन्होंको निकाल बाहर हो गया। यही श्रेणिक आगे तीर्थंकर होगा।

श्रेणिककी वीरता और बुद्धिमानी देखकर उपश्रेणिकको निश्चय हो गया कि राजा यही होगा और इसीके यह योग्य भी है। श्रेणिकके राजा होनेकी बात तब तक कोई न जान पाये जबतक कि वह अपना अधिकार स्वयं अपनी भुजाओं द्वारा प्राप्त न करले। इसके लिये उन्हें उसके रक्षाकी चिन्ता हुई। कारण उपश्रेणिक राज्यका अधिकारी तिलकवती के पुत्र चिलातको बना चुके थे और इस हालत में किसी दुश्मनको या चिलातके पक्षपातियोंको यह पता लग जाता कि इस राज्यका राजा तो श्रेणिक ही होगा, तब यह असंभव नहीं था कि वे उसे राजा होने देनेके पहले ही मार डालते ? इसलिये उप-श्रेणिकका यह चिन्ता करना वाजिब था-समयोचित और दूरदर्शिता का था। इसके लिये उन्हें एक बड़ी अच्छी युक्ति सूझ गई और बहुत जल्दी उन्होंने उसे कार्यमें भी परिणत कर दिया। उन्होंने श्रेणिकके सिर यह अपराध मढ़ा कि उसने कुत्तोंका झूंठा खाया, इसलिये वह भ्रष्ट है। अब वह न तो राजघरानेमें ही रहने योग्य रहा और न देशमें ही। इसलिए मैं उसे आज्ञा देता हूं कि वह बहुत जल्दी राज-गृहसे बाहर हो जाये। सच है पुण्यवानोंकी सभी रक्षा करते हैं।

श्रेणिक अपने पिताकी आज्ञा पाते ही राजगृहसे उसी समय निकल गया। वह फिर पलभरके लिए भी वहाँ न ठहरा। वहां से चलकर वह द्राविड़ देशकी प्रधान नगरी काञ्चीमें पहुँचा। उसने अपनी बुद्धिमानीसे वहाँ कोई ऐसा वसीला लगा लिया जिससे इसके दिन बड़े सुखसे कटने लगे।

इधर उपश्रेणिक कुछ दिनों तक तो और राजकाज चलाते रहे। इसके बाद कोई ऐसा कारण उन्हें देख पड़ा जिससे संसार और विषयभोगोंसे वे बहुत ही उदासीन हो गये। अब उन्हें संसार का वास एक बहुत ही पेंचीला जाल जान पड़ने लगा। उन्होंने तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चिलातपुत्रको राजा बनाकर सब जीवोंका कल्याण करनेवाला मुनिपद ग्रहण कर लिया।

चिलात-पुत्र राजा हो गया सही, पर उसका जाति-स्वभाव न गया। और ठीक भी है कौएको मोरके पांख भले ही लगा दिये जायँ, पर वह मोर न बनकर रहेगा कौआका कौआ ही। यही दशा चिलातपुत्रकी हुई। वह राजा बना भी दिया गया तो क्या हुआ, उसमें अगतके तो कुछ गुण नहीं थे, तब वह राजा होकर भी क्या बड़ा कहला सका ? नहीं। अपने जाति-स्वभावके अनुसार प्रजाको कष्ट देना, उस पर जबरन जोर-जुल्म करना उसने शुरू किया। यह एक साधारण बात है कि अन्यायीका कोई साथ नहीं देता और यही कारण हुआ कि मगधकी प्रजाकी श्रद्धा उस परसे बिलकुल ही उठ गई। सारी प्रजा उससे हृदयसे नफरत करने लगी। प्रजाका पालक होकर जो राजा उसी पर अन्याय करे तब इससे बढ़कर और दुःख की बात क्या हो सकती है ?

परन्तु इसके साथ ही यह भी बात है कि प्रकृति अन्यायको नहीं सहती। अन्यायीको अपने अन्यायका फल तुरंत मिलता है। चिलातपुत्रके अन्यायकी डुगडुगी चारों ओर पिट गई। श्रेणिकको जब यह बात सुन पड़ी तब उससे चिलातपुत्रका प्रजा पर जुल्म करना न सहा गया। वह उसी समय मगधकी ओर रवाना हुआ। जैसे ही प्रजाको श्रेणिकके राजगृह आनेकी खबर लगी उसने उसका एकमत होकर साथ दिया। प्रजाकी इस सहायतासे श्रेणिक ने चिलातको राज्यसे बाहर निकाल आप मगधका सम्राट बना। सच है, राजा होनेके योग्य वही पुरुष है जो प्रजाका पालन करनेवाला हो। जिसमें यह योग्यता नहीं वह राजा नहीं, किन्तु इस लोकमें तथा परलोकमें अपनी कीर्त्तिका नाश करनेवाला है।

चिलातपुत्र मगधसे भागकर एक वनीमें जाकर बसा। वहाँ उसने एक छोटा-मोटा किला बनवा लिया और आसपासके छोटे छोटे गांवोंसे जबरदस्ती कर वसूल कर आप उनका मालिक बन बैठा। इसका भर्तृमित्र नामका एक मित्र था। भर्तृमित्रके मामा रुद्रदत्तके एक लड़की थी। सो भर्तृमित्रने अपने मामासे प्रार्थना की—वह अपनी लड़कीका ब्याह चिलातपुत्रके साथ करदे। उसकी बात पर कुछ ध्यान न देकर रुद्रदत्त चिलातपुत्रको लड़की देनेसे साफ मुकर गया। चिलातपुत्रसे अपना यह अपमान न सहा गया। वह छुपा हुआ राजगृहमें पहुंचा और विवाहस्नान करती हुई सुभद्रा को उठा चलता बना। जैसे ही यह बात श्रेणिकके कानोंमें पहुंची वह सेना लेकर उसके पीछे दौड़ा। चिलातपुत्रने जब देखा कि अब श्रेणिकके हाथसे बचना कठिन है, तब उस दुष्ट निर्दयीने बेचारी सुभद्राको तो जानसे मार डाला और आप जान लेकर भागा। वह वैभारपर्वत परसे जा रहा था कि उसे वहाँ एक मुनियोंका संघ देख पड़ा। चिलातपुत्र दौड़ा हुआ संघाचार्य श्रीमुनिदत्त मुनिराजके पास पहुँचा और उन्हें हाथ जोड़ सिर नवा उसने प्रार्थना की कि प्रभो, मुझे तप दीजिए, जिससे मैं अपना हित कर सकूँ।

आचार्यने तब उससे कहा—प्रिय, तूने बड़ा अच्छा सोचा जो तू तप लेना चाहता है। तेरी आयु अब सिर्फ आठ दिनकी रह गई है। ऐसे समय जिनदीक्षा लेकर तुझे अपना हित करना उचित ही है। मुनिराजसे अपनी जिन्दगी इतनी थोड़ी सुन उसने उसी समय तप ले लिया जो संसार-समुद्रसे पार करनेवाला है। चिलातपुत्र तप लेनेके साथ ही प्रायोपगमन संन्यास ले धीरतासे आत्मभावना भाने लगा। उधर उसके पकड़नेको पीछे आनेवाले श्रेणिकने वैभारपर्वत पर आकर उसे इस अवस्थामें जब देखा तब उसे चिलातपुत्रकी इस धीरता पर बड़ा चकित होना पड़ा। श्रेणिकने तब उसके इस साहस की बड़ी तारीफ की। इसके बाद वह उसे नमस्कार कर राजगृह लौट आया। चिलातपुत्रने जिस सुभद्राको मार डाला था, वह मरकर व्यन्तर-देवी हुई। उसे जान पड़ा कि मैं चिलातपुत्र द्वारा बड़ी निर्दयतासे मारी गई हूँ। मुझे भी तब अपने वैरका बदला लेना ही चाहिए। यह सोचकर वह चीलका रूप ले चिलात मुनिके सिर पर आकर बैठ गई। उसने मुनिको कष्ट देना शुरू किया। पहले उसने चोंचसे उनकी दोनों आँखें निकाल लीं और बाद मधुमक्खी बनकर वह उन्हें काटने लगी। आठ दिनतक उन्हें उसने बेहद कष्ट पहुँचाया। चिलातमुनिने विचलित न हो इस कष्टको बड़ी शान्तिसे सहा। अन्तमें समाधिसे मरकर उसने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की।

जिन वीरोंके वीर और गुणोंकी खान चिलात मुनिने ऐसा दुःसह उपसर्ग सहकर भी अपना धैर्य न छोड़ा और जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका, जो कि देवों द्वारा भी पूज्य हैं, खूब मन लगाकर ध्यान करते रहे और अन्तमें जिन्होंने अपने पुण्यबलसे सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की वे मुझे भी मंगल दें।

७१–धन्यमुनि की कथा।

सर्वोच्च धर्मका उपदेश करने वाले श्रीजिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर धन्य नामके मुनिकी कथा लिखी जाती है, जो पढ़ने या सुननेसे सुख प्रदान करनेवाली है।

जम्बूद्वीपके पूर्वकी ओर बसे हुए विदेह क्षेत्रकी प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुरका राजा अशोक बड़ा ही लोभी राजा हो चुका है। जब फसल काटकर खेतों पर खले किए जाते थे तब वह बेचारे बैलोंका मुँह बँधवा दिया करता और रसोई घरमें रसोई बनानेवाली स्त्रियोंके स्तन बँधवा कर उनके बच्चोंको दूध न पीने देता था। सच है, लोभी मनुष्य कौनसा पाप नहीं करते?

एक दिन अशोकके मुँहमें कोई ऐसी बीमारी होगई जिससे उसका सारा मुँह आगया। सिरमें भी हजारों फोड़े-फुंसी हो गए। उससे उसे बड़ा कष्ट होने लगा। उसने उस रोग की औषधि बनवाई। वह उसे पीनेको ही था कि इतनेमें अपने चरणोंसे पृथ्वी को पवित्र करते हुए एक मुनि आहारके लिए इसी ओर आ निकले। भाग्यसे ये मुनि भी राजाकी तरह इसी महारोगसे पीड़ित हो रहे थे। इन तपस्वी मुनिकी यह कष्टमय दशा देखकर राजाने सोचा कि जिस रोगसे मैं कष्ट पारहा हूँ, जान पड़ता है उसी रोगसे ये

तपोनिधि भी दुःखी हैं। यह सोचकर या दया से प्रेरित होकर राजा जिस दवा को स्वयं पीनेवाला था, उसे उसने मुनिराजको पिला दिया और साथ ही उन्हें पथ्य भी दिया। दवाने बहुत लाभ किया। बारह वर्षका यह मुनिका महारोग थोड़े ही समयमें मिट गया—मुनि भले चंगे हो गए।

अशोक जब मरा तो इस पुण्यके फलसे वह अमलकण्ठपुर के राजा निष्ठसेनकी रानी नन्दमतीके धन्य नामका सुन्दर गुणवान् पुत्र हुआ। धन्यको एक दिन श्रीनेमिनाथ भगवान्के पास धर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला। वह भगवान्के द्वारा अपनी उमर बहुत थोड़ी जानकर उसी समय सब माया ममता छोड़ मुनि बन गया। एक दिन वह शहरमें भिक्षाके लिए गया, पर पूर्वजन्मके पाप कर्मके उदयसे उसे भिक्षा न मिली। वह वैसे ही तपोवनमें लौट आया। यहाँसे विहार कर वह तपस्या करता तथा धर्मोपदेश देता हुआ सौरीपुर आकर यमुनाके किनारे आतापन योग द्वारा ध्यान करने लगा। इसी ओर यहाँका राजा शिकारके लिए आया हुआ था, पर आज उसे शिकार न मिला। वह वापिस अपने महलकी ओर आ रहा था कि इसी समय इसकी नजर मुनि पर पड़ी। इसने समझ लिया कि बस, शिकार न मिलने का कारण इस नंगेका दीख पड़ना है—इसीने यह अशकुन किया है। यह धारणा कर इस पापी राजा ने मुनिको बाणोंसे खूब वेध दिया। मुनिने तब शुक्लध्यानकी शक्ति से कर्मोंका नाशकर सिद्ध गति प्राप्त की। सच है, महापुरुषोंकी धीरता बड़ी ही चकित करनेवाली होती है। जिससे महान् कष्टके समयमें भी मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।

वे धन्यमुनि रोग, शोक, चिन्ता—आदि दोषोंको नष्टकर मुझे शाश्वत—कभी नाश न होनेवाला सुख दें, जो भव्यजनोंका भय मिटानेवाले हैं, संसार समुद्रसे पार करनेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं, मोक्ष-महिलाके स्वामी हैं, ज्ञानके समुद्र हैं और चारित्र-चूड़ामणि हैं।

७२—पाँचसौ मुनियोंकी कथा।

जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर पाँचसौ मुनियों पर एक साथ बीतनेवाली घटनाका हाल लिखा जाता है, जो कि कल्याणका कारण है।

भरतके दक्षिणकी ओर बसे हुए कुम्भकारकट नामके पुराने शहरके राजाका नाम दण्डक और उनकी रानीका नाम सुव्रता था। सुव्रता रूपवती और विदुषी थी। राजमंत्रीका नाम बालक था। यह पापी जैनधर्मसे बड़ा द्वेष रखा करता था। एक दिन इस शहर में पाँचसौ मुनियोंका संघ आया। बालक मंत्रीको अपनी पण्डिताई पर बड़ा अभिमान था। सो वह शास्त्रार्थ करनेको मुनिसंघके आचार्यके पास जा रहा था। रास्तेमें इसे एक खण्डक नामके मुनि मिल गये। सो उन्हींसे आप झगड़ा करनेको बैठ गया और लगा अन्टसन्ट बकने। तब मुनिने इसकी युक्तियोंका अच्छी तरह खण्डन कर स्याद्वाद-सिद्धान्तका इस शैलीसे प्रतिपादन किया कि बालक मंत्री का मुँह बन्द हो गया—उनके सामने फिर उससे कुछ बोलते न बना। झख मारकर तब उसे लज्जित हो घर लौट आना पड़ा। इस अपमानकी

आग उसके हृदयमें खूब धधकी। उसने तब इसका बदला चुकाने की ठानी। इसके लिए उसने यह युक्ति की कि एक भांडको छलसे मुनि बनाकर सुव्रता रानीके महलमें भेजा। यह भांड रानीके पास जाकर उससे भला-बुरा हँसी-मजाक करने लगा। इधर उसने यह सब लीला राजाको भी बतला दी और कहा—महाराज, आप इन लोगोंकी इतनी भक्ति करते हैं, सदा इनकी सेवामें लगे रहते हैं, तो क्या यह सब इसी दिनके लिए है? जरा आंखें खोलकर देखिए कि सामने क्या हो रहा है? उस भांडकी लीला देखकर मूर्खराज दण्डकके क्रोधका कुछ पार न रहा। क्रोधसे अन्धे होकर उसने उसी समय हुक्म दिया कि जितने मुनि इस समय मेरे शहर में मौजूद हों, उन सबको घानी में पेलदो। पापी मंत्री तो इसी पर मुँह धोये बैठा था। सो राजाज्ञा होते ही उसने एक पलभरका भी विलम्ब करना उचित न समझ मुनियोंके पेले जानेकी सब व्यवस्था फौरन जुटादी। देखते देखते वे सब मुनि घानीमें पेल दिये गये। बदला लेकर बालकमंत्रीकी आत्मा सन्तुष्ट हुई। सच है, जो पापी होते हैं, जिन्हें दुर्गतियोंमें दुःख भोगना है, वे मिथ्यात्वी लोग भयंकरसे भयंकर पाप करनेमें जरा भी नहीं हिचकते। चाहे फिर उस पापके फलसे उन्हें जन्म-जन्ममें भी क्यों न कष्ट सहना पड़े। जो हो, मुनिसंघ पर इस समय बड़ा ही घोर और दुःसह उपद्रव हुआ। पर वे साहसी धन्य हैं, जिन्होंने जबानसे चूँ तक न निकाल कर सब कुछ बड़े साहसके साथ सह लिया। जीवनकी इस अन्तिम कसौटी पर वे खूब तेजस्वी उतरे। उन मुनियोंने शुक्लध्यानरूपी अपनी महान आत्मशक्तिसे कर्मोंका, जो कि आत्माके पक्के दुश्मन हैं, नाशकर मोक्ष लाभ किया।

दिपते हुए सुमेरुके समान थिर, कर्मरूपी मैलको, जो कि आत्माको मलिन करनेवाला है, नाश करनेवाले और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजों द्वारा पूजा किये गये जिन मुनिराजोंने संसारका नाश कर मोक्ष लाभ किया वे मेरा भी संसार-भ्रमण मिटावें।

७३—चाणक्यकी कथा।

देवों द्वारा पूजा किये जानेवाले जिनेन्द्रभगवान्‌को नमस्कार कर चाणक्यकी कथा लिखी जाती है।

पाटलिपुत्र या पटनाके राजा नन्दके तीन मंत्री थे। कावी, सुबन्धु और शकटाल ये उनके नाम थे। यहीं एक कपिल नामका पुरोहित रहता था। कपिलकी स्त्रीका नाम देविला था। चाणक्य इन्हींका पुत्र था। यह बड़ा बुद्धिमान् और वेदोंका ज्ञाता था।

एक बार आस-पासके छोटे-मोटे राजोंने मिलकर पटना पर चढ़ाई करदी। कावी मंत्रीने इस चढ़ाईका हाल नन्दसे कहा। नन्दने घबरा कर मंत्रीसे कह दिया कि जाओ जैसे बने उन अभिमानियोंको समझा-बुझाकर वापिस लौटादो। धन देना पड़े तो वह भी दो। राजाज्ञा पा मंत्रीने उन्हें धन वगैरह देकर लौटा दिया। सच है, बिना मंत्रीके राज्य स्थिर हो ही नहीं सकता।

एक दिन नन्दको स्वयं कुछ धनकी जरूरत पड़ी। उसने खजांची से खजानेमें कितना धन मौजूद है, इसके लिए पूछा। खजांचीने कहा—महाराज, धन तो सब मंत्री महाशयने दुश्मनोंको दे डाला। खजानेमें तो अब नाम मात्रके लिये थोड़ा-बहुत धन बचा होगा। यद्यपि दुश्मनोंको धन स्वयं राजाने दिलवाया था और इस-लिए गल्ती उसीकी थी, पर उस समय अपनी यह भूल उसे न दीख पड़ी और दूसरेके बहकानेमें आकर उसने बेचारे निर्दोष मंत्रीको और साथमें उसके सारे कुटुम्बको एक अन्धे कुएमें डलवा दिया। मंत्री तथा उसका कुटुम्ब वहाँ बड़ा कष्ट पाने लगा। इनके खाने-पीनेके लिए बहुत ही थोड़ा भोजन और थोड़ासा ही पानी दिया जाता था। यह इतना थोड़ा होता था कि एक मनुष्य भी उससे अच्छी तरह पेट न भर सकता था। सच है, राजा किसीका मित्र नहीं होता। राजाके इस अन्यायने कावीके मनमें प्रतिहिंसाकी आग धधकादी। इस आग ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। कावीने तब अपने कुटुम्बके लोगों से कहा—जो भोजन इस समय हमें मिलता है उसे यदि हम इसी तरह थोड़ा थोड़ा सब मिलकर खाया करेंगे तब तो हम धीरे धीरे सब ही मर मिटेंगे और ऐसी दशामें कोई राजासे उसके इस अन्याय का बदला लेनेवाला न रहेगा। पर मुझे यह सह्य नहीं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई कुटुम्बका मनुष्य राजासे बदला ले। तब ही मुझे शान्ति मिलेगी। इसलिये इस भोजनको वही मनुष्य अपनेमेंसे खाये जो बदला लेनेकी हिम्मत रखता हो। तब उसके कुटुम्बियोंने कहा—इसका बदला लेनेमें आप ही समर्थ देख पड़ते हैं। इसलिये हम खुशीके साथ कहते हैं कि इस भारको आप ही अपने

सर पर लें। उस दिनसे उसका सारा कुटुम्ब भूखा रहने लगा और धीरे धीरे सबका सब मर मिटा। इधर कावी अपने रहने योग्य एक छोटासा गड्ढा उस कुएमें बनाकर दिन काटने लगा। ऐसे रहते उसे कोई तीन वर्ष बीत गये।

जब यह हाल आस-पासके राजोंके पास पहुँचा तब उन्होंने इस समय राज्यको अव्यवस्थित देख फिर चढ़ाई करदी। अब तो नन्दके कुछ होश ढीले पड़े—अकल ठिकाने आई। अब उसे न सूझ पड़ा कि वह क्या करे? तब उसे अपने मंत्री कावीकी याद आई। उसने नौकरोंको आज्ञा दे कुएसे मंत्रीको निकलवाया और पीछा मंत्रीकी जगह नियत किया। मंत्रीने भी इस समय तो उन राजोंसे सुलह कर नन्दकी रक्षा करली। पर अब उसे अपना बैर निकालनेकी चिन्ता हुई। वह किसी ऐसे मनुष्यकी खोज करने लगा, जिससे उसे सहायता मिल सके। एक दिन कावी किसी वनमें हवा-खोरीके लिए गया हुआ था। इसने वहाँ एक मनुष्यको देखा कि जो काँटोंके समान चुभनेवाली दूबाको जड़-मूलसे उखाड़ उखाड़ कर फैंक रहा था। उसे एक निकम्मा काम करते देखकर कावीने चकित होकर पूछा—ब्राह्मणदेव, इसे खोदनेसे तुम्हारा क्या मतलब है? क्यों बे-फायदा इतनी तकलीफ उठा रहे हो? इस मनुष्य का नाम चाणक्य था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है? चाणक्यने तब कहा—वाह महाशय! इसे आप बे-फायदा बतलाते हैं। आप जानते हैं कि इसका क्या अपराध है? सुनिये! इसने मेरा पांव छेद डाला और मुझे महा कष्ट दिया, तब मैं ही क्यों इसे छोड़ने चला? मैं तो इसका जड़मूलसे नाशकर

ही उठूंगा। यही मेरा संकल्प है। तब कावीने उसके हृदयकी थाह लेनेके लिए कि इसकी प्रतिहिंसाकी आग कहां जाकर ठण्डी पड़ती है, कहा—तो महाशय! अब इस बेचारीको क्षमा कीजिए, बहुत हो चुका। उत्तरमें चाणक्यने कहा—नहीं, तब तक इसके खोदने से लाभ ही क्या जब तक कि इसकी जड़ें बाकी रह जायँ। उस शत्रुके मारनेसे क्या लाभ जब कि उसका सिर न काट लिया जाये? चाणक्यकी यह ओजस्विता देखकर कावीको बहुत संतोष हुआ। उसे निश्चय हो गया कि इसके द्वारा नन्दकुलका जड़-मूल से नाश हो सकेगा। इससे अपनेको बहुत सहायता मिलेगी। अब सूर्य और राहुका योग मिला देना अपना काम है। किसी तरह नन्दके सम्बन्धमें इसका मनमुटाव करा देना ही अपने कार्यका श्रीगणेश हो जायगा। कावी मंत्री इसतरहका विचार कर ही रहा था कि प्यासेको जलकी आशा होनेकी तरह एक योग मिल ही गया। इसीसमय चाणक्यकी स्त्री यशस्वतीने आकर चाणक्यसे कहा—सुनती हूँ, राजा नन्द ब्राह्मणोंको गौ दान किया करते हैं। तब आप भी जाकर उनसे गौ लाइए न? चाणक्यने कहा—अच्छी बात है, मैं अपने महाराजके पास जाकर जरूर गौ लाऊँगा। यशस्वतीके मुँहसे यह सुनकर कि नन्द गौओंका दान किया करता है, कावी मंत्री खुश होता हुआ राजदरबारमें गया और राजासे बोला—महाराज! क्या आज आप गौएं दान करेंगे? ब्राह्मणोंको इकट्ठा करनेकी योजना की जाय? महाराज, आपको तो यह पुण्यकार्य करना ही चाहिए। धनका ऐसी जगह सदुपयोग होता है। मंत्रीने अपना चक्र चलाया और वह राजा पर चल भी गया।

सच है, जिनके मनमें कुछ और होता है, जो वचनोंसे कुछ और बोलते हैं तथा शरीर जिनका मायासे सदा लिपटा रहता है, उन दुष्टोंकी दुष्टताका पता किसीको नहीं लग पाता। कावीकी सत्सम्मति सुनकर नन्दने कहा—अच्छा, ब्राह्मणोंको आप बुलवाइए, मैं उन्हें गौएं दान करूंगा। मंत्री जैसा चाहता था, वही हो गया। वह झटपट जाकर चाणक्यको ले आया और उसे सबसे आगे रखे आसन पर बैठा दिया। लोभी चाणक्यने तब अपने आस-पास रखे हुए बहुतसे आसनोंको घर ले जानेकी इच्छासे इकट्ठा कर अपने पास रख लिया। उसे इसप्रकार लोभी देख कावीने कपटसे कहा—पुरोहित महाराज! राजा साहब कहते हैं—और बहुतसे ब्राह्मण विद्वान् आए हैं, आप उनके लिये आसन दीजिये। चाणक्यने तब एक आसन निकाल कर दे दिया। इसीतरह धीरे धीरे मंत्रीने उससे सब आसन रखवाकर अन्तमें कहा—महाराज, क्षमा कीजिए! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो पराया नौकर हूँ। इसलिये जैसा मालिक कहते हैं उनका हुक्म बजाता हूँ। पर जान पड़ता है कि राजा बड़ा अविचारी है जो आप सरीखे महा ब्राह्मणका अपमान करना चाहता है। महाराज, राजाका कहना है कि आप जिस अग्रासन पर बैठे हैं उसे छोड़कर चले जाइये। यह आसन दूसरे विद्वान् के लिये पहलेहीसे दिया जा चुका है। यह कहकर ही कावीने गरदन पकड़ चाणक्यको निकाल बाहर कर दिया। चाणक्य एक तो वैसे ही महाक्रोधी और अब उसका ऐसा अपमान किया गया और वह भी भरी राजसभामें! तब तो अब चाणक्यके क्रोधका पूछना ही क्या? वह नन्दवंशको जड़मूलसे उखाड़ फैंकनेका दृढ़ संकल्प कर

जाता जाता बोला कि जिसे नन्दका राज्य चाहना हो, वह मेरे पीछे पीछे चला आवे। यह कहकर वह चलता बना। चाणक्यकी इस प्रतिज्ञाके साथ ही कोई एक मनुष्य उसके पीछे हो गया। चाणक्य उसे लेकर उन आस-पासके राजोंसे मिल गया, और फिर कोई मौका देख एक घातक मनुष्यको साथ ले वह पटना आया और नन्दको मरवा कर आप उस राज्यका मालिक बन बैठा। सच है, मंत्रीके क्रोधसे कितने राजोंका नाम इस पृथिवी परसे न उठ गया होगा!

इसके बाद चाणक्यने बहुत दिनोंतक राज्य किया। एक दिन उसे श्रीमहीधर मुनि द्वारा जैनधर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला। उस उपदेशका उसके चित्त पर खूब असर पड़ा। वह उसी समय सब राज-काज छोड़कर मुनि बन गया। चाणक्य बुद्धिमान् और बड़ा तेजस्वी था। इसलिए थोड़े ही दिनों बाद उसे आचार्य पद मिल गया। वहाँसे कोई पांचसौ शिष्योंको साथ लिये उसने विहार किया। रास्तेमें पड़नेवाले देशों, नगरों और गांवोंमें धर्मोपदेश करता और अनेक भव्य-जनोंको हितमार्ग में लगाता वह दक्षिण की ओर बसे हुए वनवास देशके क्रौंचपुरमें आया। इस पुरके पश्चिम किनारे कोई अच्छी जगह देख इसने संघको ठहरा दिया। चाणक्य को यहाँ यह मालूम हो गया कि उसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। इसलिये उसने वहीं प्रायोपगमन संन्यास ले लिया।

नन्दका दूसरा मंत्री सुबन्धु था। चाणक्यने जब नन्दको मरवा डाला तब उसके क्रोधका पार नहीं रहा। प्रतिहिंसाकी आग उसके हृदयमें दिनरात जलने लगी। पर उस समय उसके पास कोई साधन बदला लेनेका न था। इसलिये वह लाचार चुप रहा। नन्दकी मृत्युके बाद वह इसी क्रौंचपुरमें आकर यहांके राजा सुमित्रका मंत्री

हो गया। राजाने जब मुनिसंघके आनेका समाचार सुना तो वह उसकी वन्दना पूजाके लिए आया, बड़ी भक्तिसे उसने सब मुनियों की पूजाकर उनसे धर्मोपदेश सुना और बाद उनकी स्तुति कर वह अपने महलमें लौट आया।

मिथ्यात्वी सुबन्धुको चाणक्यसे बदला लेनेका अब अच्छा मौका मिल गया। उसने उस मुनिसंघके चारों ओर खूब घास इकट्ठी करवा कर उसमें आग लगवा दी। मुनि संघ पर हृदयको हिला देनेवाला बड़ा ही भयंकर दुःसह उपसर्ग हुआ सही, पर उसने उसे बड़ी सहन-शीलताके साथ सह लिया और अन्तमें अपनी शुक्ल ध्यानरूपी आत्मशक्तिसे कर्मोंका नाश कर सिद्धगति लाभ की। जहां राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, दुःख चिन्ता—आदि दोष नहीं हैं और सारा संसार जिसे सबसे श्रेष्ठ समझता है।

चाणक्य आदि निर्मल चारित्रके धारक ये सब मुनि अब सिद्धगतिमें ही सदा रहेंगे। ज्ञानके समुद्र ये मुनिराज मुझे भी सिद्धगतिका सुख दें।

७४—वृषभसेनकी कथा।

जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और ज्ञानके समुद्र साधुओंको नमस्कार कर वृषभसेनकी उत्तम कथा लिखी जाती है।

दक्षिण दिशाकी ओर बसे हुए कुण्डल नगरके राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे। और रिष्टामात्य नामका इनका मंत्री इनसे बिलकुल उल्टा—मिथ्यात्वी और जैनधर्मका बड़ा द्वेषी था। सो ठीक ही है, चन्दनके वृक्षोंके आस-पास सर्प रहा ही करते हैं।

एक दिन श्रीवृषभसेन मुनि अपने संघको साथ लिये कुण्डल नगरकी ओर आये। वैश्रवण उनके आनेके समाचार सुन बड़ी विभूतिके साथ भव्यजनोंको संग लिये उनकी वन्दनाको गया। भक्ति से उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की, वन्दना की और पवित्र द्रव्योंसे पूजा की तथा उनसे जैनधर्मका उपदेश सुना। उपदेश सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सच है, इस सर्वोच्च और सब सुखों के देनेवाले जैनधर्मका उपदेश सुनकर कौन सद्गतिका पात्र सुखी न होगा?

राजमंत्री भी मुनिसंघके पास आया। पर वह इसलिए नहीं कि वह उनकी पूजा-स्तुति करे; किन्तु उनसे वाद—शास्त्रार्थ कर उनका मानभंग करने—लोगोंकी श्रद्धा उन परसे उठा देने। पर यह उसकी भूल थी। कारण—जो दूसरोंके लिए कुआ खोदते हैं उसमें पहले उन्हें ही गिरना पड़ता है। यही हुआ भी। मंत्रीने मुनियोंका अपमान करनेकी गर्जसे उनसे शास्त्रार्थ किया, पर अपमान उसीका हुआ। मुनियोंके साथ उसे हार जाना पड़ा। इस अपमानकी उसके हृदय पर गहरी चोट लगी। इसका बदला चुकाना निश्चित कर वह शामको छुपा हुआ मुनिसंघके पास आया और जिस स्थानमें वह ठहरा था उसमें उस पापीने आग लगादी। बड़े दुःखकी बात है कि दुर्जनोंका स्वभाव एक विलक्षण ही तरहका होता है। वे स्वयं तो पहले दूसरोंके साथ छेड़-छाड़ करते हैं और जब उन्हें अपने कियेका फल मिलता है तब वे यह समझकर, कि मेरा इसने बुरा किया, दूसरे निर्दोष सत्पुरुषों

पर क्रोध करते हैं और फिर उनसे बदला लेनेके लिए उन्हें नाना प्रकारके कष्ट देते हैं।

जो हो, मंत्रीने अपनी दुष्टतामें कोई कसर न की। मुनिसंघ पर उसने बड़ा ही भयंकर उपसर्ग किया। पर उन तत्त्वज्ञानी-वस्तु स्थितिको जाननेवाले मुनियोंने इस कष्टकी कुछ परवा न कर बड़ी सहनशीलताके साथ सब कुछ सह लिया और अन्तमें अपने अपने भावोंकी पवित्रताके अनुसार उनमेंसे कितने ही मोक्षमें गये और कितने ही स्वर्गमें।

दुष्ट पुरुष सत्पुरुषोंको कितना ही कष्ट क्यों न पहुँचावें उससे खराबी उन्हीं की है—उन्हें ही दुर्गतिमें दुःख भोगना पड़ेंगे। और सत्पुरुष तो ऐसे कष्टके समयमें भी अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहकर—अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य पालन कर सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे। जैसा कि उक्त मुनिराजोंने किया।

वे मुनिराज आप लोगोंको भी सुख दें, जिन्होंने ध्यानरूपी पर्वतका आश्रय ले बड़ा दुःसह उपसर्ग जीता, अपने कर्तव्यसे सर्व श्रेष्ठ कहलानेका सम्मान लाभ किया, और अन्तमें अपने उच्च भावोंसे मोक्ष सुख प्राप्त कर देवों, विद्याधरों चक्रवर्त्तियों आदि द्वारा पूजाको प्राप्त हुए और संसारमें सबसे पवित्र गिने जाने लगे।

७५—शालिसिक्थ मच्छके भावोंकी कथा।

केवलज्ञान रूपी नेत्रके धारक और स्वयंभू श्रीआदिनाथ भगवान्को नमस्कार कर सत्पुरुषोंको इस बातका ज्ञान हो कि

केवल मनकी भावनासे ही—मनमें विचार करनेसे ही कितना दोष या कर्मबन्ध होता है, इसकी एक कथा लिखी जाती है।

सबसे अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रमें एक बड़ा भारी दीर्घकाय मच्छ है। वह लम्बाईमें एक हजार योजन, चौड़ाईमें पांचसौ योजन और ऊँचाईमें ढाईसौ योजनका है। (एक योजन चार या दो हजार कोसका होता है) यहीं एक और शालिसिक्थ नामका मच्छ इस बड़े मच्छके कानोंके आस-पास रहता है। पर यह बहुत ही छोटा है और इस बड़े मच्छके कानोंका मैल खाया करता है। जब यह बड़ा मच्छ सैकड़ों छोटे-मोटे जल-जीवोंको खाकर और मुँह फाड़े छह मासकी गहरी नींदके खुर्राटेमें मग्न हो जाता है उस समय कोई एक-एक दो-दो योजनके लम्बे-चौड़े कछुए, मछलियाँ, घड़ियाल, मगर आदि जलजन्तु बड़े निर्भीक होकर इसके विकराल दाढ़ोंवाले मुँहमें घुसते और बाहर निकलते रहते हैं। तब यह छोटा सिक्थ-मच्छ रोज रोज सोचा करता है कि यह बड़ा मच्छ कितना मूर्ख है जो अपने मुखमें आसानीसे आये हुए जीवोंको व्यर्थ ही जाने देता है! यदि कहीं मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुई होती तो मैं कभी एक भी जीवको न जाने देता। बड़े दुःखकी बात है कि पापी लोग अपने आप ही ऐसे बुरे भावों द्वारा महान पापका बन्धकर दुर्गतियोंमें जाते हैं और वहां अनेक कष्ट सहते हैं। सिक्थ-मच्छ की भी यही दशा हुई। वह इस प्रकार बुरे भावोंसे तीव्र कर्मोंका बन्ध कर सातवें नरक गया। क्योंकि मनके भाव ही तो पुण्य या पापके कारण होते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंको जैनशास्त्रोंके अभ्यास या पढ़ने-पढ़ानेसे मनको सदा पवित्र बनाये रखना चाहिए, जिससे उसमें बुरे विचारोंका प्रवेश ही न हो पावे। और शास्त्रोंके अभ्यास के बिना अच्छे बुरेका ज्ञान नहीं हो पाता, इसलिए शास्त्राभ्यास पवित्रताका प्रधान कारण है।

यही जिनवाणी मिथ्यात्वरूपी अँधेरेको नष्ट करने के लिए दीपक है, संसार के दुःखोंको जड़मूलसे उखाड़ फैंकनेवाली है, स्वर्ग मोक्षके सुखकी कारण है और देव, विद्याधर आदि सभी महापुरुषोंके आदर की पात्र है—सभी जिनवाणी की उपासना बड़ी भक्तिसे करते हैं। आप लोग भी इस पवित्र जिनवाणीका शांति और सुखके लिए, सदा अभ्यास मनन-चिंतन करें।

७६—सुभौम चक्रवर्त्तीकी कथा।

चारों प्रकारके देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर आठवें चक्रवर्त्ती सुभौमकी कथा लिखी जाती है।

सुभौम ईर्ष्यावान् शहरके राजा कार्त्तवीर्यकी रानी रेवतीके पुत्र थे। चक्रवर्त्तीका एक जयसेन नामका रसोइया था। एक दिन चक्रवर्त्ती जब भोजन करनेको बैठे तब रसोइयेने उन्हें गरम गरम खीर परोस दी। उसके खानेसे चक्रवर्त्तीका मुँह जल गया। इससे उन्हें रसोइए पर बड़ा गुस्सा आया। गुस्सेसे उन्होंने खीर रखे गरम बरतनको ही उसके सिरपर दे मारा। उससे उसका सारा सिर जल गया। इसकी घोर वेदनासे मरकर वह लवणसमुद्रमें व्यन्तर

देव हुआ। कु-अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी बात जानकर चक्रवर्त्ती पर उसके गुस्सेका पार न रहा। प्रतिहिंसासे उसका जी बे-चैन हो उठा। तब वह एक तापसी बनकर अच्छे अच्छे सुन्दर फलोंको अपने हाथमें लिये चक्रवर्त्तीके पास पहुँचा। फलोंको उसने चक्रवर्त्ती की भेंट किया। चक्रवर्त्ती उन फलोंको खाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस तापससे कहा—महाराज, ये फल तो बड़े ही मीठे हैं। आप इन्हें कहाँसे लाये ? और ये मिलें तो कहाँ मिलेंगे ? तब उस व्यन्तरने धोखा देकर चक्रवर्त्तीसे कहा—समुद्रके बीचमें एक छोटा सा टापू है। वहीं मेरा घर है। आप मुझ गरीब पर कृपा कर मेरे घरको पवित्र करें तो मैं आपको बहुतसे ऐसे ऐसे उत्तम और मीठे फल भेंट करूँगा। कारण वहाँ ऐसे फलोंके बहुत बगीचे हैं। चक्रवर्त्ती लोभमें फँसकर व्यन्तरके झाँसेमें आगये और उसके साथ चल दिये। जब व्यन्तर इन्हें साथ लिये बीच समुद्र में पहुँचा तब अपने सच्चे स्वरूपमें आ उसने बड़े गुस्सेसे चक्रवर्त्तीको कहा—पापी, जानता है कि मैं तुझे यहाँ क्यों लाया हूँ ? यदि न जानता हो तो सुन—मैं तेरा जयसेन नामका रसोइया था, तब तूने मुझे निर्दयताके साथ जलाकर मार डाला था। अब उसीका बदला लेनेको मैं तुझे यहाँ लाया हूं। बतला अब कहाँ जायगा ? जैसा किया उसका फल भोगने को तैयार हो जा। तुझसे पापियोंकी ऐसी गति होनी ही चाहिए। पर सुन, अब भी एक उपाय है, जिससे तू बच सकता है। और वह यह कि यदि तू पानीमें पंच नमस्कार मन्त्र लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटादे तो तुझे मैं जीता छोड़ सकता हूं। अपनी जान बचाने के लिए कौन किस कामको नहीं कर डालता ? वह भला है या बुरा

इसके विचार करनेकी तो उसे जरूरत ही नहीं रहती। उसे तब पड़ी रहती है अपनी जान की। यही दशा चक्रवर्त्ती महाशयकी हुई। उन्होंने तब नहीं सोच पाया कि इस अनर्थसे मेरी क्या दुर्दशा होगी ? उन्होंने उस व्यन्तरके कहे अनुसार झटपट जलमें मंत्र लिख कर पाँवसे उसे मिटा डाला। उनका मन्त्र मिटाना था कि व्यन्तरने उन्हें मारकर समुद्रमें फेंक दिया। इसका कारण यह हो सकता है कि मंत्रको पाँवसे न मिटानेके पहले व्यन्तरकी हिम्मत चक्रवर्तीको मारनेकी इसलिए न पड़ी होगी कि जगत्पूज्य जिनेन्द्र भगवान्के भक्तको वह कैसे मारे, या यह भी संभव था कि उस समय कोई जिनशासनका भक्त अन्य देव उसे इस अन्यायसे रोककर चक्रवर्त्तीकी रक्षा कर लेता और अब मंत्रको पाँवोंसे मिटा देनेसे चक्रवर्त्ती जिनधर्मका द्वेषी समझा गया और इसीलिए व्यन्तरने उसे मार डाला। मरकर इस पापके फलसे चक्रवर्त्ती सातवें नरक गया। उस मूर्खताको, उस लम्पटताको धिक्कार है जिससे चक्रवर्त्ती—सारी पृथिवीका सम्राट् दुर्गतिमें गया। जिसका जिन भगवान्के धर्म पर विश्वास नहीं होता उसे चक्रवर्त्तीकी तरह कुगतिमें जाना पड़े तो इसमें आश्चर्य क्या ? वे पुरुष धन्य हैं और वे ही सबके आदर पात्र हैं, जिनके हृदयमें सुख देनेवाले जिन वचन रूप अमृतका सदा सोता बहता रहता है। इन्हीं वचनोंपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन जीवमात्रका हित करनेवाला है, संसारका भय मिटानेवाला है, नाना प्रकारके सुखोंका देनेवाला है, और मोक्ष प्राप्तिका मुख्य कारण है। देव, विद्याधर आदि सभी बड़े बड़े पुरुष सम्यग्दर्शनकी या उसके धारण करनेवालेकी पूजा करते हैं। यह

गुणोंका खजाना है। सम्यग्दृष्टिको कोई प्रकारकी भय-बाधा नहीं होती। वह बड़ी सुख-शान्तिसे रहता है। इसलिए जो सच्चे सुखकी आशा रखते हैं उन्हें आठ अंग सहित इस पवित्र सम्यग्दर्शनका विश्वासके साथ पालन करना चाहिए।

७७-शुभ राजाकी कथा।

संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार कर शुभ नामके राजाकी कथा लिखी जाती है।

मिथिला नगरके राजा शुभकी रानी मनोरमाके देवरति नामका एक पुत्र था। देवरति गुणवान और बुद्धिमान् था। किसी प्रकारका दोष या व्यसन उसे छू तक न गया था।

एक दिन देवगुरु नामके अवधिज्ञानी मुनिराज अपने संघको साथ लिये मिथिलामें आये। शुभ राजा तब बहुतसे भव्यजनोंके साथ मुनि-पूजाके लिए गया। मुनिसंघकी सेवा-पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। अन्तमें उसने अपने भविष्यके सम्बन्धका मुनिराजसे प्रश्न किया—योगिराज, कृपाकर बतलाइए कि आगे मेरा जन्म कहाँ होगा ? उत्तरमें मुनिने कहा—राजन्, सुनिए-पापकर्मोंके उदयसे तुम्हें आगेके जन्ममें तुम्हारे ही पाखानेमें एक बड़े कीड़ेकी देह प्राप्त होगी, शहरमें घुसते समय तुम्हारे मुँहमें विष्टा प्रवेश करेगा, तुम्हारा छत्रभंग होगा और आजके सातवें दिन बिजली गिरनेसे

तुम्हारी मौत होगी। सच है, जीवोंके पापके उदयसे सभी कुछ होता है। मुनिराजने ये सब बातें राजासे बड़े निडर होकर कहीं। और यह ठीक भी है कि योगियोंके मनमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता।

मुनिका शुभके सम्बन्धका भविष्य-कथन सच होने लगा। एक दिन बाहरसे लौट कर जब वे शहरमें घुसने लगे तब घोड़ेके पाँवोंकी ठोकरसे उड़े हुए थोड़ेसे विष्टाका अंश उनके मुँहमें आ गिरा और यहांसे वे थोड़े ही आगे बढ़े होंगे कि एक जोरकी आँधीने उनके छत्रको तोड़ डाला। सच है, पापकर्मोंके उदयसे क्या नहीं होता। उन्होंने तब अपने पुत्र देवरतिको बुलाकर कहा—बेटा, मेरे कोई ऐसा पापकर्मका उदय आवेगा उससे मैं मरकर अपने पाखानेमें पाँच रंगका कीड़ा होऊँगा, सो तुम उस समय मुझे मार डालना। इस लिए कि फिर मैं कोई अच्छी गति प्राप्त कर सकूँ। उक्त घटनाको देखकर शुभको यद्यपि यह एक तरह निश्चयसा हो गया था कि मुनिराजकी कही बातें सच्ची हैं और वे अवश्य होंगी पर तब भी उनके मनमें कुछ कुछ सन्देह बना रहा और इसी कारण बिजली गिरनेके भयसे डरकर उन्होंने एक लोहेकी बड़ी मजबूत सन्दूक मँगवाई और उसमें बैठकर गंगाके गहरे जलमें उसे रख आनेको नौकरोंको आज्ञा की। इसलिए कि जलमें बिजलीका असर नहीं होता। उन्हें आशा थी कि मैं इस उपायसे रक्षा पा जाऊँगा। पर उनकी यह बे-समझी थी। कारण प्रत्यक्ष-ज्ञानियोंकी कोई बात कभी झूठी नहीं होती। जो हो, सातवाँ दिन आया। आकाशमें बिजलियाँ चमकने लगीं। इसी समय भाग्यसे एक बड़े मच्छने राजाकी उस

सन्दूकको एक ऐसा जोरका उथेला दिया कि सन्दूक जल बाहर दो हाथ ऊँचे तक उछल आई। सन्दूकका बाहर होना था कि इतनेमें बड़े जोरसे कड़क कर उस पर बिजली आ गिरी। खेद है कि उस बिजलीके गिरनेसे राजा अपने यत्नमें कामयाब न हुए और आखिर वे मौतके मुँहमें पड़ ही गये। मरकर वह मुनिराजके कहे अनुसार पाखानेमें कीड़ा हुए। पिताके कहे माफिक जब देवरतिने जाकर देखा तो सचमुच एक पाँच रंगका कीड़ा उसे देख पड़ा और तब उसने उसे मार डालना चाहा। पर जैसे ही देवरतिने हाथका हथियार उसके मारनेको उठाया, वह कीड़ा उस विष्टाके ढेरमें घुस गया। देवरतिको इससे बड़ा ही अचम्भा हुआ। उसने जिन जिनसे इस घटनाका हाल कहा, उन सबको संसारकी इस भयंकर लीलाको सुन बड़ा डर मालूम हुआ। उन्होंने तब संसारका बन्धन काट देनेके लिए जैनधर्मका आश्रय लिया, कितनोंने सब माया-ममता तोड़ जिनदीक्षा ग्रहण की और कितनोंने अभ्यास बढ़ानेको पहले श्रावकोंके व्रत ही लिये।

देवरतिको इस घटनासे बड़ा अचम्भा हो ही रहा था, सो एक दिन उसने ज्ञानी मुनिराजसे इसका कारण पूछा—भगवन्, क्यों तो मेरे पिताने मुझसे कहा कि मैं विष्टामें कीड़ा होऊंगा सो मुझे तू मार डालना और जब मैं उस कीड़ेको मारने जाता हूँ तब वह भीतर ही भीतर घुसने लगता है। मुनिने इसके उत्तरमें देवरतिसे कहा—भाई, जीव गतिसुखी होता है। फिर चाहे वह कितनी ही बुरीसे बुरी जगह भी क्यों न पैदा हो। वह उसीमें अपनेको सुखी मानेगा—वहाँसे कभी मरना पसन्द न करेगा। यही कारण है कि

जबतक तुम्हारे पिता जीते थे तबतक उन्हें मनुष्य जीवनसे प्रेम था—उन्होंने न मरनेके लिए यत्न भी किया, पर उन्हें सफलता न मिली। और ऐसी उच्च मनुष्य गतिसे वे मरकर कीड़ा होंगे, सो भी विष्टामें। इसका उन्हें बहुत खेद था और इसीलिए उन्होंने तुमसे उस अवस्थामें मार डालनेको कहा था। पर अब उन्हें वही जगह अत्यन्त प्यारी है—वे मरना पसन्द नहीं करते। इसलिए जब तुम उस कीड़ेको मारने जाते हो तब वह भीतर घुस जाता है। इसमें आश्चर्य और खेद करनेकी कोई बात नहीं। संसारकी स्थिति ही ऐसी है। मुनिराज द्वारा यह मार्मिक उपदेश सुनकर देवरतिको बड़ा वैराग्य हुआ। वह संसारको छोड़कर, इसलिए कि उसमें सार कुछ नहीं है, मुनिपद स्वीकार कर आत्महित साधक योगी हो गया।

जिनके वचन पापोंके नाश करनेवाले हैं, सर्वोत्तम हैं, और संसारका भ्रमण मिटानेवाले हैं, वे देवों द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान् मुझे तबतक अपने चरणोंकी सेवाका अधिकार दें जबतक कि मैं कर्मोंका नाशकर मुक्ति प्राप्त न करलूं।

७८—सुदृष्टि सुनारकी कथा।

देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजों द्वारा पूजा किये जानेवाले जिन भगवान्को नमस्कार कर सुदृष्टि नामक सुनारकी, जो रत्नोंके काममें बड़ा होशियार था, कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा प्रजापाल बड़े प्रजाहितैषी, धर्मात्मा और जिन भगवान्‌के सच्चे भक्त थे। इनकी रानीका नाम सुप्रभा था। सुप्रभा बड़ी सुन्दरी और सती थी। सच है संसार में वही रूप और वही सौन्दर्य प्रशंसाके लायक होता है जो शीलसे भूषित हो।

यहाँ एक सुदृष्टि नामका सुनार रहता था। जवाहिरातके काममें यह बड़ा चतुर था तथा सदाचारी और सरल-स्वभावी था। इसकी स्त्रीका नाम विमला था। विमला दुराचारिणी थी। अपने घरमें रहनेवाले एक वक्र नामके विद्यार्थीसे, जिसे कि सुदृष्टि अपने खर्चसे लिखाता-पढ़ाता था, विमलाका अनुचित सम्बन्ध था। विमला अपने स्वामीसे बहुत ना-खुश थी। इसलिए उसने अपने प्रेमी वक्रको उसका कर—उसे कुछ भली-बुरी सुझाकर सुदृष्टिका खून करवा दिया। खून उस समय किया गया जब कि सुदृष्टि विषय-सेवनमें मग्न था। सो यह मरकर विमलाके ही गर्भमें आया। विमलाने कुछ दिनों बाद पुत्र प्रसव किया। आचार्य कहते हैं कि संसारकी स्थिति बड़ी ही विचित्र है जो पलभरमें कर्मोंकी पराधीनता से जीवोंका अजब परिवर्तन हो जाता है। वे नटकी तरह क्षणक्षणमें रूप बदला ही करते हैं।

चैतका महीना था वसन्तकी शोभाने सब ओर अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था। वन उपवनोंकी शोभा मनको मोह लेती थी। इसी सुन्दर समयमें एक दिन महारानी सुप्रभा अपने खास बगीचेमें प्राणनाथके साथ हँसीविनोद कर रही थी। इसी हँसी-विनोदमें उसका क्रीड़ा-विलास नामका सुन्दर और बहुमूल्य

हार टूट पड़ा। उसके सब रत्न बिखर गये। राजाने उसे फिर वैसा ही बनवानेका बहुत यत्न किया, जगह जगहसे अच्छे सुनार बुलवाये पर हार पहले सा किसीसे नहीं बना। सच है, बिना पुण्यके कोई उत्तम कला या ज्ञान नहीं होता। इसी टूटे हुए हारको विमलाके लड़केने अर्थात् पूर्वभवके उसके पति सुदृष्टिने देखा। देखते ही उसे जाति स्मरण-पूर्व जन्मका ज्ञान हो गया। उससे उसने उस हारको पहलेसा ही बना दिया। इसका कारण यह था कि इस हारको पहले भी सुदृष्टिहीने बनाया था और यह बात सच है कि इस जीवको पूर्व जन्मके संस्कार पुण्यसे ही कला कौशल, ज्ञान-विज्ञान दान-पूजा आदि सभी बातें प्राप्त हुआ करती हैं। प्रजापाल उसकी यह हुशियारी देख कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे पूछा भी कि भाई, यह हार जैसा सुदृष्टिका बनाया था वैसा ही तुमने कैसे बना दिया? तब वह विमलाका लड़का मुँह नीचा कर बोला—राजाधिराज, मैं अपनी कथा आपसे क्या कहूँ। आप यह समझें कि वास्तवमें मैं ही सुदृष्टि हूँ। इसके बाद उसने बीती हुई सब घटना राजासे कह सुनाई। वे संसारकी इस विचित्रताको सुनकर विषय-भोगोंसे बड़े विरक्त हुए। उन्होंने उसी समय सब माया-जाल छोड़कर आत्महित का पथ जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

इधर विमलाके लड़केको भी अत्यन्त वैराग्य हुआ। वह स्वर्ग मोक्षके सुखोंको देनेवाली जिनदीक्षा लेकर योगी बन गया। यहाँसे फिर यह विशुद्धात्मा धर्मोपदेशके लिये अनेक देशों और शहरोंमें घूम-फिर कर तपस्या करता हुआ और अनेक भव्यजनोंको आत्महितके मार्ग पर लगाता हुआ सौरीपुरके उत्तर भागमें यमुनाके

पवित्र किनारे पर आकर ठहरा। यहाँ शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंका नाश कर इसने लोकालोकका ज्ञान करानेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य होकर अन्तमें मुक्ति लाभ किया। वे विमला-सुत मुनि मुझे शान्ति दें।

वे जिन भगवान् आप भव्यजनोंको और मुझे मोक्षका सुख दें, जो संसार-सिन्धुमें डूबते हुए, असहाय-निराधार जीवोंको पार करनेवाले हैं, कर्म-शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, संसारके सब पदार्थोंको देखनेवाले केवलज्ञानसे युक्त हैं—सर्वज्ञ हैं, स्वर्ग तथा मोक्षका सुख देनेवाले हैं और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों—आदि प्रायः सभी महा पुरुषोंसे पूजा किये जाते हैं।

७९—धर्मसिंह मुनि की कथा।

सब प्रकारके देवों द्वारा जो पूजा-स्तुति किये जाते हैं और ज्ञानके समुद्र हैं, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धर्मसिंह मुनिकी कथा लिखी जाती है।

दक्षिण देशके कौशलगिर नगरके राजा वीरसेनकी रानी वीरमतीके दो सन्तान थीं। एक पुत्र था और एक कन्या थी। पुत्रका नामचन्द्रभूति और कन्याका चन्द्रश्री था। चन्द्रश्री बड़ी सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी।

कौशल देश और कौशल ही शहरके राजा धर्मसिंहके साथ चन्द्रश्रीकी शादी हुई थी। दोनों दम्पति सुखसे रहते थे। नाना प्रकारकी भोगोपभोग वस्तुएँ सदा उनके लिये मौजूद रहती थीं।

इतना होने पर भी राजाका धर्म पर पूर्ण विश्वास था—अगाध श्रद्धा थी। वे सदा दान, पूजा, व्रतादि धर्मकार्य करते थे।

एक दिन धर्मसिंह तपस्वी दमधर मुनिके दर्शनार्थ गये। उनकी भक्तिसे पूजा-स्तुति कर उन्होंने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना, जो धर्म देवों द्वारा भी बड़ी भक्तिके साथ पूजा माना जाता है। धर्मोपदेशका धर्मसिंहके चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा। उससे वे संसार और विषय-भोगोंसे विरक्त हो गये। उनकी रानी चंद्रश्रीको उन्हें जवानीमें दीक्षा लेजानेसे बड़ा कष्ट हुआ। पर बेचारी लाचार थी। उसके दुःखकी बात जब उसके भाई चन्द्रभूतिको मालूम हुई तो उसे भी अत्यन्त दुःख हुआ। उससे अपनी बहिनकी यह हालत न देखी गई। उसने तब जबरदस्ती अपने बहनोई धर्मसिंहको उठा लाकर चन्द्रश्रीके पास ला रक्खा। धर्मसिंह फिर भी न ठहरे और जाकर उन्होंने पुनः दीक्षा लेली और महा तप तपने लगे।

एक दिन इसी तरह वे तपस्या कर रहे थे। तब उन्होंने चन्द्रभूतिको अपनी ओर आता हुआ देखा। उन्होंने समझ लिया कि यह फिर मेरी तपस्या बिगाड़ेगा। सो तपकी रक्षाके लिये पास ही पड़े हुए मृत हाथीके शरीरमें घुसकर उन्होंने समाधि ले ली और अन्तमें शरीर छोड़कर वे स्वर्गमें गये। इसलिये भव्यजनोंको कष्टके समय भी अपने व्रतकी रक्षा करनी ही चाहिये कि जिससे स्वर्ग या मोक्षका सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है।

निर्मल जैनधर्मके प्रेमी जिन श्रीधर्मसिंह मुनिने जिन भगवान्‌के उपदेश किये और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले तप मार्गका आश्रय

ले उसके पुण्यसे स्वर्ग-सुख लाभ किया वे संसार प्रसिद्ध महात्मा और अपने गुणोंसे सबकी बुद्धि पर प्रकाश डालनेवाले मुझे भी मंगल-सुख दान करें ।

८०–वृषभसेन की कथा ।

स्वर्ग और मोक्षका सुख देनेवाले तथा सारे संसारके द्वारा पूजे-माने जानेवाले श्री जिन भगवान्‌को नमस्कार कर वृषभसेनकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र (पटना) में वृषभदत्त नामका एक सेठ रहता था । पूर्व पुण्यके प्रभावसे इसके पास धन सम्पत्ति खूब थी । इसकी स्त्रीका नाम वृषभदत्ता था । इसके वृषभसेन नामका सर्वगुण-सम्पन्न एक पुत्र था । वृषभसेन बड़ा धर्मात्मा और सदा दान-पूजादिक पुण्यकर्मोंका करनेवाला था ।

वृषभसेनके मामा धनपतिकी स्त्री श्रीकान्ताके एक लड़की थी । इसका नाम धनश्री था । धनश्री सुन्दरी थी, चतुर थी और लिखी-पढ़ी थी । धनश्रीका ब्याह वृषभसेनके साथ हुआ था । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । नाना प्रकारके विषय-भोगोंकी वस्तुएं उनके लिये सदा हाजिर रहती थीं ।

एक दिन वृषभसेन दमधर मुनिराजके दर्शनोंके लिये गया। भक्ति सहित उनकी पूजा-वन्दना कर उसने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना । उपदेश उसे बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उसपर बहुत पड़ा । वह उसी समय संसार और भ्रमसे सुख जान पड़नेवाले

विषय-भोगोंसे उदासीन हो मुनिराजके पास आत्महितकी साधक जिनदीक्षा ले गया । उसे युवावस्थामें ही दीक्षा ले-जानेसे धनश्रीको बड़ा दुःख हुआ । उसे दिन रात रोनेके सिवा कुछ न सूझता था । धनश्रीका यह दुःख उसके पिता धनपतिसे न सहा गया । वह तपोवनमें जाकर वृषभसेनको उठा लाया और जबरदस्ती उसकी दीक्षा वगैरह खण्डित कर दी—उसे गृहस्थ बना दिया । सच है, मोही पुरुष करने और न करने योग्य कामोंका विचार न कर उन्मत्तकी तरह हर एक काम करने लग जाता है, जिससे कि पापकर्मोंका उसके तीव्र बंध होता है ।

जैसे मनुष्यको कैदमें जबरदस्ती रहना पड़ता है उसी तरह वृषभसेनको भी कुछ समय तक और घरमें रहना पड़ा । इसके बाद वह फिर मुनि हो गया । इसका फिर मुनि हो जाना जब धनपतिको मालूम हुआ तो किसी बहानेसे घर पर लाकर अबकी बार उसे उसने लोहेकी साँकलसे बाँध दिया । मुनिने यह सोचकर, कि यह मुझे अबकी बार फिर व्रतरूपी पर्वतसे गिरा देगा—मेरा व्रत भंग कर देगा, संन्यास ले लिया, और इसी अवस्थामें शरीर छोड़कर वह पुण्यके उदयसे स्वर्गमें देव हुआ । दुर्जनों द्वारा सत्पुरुषोंको कितने ही कष्ट क्यों न पहुँचाये जायँ पर वे कभी पापबन्धके कारण कामोंमें नहीं फँसते ।

दुर्जन पुरुष चाहे कितनी ही तकलीफ क्यों न दें, पर पवित्र बुद्धिके धारी सज्जन महात्मा पुरुष तो जिन भगवान्‌के चरणोंकी

सेवा पूजासे होनेवाले पुण्यसे सुख ही प्राप्त करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

८१–जयसेन राजा की कथा।

स्वर्गादि सुखोंके देनेवाले और मोक्षरूपी रमणीके स्वामी श्रीजिन भगवानको नमस्कार कर जयसेन राजाकी सुन्दर कथा लिखी जाती है।

सावत्तीके राजा जयसेनकी रानी वीरसेनाके एक पुत्र था। इसका नाम वीरसेन था। वीरसेन बुद्धिमान् और सच्चे हृदयका था। मायाचार-कपट उसे छू तक न गया था।

यहाँ एक शिवगुप्त नामका बुद्ध भिक्षुक रहता था। यह मांसभक्षी और निर्दयी था। ईर्षा और द्वेष इसके रोम रोममें ठसा था मानों वह इनका पुतला था। यह शिवगुप्त राजगुरु था। ऐसे मिथ्यात्वको धिक्कार है जिसके वश हो ऐसे मायावी और द्वेषी भी गुरु हो जाते हैं।

एक दिन यतिवृषभ मुनिराज अपने सारे संघको साथ लिये सावस्तीमें आये। राजा यद्यपि बुद्धधर्मका माननेवाला था, तथापि वह और और लोगोंको मुनिदर्शनके लिये जाते देख आप भी गया। उसने मुनिराज द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश चित लगाकर सुना। उपदेश उसे बहुत पसन्द आया। उसने मुनिराजसे प्रार्थना कर श्रावकोंके व्रत लिये। जैनधर्म पर अब उसकी दिनों दिन श्रद्धा बढ़ती ही गई। उसने अपने सारे राज्यभरमें कोई ऐसा स्थान न

रहने दिया जहाँ जिनमन्दिर न हो। प्रत्येक शहर, प्रत्येक गाँवमें इसने जिनमन्दिर बनवा दिया। जिनधर्मके लिये राजाका यह प्रयत्न देख शिवगुप्त ईर्षा और द्वेषके मारे जलकर खाक हो गया। वह अब राजाको किसी प्रकार मार डालनेके प्रयत्नमें लगा। और एक दिन खास इसी कामके लिये वह पृथिवी पुरी गया और वहाँके बुद्धधर्मके अनुयायी राजा सुमतिको उसने जयसेनके जैनधर्म धारण करने और जगह जगह जिनमन्दिरोंके बनवाने आदिका सब हाल कह सुनाथा। यह सुन सुमतिने जयसेनको एक पत्र लिखा कि "तुमने बुद्धधर्म छोड़कर जो जैनधर्म ग्रहण किया, यह बहुत बुरा किया है। तुम्हें उचित है कि तुम पीछा बुद्धधर्म स्वीकार करलो।" इसके उत्तरमें जयसेनने लिख भेजा कि—"मेरा विश्वास है-निश्चय है कि जैनधर्म ही संसारमें एक ऐसा सर्वोच्च धर्म है जो जीवमात्रका हित करनेवाला है। जिस धर्ममें जीवोंका मांस खाया जाता है या जिनमें धर्मके नाम पर हिंसा वगैरह महापाप बड़ी खुशीके साथ किये जाते हैं वे धर्म नहीं हो सकते। धर्मका अर्थ है—जो संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तम सुखमें रक्खे, सो यह बात सिवा जैनधर्मके और धर्मोंमें नहीं है। इसलिए इसे छोड़कर और सब अशुभ बन्धके कारण हैं।" सच है, जिसने जैनधर्मका सच्चा स्वरूप जान लिया वह क्या फिर किसीसे डिगाया जा सकता है ? नहीं। प्रचण्डसे प्रचण्ड हवा भी क्यों न चले पर क्या वह मेरुको हिला देगी ? नहीं। जयसेनके इस प्रकार विश्वासको देख सुमतिको बड़ा गुस्सा आया। तब उसने दो आदमियोंको इसलिए सावस्तीमें भेजा कि वे जयसेनकी हत्या कर आवें। वे दोनों आकर कुछ समय तक सावस्तीमें ठहरे

और जयसेनके मार डालनेकी खोजमें लगे रहे, पर उन्हें ऐसा मौका ही न मिल पाया जो वे जयसेनको मार सकें। तब लाचार हो वे वापिस पृथ्वीपुरी आये और सब हाल उन्होंने राजासे कह सुनाया। इससे सुमतिका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने तब अपने सब नौकरोंको इकट्ठा कर कहा—क्या कोई मेरे आदमियोंमें ऐसा भी हिम्मत बहादुर है जो सावस्ती जाकर किसी तरह जयसेनको मार आवे! उनमेंसे एक हिमार नामके दुष्टने कहा—हाँ महाराज, मैं इस कामको कर सकता हूँ। आप मुझे आज्ञा दें। इसके बाद ही वह राजाज्ञा पाकर सावस्ती आया और यतिवृषभ मुनिराजके पास मायाचारसे जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया।

एक दिन जयसेन मुनिराजके दर्शन करनेको आया और अपने नौकर-चाकरोंको मन्दिर बाहर ठहरा कर आप मन्दिरमें गया। मुनिको नमस्कार कर वह कुछ समयके लिए उनके पास बैठा और उनसे कुशल समाचार पूछकर उसने कुछ धर्म-सम्बन्ध बात-चीत की। इसके बाद जब वह चलनेके पहले मुनिराजको ढोक देनेके लिए झुका कि इतनेमें वह दुष्ट हिमारक जयसेनको मार कर भाग गया। सच है बुद्ध लोग बड़े ही दुष्ट हुआ करते हैं। यह देख मुनि यतिवृषभको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा—कहीं सारे संघ पर विपत्ति न आये, इस लिए पासहीकी भींत पर उन्होंने यह लिख कर, कि "दर्शन या धर्मकी डाहके वश होकर ऐसा काम किया गया है," छुरीसे अपना पेट चीर लिया और स्थिरतासे संन्यास द्वारा मृत्यु प्राप्तकर वे स्वर्ग गये।

वीरसेनको जब अपने पिताकी मृत्युका हाल मालुम हुआ तो वह उसी समय दौड़ा हुआ मन्दिर आया। उसे इस प्रकार दिन-दहाड़े किसी साधारण आदमीकी नहीं, किन्तु खास राजा साहबकी हत्या हो जाने और हत्याकारीका कुछ पता न चलनेका बड़ा ही आश्चर्य हुआ। और जब उसने अपने पिताके पास मुनिको भी मरा पाया तब तो उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना ही न रहा। वह बड़े विचारमें पड़ गया। ये हत्याएँ क्यों हुई? और कैसे हुईं? इसका कारण कुछ भी उसकी समझमें न आया। उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं इन मुनिने तो यह काम न किया हो? पर दूसरे ही क्षणमें उसने सोचा कि ऐसा नहीं हो सकता। इनका और पिताजीका कोई बैर-विरोध नहीं, लेना देना नहीं, फिर वे क्यों ऐसा करने चले? और पिताजी तो इनके इतने बड़े भक्त थे। और न केवल यही बात थी कि पिताजी ही इनके भक्त हों, ये साधुजी भी तो उनसे बड़ा प्रेम करते थे; घण्टोंतक उनके साथ इनकी धर्मचर्चा हुआ करती थी। फिर इस सन्देहको जगह नहीं रहती कि एक निस्पृह और शान्त योगी द्वारा यह अनर्थ घड़ा जा सके। तब हुआ क्या? बेचारा वीरसेन बड़ी कठिन समस्यामें फँसा। वह इस प्रकार चिन्तातुर हो कुछ सोच-विचार कर ही रहा था कि उसकी नजर सामनेकी भींत पर जा पड़ी। उस पर यह लिखा हुआ, कि "दर्शन या धर्मको डाहके वश होकर ऐसा हुआ है," देखने ही उसकी समझमें उसी समय सब बातें बराबर आगईं। उसके मनका अब रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। उसकी अब मुनिराज पर अत्यन्त ही श्रद्धा हो गई। उसने मुनिराजके धैर्य और सहनपने

की बड़ी प्रशंसा की। जैनधर्मके विषयमें उसका पूरा पूरा विश्वास हो गया। जिनका दुष्ट स्वभाव है, जिनसे दूसरोंके धर्मका अभ्युदय-उन्नति नहीं सही जाती, ऐसे लोग जिनधर्म सरीखे पवित्र धर्म पर चाहे कितना ही दोष क्यों न लगावें, पर जिनधर्म तो बादलोंसे न ढके हुए सूरजकी तरह सदा ही निर्दोष रहता है।

जिस धर्मको चारों प्रकारके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती, राजे-महाराजे आदि सभी महा पुरुष भक्तिसे पूजते-मानते हैं, जो संसारके दुःखोंका नाश कर स्वर्ग या मोक्षका देनेवाला है, सुखका स्थान है, संसारके जीव मात्रका हित करनेवाला है और जिसका उपदेश सर्वज्ञ भगवान्‌ने किया है और इसीलिए सबसे अधिक प्रमाण या विश्वास करने योग्य है, वह धर्म—वह आत्माकी एक खास शक्ति मुझे प्राप्त होकर मोक्षका सुख दे।

८२–शकटाल मुनिकी कथा।

सुखके देनेवाले और संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर शकटाल मुनिकी कथा लिखी जाती है।

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा नन्दके दो मंत्री थे। एक शकटाल और दूसरा वररुचि। शकटाल जैनी था, इस लिए सुतरां उसकी जैनधर्म पर अचल श्रद्धा या प्रीति थी। और वररुचि जैनी नहीं था, इसलिए सुतरां उसे जैन धर्मसे, जैनधर्मके पालनेवालोंसे

द्वेष था—ईर्षा थी। और इसीलिए शकटाल और वररुचिकी कभी न बनती थी—एकसे एक अत्यन्त विरुद्ध थे।

एक दिन जैनधर्मके परम विद्वान् महापद्म मुनिराज अपने संघको साथ लिये पटनामें आये। शकटाल उनके दर्शन करनेको गया। बड़ी भक्तिके साथ उसने उनकी पूजा-वन्दना की और उनके पास बैठकर मुनि और गृहस्थ धर्मका उनसे पवित्र उपदेश सुना। उपदेशका शकटालके धार्मिक अतएव कोमल हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह उसी समय संसारका सब माया-जाल तोड़कर दीक्षा ले मुनि हो गया। इसके बाद उसने अपने गुरु द्वारा सिद्धान्तशास्त्रका अच्छा अभ्यास किया। थोड़े ही दिनोंमें शकटाल मुनिने कई विषयोंमें बहुत ही अच्छी योग्यता प्राप्त करली। गुरु इनकी बुद्धि, विद्वत्ता, तर्कनाशक्ति और सर्वोपरि इनकी स्वाभाविक प्रतिभा देखकर बहुत ही खुश हुए। उन्होंने अपना आचार्यपद अब इन्हें ही दे दिया। यहाँसे ये धर्मोपदेश और धर्म प्रचारके लिए अनेक देशों, शहरों और गाँवोंमें घूमे-फिरे। इन्होंने बहुतोंको आत्महित साधक पवित्र मार्ग पर लगाया और दुर्गतिके दुःखोंका नाश करनेवाले पवित्र जैनधर्मका सब ओर प्रकाश फैलाया। इस प्रकार धर्म प्रभावना करते हुए ये एक बार फिर पटनामें आये।

एक दिनकी बात है कि शकटाल मुनि राजाके अन्तःपुरमें आहार कर तपोवनको ओर जा रहे थे। मंत्री वररुचिने इन्हें देख लिया। सो इस पापीने पुराने बैरका बदला लेनेका अच्छा मौका देखकर नन्दसे कहा—महाराज, आपको कुछ खबर है कि इस समय

अपना पुराना मंत्री पापी शकटाल भीखके बहाने आपके अन्तःपुर में—रनवासमें घुसकर न जाने क्या अनर्थ कर गया है ! मुझे तो उसके चले जाने बाद ये समाचार मिले, नहीं तो मैंने उसे कभीका पकड़वा कर पापकी सजा दिलवा दी होती। अस्तु, आपको ऐसे धूर्तोंके लिए चुप बैठना उचित नहीं। सच है, दुर्गतिमें जानेवाले ऐसे पापी लोग बुरासे बुरा कोई काम करते नहीं चूकते। नन्दने अपने मंत्रीके बहकानेमें आकर गुस्सेसे उसी समय एक नौकरको आज्ञा की कि वह जाकर शकटालको जानसे मार आवे। सच है, मूर्ख पुरुष दुर्जनों द्वारा उस्कैरे जाकर करने और न करने योग्य भले-बुरे कार्यका कुछ विचार न कर अन्याय कर ही डालते हैं। शकटाल मुनिने जब उस घातक मनुष्यको अपनी ओर आते देखा तब उन्हें विश्वास हो गया कि यह मेरे ही मारनेको आ रहा है। और यह सब कर्म मन्त्री वररुचिका है। अस्तु, जबतक वह घातक शकटाल मुनिके पास पहुंचता है उसके पहले ही उन्होंने सावधान होकर सन्यास ले लिया। घातक अपना काम पूरा कर वापिस लौट गया। इधर शकटाल मुनिने समाधिसे शरीर त्यागकर स्वर्ग लाभ किया। सच है, दुष्ट पुरुष अपनी ओरसे कितनी हो दुष्टता क्यों न करे, पर उससे सत्पुरुषोंको कुछ नुकसान न पहुँच कर लाभ ही होता है।

परन्तु जब नन्दको यह सब सच्चा हाल ज्ञात हुआ और उसने सब बातोंकी गहरी छान-बीन की तब उसे मालूम हो गया कि शकटाल मुनिका कोई दोष न था—वे सर्वथा निरपराध थे। इसके पहले जैनमुनियोंके सम्बन्धमें जो उसकी मिथ्या धारणा हो गई

थी और उन पर जो उसका बे-हद क्रोध हो रहा था उस सबको हृदयसे दूर कर वह अब बड़ा ही पछताया। अपने पाप कर्मोंकी उसने बहुत निन्दा की। इसके बाद वह श्रीमहापद्म मुनिके पास गया। बड़ी भक्तिसे उसने उनकी पूजा-वन्दना की और सुखके कारण पवित्र जैनधर्मका उनके द्वारा उपदेश सुना। धर्मोपदेशका उसके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने श्रावकोंके व्रत धारण किये। जैनधर्म पर अब इसकी अचल श्रद्धा हो गई।

इस जीवको जब कोई बुरी संगति मिल जाती है तब तो वह बुरेसे बुरे पापकर्म करने लग जाता है और जब अच्छे महात्मा पुरुषोंकी संगति मिलती है तब यही पुण्य-पवित्र कर्म करने लगता है। इसलिए भव्यजनोंको सदा ऐसे महा पुरुषोंकी संगति करना चाहिए जो संसारके आदर्श हैं और जिनकी सत्संगतिसे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

इन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपरूपी रत्नोंकी सुन्दर मालाको प्रभाचन्द्र आदि पूर्वाचार्योंने शास्त्रोंका सार लेकर बनाया है, जो ज्ञानके समुद्र और सारे संसारके जीव मात्रका हित करनेवाले थे। उन्हींकी कृपासे मैंने इस आराधनारूपी मालाको अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार बनाया है। यह माला आप भव्यजनों को और मुझे सुख दे।

८३—श्रद्धायुक्त मनुष्यकी कथा।

निर्मल केवलज्ञान द्वारा सारे संसारके पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर श्रद्धागुणके धारी विनयंधर राजाकी कथा लिखी जाती है जो कथा सत्पुरुषोंको प्रिय है।

कुरुजांगल देशकी राजधानी हस्तिनापुरका राजा विनयंधर था। उसकी रानीका नाम विनयवती था। यहाँ वृषभसेन नामका एक सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम वृषभसेना था। इसके जिनदास नामका एक बुद्धिमान् पुत्र था।

विनयंधर बड़ा कामी था। सो एक बार इसके कोई महा रोग हो गया। सच है, ज्यादा—मर्यादासे बाहर विषय सेवन भी उलटा दुःखका ही कारण होता है। राजाने बड़े बड़े वैद्योंका इलाज करवाया पर उसका रोग किसी तरह न मिटा। राजा इस रोग से बड़ा दुःखी हुआ। उसे दिन रात चैन न पड़ने लगा।

राजाका एक सिद्धार्थ नामका मंत्री था। यह जैनी था। शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक था। सो एक दिन इसने पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराजके पाँव प्रक्षालनका जल लाकर, जो कि सब रोगोंका नाश करनेवाला होता है, राजाको दिया। जिन भगवान्‌के सच्चे भक्त उस राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ उस जलको पी लिया। उसे पीनेसे उसका सब रोग जाता रहा। जैसे सूरजके उगनेसे अंधकार जाता रहता है। सच है, साधु-महात्माओंके तपके प्रभावको कौन कह सकता है, जिनके कि पाँव धोनेके पानीसे ही सब रोगोंकी शांति

हो जाती है। जिस प्रकार सिद्धार्थ मन्त्रीने मुनिके पाँव प्रक्षालनका पवित्र जल राजाको दिया, उसी प्रकार अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे धर्मरूपी जल सर्व-साधारणको देकर उनका संसारताप शान्त करें। जैनतत्त्वके परम विद्वान् वे पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराज मुझे शान्ति—सुख दें।

जैनधर्ममें या जैनधर्मके अनुसार किये जानेवाले दान, पूजा व्रत, उपवास आदि पवित्र कार्योंमें की हुई श्रद्धा—किया हुआ विश्वास दुःखोंका नाश करनेवाला है। इस श्रद्धाका आनुषङ्गिक फल है—इन्द्र, चक्रवर्त्ती, विद्याधर आदिकी सम्पदाका लाभ और वास्तविक फल है मोक्षका कारण केवलज्ञान, जिसमें कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चार अनन्तचतुष्टय—आत्माकी खास शक्तियाँ प्रगट हो जाती हैं। वह श्रद्धा आप भव्य-जनोंका कल्याण करे।

८४—आत्मनिन्दा करनेवालीकी कथा।

चारों प्रकारके देवों द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर उस स्त्रीकी कथा लिखी जाती है कि जिसने अपने किये पापकर्मोंकी आलोचना कर अच्छा फल प्राप्त किया है।

बनारसके राजा विशाखदत्त थे। उनकी रानीका नाम कनकप्रभा था। इनके यहाँ एक चितेरा रहता था। इसका नाम विचित्र था। यह चित्रकलाका बड़ा अच्छा जानकार था। चितेरेकी

स्त्रीका नाम विचित्रपताका था। इसके बुद्धिमती नामकी एक लड़की थी। बुद्धिमती बड़ी सुन्दरी और चतुर थी।

एक दिन विचित्र चितेरा राजाके खास महलमें, जो कि बड़ा सुन्दर था, चित्र कर रहा था। उसकी लड़की बुद्धिमती उसके लिए भोजन लेकर आई। उसने विनोद वश हो भींत पर मोरकी पींछींका एक चित्र बनाया। वह चित्र इतना सुन्दर बना कि सहसा कोई न जान पाता कि वह चित्र है। जो उसे देखता वह यही कहता कि यह मोरकी पींछी है। इसी समय महाराज विशाखदत्त इस ओर आगये। वे उस चित्रको मोरकी पींछी समझ उठानेको उसकी ओर बढ़े। यह देख बुद्धिमतीने समझा कि महाराज बे-समझ हैं। नहीं तो इन्हें इतना भ्रम नहीं होता।

दूसरे दिन बुद्धिमतीने एक और अद्भुत चित्र राजाको बतलाते हुए अपने पिताको पुकारा—पिताजी, जल्दी आइए, भोजन की जवानीका समय बीत रहा है। बुद्धिमतीके इन शब्दोंको सुनकर राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया। वह उसके कहनेका कुछ भाव न समझ कर एक टकटकी लगाये उसके मुँहकी ओर देखता रह गया। राजाको अपना भाव न समझा देख बुद्धिमतीको उसके मूर्ख होनेका और दृढ़ विश्वास हो गया।

अबकी बार बुद्धिमतीने और ही चाल चली। एक भींत पर दो पड़दे लगा दिये और राजाको चित्र बतलानेके बहानेसे उसने एक पड़दा उठाया। उसमें चित्र न था। तब राजा उस दूसरे पड़देकी ओर चित्रकी आशासे आँखें फाड़कर देखने लगा। बुद्धिमतीने दूसरा पड़दा भी उठा दिया। भींतपर चित्रको न देखकर राजा बड़ा शर्मिंदा हुआ। उसकी इन चेष्टाओंसे उसे पूरा मूर्ख समझ बुद्धिमतीने जरा हँस दिया। राजा और भी अचम्भेमें पड़ गया। वह बुद्धिमती का कुछ भी अभिप्राय न समझ सका। उसने तब व्यग्र हो बुद्धिमती से ऐसा करनेका कारण पूछा। बुद्धिमतीके उत्तरसे उसे जान पड़ा कि वह उसे चाहती है—और इसीलिए पिताको भोजनके लिये पुकारते समय व्यंगसे राजा पर उसने अपना भाव प्रगट किया था। राजा उसकी सुन्दरता पर पहलेहीसे मुग्ध था, सो वह बुद्धिमतीकी बातोंसे बड़ा खुश हुआ। उसने फिर बुद्धिमतीके साथ ब्याह भी कर लिया। धीरे धीरे राजाका उस पर इतना अधिक प्रेम बढ़ गया कि अपनी सब रानियोंमें पट्टरानी उसने उसे ही बना दिया। सच बात यह है कि प्राणियोंकी उन्नतिके लिये उनके गुण ही उनका दूतपना करते हैं—उन्हें उन्नति पर पहुँचा देते हैं।

राजाने बुद्धिमतीको सारे रनवासको स्वामिनी बना तो दिया, पर उससे सब रानियां उस बेचारीकी शत्रु बन गईं—उससे डाह, ईर्षा करने लगीं। आते-जाते वे बुद्धिमतीके सिर पर मारतीं और उसे बुरी-भली सुनाकर बे-हद कष्ट पहुँचातीं। बेचारी बुद्धिमती सीधी-साधी थी, सो न तो वह उनसे कुछ कहती और न महाराजसे ही कभी उनकी शिकायत करती। इस कष्ट और चिन्तासे मन ही मन घुलकर वह सूखसी गई। वह जब जिन मन्दिर दर्शन करने जाती तब सब सिद्धियोंके देनेवाले भगवान्के सामने खड़े हो अपने पूर्व कर्मोंकी निन्दा करती और प्रार्थना करती कि—हे संसार पूज्य, हे स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले, हे दुःखरूपी दावानलके बुझानेवाले मेघ, और हे दयासागर, मैं एक छोटे कुलमें पैदा हुई हूँ, इसीलिये मुझे ये सब

कष्ट हो रहे हैं। पर नाथ, इसमें दोष किसीका नहीं। मेरे पूरब जनमके पापोंका उदय है। प्रभो, जो हो, पर मुझे विश्वास है कि जीवोंको चाहे कितने ही कष्ट क्यों न सता रहे हों, पर जो आपको हृदयसे चाहता है—आपका सच्चा सेवक है; उसके सब कष्ट बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। और इसीलिये—हे नाथ, कामी, क्रोधी मानी मायावी देवोंको छोड़कर मैंने आपकी शरण ली है। आप मेरा कष्ट दूर करेंगे ही। बुद्धिमती न मन्दिरमें ही किन्तु महल पर भी अपने कर्मोंकी आलोचना किया करती। वह सदा एकान्तमें रहती और न किसीसे विशेष बोलती-चालती। राजाने उसके दुर्बल होनेका कारण पूछा—बार बार आग्रह किया, पर बुद्धिमतीने उससे कुछ भी न कहा।

बुद्धिमती क्यों दिनों दिन दुर्बल होती जाती है, इसको शोध लगानेके लिये एक दिन राजा उसके पहले जिनमन्दिर आ गया। बुद्धिमतीने प्रतिदिनकी तरह आज भी भगवान्के सामने खड़ी होकर आलोचना की। राजाने वह सब सुन लिया। सुनकर ही वह सीधा महल पर आया अपनी सब रानियोंको उसने खूब ही फटकारा—धिक्कारा, और बुद्धिमतीको ही उनकी मालकिन—पट्टरानी बनाकर उन सबको उसकी सेवा करनेके लिए बाध्य किया।

जिस प्रकार बुद्धिमतीने अपनी आत्म-निन्दा की, उसी तरह अन्य बुद्धिवानों और क्षुल्लक आदिको भी जिन भगवान्के सामने भक्ति पूर्वक आत्मनिन्दा—पूर्वकर्मोंकी आलोचना करना उचित है।

उत्तम कुल और उत्तम सुखोंकी देनेवाली तथा दुर्गतिके दुःखोंकी नाश करनेवाली जिन भगवान्की भक्ति मुझे भी मोक्ष का सुख दे।

८५—आत्मनिन्दा की कथा।

सब दोषोंके नाश करनेवाले और सुखके देनेवाले ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर अपने बुरे कर्मोंकी निन्दा—आलोचना करनेवाली वीरा ब्राह्मणीकी कथा लिखी जाती है।

दुर्योधन जब अयोध्याका राजा था तबकी यह कथा है। यह राजा बड़ा न्यायी और बुद्धिमान् हुआ है। इसकी रानीका नाम श्रीदेवी था। श्रीदेवी बड़ी सुन्दरी और सच्ची पतिव्रता थी।

यहाँ एक सर्वोपाध्याय नामका ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम वीरा था। इसका चाल-चलन अच्छा न था। जवानी के जोरमें यह मस्त रहा करती थी। उपाध्यायके घर पर एक विद्यार्थी पढ़ा करता था। उसका नाम अग्निभूति था। वीरा ब्राह्मणीके साथ इसकी अनुचित प्रीति थी। ब्राह्मणी इसे बहुत चाहती थी। पर उपाध्याय इन दोनोंके सुखका काँटा था। इस लिये ये मनमाना ऐशोआराम न कर पाते थे। ब्राह्मणीको यह बहुत खटका करता था। सो एक दिन मौका पाकर ब्राह्मणीने अपने पति को मार डाला। और उसे मसानमें फैंक आनेको छत्रीमें छुपाकर अँधेरी रातमें वह घरसे निकली। मसानमें जैसे ही वह उपाध्याय के मुर्देको फैंकनेको तैयार हुई कि एक व्यन्तरदेवीने उसके ऐसे नीच कर्म पर गुस्सा होकर छत्रीको कील दिया और कहा—"सवेरा

होने पर जब तू सारे शहरकी स्त्रियोंके घर-घर पर जाकर अपना यह नीच कर्म प्रगट करेगी—अपने कर्म पर पछतायेगी तब तेरे सिर परसे यह छत्री गिरेगी।" देवीके कहे अनुसार ब्राह्मणीने वैसा ही किया। तब कहीं उसका पीछा छूटा—छत्री सिरसे अलग हो सकी। इस आत्म-निन्दासे ब्राह्मणीका पापकर्म बहुत हलका हो गया—वह शुद्ध हुई। इसीतरह अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे प्रतिदिन होने वाले बुरे कर्मोंकी गुरुओंके पास आलोचना किया करें। उससे उनका पाप नष्ट होगा और अपने आत्माको वे शुद्ध बना सकेंगे।

किसी पुरुषके शरीरमें काँटा लग गया और वह उससे बहुत कष्ट पा रहा है। पर जब तक वह काँटा उसके शरीरसे न निकलेगा तबतक वह सुखी नहीं हो सकता। इसलिए उस कांटे को निकाल फैंककर वैसे वह पुरुष सुखी होता है, उसी तरह जो आत्म-हितैषी जैनधर्मके बताये सिद्धान्त पर चलनेवाले वीतरागी साधुओंकी शरण ले अपने आत्माको कष्ट पहुँचानेवाले पापकर्म रूपी काँटेको कृतकर्मोंकी आलोचना द्वारा निकाल फैंकते हैं वे फिर कभी नाश न होनेवाली आत्मीक लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं।

८६—सोमशर्म मुनिकी कथा।

सर्वोत्तम धर्मका उपदेश करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर सोमशर्म मुनिकी कथा लिखी जाती है।

आलोचना, गर्हा, आत्मनिन्दा, व्रत, उपवास, स्तुति और

कथाएँ इनके द्वारा प्रमादको—असावधानीको नाश करना चाहिए। जैसे मंत्र, औषधि-आदिसे विषका वेग नाश किया जाता है। इसी सम्बन्धकी यह कथा है।

भारतके किसी एक हिस्सेमें बसे हुए पुण्ड्रक देशके प्रधान शहर देवीकोटपुरमें सोमशर्म नामका ब्राह्मण हो चुका है। सोमशर्म वेद और वेदांगका—व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा और कला—का अच्छा विद्वान् था। इसकी स्त्रीका नाम सोमिल्या था इसके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो लड़के थे।

यहाँ विष्णुदत्त नामका एक और ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम विष्णुश्री था। विष्णुदत्त अच्छा धनी था। पर स्वभाव का अच्छा आदमी न था। किसी दिन कोई खास जरूरत पड़ने पर सोमशर्मने विष्णुदत्तसे कुछ रुपया कर्ज लिया था। उसका कर्ज अदा न कर पाया था कि एक दिन सोमशर्मको किसी जैनमुनि के धर्मोपदेशसे वैराग्य हो जानेसे वह मुनि हो गया। वहाँसे विहार कर वह कहीं अन्यत्र चला गया और दूसरे नगरों और गांवोंमें धर्म का उपदेश करता हुआ एक बार फिर वह कोटपुरमें आया। विष्णुदत्तने तब इसे देखकर पकड़ लिया और कहा—साधुजी, आपके दोनों लड़के तो इस समय महा दरिद्र दशामें हैं। उनके पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं है। वे मेरा रुपया नहीं दे सकते। इस लिये या तो आप मेरा रुपया दे दीजिये, या अपना धर्म बेच दीजिये। सोमशर्म मुनिके सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। वे क्या करें, इसकी उन्हें कुछ सूझ न पड़ी। तब उनके गुरु वीर-भद्राचार्यने उनसे कहा—अच्छा तुम जाओ और अपना धर्म बेचो।

उनकी आज्ञा पाकर सोमशर्म मुनि मसानमें जाकर धर्म बेचने लगे। इस समय एक देवीने आकर उनसे पूछा—मुनिराज, जिस धर्मको आप बेच रहे हैं, भला, कहिये तो वह कैसा है ? उत्तरमें मुनिने कहा—मेरा धर्म अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तर गुणों से युक्त है तथा उत्तम-क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन दश भेद रूप है। धर्मका यह स्वरूप श्रीजिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। मुनि द्वारा अपने बेचे जाने वाले धर्मकी इसप्रकार व्याख्या सुनकर वह देवी बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुनिको नमस्कार कर धर्मकी प्रशंसा में कहा—मुनिराज, आपने जो कहा वह बहुत ठीक है। यही धर्म संसारको वश करनेके लिए एक वशीकरण मंत्र है, अमूल्य चिन्तामणि है, सुखरूप अमृतकी धारा है, और मनचाही वस्तुओंके दुहने—देनेके लिये कामधेनु है। अधिक क्या, किन्तु यह समझना चाहिये कि संसारमें जो-जो मनोहरता देख पड़ती है वह सब एक धर्महीका फल है। धर्म एक सर्वोत्तम अमोल वस्तु है। उसका मोल हो ही नहीं सकता। पर मुनिराज, आपको उस ब्राह्मणका कर्ज चुकाना है। आपका यह उपसर्ग दूर हो, इसलिये दीक्षा समय लोंच किये आपके बालोंको उसे कर्जके बदले दिये देती हूँ। यह कहकर देवी उन बालोंको अपनी दैवी-मायासे चमकते हुए बहुमूल्य रत्न बनाकर आप अपने स्थान पर चलदी। सच है, जैन-धर्मका प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है, जो कि सदा ही सुख देनेवाला और देवों द्वारा पूजा किया जाता है।

सबेरा होने पर विष्णुदत्त, सोमशर्म मुनिके तपका प्रभाव देखकर चकित रह गया। उसकी मुनि पर तब बड़ी श्रद्धा हो

गई। उसने नमस्कार कर उनकी प्रशंसामें कहा—योगिराज, सचमुच आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। आपके सरीखा विद्वान और धीर मैंने किसीको नहीं देखा। यह आपहीसे महात्माओंका काम है जो मोहपाश तोड़-तुड़ाकर इस प्रकार दुःसह तपस्या कर रहे हैं। महाराज, आपकी मैं किन शब्दोंमें तारीफ करूँ, यह मुझे नहीं जान पड़ता। आपने तो अपने जीवनको सफल बना लिया। पर हाय ! मैं पापी पापकर्मके उदयसे धनरूपी चोरों द्वारा ठगा गया। मैं अब इनके पेंचीले जालसे कैसे छूट सकूँगा। दयासागर, मुझे बचाइये। नाथ, अब तो मैं आपहीके चरणोंकी सेवा करूँगा। आपकी सेवाको ही अपना ध्येय बनाऊँगा। तब ही कहीं मेरा भला होगा। इसप्रकार बड़ी देरतक विष्णुदत्तने सोमशर्म मुनि की स्तुति की। अन्तमें प्रार्थना कर उनसे दीक्षा ले वह मुनि हो गया। जो विष्णुदत्त एक ही दिन पहले मुनिकी इज्जत—प्रतिष्ठा बिगाड़नेको हाथ धोकर उनके पीछा पड़ा था, और मुनिको उपसर्ग कर जिसने पाप बाँधा था वही गुरुभक्तिसे स्वर्ग और मोक्षके सुख का पात्र हो गया। सच है, धर्मकी शरण ग्रहण कर सभी सुखी होते हैं। विष्णुदत्तके सिवा और भी बहुतेरे भव्यजन जैनधर्मका ऐसा प्रभाव देखकर जैनधर्मके प्रेमी हो गए और उस धनसे, जिसे देवीने मुनिके बालोंको रत्नोंके रूपमें बनाया था, कोटितीर्थ, नाम का एक बड़ा ही सुन्दर जिनमन्दिर बनवा दिया, जिसमें धर्मसाधन कर भव्यजन सुख-शान्ति लाभ करते थे।

जो बुद्धिरूपी धनके मालिक–बड़े विचारशील साधु-सन्त जिन भगवान्के द्वारा उपदेश किये, सारे संसारमें पूजे-माने जाने

वाले, स्वर्ग-मोक्षके या और सब प्रकार सांसारिक सुखके कारण, संसारका भय मिटानेवाले ऐसे परम पवित्र तपको भक्तिसे ग्रहण करते हैं वे कभी नाश न होनेवाले मोक्षका सुखका लाभ करते हैं। ऐसे महात्मा योगीराज मुझे भी आत्मीक सच्चा सुख दें।

८७—कालाध्ययन की कथा।

जिनका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है, और संसारसमुद्रसे पार करने वाला है, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर उचित कालमें शास्त्राध्ययन कर जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है।

जैनतत्वके विद्वान् वीरभद्र मुनि एक दिन सारी रात शास्त्राभ्यास करते रहे। उन्हें इस हालतमें देखकर श्रुतदेवी एक अहीरनीका वेष लेकर उनके पास आई। इसलिये कि मुनिको इस बातका ज्ञान हो जाय कि यह समय शास्त्रोंके पढ़ने पढ़ानेका नहीं है। देवी अपने सिर पर छाछकी मटकी रखकर और यह कहती हुई, कि लो, मेरे पास बहुत ही मीठी छाछ है, मुनिके चारों ओर घूमने लगी। मुनिने तब उसकी ओर देखकर कहा—अरी, तू बड़ी बेसमझ जान पड़ती है, कहीं पगली तो नहीं हो गई है। बतला तो ऐसे एकान्त स्थानमें और सो भी रातमें कौन तेरी छाछ खरीदेगा? उत्तरमें देवीने कहा—महाराज क्षमा कीजिये। मैं तो पगली नहीं हूँ; किन्तु मुझे आप ही पागल देख पड़ते हैं। नहीं तो ऐसे असमयमें, जिसमें पठन-पाठनकी मना है, आप क्यों शास्त्राभ्यास करते? देवीका

उत्तर सुनकर मुनिजीकी आंखें खुलीं। उन्होंने आकाशकी ओर नजर उठाकर देखा तो उन्हें तारे चमकते हुए देख पड़े। उन्हें मालुम हुआ कि अभी बहुत रात है। तब वे पढ़ना छोड़कर सोगये।

सबेरा होने पर वे अपने गुरु महाराजके पास गये और अपनी इस क्रियाकी आलोचना कर उनसे उन्होंने प्रायश्चित्त लिया। अबसे वे शास्त्राभ्यासका जो काल है उसीमें पठन-पाठन करने लगे। उन्हें अपनी गल्तीका सुधार किये देखकर देवी उनसे बहुत खुश हुई। बड़ी भक्तिसे उसने उनकी पूजा की। सच है, गुणवानोंकी सभी पूजा करते हैं।

इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्रका यथार्थ पालन कर वीरभद्र मुनिराज अन्त समयमें धर्म-ध्यानसे मृत्यु लाभ कर स्वर्गधाम सिधारे।

भव्यजनोंको भी उचित है कि वे जिन भगवान्‌के उपदेश किए, संसारको अपनी महत्तासे मुग्ध करनेवाले, स्वर्ग या मोक्षकी सर्वोच्च सम्पदाको देनेवाले, दुःख, शोक, कलंक आदि आत्मा पर लगे हुए कीचड़को धो-देनेवाले, संसारके पदार्थोंका ज्ञान कराने में दीयेकी तरह काम देनेवाले और सब प्रकारके सांसारिक सुखके आनुषङ्गिक कारण ऐसे पवित्र ज्ञानको भक्तिसे प्राप्त कर मोक्षका अविनाशी सुख लाभ करें।

८८–अकालमें शास्त्राभ्यास करनेवालेकी कथा।

संसार द्वारा पूजे जानेवाले और केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, ऐसे जिन भगवान्‌को नमस्कार कर असमयमें–जो शास्त्राभ्यासके लिए योग्य नहीं है, शास्त्राभ्यास करनेसे जिन्हे उसका बुरा फल भोगना पड़ा, उनकी कथा लिखी जाती है। इसलिए कि विचार शीलोंको इस बातका ज्ञान हो कि असमयमें शास्त्राभ्यास करना अच्छा नहीं है—उसका बुरा फल होता है।

शिवनन्दी मुनिने अपने गुरु द्वारा यद्यपि यह जान रक्खा था कि स्वाध्यायका समय—काल श्रवण नक्षत्रका उदय होनेके बाद माना गया है, तथापि कर्मोंके तीव्र उदयसे वे अकाल में ही शास्त्राभ्यास किया करते थे। फल इसका यह हुआ कि मिथ्या समाधिमरण द्वारा मरकर उन्होंने गंगामें एक बड़े भारी मच्छकी पर्याय धारण की। सो ठीक हा है जिन भगवान् की आज्ञाका उल्लंघन करने से इस जीव को दुर्गतिके दुःख भोगना ही पड़ते हैं।

एक दिन नदी किनारे पर एक मुनि शास्त्राभ्यास कर रहे थे। इस मच्छने उनके पाठको सुन लिया। उससे उसे जातिस्मरण हो गया। तब उसने इस बातका बहुत पछतावा किया कि—हाय! मैं पढ़कर भी मूर्ख बना रहा, जो जैनधर्मसे विमुख होकर मैंने पाप-कर्म बाँधा। उसीका यह फल है, जो मुझे मच्छ-शरीर लेना पड़ा। इस प्रकार अपनी निन्दा और अपने पापकर्मकी आलोचना कर उसने भक्तिसे सम्यक्त्व ग्रहण किया, जो कि सब जीवोंका

हित करनेवाला है। इसके बाद वह जिन भगवान्‌की आराधना कर पुण्यके उदयसे स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। सच है, मनुष्य धर्मकी आराधना कर स्वर्ग जाता है और पापी धर्मसे उलटा चलकर दुर्गतिमें जाता है। पहला सुख भोगता है और दूसरा दुःख उठाता है। यह जानकर बुद्धिवानोंको उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये धर्मकी भक्तिसे अपनी शक्तिके अनुसार आराधना करें, जो कि सब सुखों का देनेवाला है।

सम्यग्ज्ञान जिसने प्राप्त कर लिया उसकी सारे संसारमें कीर्त्ति होती है, सब प्रकारकी उत्तम उत्तम सम्पदाएँ उसे प्राप्त होती हैं, शान्ति मिलती है और वह पवित्रताकी साक्षात्प्रतिमा बन जाता है। इसलिए भव्यजनोंको उचित है कि वे जिन भगवान्‌के पवित्र ज्ञानको, जो कि देवों और विद्याधरों द्वारा पूजा-माना जाता है, प्राप्त करनेका यत्न करें।

८९–विनयी पुरुषकी कथा।

इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्त्ती आदि महा पुरुषों द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर विनयधर्मके पालनेवाले मनुष्यकी पवित्र कथा लिखी जाती है।

वत्सदेशमें सुप्रसिद्ध कौशाम्बीके राजा धनसेन वैष्णव धर्मके माननेवाले थे। उनकी रानी धनश्री, जो बहुत सुन्दरी और

विदुषी थी, जिनधर्म पालती थी। उसने श्रावकोंके व्रत ले रक्खे थे। यहाँ सुप्रतिष्ठ नामका एक वैष्णव साधु रहता था। राजा इसका बड़ा आदर-सत्कार करते थे और यही कारण था कि राजा इसे स्वयं ऊँचे आसन बैठाकर भोजन कराते थे। इसके पास एक जल-स्तंभिनी नामकी विद्या थी। उससे यह बीच यमुनामें खड़ा रहकर ईश्वराराधना किया करता था, पर डूबता न था। इसके ऐसे प्रभाव को देखकर मूढ़ लोग बड़े चकित होते थे। सो ठीक ही है मूर्खोंको ऐसी मूर्खताकी क्रियाएँ पसन्द हुआ ही करती हैं।

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें बसे हुए रथनूपुरके राजा विद्युत्प्रभ तो जैनी थे, श्रावकोंके व्रतोंके पालनेवाले थे और उनकी रानी विद्युद्वेगा वैष्णव धर्मकी माननेवाली थी। सो एक दिन ये राजा-रानी प्रकृतिकी सुन्दरता देखते और अपने मनको बहलाते कौशाम्बीकी ओर आगये। नदी-किनारे पहुँच कर इन्होंने देखा कि एक साधु बीच यमुनामें खड़ा रहकर तपस्या कर रहा है। विद्युत्प्रभने जान लिया कि यह मिथ्यादृष्टि है। पर उनकी रानी विद्युद्वेगाने उस साधुकी बहुत प्रशंसा की। तब विद्युत्प्रभने रानीसे कहा—अच्छी बात है, प्रिये, आओ तो मैं तुम्हें जरा इसकी मूर्खता बतलाता हूं। इसके बाद ये दोनों चाण्डालका वेष बना ऊपर किनारे की ओर गये और मरे ढोरोंका चमड़ा नदीमें धोने लगे। अपने इस निन्द्यकर्म द्वारा इन्होंने जलको अपवित्र कर दिया। उस साधुको यह बहुत बुरा लगा। सो वह इन्हें कुछ कह सुनकर ऊपरकी ओर चला गया। वहाँ उसने फिर नहाया धोया। सच है मूर्खताके वश

लोग कौन काम नहीं करते। साधुकी यह मूर्खता देखकर ये भी फिर और आगे जाकर चमड़ा धोने लगे। इनकी बार बार यह शैतानी देखकर साधुको बड़ा गुस्सा आया। तब वह और आगे चला गया। इसके पीछे ही ये दोनों भी जाकर फिर अपना काम करने लगे। गर्ज यह कि इन्होंने उस साधुको बहुत ही कष्ट दिया। तब हार खाकर बेचारेको अपना जप-तप, नाम-ध्यान ही छोड़ देना पड़ा। इसके बाद उस साधुको इन्होंने अपनी विद्याके बलसे वनमें एक बड़ा भारी महल खड़ा कर देना, झूला बनाकर उस पर झूलना, आदि अनेक अचम्भेमें डालनेवाली बातें बतलाईं। उन्हें देखकर सुप्रतिष्ठ साधु बड़ा चकित हुआ। वह मनमें सोचने लगा कि जैसी विद्या इन चाण्डालोंके पास है ऐसी तो अच्छे अच्छे विद्याधरों या देवोंके पास भी न होगी। यदि यही विद्या मेरे पास भी होती तो मैं भी इनकी तरह बड़ी मौज मारता। अस्तु, देखें, इनके पास जाकर मैं कहूँ कि ये अपनी विद्या मुझे भी दे दें। इसके बाद वह इनके पास आया और उनसे बोला—आप लोग कहाँसे आ रहे हैं? आपके पास तो लोगोंको चकित करनेवाली बड़ी बड़ी करामातें हैं! आपका यह विनोद देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उत्तरमें विद्युत्प्रभ विद्याधरने कहा—योगीजी, आप मुझे नहीं जानते कि मैं चाण्डाल हूँ! मैं तो अपने गुरु महाराजके दर्शनके लिए यहाँ आया हुआ था। गुरुजीने खुश होकर मुझे जो विद्या दी है, उसीके प्रभावसे यह सब कुछ मैं करता हूँ। अब तो साधुजीके मुँहमें भी विद्यालाभके लिए पानी आ गया। उन्होंने तब उस चाण्डाल रूप-धारी विद्याधरसे कहा—तो क्या कृपा करके आप मुझे भी यह विद्या

दे सकते हैं, जिससे कि मैं भी फिर आपकी तरह खुशी मनाया करूँ। उत्तरमें विद्याधरने कहा—भाई, विद्याके देनेमें तो मुझे कोई हर्ज मालूम नहीं देता, पर बात यह है कि मैं ठहरा चाण्डाल और आप वेदवेदाङ्गके पढ़े हुए एक उत्तम कुलके मनुष्य, तब आपका मेरा गुरु-शिष्य भाव नहीं बन सकता। और ऐसी हालतमें आपसे मेरा विनय भी न हो सकेगा और बिना विनयके विद्या आ नहीं सकती। हाँ यदि आप यह स्वीकार करें कि जहाँ मुझे देख पावें वहाँ मेरे पाँवोंमें पड़कर बड़ी भक्तिके साथ यह कहें कि प्रभो, आपहीकी चरणकृपासे मैं जीता हूं। तब तो मैं आपको विद्या दे सकता हूँ और तभी विद्या सिद्ध हो सकती है। बिना ऐसा किये सिद्ध हुई विद्या भी नष्ट हो जाती है। उस साधुने ये सब बातें स्वीकार करलीं। तब विद्युत्प्रभ विद्याधर इसे विद्या देकर अपने घर चला गया।

इधर सुप्रतिष्ठ साधुको जैसे ही विद्या सिद्ध हुई, उसने उन सब लीलाओंको करना शुरू किया जिन्हें कि विद्याधरने किया था। सब बातें वैसी ही हुई देखकर सुप्रतिष्ठ बड़ा खुश हुआ। उसे विश्वास हो गया कि अब मुझे विद्या सिद्ध हो गई। इसके बाद वह भोजनके लिए राजमहल आया। उसे देरसे आया हुआ देखकर राजाने पूछा—भगवन्, आज आपको बड़ी देर लगी ? मैं बड़ी देरसे आपका रास्ता देख रहा हूँ। उत्तरमें सुप्रतिष्ठने मायाचारीसे झूठ-मूठ ही कह दिया कि—राजन, आज मेरी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब देव आये थे। वे बड़ी भक्तिसे मेरी पूजा करके अभी गये हैं। यही कारण मुझे देरी लग जानेका है। और राजन्, एक बात नई यह हुई कि मैं अब आकाशमें ही चलने-फिरने लग गया। सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और साबहीमें यह सब कौतुक देखनेकी उसकी मंशा हुई। उसने तब सुप्रतिष्ठसे कहा—अच्छा तो महाराज, अब आप आइए और भोजन कीजिए। क्योंकि बहुत देर हो चुकी है। आप वह सब कौतुक मुझे बतलाइएगा। सुप्रतिष्ठ 'अच्छी बात है' कहकर भोजन के लिए चला आया।

दूसरे दिन सबेरा होते ही राजा और उसके अमीर-उमराव वगैरह सभी सुप्रतिष्ठ साधुके मठमें उपस्थित हुए। दर्शकोंका भी ठाठ लग गया। सबकी आँखें और मन साधुकी ओर जा लगे कि वह अपना नया चमत्कार बतलावें। सुप्रतिष्ठ साधु भी अपनी करामात बतलानेको आरंभ करनेवाला ही था कि इतनेमें वह विद्युत्प्रभ विद्याधर और उसकी स्त्री उसी चाण्डाल वेषमें वहीं आ धमके। सुप्रतिष्ठके देवता उन्हें देखते ही कूँच कर गये। ऐसे समय उनके आजानेसे इसे उन पर बड़ी घृणा हुई। उसने मन ही मन घृणाके साथ कहा—ये दुष्ट इस समय क्यों चले आये ! उसका यह कहना था कि उसकी विद्या नष्ट हो गई। वह राजा वगैरहको अब कुछ भी चमत्कार न बतला सका और बड़ा शर्मिन्दा हुआ। तब राजाने 'ऐसा एक साथ क्यों हुआ' इसका सब कारण सुप्रतिष्ठसे पूछा। झख मारकर फिर उसे सब बातें राजासे कह देनी पड़ीं। सुनकर राजाने उन चाण्डालोंको बड़ी भक्तिसे प्रणाम किया। राजा की यह भक्ति देखकर उन्होंने वह विद्या राजाको देदी। राजा उसकी परीक्षा कर बड़ी प्रसन्नतासे अपने महल लौट गया। सो ठीक ही है विद्याका लाभ सभीको सुख देनेवाला होता है।

राजाकी भी परीक्षाका समय आया। विद्याप्राप्तिके कुछ दिनों बाद एक दिन राजा राज-दरबारमें सिंहासन पर बैठा हुआ था। राजसभा सब अमीर-उमरावोंसे ठसा-ठस भरी हुई थी। इसी समय राजगुरु चाण्डाल वहाँ आया, जिसने कि राजाको विद्या दी थी। राजा उसे देखते ही बड़ी भक्तिसे सिंहासन परसे उठा और उसके सत्कारके लिए कुछ आगे बढ़कर उसने उसे नमस्कार किया और कहा—प्रभो, आपहीके चरणोंकी कृपासे मैं जीता हूँ। राजाकी ऐसी भक्ति और विनयशीलता देखकर विद्युत्प्रभ बड़ा खुश हुआ। उसने तब अपना खास रूप प्रगट किया और राजाको और भी कई विद्याएँ देकर वह अपने घर चला गया। सच है, गुरुओंके विनयसे लोगोंको सभी सुन्दर सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।

इस आश्चर्यको देखकर धनसेन, विद्युद्वेगा तथा और भी बहुतसे लोगोंने श्रावक-व्रत स्वीकार किये। विनयका इस प्रकार फल देखकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे गुरुओंका विनय, भक्ति और निर्मल भावोंसे करें।

जो गुरुभक्ति क्षणमात्रमें कठिनसे कठिन कामको पूरा कर देती है वही भक्ति मेरी सब क्रियाओंकी भूषण बने। मैं उन गुरुओं को नमस्कार करता हूँ कि जो संसार-समुद्रसे स्वयं तैरकर पार होते हैं और साथ ही और और भव्यजनोंको पार करते हैं।

जिनके चरणोंकी पूजा देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि बड़े बड़े महापुरुष करते हैं उन जिन भगवान्का, उनके रचे पवित्र शास्त्रोंका और उनके बताये मार्ग पर चलनेवाले मुनिराजोंका जो हृदयसे विनय करते हैं—उनकी भक्ति करते हैं उनके पास कीर्ति,

सुन्दरता, उदारता, सुख-सम्पत्ति और ज्ञान—आदि पवित्र गुण अत्यन्त पड़ोसी होकर रहते हैं। अर्थात् विनयके फलसे उन्हें सब गुण प्राप्त होते हैं।

९०—अवग्रह-नियम लेनेवालेकी कथा।

पुण्यके कारण जिन भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर उपधान-अवग्रहकी अर्थात् यह काम जबतक न होगा तबतक मैं ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ, इस प्रकारका नियम कर जिसने फल प्राप्त किया, उसकी कथा लिखी जाती है, जो सुख की देनेवाली है।

अहिछत्र पुरके राजा वसुपाल बड़े बुद्धिमान् थे। जैनधर्म पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। उनकी रानीका नाम वसुमती था। वसुमती भी अपने स्वामीके अनुरूप बुद्धिमती और धर्म पर प्रेम करनेवाली थी। वसुपालने एक बड़ा ही विशाल और सुन्दर 'सहस्रकूट' नाम का जिनमन्दिर बनवाया। उसमें उन्होंने श्रीपार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमा विराजमान् की। राजाने प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको एक अच्छे हुशियार चित्रकारको बुलाया और प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको उससे कहा। राजाज्ञा पाकर चित्रकारने प्रतिमा पर बहुत सुन्दरतासे लेप चढ़ाया। पर रात होने पर वह लेप प्रतिमा परसे गिर पड़ा। दूसरे दिन फिर ऐसा ही किया गया। रातमें वह लेप भी गिर पड़ा। गज यह कि वह दिनमें लेप लगाता और रातमें वह गिर पड़ता।

इसतरह उसे कई दिन बीत गये। ऐसा क्यों होता है, इसका उसे कुछ भी कारण न जान पड़ा। उससे वह तथा राजा वगैरह बड़े दुखी हुए। बात असलमें यह थी कि वह लेपकार मांस खाने वाला था। इसलिए उसकी अपवित्रतासे प्रतिमा पर लेप न ठहरता था। तब उस लेपकारको एक मुनि द्वारा ज्ञान हुआ कि प्रतिमा अतिशयवाली है—कोई शासनदेवी या देव उसकी रक्षामें सदा नियुक्त रहते हैं। इसलिये जबतक यह कार्य पूरा हो तब तक तुझे मांसके न खानेका व्रत लेना चाहिये। लेपकारने वैसा ही किया। मुनिराजके पास उसने मांस न खानेका नियम लिया। इसके बाद जब उसने दूसरे दिन लेप किया तो अबकी बार वह ठहर गया। सच है, व्रती पुरुषोंके कार्यकी सिद्धि होती ही है। तब राजाने अच्छे अच्छे वस्त्र-भूषण देकर चित्रकारका बड़ा आदर-सत्कार किया। जिस तरह इस लेपकारने अपने कार्यकी सिद्धिके लिए नियम किया उसी प्रकार और और लोगोंको तथा मुनियोंको भी ज्ञानप्रचार, शासन-प्रभावना आदि कामोंमें अवग्रह या प्रतिज्ञा करना चाहिए।

वह जिनेन्द्र भगवान्का उपदेश किया ज्ञानरूपी समुद्र मुझे भी केवलज्ञानी—सर्वज्ञ बनावे, जो अत्यन्त पवित्र साधुओं द्वारा आत्म-सुखकी प्राप्तिके लिए सेवा किया जाता है और देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि बड़े बड़े महापुरुष जिसे भक्तिसे पूजते हैं।

६१—अभिमान करनेवालीकी कथा।

निर्मल केवलज्ञानके धारी जिन भगवान्को नमस्कार कर मान करनेसे बुरा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा लिखी जाती है। इस कथाको सुनकर जो लोग मान के छोड़नेका यत्न करेंगे वे सुख लाभ करेंगे।

बनारसके राजा वृषभध्वज प्रजाका हित चाहनेवाले और बड़े बुद्धिमान थे। इनकी रानीका नाम वसुमती था। वसुमती बड़ी सुन्दरी थी। राजाका इस पर अत्यन्त प्रेम था।

गंगाके किनारे पर पलास नामका एक गाँव बसा हुआ था। इसमें अशोक नामका एक गुवाल रहता था। यह गुवाल राजाको गाँवके लगानमें कोई एक हजार घीके भरे घड़े दिया करता था। इसकी स्त्री नन्दा पर इसका प्रेम न था। इसलिये कि वह बांझ थी। और यह सच है, सुन्दर या गुणवान् स्त्री भी बिना पुत्रके शोभा नहीं पाती है और न उस पर पतिका पूरा प्रेम होता है। वह फल रहित लताकी तरह निष्फल समझी जाती है। अपनी पहली स्त्रीको निःसन्तान देखकर अशोक गुवालने एक और ब्याह कर लिया। इस नई स्त्रीका नाम सुनन्दा था। कुछ दिनों तक तो इन दोनों सौतोंमें लोक-लाजसे पटती रही, पर जब बहुत ही लड़ाई-झगड़ा होने लगा तब अशोकने इनसे तंग आकर अपनी जितनी धन-सम्पत्ति थी उसे दोनोंके लिये आधी आधी बांट दिया। नन्दाको अलग घरमें रहना पड़ा और सुनन्दा अशोकके पास ही रही। नन्दामें एक बात बड़ी अच्छी थी। वह एक तो समझदार थी। दूसरे वह अपने दूध दुहने के लिये बरतन वगैरहको बड़ा साफ रखती। उसे सफाई बड़ी

पसन्द थी। इसके सिवा वह अपने नौकर गुवालों पर बड़ा प्रेम करती। उन्हें अपना नौकर न समझ अपने कुटुम्बकी तरह मानती। वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करती। उन्हें हर एक त्यौहारों के मौकों पर दान-मानादिसे बड़ा खुश रखती। इसलिए वे गुवाल लोग भी उसे बहुत चाहते थे और उसके कामोंको अपना ही समझकर किया करते थे। जब वर्ष पूरा होता तो नन्दा राज लगानके हजार घीके घड़ोंमेंसे अपना आधा हिस्सा पाँचसौ घड़े अपने स्वामीको प्रतिवर्ष दे दिया करती थी। पर सुनन्दामें ये सब बातें न थीं। उसे अपनी सुन्दरताका बड़ा अभिमान था। इसके सिवा वह बड़ी शौकीन थी। साज-सिंगारमें ही उसका सब समय चला जाता था। वह अपने हाथोंसे कोई काम करना पसन्द न करती थी। सब नौकर-चाकरों द्वारा ही होता था। इस पर भी उसका अपने नौकरोंके साथ अच्छा बरताव न था। सदा उनके साथ वह माथा-फोड़ी किया करती थी। किसीका अपमान करती, किसीको गालियां देती और किसीको भला-बुरा कहकर झिटकारती। न वह उन्हें कभी त्यौहारों पर कुछ दे-लेकर प्रसन्न करती। गर्ज यह कि सब नौकर-चाकर उससे प्रसन्न न थे। जहाँ तक उनका बस चलता वे भी सुनन्दाको हानि पहुँचानेका यत्न करते थे। यहाँ तक कि वे जो गायोंको चराने जंगलमें ले जाते, सो वहां उनका दूध तक दुह कर पी लिया करते थे। इससे सुनन्दाके यहां पहले वर्षमें ही घी बहुत थोड़ा हुआ। वह राजलगानका अपना आधा हिस्सा भी न दे सकी। उसके इस आधे हिस्सेको भी बेचारी नन्दाने ही चुकाया। सुनन्दाकी यह दशा देखकर अशोकने उसे घरसे निकाल बाहर की। नन्दाको अपना गया अधिकार पीछा प्राप्त हुआ। पुण्यसे वह

पीछी अशोककी प्रेमपात्र हुई। घर बार, धन-दौलतकी वह मालकिन हुई। जिस प्रकार नन्दा अपने घरगृहस्थीके कामको अच्छी तरह चलानेके लिये सदा दान-मानादि किया करती उसी प्रकार अपने पारमार्थिक कामोंके लिये भव्यजनोंको भी अभिमान रहित होकर जैनधर्मकी उन्नतिके कार्योंमें दान-मानादि करते रहना चाहिए। उससे वे सुखी होंगे और सम्यग्ज्ञान लाभ करेंगे।

जो स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले जिन भगवान्‌की बड़ी भक्ति से पूजा-प्रभावना करते हैं, भगवान्‌के उपदेश किये शास्त्रोंके अनुसार चल उनका सत्कार करते हैं, पवित्र जैन धर्म पर श्रद्धा-विश्वास करते हैं और सज्जन धर्मात्माओंका आदर सत्कार करते हैं वे संसार में सर्वोच्च यश लाभ करते हैं और अन्तमें कर्मोंका नाशकर परम पवित्र केवलज्ञान—कभी नाश न होनेवाला सुख प्राप्त करते हैं।

९२—निह्नव-असल बातको छुपानेवालेकी कथा।

जिनके सर्व-श्रेष्ठ ज्ञानमें यह सारा संसार परमाणुके समान देख पड़ता है, उन सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर निह्नव—जिस प्रकार जो बात हो उसे उसी प्रकार न कहना—उसे छुपाना, इस सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा धृतिषेणकी रानी मलयावतीके चण्डप्रद्योत नामका एक पुत्र था। वह जैसा सुन्दर था वैसा ही गुणवान् भी था। पुण्यके उदयसे उसे सभी सुखसामग्री प्राप्त थी।

एक बार दक्षिण देशके वेनातट नगरमें रहनेवाले सोमशर्मा ब्राह्मणका कालसंदीव नामका विद्वान् पुत्र उज्जैनमें आया। वह कई भाषाओंका जाननेवाला था। इसलिये धृतिषेणने चण्डप्रद्योतको पढ़ानेके लिये उसे रख लिया। कालसंदीवने चण्डप्रद्योतको कई भाषाओंका ज्ञान कराए बाद एक म्लेच्छ-अनार्यभाषाको पढ़ाना शुरू किया। इस भाषाका उच्चारण बड़ा ही कठिन था। राजकुमार को उसके पढ़नेमें बहुत दिक्कत पड़ा करती थी। एक दिन कोई ऐसा ही पाठ आया, जिसका उच्चारण बहुत क्लिष्ट था। राजकुमार से उसका ठीक २ उच्चारण न बन सका। कालसन्दीवने उसे शुद्ध उच्चारण करानेकी बहुत कोशिश की, पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। इससे कालसन्दीवको कुछ गुस्सा आगया। गुस्सेमें आकर उसने राज कुमारको एक लात मारदी। चण्डप्रद्योत था तो राजकुमार ही सो उसका भी कुछ मिजाज बिगड़ गया। उसने अपने गुरु महाराजसे तब कहा—अच्छा महाराज, आपने जो मुझे मारा है, मैं भी इसका बदला लिये बिना न छोडूँ गा। मुझे आप राजा होने दीजिये, फिर देखिएगा कि मैं भी आपके इसी पाँवको काटकर ही रहूँगा। सच है, बालक कम-बुद्धि हुआ ही करते हैं। कालसन्दीव कुछ दिनोंतक और यहाँ रहा, फिर वह यहाँसे दक्षिणकी ओर चला गया। उधर कालसन्दीवको एक दिन किसी मुनिका उपदेश सुननेका मौका मिला। उपदेश सुनकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह मुनि हो गया।

इधर धृतिषेण राजा भी चण्डप्रद्योतको सब राज-काज सौंपकर साधु बन गया। राज्यकी बागडोर चण्डप्रद्योतके हाथमें आई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चण्डप्रद्योतने भी राज्यशासन बड़ी नीतिके साथ चलाया। प्रजाके हितके लिये उसने कोई बात उठा न रखी।

एक दिन चण्डप्रद्योत पर एक यवनराजका पत्र आया। भाषा उसकी अनार्य थी। उस पत्रको कोई राजकर्मचारी न बांच सका। तब राजा ने उसे देखा तो वह उससे बँच गया। पत्र पढ़कर राजाकी अपने गुरु कालसन्दीव पर बड़ी भक्ति होगई। उसने बचपन की अपनी प्रतिज्ञाको उसी समय भुला दिया। इसके बाद राजाने कालसन्दीवका पता-लगाकर उन्हें अपने शहर बुलाया और बड़ी भक्तिसे उनके चरणोंकी पूजा की। सच है, गुरुओंके वचन भव्यजनोंको उसी तरह सुख देनेवाले होते हैं जैसे रोगीको औषधि।

कालसन्दीव मुनि यहां श्वेतसन्दीव नामके किसी एक भव्य को दीक्षा देकर फिर विहार कर गये। मार्गमें पड़नेवाले शहरों और गांवोंमें उपदेश करते हुए वे विपुलाचल पर महावीर भगवानके समवशरणमें गये, जो कि बड़ी शान्तिका देनेवाला था। भगवानके दर्शन कर उन्हें बहुत शान्ति मिली। वन्दना कर भगवान्का उपदेश सुननेके लिये वे वहीं बैठ गये।

श्वेतसन्दीव मुनि भी इन्हींके साथ थे। वे आकर समवशरणके बाहर आतापन योग द्वारा तप करने लगे। भगवान्के दर्शन कर जब महामण्डलेश्वर श्रेणिक जाने लगे तब उन्होंने श्वेतसन्दीव मुनिको देखकर पूछा—आपके गुरु कौन हैं—किनसे आपने यह दीक्षा ग्रहण की? उत्तरमें श्वेतसंदीव मुनिने कहा—राजन्, मेरे गुरु श्रीवर्द्धमान् भगवान् हैं। इतना कहना था कि उनका सारा शरीर काला पड़ गया। यह देख श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पीछे जाकर गणधर भगवान्से इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा—

श्वेतसन्दीवके असल गुरु हैं कालसंदीव, जो कि यहीं बैठे हुए हैं। उनका इन्होंने निह्नव किया—सच्ची बात न बतलाई। इसलिये उनका शरीर काला पड़ गया है। तब श्रेणिकने श्वेतसंदीवको समझा कर उनकी गलती उन्हें सुझाई और कहा—महाराज, आपकी अवस्थाके योग्य ऐसी बातें नहीं हैं। ऐसी बातोंसे पाप-बंध होता है। इसलिये आगेसे आप कभी ऐसा न करेंगे, यह मेरी आपसे प्रार्थना है। श्रेणिककी इस शिक्षाका श्वेतसंदीव मुनिके चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा। वे अपनी भूल पर बहुत पछताये। इस आलोचना से उनके परिणाम बहुत उन्नत हुए। यहाँ तक कि उसी समय शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंका नाशकर लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया। वे सारे संसार द्वारा अब पूजे जाने लगे। अन्त में अघातिया कर्मोंको नष्ट कर उन्होंने मोक्षका अनन्तसुख लाभ किया। श्वेतसदीव मुनिके इस वृत्तान्तसे भव्यजनोंको शिक्षा लेनी चाहिये कि वे अपने गुरु आदिका निह्नव न करें—सच्ची बातके छिपानेका यत्न न करें। क्योंकि गुरु स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले हैं, इसलिये सेवा करने योग्य हैं।

वे श्रीश्वेतसन्दीव मुनि मेरे बढ़ते हुए संसारकी-भव भ्रमण की शान्ति कर-मेरा संसारका भटकना मिटाकर मुझे कभी नाश न होनेवाला और अनन्त मोक्ष-सुख दें, जो केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्रके धारक हैं, भव्यजनोंको हितकी ओर लगानेवाले हैं, देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि महा पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, और अनन्तचतुष्टय-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यसे युक्त हैं तथा और भी अनन्त गुणोंके समुद्र हैं।

९३—अक्षरहीन अर्थकी कथा।

जिन भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर अक्षरहीन अर्थ की कथा लिखी जाती है।

मगधदेशकी राजधानी राजगृहके राजा जब वीरसेन थे, उस समयकी यह कथा है। वीरसेनकी रानीका नाम वीरसेना था। इनके एक पुत्र हुआ, उसका नाम रक्खा गया सिंह। सिंहको पढ़ानेके लिए वीरसेन महाराजने सोमशर्मा ब्राह्मणको रक्खा। सोमशर्मा सब विषयोंका अच्छा विद्वान् था।

पोदनापुरके राजा सिंहरथके साथ वीरसेनकी बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। सो मौका पाकर वीरसेनने उस पर चढ़ाई करदी। वहाँसे वीरसेनने अपने यहाँ एक राज्य-व्यवस्थाकी बाबत पत्र लिखा। और और समाचारोंके सिवा पत्रमें वीरसेनने एक यह भी समाचार लिख दिया था कि राजकुमार सिंहके पठन-पाठनकी व्यवस्था अच्छी तरह करना। इसके लिए उन्होंने यह वाक्य लिखा था कि 'सिंहो ध्यापयितव्यः''। जब यह पत्र पहुँचा तो इसे एक अर्धदग्धने बाँचकर सोचा—'ध्यै' धातुका अर्थ है स्मृति या चिन्ता करना। इसलिए इसका अर्थ हुआ कि 'राजकुमार पर अब राज्य-चिन्ताका भार डाला जाय'। उसे अब पढ़ाना उचित नहीं। बात यह थी कि उक्त वाक्यके पृथक् पद करनेसे—'सिंहः अध्यापयितव्यः' ऐसे पद होते हैं और इनका अर्थ होता है—सिंह को पढ़ाना, पर उस बाँचनेवाले अर्धदग्धने इस वाक्यके—'सिंहः ध्यापयितव्य'' ऐसे पद समझकर इसके सन्धिस्थ अकार पर ध्यान

न दिया और केवल 'ध्यै' धातुसे बने हुए 'ध्यापयितव्यः' का चिंता अर्थ करके राजकुमारका लिखना-पढ़ना छुड़ा दिया। व्याकरणके अनुसार तो उक्त वाक्यके दोनों ही तरह पद होते हैं और दोनों ही शुद्ध हैं, पर यहाँ केवल व्याकरणकी ही दरकार न थी। कुछ अनुभव भी होना चाहिए था। पत्र बाँचनेवालेमें इस अनुभव की कमी होनेसे उसने राजकुमारका पठन-पाठन छुड़ा दिया। इसका फल यह हुआ कि जब राजा आये और अपने कुमारका पठन-पाठन छूटा हुआ देखा तो उन्होंने उसके कारणकी तलाश की। यथार्थ बात मालूम हो जाने पर उन्हें उस अर्धदग्ध—मूर्ख पत्र बाँचनेवाले पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने इस मूर्खताकी उसे बड़ी कड़ी सजा दी। इस कथासे भव्यजनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वे कभी ऐसा प्रमाद न करें, जिससे कि अपने कार्यको किसी भी तरहकी हानि पहुँचे।

जिस प्रकार गुणहीन औषधिसे कोई लाभ नहीं होता—वह शरीरके किसी रोगको नहीं मिटा सकती, उसी तरह अक्षर रहित शास्त्र या मंत्र वगैरह भी लाभ नहीं पहुँचा सकते। इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सदा शुद्ध रीतिसे शास्त्राभ्यास करें—उसमें किसी तरहका प्रमाद न करें, जिससे कि हानि होनेकी संभावना है।

६४—अर्थहीन वाक्यकी कथा।

गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे पाँचों कल्याणोंमें स्वर्गके देवोंने आकर जिनकी बड़ी भक्तिसे पूजा की, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर अर्थहीन अर्थात् उलटा अर्थ करनेके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

वसुपाल अयोध्याके राजा थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। इनके वसुमित्र नामका एक बुद्धिवान् पुत्र था। वसुपालने अपने पुत्रके लिखने-पढ़नेका भार एक गर्ग नामके विद्वान पंडितको सौंपकर उज्जैनके राजा वीरदत्त पर चढ़ाई करदी। कारण वीरदत्त हर समय वसुपालका मानभंग किया करता था और उनकी प्रजाको भी कष्ट दिया करता था। वसुपाल उज्जैन आकर कुछ दिनोंतक शहरका घेरा डाले रहे। इस समय उन्होंने अपनी राज्य-व्यवस्थाके सम्बन्धका एक पत्र अयोध्या भेजा। उसीमें अपने पुत्रके बाबत उन्होंने लिखा—

"पुत्रोऽध्यापयितव्योऽसौ वसुमित्रोऽति सादरम्।
शालिभक्तं मसिस्पृक्तं सर्पियुक्तं दिनं प्रति॥
गर्गोपाध्यायकस्योच्चैर्दीयते भोजनाय च।"

इसका भाव यह है—'वसुमित्रके पढ़ाने-लिखानेका प्रबन्ध अच्छा करना—कोई त्रुटि न करना और उसके पढ़ानेवाले पंडितजीको खाने पीनेकी कोई तकलीफ न हो—उन्हें घी, चावल, दूध-भात, वगैरह खाने को दिया करना।' पत्र पहुँचा। बाँचनेवालेने

उसे ऐसा ही बाँचा। पर श्लोकमें "¹मसिस्पृक्तं एक शब्द है। इसका अर्थ करनेमें वह गल्ती कर गया। उसने इसे 'शालिभक्तं' का

१—श्लोकमें 'मसिस्पृक्तं' शब्द है; उससे ग्रन्थकारका क्या मतलब है यह समझमें नहीं आता। पर वह ऐसी जगह प्रयोग किया गया है कि उसे "शालिभक्त" का विशेषण न किये गति ही नहीं है। आराधना कथाकोशकी छन्दोबन्ध भाषा बनानेवाले पंडित बख्तावरमल उक्त श्लोकोंकी भाषा यों करते हैं—

"सुत वसुमित्र पढ़ाइयो नित्त, गर्गनाम पाठक जो पवित्त।
ताको भोजन तंदुल घीव, लिखन हेत मसि देव सदीव ॥"

पंडित बख्तावरमलजीने 'मसिस्पृक्त'' शब्दका अर्थ किया है—उपाध्यायको लिखनेको स्याही देना। यह उन्होंने कैसे ही किया हो, पर उस शब्दमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि यह अर्थ किया जा सके। और यदि ग्रन्थकारका भी इसी अर्थसे मतलब हो तो कहना पड़ेगा कि उनकी रचनाशक्ति बड़ी ही शिथिल थी। हमारा यह विश्वास केवल इसी डेढ़ श्लोकसे ही ऐसा नहीं हुआ, किन्तु इतने बड़े ग्रन्थमें जगह जगह, श्लोक श्लोकमें ऐसी ही शिथिलता देख पड़ती है। हाँ यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकारने इतना बड़ा ग्रन्थ बना जरूर लिया, पर हमारे विश्वासके अनुसार उन्हें ग्रन्थकी साहित्यसुन्दरता, रचना सुन्दरता-आदि बातोंमें बहुत थोड़ी भी सफलता शायद ही प्राप्त हुई हो। इस विषयका एक पृथक् लेख लिखकर हम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे, जिससे वे हमारे कथनमें कितना तथ्य है, इसका ठीक ठीक पता पा सकेंगे।

विशेषण समझ यह अर्थ किया कि घी, दूध और मसि¹ मिले चावल पंडितजीको खानेको देना। ऐसा ही हुआ। जब बेचारे पंडितजी भोजन करनेको बैठते तब चावलोंमें घी वगैरहके साथ थोड़ा कोयला भी पीसकर मिला दिया जाया करता था।

जब राजा विजय प्राप्त कर लौटे तब उन्होंने पंडितजीसे कुशल समाचार उत्तरमें पूछा। उत्तरमें पंडितजीने कहा-राजाधि-

---

१—'मसि' का अर्थ स्याही प्रसिद्ध है। पं० बख्तावरमलजीने भी स्याही अर्थ किया है। पर ग्रन्थकार इसका अर्थ करते हैं—'कोयला'।

देखिए—

मसिघृतं सुभक्तं च दीयते भोजनक्षणे।
चूर्णीकृत्य ततोङ्गारं घृतभक्तेन मिश्रितम् ॥
दत्तं तस्मै इति।

स्याही काली होती है और कोयला भी काला, शायद इसी रंगकी समानतासे ग्रन्थकारने कोयलेकी जगह मसिका प्रयोग कर दिया होगा? पर है आश्चर्य! ग्रन्थकारने इस श्लोकमें मसि शब्दको अलग लिखा है, पर ऊपरके श्लोकमें आये हुए 'मसिस्पृक्त' शब्दका ऐसा जुदा अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता। ग्रन्थकारकी कमजोरीकी हद है, जो उनकी रचना इतनी शिथिल देख पड़ती है।

राज, आपके पुण्य प्रसादसे मैं हूँ तो अच्छी तरह, पर खेद है कि आपके कुल परम्पराकी रीतिके अनुसार मुझसे मसि-कोयला नहीं खाया जा सकता। इसलिए अब क्षमा कर आज्ञा दें तो बड़ी कृपा हो। राजाको पंडितजीकी बातका बड़ा अचम्भा हुआ। उनकी समझमें न आया कि बात क्या है। उन्होंने फिर उसका खुलासा पूछा। जब सब बातें उन्हें जान पड़ीं तब उन्होंने रानीसे पूछा—मैंने तो अपने पत्रमें ऐसी कोई बात न लिखी थी, फिर पंडितजीको ऐसा खानेको दिया जाकर क्यों तंग किया जाता था? रानीने राजाके हाथमें उनका लिखा हुआ पत्र देकर कहा—आपके बाँचनेवालेने हमें यही मतलब समझाया था। इसलिए यह समझकर, कि ऐसा करनेसे राजा साहबका कोई विशेष मतलब होगा, मैंने ऐसी व्यवस्था की थी। सुनकर राजाको बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने पत्र बाँचनेवालेको उसी समय देश निकालेकी सजा देकर उसे अपने शहर बाहर करवा दिया। इस लिए बुद्धिवानों को उचित है कि वे लिखने-बाँचनेमें ऐसा प्रमाद का अर्थ कर अनर्थ न करें।

यह विचार कर जो पवित्र आचरणके धारी और ज्ञान जिनका धन है ऐसे सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये हुए, पुण्यके कारण और यश तथा आनन्दको देनेवाले ज्ञान—सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करनेका भक्तिपूर्वक यत्न करेंगे वे अनन्तज्ञान रूपी लक्ष्मीका सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे।

९५–व्यंजनहीन अर्थकी कथा।

निर्मल केवलज्ञानके धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करनेवालेकी कथा लिखी जाती है।

कुरुजांगल देशकी राजधानी हस्तिनापुरके राजा महापद्म थे। ये बड़े धर्मात्मा और जिन भगवान्के सच्चे भक्त थे। इनकी रानीका नाम पद्मश्री था। पद्मश्री सरल स्वभाववाली थी, सुन्दरी थी और कर्मोंके नाश करनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवास—आदि पुण्यकर्म निरन्तर किया करती थी। मतलब यह कि जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी।

सुरम्य देशके पोदनापुरका राजा सिंहनाद और महापद्ममें कई दिनोंकी शत्रुता चली आ रही थी। इसलिए मौका पाकर महापद्मने उस पर चढ़ाई करदी। पोदनापुरमें महापद्मने एक 'सहस्रकूट' नामसे प्रसिद्ध जिनमन्दिर देखा। मन्दिरकी हजार खम्भोंवाली भव्य और विशाल इमारत देखकर महापद्म बड़े खुश हुए। इनके हृदयमें भी धर्मप्रेमका प्रवाह बहा। अपने शहरमें भी एक ऐसे ही सुन्दर मंदिरके बनवानेकी इनकी भी इच्छा हुई। तब उसी समय इन्होंने अपनी राजधानीमें पत्र लिखा। उसमें इन्होंने लिखा—

"महास्तंभसहस्रस्य कर्त्तव्यः संग्रहो ध्रुवम्।"

अर्थात्—बहुत जल्दी बड़े बड़े एक हजार खम्भे इकट्ठे करना।" पत्र बाँचनेवालेने इसे भ्रमसे पढ़ा—

"महास्तभसहस्रस्य कर्त्तव्यः संग्रहो ध्रुवम्। 'स्तंभ' शब्द को 'स्तभ' समझकर उसने खम्भेकी जगह एक हजार बकरोंको

इकट्ठा करनेको कहा। ऐसा ही किया गया। तत्काल एक हजार बकरे मँगवाये जाकर वे अच्छे खाने पिलाने द्वारा पाले जाने लगे।

जब महाराज लौटकर वापिस आये तो उन्होंने अपने कर्म-चारियोंसे पूछा कि मैंने जो आज्ञा की थी, उसकी तामील की गई ? उत्तरमें उन्होंने 'जी हाँ' कहकर उन बकरोंको महाराजको दिखलाया। महापद्म देखकर सिरसे पैरतक जल उठे। उन्होंने गुस्सा होकर कहा—मैंने तो तुम्हें एक हजार खम्भोंको इकट्ठा करनेको लिखा था, तुमने यह क्या किया ? तुम्हारे इस अविचारकी सजा मैं तुम्हें जीवनदण्ड देता हूं। महापद्मकी ऐसी कठोर सजा सुनकर वे बेचारे बड़े घबराये। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज, इसमें हमारा तो कुछ दोष नहीं है। हमें तो जैसा पत्र बाँचनेवालेने कहा, वैसा ही हमने किया। महाराजने तब उसी समय पत्र बांचने-वालेको बुलाकर उसके इस गुरुतर अपराधकी जैसी चाहिए वैसी सजा की। इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे ज्ञान, ध्यान आदि कामोंमें कभी ऐसा प्रमाद न करें। क्योंकि प्रमाद कभी सुखके लिए नहीं होता।

जो सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये पवित्र और पुण्यमय ज्ञानका अभ्यास करेंगे वे फिर मोह उत्पन्न करनेवाले प्रमादको न कर सुख देनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवासादि धार्मिक कामोंमें अपनी बुद्धिको लगाकर केवलज्ञानका अनन्तसुख प्राप्त करेंगे।

९८—धरसेनाचार्यकी कथा।

उन जिन भगवानको नमस्कार कर, जिनका कि केवलज्ञान एक सर्वोच्च नेत्रकी उपमा धारण करनेवाला है, हीनाधिक अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धरसेनाचार्यकी कथा लिखी जाती है।

गिरनार पर्वतकी एक गुहामें श्रीधरसेनाचार्य, जो कि जैन धर्मरूप समुद्रके लिये चन्द्रमाकी उपमा धारण करनेवाले हैं, निवास करते थे। उन्हें निमित्तज्ञानसे जान पड़ा कि उनकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। तब उन्हें दो ऐसे विद्यार्थियोंकी आवश्यकता पड़ी कि जिन्हें वे शास्त्रज्ञानकी रक्षाके लिए कुछ अंगादिका ज्ञान करादें। आचार्यने तब तीर्थयात्राके लिए आन्ध्रदेशके वेनातट नगरमें आये हुए संघाधिपति महासेनाचार्यको एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा —

"भगवान् महावीरका शासन अचल रहे, उसका सब देशोंमें प्रचार हो। लिखनेका कारण यह है कि इस कलियुगमें अंगादिका ज्ञान यद्यपि न रहेगा तथापि शास्त्रज्ञानकी रक्षा हो, इसलिये कृपाकर आप दो ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थियोंको मेरे पास भेजिये, जो बुद्धिके बड़े तीक्ष्ण हों, स्थिर हों, सहनशील हों और जैनसिद्धान्तका उद्धार कर सकें।"

आचार्यने पत्र देकर एक ब्रह्मचारीको महासेनाचार्यके पास भेजा। महासेनाचार्य उस पत्रको पढ़कर बहुत खुश हुए। उन्होंने तब अपने संघमेंसे पुष्पदन्त और भूतबलि ऐसे दो धर्मप्रेमी और सिद्धान्तके उद्धार करनेमें समर्थ मुनियोंको बड़े प्रेमके साथ धरसेना-

चार्यके पास भेजा। ये दोनों मुनि जिस दिन आचार्यके पास पहुँचने वाले थे, उसकी पिछली रातको धरसेनाचार्यको एक स्वप्न देख पड़ा। स्वप्नमें उन्होंने दो हृष्टपुष्ट, सुडौल और सफेद बैलोंको बड़ी भक्तिसे अपने पांवोंमें पड़ते देखा। इस उत्तम स्वप्नको देखकर आचार्यको जो प्रसन्नता हुई वह लिखी नहीं जा सकती। वे ऐसा कहते हुए, कि सब सन्देहोंके नाश करनेवाली श्रुतदेवी—जिन वानी सदाकाल इस संसारमें जय लाभ करे, उठ बैठे। स्वप्नका फल उनके विचारानुसार ठीक निकला। सबेरा होते ही दो मुनियोंने जिनकी कि उन्हें चाह थी, आकर आचार्यके पाँवोंमें बड़ी भक्तिके साथ अपना सिर झुकाया और आचार्यकी स्तुति की। आचार्यने तब उन्हें आशीर्वाद दिया—तुम चिरकाल जीकर महावीर भगवान्के पवित्र शासनकी सेवा करो। अज्ञान और विषयोंके दास बने संसारी जीवोंको ज्ञान देकर उन्हें कर्त्तव्यकी ओर लगाओ। उन्हें सुझाओ कि अपने धर्म, और अपने भाइयोंके प्रति जो उनका कर्त्तव्य है उसे पूरा करें।

इसके बाद आचार्यने इन दोनों मुनियोंको दो तीन दिन तक अपने पास रक्खा और उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्त्तव्य बुद्धिका परिचय प्राप्त कर दोनोंको दो विद्याएं सिद्ध करनेको दीं। आचार्यने इनकी परीक्षाके लिये विद्या साधनेके मंत्रोंके अक्षरोंको कुछ न्यूनाधिक कर दिया था। आचार्यकी अज्ञानुसार ये दोनों इसी गिरनार पर्वतके एक पवित्र और एकान्त भागमें भगवान् नेमिनाथ की निर्वाण शिला पर पवित्र मनसे विद्या सिद्ध करनेको बैठे। मंत्र साधनकी अवधि जब पूरी होनेको आई तब दो देवियां इनके पास

आईं। इन देवियोंमें एक देवी तो आंखोंसे अन्धी थी। और दूसरी के दांत बड़े और बाहर निकले हुए थे। देवियोंके ऐसे असुन्दर रूप को देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने सोचा देवोंका तो ऐसा रूप होता नहीं, फिर यह क्यों ? तब इन्होंने मंत्रोंकी जाँच की—मंत्रों को व्याकरणसे उन्होंने मिलाया कि कहीं उनमें तो गल्ती न रह गई हो ? इनका अनुमान सच हुआ। मंत्रोंकी गल्ती इन्हें भास गई। फिर इन्होंने उन्हें शुद्ध कर जपा। अबकी बार दो देवियां सुन्दर वेष में इन्हें देख पड़ी। गुरुके पास आकर तब इन्होंने अपना सब हाल कहा। धरसेनाचार्य इनका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आचार्य ने इन्हें सब तरह योग्य पा फिर खूब शास्त्राभ्यास कराया। आगे चलकर यही दो मुनिराज गुरु-सेवाके प्रसादसे जैनधर्मके धुरन्धर विद्वान् बनकर सिद्धान्तके उद्धारकर्त्ता हुए। जिस प्रकार इन मुनियों ने शास्त्रोंका उद्धार किया उसी प्रकार अन्य धर्मप्रेमियोंको भी शास्त्रोद्धार या शास्त्रप्रचार करना उचित है।

श्रीमान् धरसेनाचार्य और जैनसिद्धान्तके समुद्र श्री पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य मेरी बुद्धिको स्वर्गमोक्षका सुख देनेवाले पवित्र जैनधर्ममें लगावें; जो जीव मात्रका हित करनेवाले और देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं।

६७–सुव्रत मुनिराजकी कथा।

देवों द्वारा जिनके पांव पूजे जाते हैं, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर सुव्रत मुनिराजकी कथा लिखी जाती है।

सौराष्ट्र देशकी सुन्दर नगरी द्वारकामें अन्तिम नारायण श्री कृष्णका जन्म हुआ। श्रीकृष्णकी कई स्त्रियां थीं, पर उन सबमें सत्य भामा बड़ी भाग्यवती थी। श्रीकृष्णका सबसे अधिक प्रेम इसी पर था। श्रीकृष्ण अर्धचक्री थे—तीन खण्डके मालिक थे। हजारों राजे महाराजे इनकी सेवामें सदा उपस्थित रहा करते थे।

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान्के दर्शनार्थ समवशरण में जा रहे थे। रास्तेमें इन्होंने तपस्वी श्रीसुव्रत मुनिराजको सरोग दशामें देखा। सारा शरीर उनका रोगसे कष्ट पा रहा था। उनकी यह दशा श्रीकृष्णसे न देखी गई। धर्मप्रेमसे उनका हृदय अस्थिर हो गया। उन्होंने उसी समय एक जीवक नामके प्रसिद्ध वैद्यको बुलाया और मुनिको दिखलाकर औषधिके लिये पूछा। वैद्यके कहे अनुसार सब श्रावकोंके घरोंमें उन्होंने औषधि-मिश्रित लड्डुओंके बनवानेकी सूचना करवादी। थोड़े ही दिनोंमें इस व्यवस्थासे मुनि को आराम हो गया—सारा शरीर फिर पहलेसा सुन्दर हो गया। इस औषधिदानके प्रभावसे श्री कृष्णके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हुआ। सच है, सुखके कारण सुपात्रदानसे संसारमें सत्पुरुषोंको सभी कुछ प्राप्त होता है।

निरोग अवस्थामें सुव्रत मुनिराजको एक दिन देखकर श्री कृष्ण बड़े खुश हुए। इसलिये कि उन्हें अपने काममें सफलता प्राप्त

हुई। उनसे उन्होंने पूछा—भगवन्, अब अच्छे तो हैं? उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्, शरीर स्वभावहीसे अपवित्र, नाश होनेवाला और क्षण क्षणमें अनेक अवस्थाओंको बदलनेवाला है, इसमें अच्छा और बुरापन क्या है? पदार्थोंका जैसा परिवर्तन स्वभाव है उसी प्रकार यह कभी निरोग और कभी सरोग हो जाया करता है। हां, मुझे न इसके रोगी होनेमें खेद है और न निरोग होनेमें हर्ष। मुझे तो अपने आत्मासे काम, जिसे कि मैं प्राप्त करनेमें लगा हुआ हूँ और जो मेरा परम कर्त्तव्य है। सुव्रत योगिराजकी शरीरसे इस प्रकार निस्पृहता देखकर श्रीकृष्णको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने मुनिको नमस्कार कर उनकी बड़ी प्रशंसा की।

पर जब मुनिकी यह निस्पृहता जीवक वैद्यके कानोंमें पहुँची तो उन्हें इस बातका बड़ा दुःख हुआ, बल्कि मुनि पर उन्हें अत्यन्त घृणा हुई, कि मुनिका मैंने इतना उपकार किया तब भी उन्होंने मेरे सम्बन्धमें तारीफका एक शब्द भी न कहा! इससे उन्होंने मुनिको बड़ा कृतघ्न समझ उनकी बहुत निन्दा की—बुराई की। इस मुनिनिन्दासे उन्हें बहुत पापका बन्ध हुआ। अन्तमें जब उनकी मृत्यु हुई तब वे इस पापके फलसे नर्मदाके किनारे पर एक बन्दर हुए। सच है, अज्ञानियोंको साधुओंके आचार-विचार, व्रत-नियमादिकोंका कुछ ज्ञान तो होता नहीं और व्यर्थ उनकी निन्दा-बुराई कर के पापकर्म बाँध लेते हैं। इससे उन्हें दुःख उठाना पड़ता है।

एक दिनकी बात है कि यह जीवक वैद्यका जीव बन्दर जिस वृक्ष पर बैठा हुआ था, उसके नीचे यही सुव्रत मुनिराज ध्यान

कर रहे थे। इस समय उस वृक्षकी एक टहनी टूट कर मुनि पर गिरी। उसकी तीखी नोंक जाकर मुनिके पेटमें घुस गई। पेटका कुछ हिस्सा चिरकर उससे खून बहने लगा। मुनि पर जैसे ही उस बन्दरकी नजर पड़ी उसे जातिस्मरण हो गया। वह पूर्व जन्मकी शत्रुता भूलकर उसी समय दौड़ा गया और थोड़ी ही देरमें और बहुतसे बन्दरोंको बुला लाया। उन सबने मिलकर उस डालीको बड़ी सावधानीसे खींचकर निकाल लिया। और वैद्यके जीवने पूर्व जन्मके संस्कारसे जंगलसे जड़ी-बूँटी लाकर उसका रस मुनिके घाव पर निचोड़ दिया। उससे मुनिको कुछ शान्ति मिली। इस बन्दरने भी इस धर्मप्रेमसे बहुत पुण्यबंध किया। सच है, पूर्व जन्मोंमें जैसा अभ्यास किया जाता है—जैसा पूर्व जन्मका संस्कार होता है दूसरे जन्मोंमें भी उसका संस्कार बना रहता है और प्रायः जीव वैसा ही कार्य करने लगता है।

बन्दरमें—एक पशुमें इसप्रकार दयाशीलता देखकर मुनिराजने अवधिज्ञान द्वारा तो उन्हें जीवक वैद्यके जन्मका सब हाल ज्ञात हो गया। उन्होंने तब उसे भव्य समझकर उसके पूर्वजन्मकी सब कथा उसे सुनाई और धर्मका उपदेश किया। मुनिकी कृपासे धर्मका पवित्र उपदेश सुनकर धर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गई। उसने भक्तिसे सम्यक्त्व-व्रत पूर्वक अणुव्रतोंको ग्रहण किया। उन्हें उसने बड़ी अच्छी तरह पाला भी। अन्तमें वह सात दिनका संन्यास ले मरा। इस धर्मके प्रभावसे वह सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ। सच है, जैनधर्मसे प्रेम करनेवालोंको क्या प्राप्त नहीं होता। देखिए, यह धर्मका ही तो प्रभाव था जिससे कि एक बन्दर—पशु देव हो गया! इसलिये धर्म या गुरुसे बढ़कर संसारमें कोई सुखका कारण नहीं है।

वह जैनधर्म जयलाभ करे-संसारमें निरन्तर चमकता रहे, जिसके प्रसादसे एक तुच्छ प्राणी भी देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंकी सम्पत्ति लाभ कर-उसका सुख भोगकर अन्तमें मोक्षश्रीका अनन्त, अविनाशी सुख प्राप्त करता है। इसलिये आत्महित चाहनेवाले बुद्धिवानोंको उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे मोक्षसुखके लिये परम पवित्र जैन धर्मके प्राप्त करनेका और प्राप्त कर उसके पालनेका सदा यत्न करें।

९८–हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा।

केवलज्ञान जिनका नेत्र है ऐसे जिन भगवान्‌को नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा लिखी जाती है।

अंगदेशके सुप्रसिद्ध कांपिल्य नगरके राजा सिंहध्वज थे। इनकी रानीका नाम वप्रा था। कथानायक हरिषेण इसीका पुत्र था। हरिषेण बुद्धिमान् था, शूरवीर था, सुन्दर था, दानी था, और बड़ा तेजस्वी था। सब उसका बड़ा मान—आदर करते थे।

हरिषेणकी माता धर्मात्मा थी। भगवान् पर उसकी अचल भक्ति थी। यही कारण था कि वह अठाईके पर्वमें सदा जिन भगवान्‌का रथ निकलवाया करती और उत्सव मनाती। सिंहध्वजकी दूसरी रानी लक्ष्मीमतीको जैनधर्म पर विश्वास न था। वह सदा उसकी निन्दा किया करती थी। एक बार उसने अपने स्वामीसे

कहा—प्राणनाथ, आज पहले मेरा ब्रह्माजीका रथ शहरमें घूमे, ऐसी आप आज्ञा दीजिये—सिंहध्वजने इसका परिणाम क्या होगा, इस पर कुछ विचार न कर लक्ष्मीमतीका कहा मान लिया। पर जब धर्मवत्सल वप्रा रानीको इस बातकी खबर मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं खाना-पीना तभी करूँगी जब कि मेरा रथ पहले निकलेगा। सच है, सत्पुरुषोंको धर्म ही शरण होता है—उनकी धर्म तक ही दौड़ होती है।

हरिषेण इतनेमें भोजन करनेको आया। उसने सदाकी भाँति आज अपनी माताको हँस-मुख न देखकर उदास मन देखा। इससे उसे बड़ा खेद हुआ। माता क्यों दुखी हैं, इसका कारण जब उसे जान पड़ा तब वह एक पलभर भी फिर वहाँ न ठहर कर घरसे निकल पड़ा। यहाँसे चलकर वह एक चोरोंके गांवमें पहुँचा। इसे देखकर एक तोता अपने मालिकोंसे बोला—जो कि चोरोंका सिखाया-पढ़ाया था, देखिये, यह राजकुमार जा रहा है, इसे पकड़ो। तुम्हें लाभ होगा। तोतेके इस कहने पर किसी चोरका ध्यान न गया। इसलिये हरिषेण बिना किसी आफतके आये यहाँसे निकल गया। सच है, दुष्टोंकी संगति पाकर दुष्टता आती ही है। फिर ऐसे जीवोंसे कभी किसीका हित नहीं होता।

यहांसे निकल कर हरिषेण फिर एक शतमन्यु नामके तापसीके आश्रममें पहुंचा। वहाँ भी एक तोता था। परन्तु यह पहले तोतेसा दुष्ट न था। इसलिये इसने हरिषेणको देखकर मनमें सोचा कि जिसके मुँह पर तेजस्विता और सुन्दरता होती है उसमें, गुण अवश्य ही होते हैं। यह जानेवाला भी कोई ऐसा ही पुरुष होना चाहिये। इसके बाद ही उसने अपने मालिक तापसियोंसे कहा—यह राजकुमार जा रहा है। इसका आप लोग आदर करें। राजकुमारको बड़ा अचंभा हुआ। उसने पहलेका हाल कह कर इस तोतेसे पूछा—क्यों भाई, तेरे एक भाईने तो अपने मालिकोंसे मेरे पकड़नेको कहा था और तू अपने मालिकसे मेरा मान-आदर करनेको कह रहा है, इसका कारण क्या है? तोता बोला—अच्छा राजकुमार, सुनो मैं तुम्हें इसका कारण बतलाता हूँ। उस तोतेकी और मेरी माता एक ही है—हम दोनों भाई भाई हैं। इस हालतमें मुझमें और उसमें विशेषता होनेका कारण यह है कि मैं इन तपस्वियोंके हाथ पड़ा और वह चोरोंके। मैं रोज रोज इन महात्माओंकी अच्छी अच्छी बातें सुना करता हूं और वह उन चोरोंकी बुरी बुरी बातें सुनता है। इसलिये मुझमें और उसमें इतना अन्तर है। सो आपने अपनी आँखों देख ही लिया कि दोष और गुण ये संगतिके फल हैं। अच्छोंकी संगतिसे गुण प्राप्त होते हैं और बुरोंकी संगतिसे दुर्गुण।

इस आश्रमके स्वामी तापसी शतमन्यु पहले चम्पापुरीके राजा थे। इनकी रानीका नाम नागवती है। इनके जनमेजय नामका एक पुत्र और मदनावली नामकी एक कन्या है। शतमन्यु अपने पुत्रको राज्य देकर तापसी हो गये। राज्य अब जनमेजय करने लगा। एक दिन जनमेजयसे मदनावलीके सम्बन्धमें एक ज्योतिषीने कहा कि यह कन्या चक्रवर्तीका सर्वोच्च स्त्रीरत्न होगा। और यह सच है कि ज्ञानियोंका कहा कभी झूठा नहीं होता।

जब मदनावलीकी इस भविष्यवाणीकी सब ओर खबर पहुँची तो अनेक राजे लोग उसे चाहने लगे। इन्हींमें उड्रदेशका राजा कलकल भी था। उसने मदनावलीके लिये उसके भाईसे मँगनी की। उसकी यह मँगनी जनमेजयने नहीं स्वीकारी। इससे कलकलको बड़ा ना-गवार गुजरा। उसने रुष्ट होकर जनमेजय पर चढ़ाई करदी और चम्पापुरीके चारों ओर घेरा डाल दिया। सच है, कामसे अन्धे हुए मनुष्य कौन काम नहीं कर डालते। जनमेजय भी ऐसा डरपोक राजा न था। उसने फौरन ही युद्धस्थलमें आ-डटनेकी अपनी सेनाको आज्ञा दी। दोनों ओरके वीर योद्धाओंकी मुठभेड़ हो गई। खूब घमासान युद्ध आरंभ हुआ। इधर युद्ध छिड़ा और उधर नागवती अपनी लड़की मदनावलीको साथ ले सुरंगके रास्तेसे निकल भागी। वह इसी शतमन्युके आश्रममें आई। पाठकोंको याद होगा कि यही शतमन्यु नागवतीका पति है। उसने युद्धका सब हाल शतमन्युसे कह सुनाया। शतमन्युने तब नागवती और मदनावलीको अपने आश्रममें ही रख लिया।

हरिषेण राजकुमारका ऊपर जिकर आया है। इसका मदनावली पर पहलेसे ही प्रेम था। हरिषेण उसे बहुत चाहता था। यह बात आश्रमवासी तापसियोंको मालूम पड़ जानेसे उन्होंने हरिषेणको आश्रमसे निकाल बाहर कर दिया। हरिषेणको इससे बुरा तो बहुत लगा, पर वह कुछ कर-धर नहीं सकता था। इसलिये लाचार होकर उसे चला जाना ही पड़ा। इसने चलते समय प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा इस पवित्र राजकुमारीके साथ ब्याह होगा तो मैं अपने सारे देशमें चार चार कोसकी दूरी पर अच्छे अच्छे सुन्दर और विशाल जिन

मन्दिर बनवाऊँगा, जो पृथ्वीको पवित्र करनेवाले कहलायेंगे। सच है, उन लोगोंके हृदयमें जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति सदा रहा करती है जो स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करनेवाले होते हैं।

प्रसिद्ध सिन्धुदेशके सिन्धुतट शहरके राजा सिन्धुनद और रानी सिन्धुमतीके कोई सौ लड़कियां थीं। ये सब ही बड़ी सुन्दर थीं। इन लड़कियोंके सम्बन्धमें नैमित्तिकने कहा था कि—ये सब राजकुमारियां चक्रवर्त्ती हरिषेणकी स्त्रियाँ होंगी। ये सिन्धुनदी पर स्नान करनेके लिये जायेंगी। इसी समय हरिषेण भी यहीं आ जायगा। तब परस्परकी चार आंखें होते ही दोनों ओरसे प्रेमका बीज अंकुरित हो उठेगा।

नैमित्तिकका कहना ठीक हुआ। हरिषेण दूसरे राजाओं पर विजय करता हुआ इसी सिन्धुनदीके किनारे पर आकर ठहरा। इसी समय सिन्धुनदकी कुमारियां भी यहाँ स्नान करनेके लिए आई हुई थीं। प्रथम ही दर्शनमें दोनोंके हृदयोंमें प्रेमका अंकुर फूटा और फिर वह क्रमसे बढ़ता ही गया। सिन्धुनदसे यह बात छुपी न रही। उसने प्रसन्न होकर हरिषेणके साथ अपनी लड़कियोंका ब्याह कर दिया।

रातको हरिषेण चित्रशाला नामके एक खास महलमें सोया हुआ था। इसी समय एक वेगवती नामकी विद्याधरी आकर हरिषेणको सोता हुआ ही उठा ले चली। रास्तेमें हरिषेण जग उठा। अपनेको एक स्त्री कहीं लिये जा रही है, इस बातको मालूम होते ही उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने तब उस विद्याधरीको मारनेके लिये घूँसा उठाया। उसे गुस्सा हुआ देख विद्याधरी डरी और हाथ जोड़

कर बोली—महाराज, क्षमा कीजिए। मेरी एक प्रार्थना सुनिए। विजयार्द्ध पर्वत पर बसे हुए सूर्योदर शहरके राजा इन्द्रधनु और रानी बुद्धमतीकी एक कन्या है। उसका नाम जयचन्द्रा है। वह सुन्दर है, बुद्धिमती है और बड़ी चतुर है। पर उसमें एक ऐब है और वह महा ऐब है। वह यह कि उसे पुरुषोंसे बड़ा द्वेष है—पुरुषों को वह आंखोंसे देखना तक पसंद नहीं करती। नैमित्तिकने उसके सम्बन्धमें कहा है कि जो सिन्धुनदकी सौ राजकुमारियोंका पति होगा, वही इसका भी होगा। तब मैंने आपका चित्र लेजाकर उसे बतलाया। वह उसे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसका सब कुछ आप पर न्योछावर हो चुका है। वह आपके सम्बन्ध की तरह तरहकी बातें पूछा करती है और बड़े चावसे उन्हें सुनती है। आपका जिकर छिड़ते ही वह बड़े ध्यानसे उसे सुनने लगती है। उसकी इन सब चेष्टाओंसे जान पड़ता है कि उसका आप पर अत्यन्त प्रेम है। यही कारण है कि मैं उसकी आज्ञासे आपको उसके पास लिये जा रही हूँ। सुनकर हरिषेण बहुत खुश हुआ और फिर वह कुछ भी न बोलकर जहाँ उसे विद्याधरी लिवा गई चला गया। वेगवतीने हरिषेणको इन्द्रधनुके महल पर ला रक्खा। हरिषेणके रूप और गुणोंको देख कर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। जयचन्द्राके माता पिताने उसके ब्याहका भी दिन निश्चित कर दिया। जो दिन ब्याहका था उस दिन राजकुमारी जयचन्द्राके मामाके लड़के गंगाधर और महीधर ये दोनों हरिषेण पर चढ़ आये। इसलिये कि वे जयचन्द्राको स्वयं ब्याहना चाहते थे। हरिषेणने इनके साथ बड़ी वीरतासे युद्ध कर इन्हें हराया। इस युद्ध

में हरिषेणके हाथ जवाहिरात और बहुत धन-दौलत लगी। यह चक्रवर्त्ती होकर अपने घर लौटा। रास्तेमें इसने अपनी प्रेमिणी मदनावलीसे भी ब्याह किया। घर आकर फिर इसने अपनी माताकी इच्छा पूरी की। पहले उसीका रथ चला। इसके बाद हरिषेणने अपने देशभरमें जिन मन्दिर बनवा कर अपनी प्रतिज्ञाको भी निवाहा। सच है, पुण्यवानोंके लिये कोई काम कठिन नहीं।

वे जिनेन्द्र भगवान सदा जयलाभ करें, जो देवादिकों द्वारा पूजा किये जाते हैं, गुणरूपी रत्नोंकी खान हैं, स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले हैं, संसारके प्रकाशित करनेवाले निर्मल चन्द्रमा हैं केवलज्ञानी—सर्वज्ञ हैं और जिनके पवित्र धर्मका पालन कर भव्यजन सुख लाभ करते हैं।

९९—दूसरोंके गुण ग्रहण करनेकी कथा।

जिन्हें स्वर्गके देव पूजते हैं उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर दूसरोंके दोषोंको न देखकर गुण ग्रहण करनेवालेकी कथा लिखी जाती है।

एक दिन सौधर्म स्वर्गका इन्द्र धर्म-प्रेमके वश हो गुणवान् पुरुषोंकी अपनी सभामें प्रशंसा कर रहा था। उस समय उसने कहा—जिस पुरुषका—जिस महात्माका हृदय इतना उदार है कि वह दूसरों के बहुतसे औगुणों पर बिलकुल ध्यान न देकर उसमें रहनेवाले गुणों के थोड़े भी हिस्सेको खूब बढ़ानेका यत्न करता है—जिसका ध्यान सिर्फ गुणोंके ग्रहण करनेकी ओर है वह पुरुष—वह महात्मा संसार

में सबसे श्रेष्ठ है, उसीका जन्मभी सफल है। इन्द्रके मुँहसे इसप्रकार दूसरोंकी प्रशंसा सुन एक मौजीले देवने उससे पूछा—देवराज, जैसी इस समय आपने गुणग्राहक पुरुषकी प्रशंसा की है, क्या ऐसा कोई बड़भागी पृथ्वी पर है भी। इन्द्रने उत्तरमें कहा—हाँ हैं, और वे अन्तिम वासुदेव द्वारकाके स्वामी श्रीकृष्ण। सुनकर वह देव उसी समय पृथ्वी पर आया। इस समय श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान्‌के दर्शनार्थ जा रहे थे। इनकी परीक्षाके लिये यह मरे कुत्तेका रूप ले रास्तेमें पड़ गया। इसके शरीरसे बड़ी ही दुर्गन्ध भभक रही थी। आने-जाने वालोंके लिए इधर होकर आना-जाना मुश्किल हो गया था। इसकी इस असह दुर्गन्धके मारे श्रीकृष्णके साथी सब भाग खड़े हुए। इसी समय वह देव एक दूसरे ब्राह्मणका रूप लेकर श्री कृष्णके पास आया और उस कुत्तेकी बुराई करने लगा—उसके दोष दिखाने लगा। श्रीकृष्णने उसकी सब बातें सुन-सुनाकर कहा—अहा! देखिए, इस कुत्तेके दांतोंकी श्रेणी स्फटिकके समान कितनी निर्मल और सुन्दर है। श्रीकृष्णने कुत्तेके और दोषों पर उसकी दुर्गन्ध आदि पर कुछ ध्यान न देकर उसके दांतोंकी—उसमें रहनेवाले थोड़ेसे भी अच्छे भागकी उलटी प्रशंसा ही की। श्रीकृष्णकी एक पशुके लिये इतनी उदार बुद्धि देखकर वह देव बहुत खुश हुआ। उसने फिर प्रत्यक्ष होकर सब हाल श्रीकृष्णसे कहा—और उचित आदर-मान करके आप अपने स्थान चला गया।

इसी तरह अन्य जिन भगवान्‌के भक्त भव्यजनोंको भी उचित है कि वे दूसरोंके दोषोंको छोड़कर सुखकी प्राप्तिके लिये प्रेमके साथ उनके गुणोंको ग्रहण करनेका यत्न करें। इसीसे वे गुणज्ञ और प्रशंसाके पात्र कहे जा सकेंगे।

१००—मनुष्य-जन्मकी दुर्लभताके दस दृष्टान्त।

अतिशय निर्मल केवलज्ञानके धारक जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर मनुष्य जन्मका मिलना कितना कठिन है, इस बातको दस दृष्टान्तों-उदाहरणों द्वारा खुलासा समझाया जाता है।

उन दृष्टान्तोंके नाम ये हैं—

१-चोल्लक, २-पासा, ३-धान्य, ४-जूआ, ५-रत्न, ६-स्वप्न ७-चक्र, ८-कछुआ, ९-युग और १०-परमाणु।

अब पहले ही चोल्लक दृष्टान्त लिखा जाता है, उसे आप ध्यानसे सुनें।

संसारके हितकर्ता नेमिनाथ भगवान्‌को निर्वाण गये बाद अयोध्यामें ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुए। उनके एक वीर सामन्तका नाम सहस्रभट था। सहस्रभटकी स्त्री सुमित्राके सन्तानमें एक लड़का था। इसका नाम वसुदेव था। वसुदेव न तो कुछ पढ़ा-लिखा था और न राज-सेवा वगैरहकी उसमें योग्यता थी। इसलिये अपने पिताकी मृत्युके बाद उनकी जगह इसे न मिल सकी, जो कि एक अच्छी प्रतिष्ठित जगह थी। और यह सच है कि बिना कुछ योग्यता प्राप्त किये राज-सेवा आदि कामोंमें आदर-मानकी जगह मिल भी नहीं सकती। इसकी इस दशा पर माताको बड़ा दुःख हुआ। पर बेचारी कुछ करने-धरनेको लाचार थी। वह अपनी गरीबीके मारे

एक पुरानी गिरी-पड़ी झोंपड़ीमें आकर रहने लगी और जिस किसी प्रकार अपना गुजारा चलाने लगी। उसने भावी आशासे वसुदेवसे कुछ काम लेना शुरू किया। वह लड्डू, पेड़ा, पान—आदि वस्तुएँ एक खोमचेमें रखकर उसे आस-पासके गाँवोंमें भेजने लगी, इसलिये कि वसुदेवको कुछ परिश्रम करना आ जाय—वह कुछ हुशियार हो जाय। ऐसा करनेसे सुमित्राको सफलता प्राप्त हुई और वसुदेव कुछ सीख भी गया—उसे पहलेकी तरह अब निकम्मा बैठे रहना अच्छा न लगने लगा। सुमित्राने तब कुछ वसीला लगाकर वसुदेवको राजाका अंगरक्षक नियत करा दिया।

एक दिन चक्रवर्त्ती हवा-खोरीके लिये घोड़े पर सवार हो शहर बाहर हुए। जिस घोड़े पर वे बैठे थे वह बड़े दुष्ट स्वभावको लिये हुए था। सो जरा ही पांवकी ऐड़ी लगाने पर वह चक्रवर्तीको लेकर हवा हो गया। बड़ी दूर जाकर उसने उन्हें एक बड़ी भयावनी बनीमें ला गिराया। इस समय चक्रवर्त्ती बड़े कष्टमें थे। भूख प्याससे उनके प्राण छटपटा रहे थे। पाठकोंको स्मरण है कि इनके अंगरक्षक वसुदेवको उसकी माँ ने चलने-फिरने और दौड़ने-दुड़ानेके काममें अच्छा हुशियार कर दिया था। यही कारण था कि जिस समय चक्रवर्तीको घोड़ा लेकर भागा, उस समय वसुदेव भी कुछ खाने-पीनेकी वस्तुएँ लेकर उनके पीछे पीछे बेतहाशा भागा गया। चक्रवर्त्तीको आध-पौन घंटा बनीमें बैठे हुआ होगा कि इतनेमें वसुदेव भी उनके पास जा पहुंचा। खाने-पीनेकी वस्तुएँ उसने महाराजकी भेंट कीं। चक्रवर्त्ती उससे बहुत सन्तुष्ट हुए। सच है, योग्य समयमें थोड़ा भी दिया हुआ सुखका कारण होता है।

जैसे बुझते हुए दीयेमें थोड़ासा भी तेल डालनेसे वह झटसे तेज हो उठता है। चक्रवर्त्तीने खुश होकर उससे पूछा तू कौन है ? उत्तरमें वसुदेवने कहा—महाराज, सहस्रभट सामन्तका मैं पुत्र हूँ। चक्रवर्ती फिर विशेष कुछ पूछ-ताछ न करके चलते समय उसे एक रत्नमयी कंकण देते गये।

अयोध्यामें पहुँच कर ही उन्होंने कोतवालसे कहा—मेरा कड़ा खो गया है, उसे ढूंढकर पता लगाइए। राजाज्ञा पाकर कोतवाल उसे ढूँढ़नेको निकला। रास्तेमें एक जगह इसने वसुदेवको कुछ लोगोंके साथ कड़ेके सम्बन्धकी ही बात-चीत करते पाया। कोतवाल तब उसे पकड़ कर राजाके पास लिवा ले गया। चक्रवर्ती उसे देखकर बोले—मैं तुझ पर बहुत खुश हूं। तुझे जो चाहिए वही माँगले। वसुदेव बोला—महाराज, इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता कि मैं आपसे क्या माँगू। यदि आप आज्ञा करें तो मैं मेरी मांको पूछ आऊँ। चक्रवर्त्तीके कहनेसे वह अपनी मांके पास गया और उसे पूछ आकर चक्रवर्त्तीसे उसने प्रार्थना की—महाराज, आप मुझे चोल्लक भोजन कराइए। उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। तब चक्रवर्त्तीने उनसे पूछा—भाई, चोल्लक भोजन किसे कहते हैं ? हमने तो उसका नाम भी आज तक नहीं सुना। वसुदेवने कहा—सुनिए महाराज, पहले तो बड़े आदरके साथ आपके महलमें मुझे भोजन कराया जाय और खूब अच्छे अच्छे सुन्दर कपड़े, गहने-दागीने दिये जाँय। इसके बाद इसी तरह आपकी रानियोंके महलोंमें क्रम क्रमसे मेरा भोजन हो। फिर आपके परिवार तथा मण्डलेश्वर राजाओंके यहाँ मुझे इसी प्रकार भोजन कराया

जाय। इतना सब हो चुकनेपर क्रम क्रमसे फिर आपहीके यहाँ मेरा अन्तिम भोजन हो। महाराज, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी आज्ञासे मुझे यह सब प्राप्त हो सकेगा।

भव्यजनो, इस उदाहरणसे यह शिक्षा लेनेकी है कि यह चोल्लक भोजन वसुदेव सरीखे कंगालको शायद प्राप्त हो भी जाय, तो भी इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं, पर एक बार प्रमाद से खो-दिया गया मनुष्य जन्म बेशक अत्यन्त दुर्लभ है। फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह सहसा नहीं मिल सकता। इसलिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे दुःखके कारण खोटे मार्गको छोड़कर जैनधर्मका शरण लें, जो कि मनुष्य जन्मकी प्राप्ति और मोक्षका प्रधान कारण है।

२–पाशेका दृष्टांत।

मगध देशमें शतद्वार नामका एक अच्छा शहर था। उसके राजाका नाम भी शतद्वार था। शतद्वारने अपने शहरमें एक ऐसा देखने योग्य दरवाजा बनवाया, कि जिसके कोई ग्यारह हजार खंभे थे। उन एक एक खम्भोंमें छ्यानवे ऐसे स्थान बने हुए थे जिनमें जुआरी लोग पाशे द्वारा सदा जूआ खेला करते थे। एक शिवशर्मा नामके ब्राह्मणने उन जुआरियोंसे प्रार्थना की—भाइयो, मैं बहुत ही गरीब हूँ, इसलिए यदि आप मेरा इतना उपकार करें, कि आप सब खेलनेवालोंका दाव यदि किसी समय एकहीसा पड़ जाय और वह सब धन-माल आप मुझे दे दें, तो बहुत अच्छा हो। जुआरियों ने सोमशर्माकी प्रार्थना स्वीकार करली। इसलिए कि उन्हें विश्वास

था कि—ऐसा होना नितान्त ही कठिन है, बल्कि असम्भव है। पर दैवयोग ऐसा हुआ कि एक बार सबका दाव एकहीसा पड़ गया और उन्हें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सब धन सोमशर्माको दे देना पड़ा। वह उस धनको पाकर बहुत खुश हुआ। इस दृष्टांतसे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जैसा योग सोमशर्माको मिला था, वैसा योग मिलकर और कर्मयोगसे इतना धन भी प्राप्त हो जाय तो कोई बात नहीं, परन्तु जो मनुष्य-जन्म एक बार प्रमाद वश हो नष्ट कर दिया जाय तो वह फिर सहजमें नहीं मिल सकता। इसलिए सत्पुरुषोंको निरन्तर ऐसे पवित्र कार्य करते रहना चाहिए, जो मनुष्य-जन्म या स्वर्ग मोक्षके प्राप्त करानेवाले हैं। ऐसे कर्म हैं—जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करना, दान देना, परोपकार करना, व्रतों का पालना, ब्रह्मचर्य से रहना और उपवास करना—आदि।

३–धान्य दृष्टान्त।

जम्बूद्वीपके बराबर चौड़ा और एक हजार योजन अर्थात् दो हजार कोस या चार कोस ऊँडा एक बड़ा भारी गढ़ा खोदा जाकर वह सरसौंसे भर दिया जाय। उसमेंसे फिर रोज रोज एक एक सरसौं निकाली जाया करे। ऐसा निरन्तर करते रहनेसे एक दिन ऐसा भी आयगा कि जिस दिन वह कुण्ड सरसौंसे खाली हो जायगा। पर यदि प्रमादसे यह जन्म नष्ट हो गया तो वह समय फिर आना एक तरह असंभवसा ही हो जायगा, जिसमें कि मनुष्य-जन्म मिल सके। इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे प्राप्त हुए मनुष्य जन्मको निष्फल न खोकर जिन-पूजा, व्रत, दान परोप-

कारादि पवित्र कामोंमें लगावें। क्योंकि ये सब परम्परा मोक्षके साधन हैं।

धान्यका दूसरा दृष्टान्त।

अयोध्याके राजा प्रजापाल पर राजगृहके जितशत्रु राजाने एक बार चढ़ाई की और सारी अयोध्याको सब ओरसे घेर लिया। तब राजाने अपनी प्रजासे कहा—जिसके यहाँ धानके जितने बोरे हों, उन सब बोरोंको लाकर और गिनती करके मेरे कोठोंमें सुरक्षित रखदें। मेरी इच्छा है कि शत्रुको एक अन्नका दाना भी यहाँसे प्राप्त न हो। ऐसी हालतमें उसे झख मार कर लौट जाना पड़ेगा। सारी प्रजाने राजाकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया। जब अभिमानी शत्रुको अयोध्यासे अन्न न मिला तब थोड़े ही दिनोंमें उसकी अकल ठिकाने पर आ गई। उसकी सेना भूखके मारे मरने लगी। आखिर जितशत्रुको लौट जाना ही पड़ा। जब शत्रु अयोध्या का घेरा उठा चल दिया तब प्रजाने राजासे अपने अपने धानके ले-जानेकी प्रार्थना की। राजाने कह दिया कि हाँ अपना अपना धान पहचान कर सब लोग ले जायें। कभी कर्मयोगसे ऐसा हो जाना भी संभव है, पर यदि मनुष्य जन्म एक बार व्यर्थ नष्ट हो गया तो उसका पुनः मिलना अत्यन्त ही कठिन है। इसलिए इसे व्यर्थ खोना उचित नहीं। इसे तो सदा शुभ कामोंमें ही लगाये रहना चाहिए।

४—जूआका दृष्टान्त।

शतद्वारपुरमें पांचसौ सुन्दर दरवाजे हैं। उन एक एक

दरवाजोंमें जूआ खेलनेके पाँच-पाँचसौ अड्डे हैं। उन एक एक अड्डोंमें पाँच-पाँचसौ जुआरी लोग जूआ खेलते हैं। उनमें एक चयी नामका जुआरी है। ये सब जुआरी कौड़ियाँ जीत-जीत कर अपने अपने गाँवोंमें चले गये। चयी वहीं रहा। भाग्यसे इन सब जुआरियों का और इस चयीका फिर भी कभी मुकाबिला होना संभव है, पर नष्ट हुए मनुष्य-जन्मका पुण्यहीन पुरुषोंको फिर सहसा मिलना दर असल कठिन है।

जूआका दूसरा दृष्टान्त।

इसी शतद्वार पुरमें निर्लक्षण नामका एक जुआरी था। उसके इतना भारी पापकर्मका उदय था कि वह स्वप्नमें भी कभी जीत नहीं पाता था। एक दिन कर्मयोगसे वह भी खूब धन जीता। जीतकर उस धनको उसने याचकोंको बांट दिया। वे सब धन लेकर चारों दिशाओंमें जिसे जिधर जाना था उधर ही चले गये। ये सब लोग दैवयोगसे फिर भी कभी इकट्ठे हो सकते हैं, पर गया जन्म फिर हाथ आना दुष्कर है। इसलिए जबतक मोक्ष न मिले तबतक यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होता रहे, इसके लिए धर्मकी शरण सदा लिये रहना चाहिए।

५—रत्न-दृष्टान्त।

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्त्ती, इनके मुकुटोंमें जड़े हुए मणि, जिन्हें स्वर्गोंके देव ले गये हैं, और इनके वे चौदह रत्न, नौ निधि तथा वे सब देव, ये सब

कभी इकट्ठे नहीं हो सकते; इसी तरह खोया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुष कभी प्राप्त नहीं कर सकते। यह जानकर बुद्धिवानों को उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे मनुष्य जीवन प्राप्त करनेके कारण जैनधर्मको ग्रहण करें।

६–स्वप्न-दृष्टान्त।

उज्जैनमें एक लकड़हारा रहता था। वह जंगलमेंसे लकड़ी काट कर लाता और बाजारमें बेच दिया करता था। उसीसे उसका गुजारा चलता था। एक दिन वह लकड़ीका गट्ठा सिर पर लादे आ रहा था। ऊपरसे बहुत गरमी पड़ रही थी। सो वह एक वृक्ष की छायामें सिर परका गट्ठा उतार कर वहीं सो गया। ठंडी हवा बह रही थी। सो उसे नींद आ गई। उसने एक सपना देखा कि वह सारी पृथिवीका मालिक चक्रवर्त्ती हो गया। हजारों नौकर-चाकर उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। जो वह आज्ञा—हुक्म करता है वह सब उसी समय बजाया जाता है। यह सब कुछ हो रहा था इतनेमें उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया। बेचारेकी सब सपने की सम्पत्ति आँख खोलते ही नष्ट हो गई। उसे फिर वही लकड़ीका गट्ठा सिर पर लादना पड़ा। जिस तरह वह लकड़हारा स्वप्नमें चक्रवर्त्ती बन गया, पर जगने पर रहा लकड़हाराका लकड़हारा ही। उसके हाथ कुछ भी धन-दौलत न लगी। ठीक इसी तरह जिसने एक बार मनुष्य-जन्म प्राप्त कर व्यर्थ गँवा दिया उस पुण्यहीन मनुष्यके लिए फिर यह मनुष्य जन्म जाग्रद्दशामें लकड़हारे को न मिलनेवाली चक्रवर्त्ती की सम्पत्ति की तरह असंभव है।

७–चक्र-दृष्टान्त।

अब चक्रदृष्टांत कहा जाता है। बाईस बड़े मजबूत खम्भे हैं। एक एक खम्भे पर एक एक चक्र लगा हुआ है। एक एक चक्रमें हजार हजार आरे हैं। उन आरोंमें एक एक छेद है। चक्र सब उलटे घूम रहे हैं। पर जो वीर पुरुष हैं वे ऐसी हालतमें भी उन खम्भों परकी राधाको वेध देते हैं।

काकन्दीके राजा द्रुपदकी कुमारीका नाम द्रौपदी था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसके स्वयंवरमें अर्जुनने ऐसी ही राधा वेध कर द्रौपदीको ब्याहा था। सो ठीक ही है पुण्यके उदयसे प्राणियोंको सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

यह सब योग कठिन होने पर भी मिल सकता है, पर यदि प्रमादसे मनुष्य जन्म एक बार नष्ट कर दिया जाय तो उसका मिलना बेशक कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। वह प्राप्त होता है पुण्यसे, इसलिए पुण्यके प्राप्त करनेका यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

८–कछुएका दृष्टान्त।

सबसे बड़े स्वयंभूरमण समुद्रको एक बड़े भारी चमड़ेमें छोटासा छेद करके उससे ढक दीजिए। समुद्रमें घूमते हुए एक कछुएने कोई एक हजार वर्ष बाद उस चमड़ेके छोटेसे छेदमेंसे सूर्य को देखा। वह छेद उससे फिर छूट गया। भाग्यसे यदि फिर कभी ऐसा ही योग मिल जाय कि वह उस छिद्र पर फिर भी आ पहुँचे और सूर्यको देखले, पर यदि मनुष्य-जन्म इसी तरह

प्रमादसे नष्ट हो गया तो सचमुच ही उसका मिलना बहुत कठिन है।

९–युगका दृष्टान्त।

दो लाख योजन चौड़े पूर्वके लवणसमुद्रमें युग (धुरा) के छेदसे गिरी हुई समिलाका पश्चिम समुद्रमें बहते हुए युग (धुरा) के छेदमें समय पाकर प्रवेश कर जाना संभव है, पर प्रमाद या विषयभोगों द्वारा गँवाया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुषोंके लिए फिर सहसा मिलना असंभव है। इसलिए जिन्हें दुःखोंसे छूट-कर मोक्ष सुख प्राप्त करना है उन्हें तबतक ऐसे पुण्यकर्म करते रहना चाहिए कि जिनसे मोक्ष होने तक बराबर मनुष्य जीवन मिलता रहे।

१०–परमाणुका दृष्टान्त।

चार हाथ लम्बे चक्रवर्त्तीके दण्डरत्नके परमाणु बिखर कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त करलें और फिर वे ही परमाणु दैवयोगसे फिर कभी दण्डरत्नके रूपमें आजाएँ तो असंभव नहीं, पर मनुष्य पर्याय यदि एक बार दुष्कर्मों द्वारा व्यर्थ खो–दिया जाय तो इसका फिर उन अभागे जीवोंको प्राप्त हो जाना जरूर असंभव है। इसलिए पंडितोंको मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिके लिए पुण्यकर्म करना कर्त्तव्य है।

इस प्रकार सर्व श्रेष्ठ मनुष्य जीवन को अत्यन्त दुर्लभ समझ कर बुद्धिमानोंको उचित है कि वे मोक्ष सुखके लिये संसार

के जीवमात्रका हित करनेवाले पवित्र जैनधर्मको ग्रहण करें।

१०१–भावानुराग-कथा।

सब प्रकार सुखके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कार कर धर्ममें प्रेम करनेवाले नागदत्तकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा धर्मपाल थे। इनकी रानीका नाम धर्मश्री था। धर्मश्री धर्मात्मा और बड़ी उदार प्रकृतिकी स्त्री थी। यहाँ एक सागर दत्त नामका सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था। सुभद्राके नागदत्त नामका एक लड़का था। नागदत्त भी अपनी माताकी तरह धर्मप्रेमी था। धर्म पर उसकी अचल श्रद्धा थी। इसका ब्याह समुद्रदत्त सेठकी सुन्दर कन्या प्रियंगुश्रीके साथ बड़े ठाटबाटसे हुआ। ब्याहमें खूब दान दिया गया। पूजा उत्सव किया गया। दीन दुखियोंकी अच्छी सहायता की गई।

प्रियंगुश्रीको इसके मामाका लड़का नागसेन चाहता था और सागरदत्तने उसका ब्याह कर दिया नागदत्तके साथ। इससे नागसेन को बड़ा ना-गवार मालूम हुआ। सो उसने बेचारे नागदत्तके साथ शत्रुता बांधली और उसे कष्ट देनेका मौका ढूँढने लगा।

एक दिन उपासा नागदत्त धर्मप्रेमसे जिन मन्दिरमें कायो-त्सर्ग ध्यान कर रहा था। उसे नागसेनने देख लिया। सो इस दुष्टने अपनी शत्रुताका बदला लेनेके लिये एक षड्यंत्र रचा। गलेमेंसे अपना हार निकाल कर उसे इसने नागदत्तके पांवोंके पास रख दिया और हल्ला कर दिया कि यह मेरा हार चुराकर लिये जा रहा था, सो मैंने

इसके पीछे दौड़कर इसे पकड़ लिया। अब ढोंग बनाकर ध्यान करने लग गया, जिससे यह पकड़ा न जाय। नागसेनका हल्ला सुनकर आसपासके बहुतसे लोग इकट्ठे हो गए और पुलिस भी आ जमा हुई। नागदत्त पकड़ा जाकर राज-दरबारमें उपस्थित किया गया। राजाने नागदत्तकी ओरसे कोई प्रमाण न पाकर उसे मारनेका हुक्म दे दिया। नागदत्त उसी समय वध्य भूमिमें ले जाया गया। उसका सिर काटनेके लिये तलवारका जो वार उस पर किया गया, क्या आश्चर्य कि वह वार उसे ऐसा जान पड़ा मानों किसीने उस पर फूलोंकी माला फेंकी हो। उसे जरा भी चोट न पहुँची और इसी समय आकाशसे उस पर फूलोंकी वर्षा हुई। जय जय, धन्य धन्य, शब्दोंसे आकाश गूँज उठा। यह आश्चर्य देखकर सब लोग दंग रह गए। सच है, धर्मानुरागसे सत्पुरुषोंका, सहनशील महात्माओंका कौन उपकार नहीं करता। इसप्रकार जैनधर्मका सुखमय प्रभाव देख कर नागदत्त और धर्मपाल राजा बहुत प्रसन्न हुए। वे अब मोक्षसुख की इच्छासे संसारकी सब माया ममता को छोड़कर जिनदीक्षा ले साधु हो गए और बहुतसे लोगोंने—जो जैन नहीं थे, जैनधर्मको ग्रहण किया।

संसारके बड़े २ महापुरुषोंसे पूजे जाने वाला, जिनेन्द्र भगवानका उपदेश किया पवित्र धर्म, स्वर्गमोक्षके सुखका कारण है—इसीके द्वारा भव्यजन उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। यही पवित्र धर्म कर्मोंका नाशकर मुझे आत्मिक सच्चा सुख प्रदान करे।

१०२—प्रेमानुराग-कथा।

जो जिनधर्मके प्रवर्त्तक हैं, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धर्मसे प्रेम करनेवाले सुमित्र सेठकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्याके राजा सुवर्णवर्मा और उनकी रानी सुवर्णश्रीके समय अयोध्यामें सुमित्र नामके एक प्रसिद्ध सेठ हो गये हैं। सेठका जैनधर्म पर अत्यन्त प्रेम था। एक दिन सुमित्र सेठ रातके समय अपने घर ही में कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। उनकी ध्यान-समयकी स्थिरता और भावोंकी दृढ़ता देख कर किसी एक देवने सशंकित हो उनकी परीक्षा करनी चाही कि कहीं यह सेठका कोरा ढोंग तो नहीं है। परीक्षामें उस देवने सेठकी सारी सम्पत्ति, स्त्री, बाल बच्चे आदि को अपने अधिकारमें कर लिया। सेठके पास इस बातकी पुकार पहुँची। स्त्री, बाल-बच्चे रो रोकर उसके पांवोंमें जा गिरे और इस पापीसे छुड़ाओ, छुड़ाओकी हृदय भेदनेवाली दीन प्रार्थना करने लगे। जो न होनेका था वह सब हुआ। परन्तु सेठजीने अपने ध्यानको अधूरा नहीं छोड़ा वे वैसे ही निश्चल बने रहे। उनकी यह अलौकिक स्थिरता देखकर उस देवको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सेठ की शतमुखसे भूरि भूरि प्रशंसा की। अंतमें अपने निज स्वरूपमें आ और सेठको एक सांकरी नामकी आकाशगामिनी विद्या भेंट कर आप स्वर्ग चला गया। सेठके इस प्रभावको देख कर बहुतेरे भाइयों ने जैनधर्मको ग्रहण किया, कितनोंने मुनिव्रत, कितनोंने श्रावकव्रत और कितनोंने केवल सम्यग्दर्शन ही लिया।

जिन भगवान्के चरण-कमल परम सुखके देनेवाले हैं और

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले हैं, इसलिये भव्यजनोंको उचित है कि वे सुख प्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें, स्तुति करें, ध्यान करें, स्मरण करें।

१०३-जिनाभिषेकसे प्रेम करनेवालेकी कथा।

इन्द्रादिकों द्वारा जिनके पांव पूजे जाते हैं, ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले जिनदत्त और वसुमित्रकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा सागरदत्तके समय उनकी राजधानीमें जिनदत्त और वसुमित्र नामके दो प्रसिद्ध और बड़े गुणवान् सेठ हो गये हैं। जिनधर्म और जिनाभिषेक पर उनका बड़ा ही अनुराग था। ऐसा कोई दिन उनका खाली न जाता था जिस दिन वे भगवान्का अभिषेक न करते हों, पूजा प्रभावना न करते हों, दान-व्रत न करते हों।

एक दिन ये दोनों सेठ व्यापारके लिये उज्जैनसे उत्तरकी ओर रवाना हुये। मंजिल दर मंजिल चलते हुये ये एक ऐसी घनी अटवीमें पहुँच गये, जो दोनों बाजू आकाशसे बातें करनेवाले अवसीर और मालापर्वत नामके पर्वतोंसे घिरी थी और जिसमें डाकू लोगोंका अड्डा था। डाकू लोग इनका सब माल असबाब छीनकर हवा हो गये। अब ये दोनों उस अटवीमें इधर उधर घूमने लगे॥ इसलिये कि इन्हें उससे बाहर होनेका रास्ता मिल जाय। पर इनका सब प्रयत्न निष्फल गया। न तो ये स्वयं रास्तेका पता लगा सके और न कोई इन्हें रास्ता बतानेवाला ही मिला। अपने अटवी बाहर होनेका कोई उपाय न देखकर अन्तमें इन जिनपूजा और जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले महानुभावोंने संन्यास ले लिया और जिन भगवान्का ये स्मरण-चिंतन करने लगे। सच है, सत्पुरुष सुख और दुःखमें सदा समान भाव रखते हैं—विचारशील रहते हैं।

एक और अभागा भूला भटका सोमशर्मा नामका ब्राह्मण इसी अटवीमें आ फँसा। घूमता-फिरता वह इन्हींके पास आ गया। अपनीसी इस बेचारे ब्राह्मणकी दशा देखकर ये बड़े दिलगीर हुए। सोमशर्मासे इन्होंने सब हाल कहा और यह भी कहा—यहाँसे निकलनेका कोई मार्ग प्रयत्न करने पर भी जब हमें न मिला तो हमने अन्तमें धर्मका शरण लिया। इसलिये कि यहाँ हमारी मरने सिवा कोई गति ही नहीं है और जब हमें मृत्युके सामने होना ही है तब कायरता और बुरे भावोंसे क्यों उसका सामना करना, जिससे कि दुर्गतिमें जाना पड़े। धर्म दुःखोंका नाशकर सुखोंका देनेवाला है। इसलिये उसीका ऐसे समयमें आश्रय लेना परम हितकारी है। हम तुम्हें भी सलाह देते हैं कि तुम भी सुगतिकी प्राप्तिके लिये धर्मका आश्रय ग्रहण करो। इसके बाद उन्होंने सोमशर्माको धर्मका सामान्य स्वरूप समझाया—देखो, जो अठारह दोषोंसे रहित और सबके देखनेवाले—सर्वज्ञ हैं, वे देव कहाते हैं और ऐसे निर्दोष भगवान् द्वारा बताये दयामय मार्गको धर्म कहते हैं। धर्मका वैसे सामान्य लक्षण है—जो दुःखोंसे छुड़ाकर सुख प्राप्त करावे। ऐसे धर्मको आचार्योंने दस भागोंमें बांटा है। अर्थात् सुख प्राप्त करनेके दस उपाय हैं। वे ये हैं—उत्तम क्षमा, मार्दव-हृदयका कोमल होना, आर्जव-हृदयका सरल होना, सच बोलना, शौच-निर्लोभी या संतोषी होना, संयम-

इन्द्रियोंको वश करना, तप-व्रत उपवासादि करना, त्याग-पुण्यसे प्राप्त हुए धनको सुकृतके काम जैसे दान, परोपकार आदिमें लगाना आकिंचन-परिग्रह अर्थात् धन-धान, चांदी-सोना, दास-दासी आदि दस प्रकारके परिग्रहकी लालसा कम करके आत्माको शान्तिके मार्ग पर ले जाना, और ब्रह्मचर्यका पालना।

गुरु वे कहलाते हैं जो माया, मोह-ममतासे रहित हों, विषयोंकी वासना जिन्हें छू तक न गई हो, जो पक्के ब्रह्मचारी हों, तपस्वी हों और संसारके दुःखी जीवोंको हितका रास्ता बतला कर उन्हें सुख प्राप्त करानेवाले हों। इन तीनों पर अर्थात् देव, धर्म, गुरु पर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन सुख-स्थान पर पहुँचनेकी सबसे पहली सीढ़ी है। इसलिये तुम इसे ग्रहण करो। इस विश्वासको जैन शासन या जैनधर्म भी कहते हैं। जैन धर्ममें जीवको, जिसे कि आत्मा भी कहते हैं, अनादि माना है। न केवल माना ही है, किन्तु वह अनादि ही है। नास्तिकोंकी तरह वह पंचभूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनसे बना हुआ नहीं है। क्योंकि ये सब पदार्थ जड़ हैं। ये देख जान नहीं सकते। और जीवका देखना जानना ही खास गुण है। इसी गुणसे उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। जीवको जैनधर्म दो भागोंमें बांट देता है। एक-भव्य अर्थात् ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका, जिन्होंने कि आत्माके वास्तविक स्वरूपको अनादिसे ढांक रक्खा है, नाश कर मोक्ष जाने वाला और दूसरा अभव्य—जिसमें कर्मोंके नाश करनेकी शक्ति न हो। इनमें कर्मयुक्त जीवको संसारी कहते हैं और कर्म रहितको मुक्त। जीवके सिवा संसारमें एक और भी द्रव्य है। उसे अजीव या

पुद्गल कहते हैं। इसमें जानने देखनेकी शक्ति नहीं होती, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। अजीवको जैनधर्म पाँच भागोंमें बाँटता है, जैसे पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इन पांचोंकी दो श्रेणियां की गई हैं। एक मूर्त्तिक और दूसरी अमूर्त्तिक। मूर्त्तिक उसे कहते हैं जो छुई जा सके, जिसमें कुछ न कुछ स्वाद हो, गन्ध और वर्ण—रूप-रँग हो। अर्थात जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये बातें पाई जायँ वह मूर्त्तिक है और जिसमें ये न हों वह अमूर्त्तिक है। उक्त पांच द्रव्योंमें सिर्फ पुद्गल तो मूर्त्तिक है अर्थात् इसमें उक्त चारों बातें सदासे हैं और रहेंगी—कभी उससे जुदा न होंगी। इसके सिवा धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अमूर्त्तिक हैं। इन सब विषयोंका विशेष खुलासा अन्य जैन ग्रन्थोंमें किया है। प्रकरणवश तुम्हें यह सामान्य स्वरूप कहा। विश्वास है अपने हितके लिये इसे ग्रहण करनेका यत्न करोगे।

सोमशर्माको यह उपदेश बहुत पसन्द पड़ा। उसने मिथ्यात्वको छोड़ कर सम्यक्त्वको स्वीकार कर लिया। इसके बाद जिनदत्त वसुमित्रकी तरह वह भी संन्यास ले भगवान्का ध्यान करने लगा। सोमशर्माको भूख-प्यास, डाँस-मच्छर आदिकी बहुत बाधा सहनी पड़ी। उसे उसने बड़ी धीरताके साथ सहा। अन्तमें समाधिसे मृत्यु प्राप्त कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहाँसे श्रेणिक महाराजका अभयकुमार नामका पुत्र हुआ। अभयकुमार बड़ा ही धीर-वीर और पराक्रमी था, परोपकारी था। अन्तमें वह कर्मोंका नाश कर मोक्ष गया।

सोमशर्माकी मृत्युके कुछ ही दिनों बाद जिनदत्त और वसुमित्रको भी समाधिसे मृत्यु हुई। वे दोनों भी इसी सौधर्म स्वर्गमें, जहाँ कि सोमशर्म देव हुआ था, देव हुए।

संसारका उपकार करनेवाले और पुण्यके कारण जिनके उपदेश किये धर्मको कष्ट समयमें भी धारण कर भव्यजन उस कठिनसे कठिन सुखको, जिसके कि प्राप्त करनेकी उन्हें स्वप्नमें भी आशा नहीं होती, प्राप्त कर लेते हैं, वे सर्वज्ञ भगवान् मुझे वह निर्मल सुख दें, जिस सुखकी इन्द्र, चक्री और विद्याधर राजे पूजा करते हैं।

१०४–धर्मानुराग-कथा ।

जो निर्मल केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोकके जानने देखनेवाले हैं—सर्वज्ञ हैं, उन जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर धर्मसे अनुराग करनेवाले राजकुमार लकुच की कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा धनवर्मा और उनकी रानी धनश्रीके लकुच नामका एक पुत्र था। लकुच बड़ा अभिमानी था। पर साथमें वीर भी था। उसे लोग मेघकी उपमा देते थे। इस लिए कि वह शत्रुओंकी मान रूपी अग्निको बुझा देता था—शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना उसके बायें हाथका खेल था।

कालमेघ नामके म्लेच्छ राजाने एक बार उज्जैन पर चढ़ाई की थी। अवन्ति देशकी प्रजाको तब जन-धनकी बहुत हानि

उठानी पड़ी थी। लकुचने इसका बदला चुकानेके लिए कालमेघके देश पर भी चढ़ाई करदी। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने पर विजयलक्ष्मी लकुचकी गोदमें आकर लेटी। लकुचने तब कालमेघको बाँध लाकर पिताके सामने रख दिया। धनवर्मा अपने पुत्रकी इस वीरताको देखकर बड़े खुश हुए। इस खुशीमें धनवर्माने लकुचको कुछ वर देनेकी इच्छा जाहिर की। पर उसकी प्रार्थनासे वरको उपयोगमें लानेका भार उन्होंने उसीकी इच्छा पर छोड़ दिया। अपनी इच्छाके माफिक करनेकी पिताकी आज्ञा पा लकुचकी आँखें फिर गईं। उसने अपनी इच्छाका दुरुपयोग करना शुरू किया। व्यभिचारकी ओर उसकी दृष्टि गई। तब अच्छे अच्छे घरानेकी सुशील स्त्रियाँ उसकी शिकार बनने लगीं। उनका धर्म भ्रष्ट किया जाने लगा। अनेक सतियोंने इस पापीसे अपने धर्मकी रक्षाके लिए आत्महत्याएँ तक कर डालीं। प्रजाके लोग तंग आ गये। वे महाराजसे राजकुमारकी शिकायत तक करने नहीं पाते। कारण राजकुमार के जासूस उज्जैनके कोने कोनेमें फैल रहे थे, इसलिए जिसने कुछ राजकुमारके विरुद्ध जबान हिलाई या विचार भी किया कि वह बेचारा फौरन ही मौत के मुँहमें फैंक दिया जाता था।

यहाँ एक पुंगल नामका सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता बड़ी खूबसूरत थी। एक दिन पापी लकुचकी इस पर आँखें चली गईं। बस, फिर क्या देर थी? उसने उसी समय उसे प्राप्त कर अपनी नीच मनोवृत्तिकी तृप्ति की। पुंगल उसकी इस नीचतासे सिरसे पाँव तक जल उठा। क्रोधकी

आग उसके रोम रोममें फैल गई। वह राजकुमारके दबदबेसे कुछ करने-धरनेको लाचार था। पर उस दिनकी बाट वह बड़ी आशासे जो रहा था। जिस दिन कि वह लकुचसे उसके कर्मोंका भरपूर बदला चुका कर अपनी छाती ठंडी करे।

एक दिन लकुच वन क्रीड़ाके लिए गया हुआ था। भाग्यसे वहां उसे मुनिराजके दर्शन हो गये। उसने उनसे धर्मका उपदेश सुना। उपदेशका प्रभाव उस पर खूब पड़ा। इसलिए वह वहीं उनसे दीक्षा ले मुनि हो गया। उधर पुंगल ऐसे मौकेकी आशा लगाये बैठा ही था, सो जैसे ही उसे लकुचका मुनि होना जान पड़ा वह लोहेके बड़े बड़े तीखे कीलोंको लेकर लकुच मुनिके ध्यान करनेकी जगह पर आया। इस समय लकुच मुनि ध्यानमें थे। पुंगल तब उन कीलोंको मुनिके शरीरमें ठोक कर चलता बना। लकुच मुनिने इस दुःसह उपसर्गको बड़ी शान्ति, स्थिरता और धर्मानुरागसे सह कर स्वर्ग लोक प्राप्त किया। सच है, महात्माओंका चरित्र विचित्र ही हुआ करता है। वे अपने जीवनकी गतिको मिनट भरमें कुछकी कुछ बदल डालते हैं।

वे लकुच मुनि जयलाभ करें—कर्मोंको जीतें, जिन्होंने असह्य कष्ट सहकर जिनेन्द्र भगवान् रूपी चन्द्रमाकी उपदेश रूपी अमृतमयी किरणोंसे स्वर्गका उत्तम सुख प्राप्त किया, गुणरूपी रत्नोंके जो पर्वत हुए और ज्ञानके गहरे समुद्र कहलाये।

१०५—सम्यग्दर्शन पर दृढ़ रहनेवालेकी कथा।

सब प्रकारके दोषोंसे रहित जिन भगवान्‌को नमस्कार कर सम्यग्दर्शनको खूब दृढ़ताके साथ पालन करनेवाले जिनदास सेठकी पवित्र कथा लिखी जाती है।

प्राचीन कालसे प्रसिद्ध पाटलिपुत्र (पटना) में जिनदत्त नामका एक प्रसिद्ध और जिनभक्त सेठ हो चुका है। जिनदत्त सेठकी स्त्रीका नाम जिनदासी था। जिनदास, जिसकी कि यह कथा है, इसीका पुत्र था। अपनी माताके अनुसार जिनदास भी ईश्वर प्रेमी, पवित्र हृदयी और अनेक गुणोंका धारक था।

एक बार जिनदास सुवर्ण द्वीपसे धन कमाकर अपने नगरकी ओर आ रहा था। किसी काल नामके देवकी जिनदासके साथ कोई पूर्व जन्मकी शत्रुता होगी और इसलिए वह देव इसे मारना चाहता होगा। यही कारण था कि उसने कोई सौ योजन चौड़े जहाज पर बैठे बैठे ही जिनदाससे कहा—जिनदास, यदि तू यह कहदे कि जिनेन्द्र भगवान कोई चीज नहीं, जैनधर्म कोई चीज नहीं, तो तुझे मैं जीता छोड़ सकता हूँ, नहीं तो मार डालूँगा। उस देवका यह डराना सुन जिनदास वगैरहने हाथ जोड़कर श्रीमहावीर भगवान्‌को बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और निडर होकर वे उससे बोले—पापी, यह हम कभी नहीं कह सकते कि जिन भगवान् और उनका धर्म कोई चीज नहीं; बल्कि हम यह दृढ़ताके साथ कहते हैं कि केवलज्ञान द्वारा सूर्यसे अधिक तेजस्वी जिनेन्द्र भगवान् और संसार द्वारा पूजा जानेवाला उनका मत सबसे श्रेष्ठ है। उनकी समानता

करनेवाला कोई देव और कोई धर्म संसारमें है ही नहीं। इतना कह कर ही जिनदासने सबके सामने ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्तीकी कथा, जो कि पहले लिखी जा चुकी है, कह सुनाई। उस कथाको सुनकर सबका विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

इन धर्मात्माओं पर इस विपत्तिके आनेसे उत्तरकुरुमें रहनेवाले अनावृत नामके यक्षका आसन कँपा। उसने उसी समय आकर क्रोधसे कालदेवके सिर पर चक्रकी बड़ी जोरकी मार जमाई और उसे उठाकर बड़वानलमें डाल दिया।

जहाजके लोगोंकी इस अचल भक्तिसे लक्ष्मी देवी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने आकर इन धर्मात्माओंका बड़ा आदर-सत्कार किया और इनके लिए भक्तिसे अर्घ चढ़ाया। सच है, जो भव्यजन सम्यग्दर्शनका पालन करते हैं, संसारमें उनका आदर—मान कौन नहीं करता। इसके बाद जिनदास वगैरह सब लोग कुशलतासे अपने घर आ गये। भक्तिसे उत्पन्न हुए पुण्यने इनकी सहायता की। एक दिन मौका पाकर जिनदासने अवधिज्ञानी मुनिसे कालदेवने ऐसा क्यों किया, इस बाबत खुलासा पूछा। मुनिराजने इस बैरका सब कारण जिनदाससे कहा। जिनदास को सुनकर सन्तोष हुआ।

जो बुद्धिमान् हैं, उन्हें उचित है या उनका कर्त्तव्य है कि वे परम सुखके लिए संसारका हित करनेवाले और मोक्षके कारण पवित्र सम्यग्दर्शन को ग्रहण करें। इसे छोड़कर उन्हें और बातोंके लिए कष्ट उठाना उचित नहीं, कारण वे मोक्ष के कारण नहीं हैं।

१०६—सम्यक्त्वको न छोड़नेवालेकी कथा।

जिन्हें स्वर्गके देव नमस्कार करते हैं, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर सम्यक्त्वको न छोड़नेवाली जिनमतीकी कथा लिखी जाती है।

लाटदेशके सुप्रसिद्ध गलगोद्रह नामके शहरमें जिनदत्त नामका एक सेठ हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। इसके जिनमती नामकी एक लड़की थी। जिनमती बहुत सुन्दरी थी। उसकी भुवन-मोहिनी सुन्दरता देखकर स्वर्गकी अप्सराएँ भी लजा जाती थीं। पुण्यसे सुन्दरता प्राप्त होती ही है।

यहीं पर एक दूसरा और सेठ रहता था। इसका नाम नागदत्त था। नागदत्तकी स्त्री नागदत्ताके रुद्रदत्त नामका एक लड़का था। नागदत्तने बहुतेरा चाहा कि जिनदत्त जिनमतीका ब्याह उसके पुत्र रुद्रदत्तसे करदे। पर उसको विधर्मी होनेसे जिनदत्तने उसे अपनी पुत्री न ब्याही। जिनदत्तका यह हठ नागदत्तको पसन्द न आया। उसने तब एक दूसरी ही युक्ति की। वह यह कि—नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्त मुनिसे कुछ व्रत-नियम लेकर श्रावक बन गये और श्रावक सरीखी सब क्रियाएँ करने लगे। जिनदत्तको इससे बड़ी खुशी हुई। और उसे इस बात पर पूरा पूरा विश्वास हो गया कि

वे सचमुच ही जैनी हो गये हैं। तब इसने बड़ी खुशीके साथ जिनमती का ब्याह रुद्रदत्तसे कर दिया। जहाँ ब्याह हुआ कि इन दोनों पिता-पुत्रोंने जैनधर्म छोड़कर पीछा अपना धर्म ग्रहण कर लिया।

रुद्रदत्त अब जिनमतीसे रोज रोज आग्रहके साथ कहने लगा कि प्रिये, तुम भी अब क्यों न मेरा ही धर्म ग्रहण कर लेती हो। वह बड़ा उत्तम धर्म है। जिनमतीकी जिनधर्म पर गाढ़ श्रद्धा थी। वह जिनेन्द्र भगवान्‌की सच्ची सेविका थी। ऐसी हालतमें उसे जिनधर्मके सिवा अन्य धर्म कैसे रुच सकता था। उसने तब अपने विचार बड़ी स्वतन्त्रताके साथ अपने स्वामी पर प्रगट किये। वह बोली—प्राणनाथ, आपका जैसा विश्वास हो, उस पर मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। पर मैं अपने विश्वासके अनुसार यह कहूँगी कि संसारमें जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो सर्वोच्च होनेका दावा कर सकता है। इसलिए कि जीवमात्रका उपकार करनेकी उसमें योग्यता है और बड़े बड़े राजे महाराजे, स्वर्गके देव, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि उसे पूजते-मानते हैं। फिर मैं ऐसी कोई बेजा बात उसमें नहीं पाती कि जिससे मुझे उसके छोड़नेके लिए बाध्य होना पड़े। बलिक मैं आपको भी सलाह दूँगी कि आप इसी सच्चे और जीवका मात्रका हित करनेवाले जैनधर्मको ग्रहण करलें तो बड़ा अच्छा हो। इसी प्रकार इन दोनों पति-पत्नीमें परस्पर बात-चीत हुआ करती थी। अपने अपने धर्मकी दोनों ही तारीफ किया करते थे। रुद्रदत्त जरा अधिक हठी था। इसलिए कभी कभी जिनमती पर वह जरा गुस्सा भी हो जाता था। पर जिनमती बुद्धिमती और चतुर

थी, इस लिए वह उसकी नाराजगी पर कभी अप्रसन्नता जाहिर न करती। बल्कि उसकी नाराजीको हँसीका रूप दे झटसे रुद्रदत्तको शान्त कर देती थी। जो हो, पर ये रोज रोजकी विवादभरी बातें सुखका कारण नहीं होतीं।

इस तरह बहुत समय बीत गया। एक दिन ऐसा मौका आया कि दुष्ट भीलोंने शहरके किसी हिस्सेमें आग लगादी। चारों ओर आग बुझानेके लिए दौड़ा-दौड़ पड़ गई। उस भयंकर आगको देखकर लोगोंको अपनी जानका भी सन्देह होने लगा। इस समयको योग्य अवसर देख जिनमतीने अपने स्वामी रुद्रदत्तसे कहा—प्राणनाथ, मेरी बात सुनिए। रोज रोजका जो अपनेमें वाद-विवाद होता है, मैं उसे अच्छा नहीं समझती। मेरी इच्छा है कि यह झगड़ा रफा हो जाय।

इसके लिये मेरा यह कहना है कि आज अपने शहरमें आग लगी है उस आगको जिसका देव बुझादे, समझना चाहिए कि वही देव सच्चा है और फिर उसीको हमें परस्परमें स्वीकार कर लेना चाहिए। रुद्रदत्तने जिनमती की यह बात मानली। उसने तब कुछ लोगोंको इस बातका गवाह कर महादेव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंके लिए अर्घ दिया; बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा-स्तुति कर उसने अग्निशान्तिके लिए प्रार्थना की। पर उसकी इस प्रार्थनाका कुछ उपयोग न हुआ। अग्नि जिस भयंकरताके साथ जल रही थी वह उसी तरह जलती रही। सच है, ऐसे देवोंसे कभी उपद्रवोंकी शान्ति नहीं होती, जिनका हृदय दुष्ट है, जो मिथ्यात्वी हैं।

अब धर्मवत्सला जिनमतीकी बारी आई। उसने बड़ी भक्तिसे पंच परमेष्ठियोंके चरण-कमलोंको अपने हृदयमें विराजमान कर उनके लिये अर्घ चढ़ाया। इसके बाद वह अपने पति, पुत्र आदि कुटुम्ब वर्गको अपने पास बैठाकर आप कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा पञ्च नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करने लगी। इसकी इस अचल श्रद्धा और भक्तिको देखकर शासन देवता बड़ी प्रसन्न हुई। उसने तब उसी समय आकर उस भयंकर आगको देखते देखते बुझा दिया। इस अतिशयको देखकर रुद्रदत्त वगैरह बड़े चकित हुए। उन्हें विश्वास हुआ कि जैनधर्म ही सच्चा धर्म है। उन्होंने फिर सच्चे मनसे जैनधर्म की दीक्षा ले श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये। जैनधर्मकी खूब प्रभावना हुई। सच है, संसार श्रेष्ठ जैनधर्मकी महिमाको कौन कह सकता है जो कि स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है। जिसप्रकार जिनमतीने अपने सम्यक्त्वकी रक्षा की उसी तरह अन्य भव्यजनोंको भी सुख प्राप्तिके लिये पवित्र सम्यग्दर्शनकी सदा सुरक्षा करते रहना चाहिये।

जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंमें जिनमतीकी अचल भक्ति, उसके हृदयकी पवित्रता और उसका दृढ़ विश्वास देखकर स्वर्गके देवोंने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे उसका खूब आदर-मान किया। और सच भी है, सच्चे जिनभक्त सम्यग्दृष्टिकी कौन पूजा नहीं करते।

१०७—सम्यग्दर्शनके प्रभावकी कथा।

जो सारे संसारके देवाधिदेव हैं, और स्वर्गके देव जिनकी भक्ति से पूजा किया करते हैं उन जिन भगवान्‌को प्रणाम कर महारानी चेलिनी और श्रेणिकके द्वारा होनेवाली सम्यक्त्वके प्रभावकी कथा लिखी जाती है।

उपश्रेणिक मगधके राजा थे। राजगृह मगधकी तब खास राजधानी थी। उपश्रेणिककी रानीका नाम सुप्रभा था। श्रेणिक इसीके पुत्र थे। श्रेणिक जैसे सुन्दर थे, वैसे ही उनमें अनेक गुण भी थे। वे बुद्धिमान् थे, बड़े गंभीर प्रकृतिके थे, शूरवीर थे, दानी थे और अत्यन्त तेजस्वी थे।

मगध राज्यकी सीमासे लगते ही एक नागधर्म नामके राजा का राज्य था। नागधर्मकी और उपश्रेणिककी पुरानी शत्रुता चली आती थी। नागदत्त उसका बदला लेनेका मौका तो सदा ही देखता रहता था, पर इस समय उसका उपश्रेणिकके साथ कोई भारी मनमुटाव न था। वह कपटसे उपश्रेणिकका मित्र बना रहता था। यही कारण था कि उसने एक बार उपश्रेणिकके लिये एक दुष्ट घोड़ा भेंटमें भेजा। घोड़ा इतना दुष्ट था कि वैसे तो वह चलता ही न था और उसे जरा ही ऐड़ लगाई या लगाम खींची कि बस वह फिर हवासे बातें करने लगता था। दुष्टोंकी ऐसी गति हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उपश्रेणिक एक दिन इसी घोड़े पर सवार हो हवा खोरीके लिए निकले। इन्होंने बैठते ही जैसे उसकी लगाम तानी कि वह हवा हो गया। बड़ी देर बाद वह एक अटवीमें जाकर ठहरा। उस

अटवीका मालिक एक यमदण्ड नामका भील था, जो दीखनेमें सच मुच ही यमसा भयानक था। इसके तिलकावती नामकी एक लड़की थी। तिलकावती बड़ी सुन्दरी थी। उसे देख यह कहना अनुचित न होगा कि कोयलेकी खानमें हीरा निकला। कहां काला भुसंड यमदण्ड और कहाँ स्वर्गकी अप्सराओंको लजानेवाली इसकी लड़की चन्द्रवदनी तिलकावती! अस्तु, इस भुवन-सुन्दर रूपराशिको देखकर उपश्रेणिक उस पर मोहित हो गये। उन्होंने तिलकावतीके लिए यमदण्डसे मंगनी की। उत्तरमें यमदण्डने कहा—राज-राजेश्वर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। जब कि एक पृथिवीके सम्राट मेरे जमाई बनते हैं। और इसके लिये मुझे बेहद खुशी है। मैं अपनी पुत्रीका आपके साथ ब्याह करूँ, इसके पहले आपको एक शर्त करनी होगी और वह कि आप राज्य तिलकावतीसे होनेवाली सन्तानको दें। उपश्रेणिकने यमदण्ड की इस बातको स्वीकार कर लिया। यमदण्डने भी तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह उपश्रेणिकसे कर दिया। उपश्रेणिक फिर तिलकावतीको साथ ले राजगृह आगये।

कुछ समय सुख पूर्वक बीतने पर तिलकावतीके एक पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया चिलातपुत्र। एक दिन उपश्रेणिक ने विचार कर, कि मेरे इन पुत्रोंमें राजयोग किसको है, एक निमित्त ज्ञानीको बुलाया और उससे पूछा—पंडितजी, अपना निमित्तज्ञान देखकर बतलाइए कि मेरे इतने पुत्रोंमें राज्य-सुख कौन भोग सकेगा? निमित्तज्ञानीने कहा—महाराज, जो सिंहासन पर बैठा हुआ नगारा बजाता रहे और दूरहीसे कुत्तोंको खीर खिलाता हुआ आप भी खाता रहे और आग लगनेपर सिंहासन, छत्र, चवँर आदि राज्य चिन्होंको निकाल ले भागे, वह राज्य-लक्ष्मीका सुख भोग करेगा। इसमें आप किसी तरहका सन्देह न समझें। उपश्रेणिकने एक दिन इस बातकी परीक्षा करनेके लिये अपने सब पुत्रोंको खीर खानेके लिये बैठाया। उनके पास ही सिंहासन और एक नगारा भी रखवा दिया। पर यह किसीको पता न पड़ने दिया कि ऐसा क्यों किया गया। सब कुमार भोजन करनेको बैठे और खाना उन्होंने आरंभ किया, कि इतनेमें एक ओरसे कोई सैकड़ों कुत्तोंका झुण्डका झुण्ड उन पर आ-टूटा। तब वे सब डरके मारे उठ उठकर भागने लगे श्रेणिक उन कुत्तों से न डरा, वह जल्दीसे उठकर खीरकी पत्तलोंको एक ऊँचे स्थान पर धरने लगा। थोड़ी ही देरमें उसने बहुतसी पत्तलें इकट्ठी करलीं। इसके बाद वह स्वयं उस ऊँचे स्थान पर रखे हुये सिंहासन पर बैठकर नगारा बजाने लगा, जिससे कुत्ते उसके पास न आ-पावें और इकट्ठी की हुई पत्तलोंमेंसे एक एक पत्तल उठा उठा कर दूर दूर फैंकता गया। इस प्रकार अपनी बुद्धिसे व्यवस्था कर उसने बड़ी निर्भयताके साथ भोजन किया। इसी प्रकार आग लगने पर श्रेणिकने सिंहासन, छत्र, चवँर आदि राज्य चिन्होंकी रक्षा करली।

उपश्रेणिकको तब निश्चय हो गया कि इन सब पुत्रोंमें श्रेणिक ही एक ऐसा भाग्यशाली है जो मेरे राज्यको अच्छी तरह चलाएगा। उपश्रेणिकने तब उसकी रक्षाके लिये उसे यहांसे कहीं भेज देना उचित समझा। उन्हें इस बातका खटका था कि मैं राज्य का मालिक तिलकावतीके पुत्रको बना चुका हूँ, और ऐसी दशामें

श्रेणिक यहाँ रहा तो कोई असंभव नहीं कि इसकी तेजस्विता, इसकी बुद्धिमानी, इसकी कार्यक्षमताको देखकर किसीको डाह उपज जाय और उस हालतमें इसका कुछ अनिष्ट हो जाय। इसलिये जब तक यह अच्छा हुशियार न हो जाये तब तक इसका कहीं बाहर रहना ही उत्तम है। फिर यदि इसमें बल होगा तो यह स्वयं राज्यको हस्तगत कर सकेगा। इसके लिये उपश्रेणिकने श्रेणिकके सिर पर यह अपराध मढ़ा कि इसने कुत्तोंका भूँठा खाया है, इसलिये अब यह राजघरानेमें रहने योग्य नहीं रहा। मैं इसे आज्ञा करता हूँ कि यह मेरे राज्यसे निकल जाये। सच है, राजे लोग बड़े विचारके साथ काम करते हैं। निरपराध श्रेणिक पिताकी आज्ञा पा उसी समय राजगृहसे निकल गया। फिर एक मिनटके लिये भी वह वहां न ठहरा।

श्रेणिक यहांसे चलकर कोई दुपहरके समय नन्द नामक गांवमें पहुँचा। यहांके लोगोंको श्रेणिकके निकाले जानेका हाल मालूम हो गया था, इसलिये राजद्रोहके भयसे उन्होंने श्रेणिकको अपने गांवमें न रहने दिया। श्रेणिकने तब लाचार हो आगेका रास्ता लिया। रास्तेमें इसे एक संन्यासियोंका आश्रम मिला। इसने कुछ दिनों यहीं अपना डेरा जमा दिया। मठमें यह रहता और संन्यासियोंका उपदेश सुनता। मठका प्रधान संन्यासी बड़ा विद्वान् था। श्रेणिक पर उसका बहुत असर पड़ा। उसने तब वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। श्रेणिक और कुछ दिनोंतक यहां ठहरा। इसके बाद वह यहांसे रवाना होकर दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ा।

इस समय दक्षिणकी राजधानी कांची थी। कांचीके राजा

वसुपाल थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। इनके वसुमित्रा नामकी एक सुन्दर और गुणवती पुत्री थी। यहाँ एक सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था, सोमशर्माकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। इसके भी एक पुत्री थी। इसका नाम अभयमती था। अभयमती बड़ी बुद्धिमती थी।

एक बार सोमशर्मा तीर्थयात्रा करके लौट रहा था। रास्ते में उसे श्रेणिकने देखा। कुछ मेल-मुलाकात और बोल चाल हुए बाद जब ये दोनों चलनेको तैयार हुए तब श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा—मामाजी, आप भी बड़ी दूरसे आते हैं और मैं भी बड़ी दूरसे चला आ रहा हूँ, इसलिये हम दोनों ही थक चुके हैं। अच्छा हो यदि आप मुझे अपने कन्धे पर बैठालें और आप मेरे कन्धे पर बैठ कर चलें तो। श्रेणिककी यह बे-सिर पैरकी बात सुनकर सोमशर्मा बड़ा चकित हुआ। उसने समझा कि यह पागल हो गया जान पड़ता है। उसने तब श्रेणिककी बातका कुछ जवाब न दिया। थोड़ी दूर चुपचाप आगे बढ़ने पर श्रेणिकने दो गांवोंको देखा। उसने तब जो छोटा गाँव था उसे तो बड़ा बताया और जो बड़ा था उसे छोटा बताया। रास्तेमें श्रेणिक जहाँ सिर पर कड़ी धूप पड़ती वहाँ तो छत्री उतार लेता और जहाँ वृक्षोंकी ठंडी छाया आती वहाँ छत्रीको चढ़ा लेता। इसी तरह जहां कोई नदी-नाला पड़ता तब तो वह जूतियोंको पांवोंमें पहर लेता और रास्तेमें उन्हें हाथमें लेकर नंगे पैरों चलता। आगे चलकर उसने एक स्त्रीको पति द्वारा मार खाती देखकर सोमशर्मासे कहा—क्यों मामाजी, वह जो स्त्री पिट रही है वह बँधी है या खुली? आगे एक मरे पुरुषको देखकर उसने

पूछा कि यह जीता है या मर गया ? थोड़ी दूर चलकर इसने एक धान के पके हुये खेतको देखकर कहा—इसे इसके मालिकोंने खा लिया है। या वे अब खायेंगे ? इसी तरह सारे रास्तेमें एकसे एक असंगत और बे-मतलबके प्रश्न सुनकर बेचारा सोमशर्मा ऊब गया। राम राम करते वह घर पर आया। श्रेणिकको वह शहर बाहर ही एक जगह बैठाकर यह कह आया कि मैं अपनी लड़कीसे पूछकर अभी आता हूँ, तबतक तुम यहीं बैठना।

अभयमती अपने पिताको आया देख बड़ी खुश हुई। उन्हें कुछ खिला-पिला कर उसने पूछा—पिताजी, आप अकेले गये थे और अकेले ही आये हैं क्या ? सोमशर्माने कहा—बेटा, मेरे साथ एक बड़ा ही सुन्दर लड़का आया है। पर बड़े दुःखकी बात है कि वह बेचारा पागल हो गया जान पड़ता है। उसकी देवकुमारसी सुन्दर जिन्दगी धूलधानी हो गई! कर्मोंकी लीला बड़ी ही विचित्र है। मुझे तो उसकी वह स्वर्गीय सुन्दरता और साथ ही उसका वह पागलपन देखकर उस पर बड़ी दया आती है। मैं उसे शहर बाहर एक स्थान पर बैठा आया हूँ। अपने पिताकी बातें सुनकर अभयमतीको बड़ा कौतुक हुआ। उसने सोमशर्मासे पूछा—हाँ तो पिताजी उसमें किस तरहका पागलपन है ? मुझे उसके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो गई है। आप बतलावें। सोमशर्माने तब अभयमतीसे श्रेणिककी वे सब चेष्टाएँ—कन्धे पर चढ़ना चढ़ाना, छोटे गाँवको बड़ा और बड़े को छोटा कहना, वृक्षके नीचे छत्री चढ़ा लेना और धूपमें उतार देना, पानीमें चलते समय जूते पहर लेना और रास्तेमें चलते उन्हें हाथमें ले लेना आदि, कह सुनाईं। अभयमतीने उन सबको

सुनकर अपने पितासे कहा—पिताजी, जिस पुरुषने ऐसी बातें की हैं उसे आप पागल या साधारण पुरुष न समझें। वह तो बड़ा ही बुद्धिमान् है। मुझे मालुम होता है उसकी बातोंके रहस्य पर आपने ध्यानसे विचार न किया इसीसे आपको उसकी बातें बे-सिर पैरकी जान पड़ीं। पर ऐसा नहीं है। उन सबमें कुछ न कुछ रहस्य जरूर है। अच्छा, वह सब मैं आपको समझाती हूँ—पहले ही उसने जो यह कहा था कि आप मुझे अपने कन्धे पर चढ़ा लीजिए और आप मेरे कन्धों पर चढ़ जाइये, इससे उसका मतलब था, आप हम दोनों एक ही रास्तेसे चलें। क्योंकि स्कन्ध शब्द का रास्ता अर्थ भी होता है। और यह उसका कहना ठीक भी था। इसलिये कि दो जने साथ रहनेसे हर तरह बड़ी सहायता मिलती रहती है।

दूसरे उसने दो ग्रामोंको देखकर बड़ेको तो छोटा और छोटेको बड़ा कहा था। इससे उसका अभिप्राय यह है कि छोटे गाँवके लोग सज्जन हैं, धर्मात्मा हैं, दयालु हैं, परोपकारी हैं और हर एकको सहायता करनेवाले हैं। इसलिये यद्यपि वह गाँव छोटा था, पर तब भी उसे बड़ा ही कहना चाहिये। क्योंकि बड़प्पन गुणों और कर्त्तव्य पालनसे कहलाता है। केवल बाहरी चमक दमकसे नहीं। और बड़े गांवको उसने तब छोटा कहा, इससे उसका मतलब स्पष्ट ही है कि उसके रहवासी अच्छे लोग नहीं हैं—उनमें बड़प्पन के जो गुण होने चाहिये वे नहीं हैं।

तीसरे उसने वृक्षके नीचे छत्रीको चढ़ा लिया था और रास्तेमें उसे उतार लिया था। ऐसा करनेसे उसकी मंशा यह थी

रास्तेमें छत्रीको न लगाया जाय तो भी कुछ नुकसान नहीं और वृक्षके नीचे न लगानेसे उस पर बैठे हुए पक्षियोंके बींट बगैरहके करनेका डर बना रहता है। इसलिये वहां छत्रीका लगाना आवश्यक है।

चौथे उसने पानीमें चलते समय तो जूतोंको पहर लिया और रास्तेमें चलते समय उन्हें हाथमें लेलिया था। इससे वह यह बतलाना चाहता है—पानीमें चलते समय यह नहीं देख पड़ता है कि कहां क्या पड़ा है। कांटे, कीले और कंकर-पत्थरोंके लग जानेका भय रहता है, जल जन्तुओंके काटनेका भय रहता है। अतएव पानीमें उसने जूतोंको पहर कर बुद्धिमानीका ही काम किया। रास्तेमें अच्छी तरह देख-भाल कर चल सकते हैं, इसलिये यदि वहां जूते न पहरे जायँ तो उतनी हानिकी संभावना नहीं।

पाँचवें उसने एक स्त्रीको मार खाते देखकर पूछा था कि यह स्त्री बँधी है या खुली? इस प्रश्नसे मतलब था—उस स्त्रीका ब्याह हो गया है या नहीं?

छठे—उसने एक मुर्देको देखकर पूछा था—यह मर गया है या जीता है? पिताजी, उसका यह पूछना बड़ा मार्केका था। इससे वह यह जानना चाहता था कि यदि यह संसारका कुछ काम करके मरा है, यदि इसने स्वार्थ त्याग अपने धर्म, अपने देश और अपने देशके भाई-बन्धुओंके हितमें जीवनका कुछ हिस्सा लगाकर मनुष्य जीवनका कुछ कर्त्तव्य पालन किया है, तब तो वह मरा हुआ भी जीता ही है। क्योंकि उसकी वह प्राप्त की हुई कीर्ति मौजूद है, सारा संसार उसे स्मरण करता है, उसे ही अपना पथ प्रदर्शक

बनाता है। फिर ऐसी हालतमें उसे मरा कैसे कहा जाय? और इससे उलटा जो जीता रह कर भी संसारका कुछ काम नहीं करता, जिसे सदा अपने स्वार्थकी ही पड़ी रहती है और जो अपनी भलाईके सामने दूसरोंके होनेवाले अहित या नुकसानको नहीं देखता; बल्कि दूसरोंका बुरा करनेकी कोशिश करता है ऐसे पृथिवीके बोझको कौन जीता कहेगा? उससे जब किसीको लाभ नहीं तब उसे मरा हुआ ही समझना चाहिए।

सातवें उसने पूछा कि यह धानका खेत मालिकों द्वारा खा-लिया गया या अब खाया जायगा? इस प्रश्नसे उसका यह मतलब था कि इसके मालिकोंने कर्ज लेकर इस खेतको बोया है या इसके लिए उन्हें कर्ज लेनेकी जरूरत न पड़ी अर्थात् अपना ही पैसा उन्होंने इसमें लगाया है? यदि कर्ज लेकर उन्होंने इसे तैयार किया तब तो समझना चाहिए कि यह खेत पहलेही से खा लिया गया और यदि कर्ज नहीं लिया गया तो अब वे इसे खाँयगे—अपने उपयोगमें लावेंगे।

इस प्रकार श्रेणिकके सब प्रश्नोंका उत्तर अभयमतीने अपने पिताको समझाया। सुनकर सोमशर्माको बड़ा ही आनन्द हुआ। सोमशर्माने तब अभयमतीसे कहा—तो बेटा, ऐसे गुणवान् और रूपवान् लड़केको तो अपने घर लाना चाहिए। और अभयमती, वह जब पहले ही मिला तब उसने मुझे मामाजी कह कर पुकारा था। इसलिए उसका कोई अपने साथ सम्बन्ध भी होगा। अच्छा तो मैं उसे बुलाये लाता हूँ।

अभयमती बोली—पिताजी, आपको तकलीफ उठानेकी

कोई आवश्यकता नहीं। मैं अपनी दासीको भेजकर उसे अभी बुलवा लेती हूँ। मुझे अभी एक दो बातों द्वारा और उसकी जाँच करना है। इसके लिए मैं निपुणमतीको भेजती हूं। अभयमतीने इसके बाद निपुणमतीको कुछ थोड़ासा उबटन चूर्ण देकर भेजा और कहा तू उस नये आगन्तुकसे कहना कि मेरी मालिकनने आपकी मालिशके लिए यह तैल और उबटन चूर्ण भेजा है, सो आप अच्छी तरह मालिश तथा स्नान करके फलाँ रास्तेसे घर पर आवें। निपुणमतीने श्रेणिकके पास पहुँच कर सब हाल कहा और तैल तथा उबटन रखनेको उससे बरतन माँगा। श्रेणिक उस थोड़ेसे तैल और उबटनको देखकर, जिससे कि एक हाथका भी मालिश होना असंभव था, दंग रह गया। उसने तब जान लिया कि सोमशर्मासे मैंने जो जो प्रश्न किये थे उसने अपनी लड़कीसे अवश्य कहा है और इसीसे उसकी लड़कीने मेरी परीक्षाके लिए यह उपाय रचा है। अस्तु, कुछ परवा नहीं। यह विचार कर उस उपन्नत-बुद्धि श्रेणिकने तैल और उबटन चूर्णके रखनेको अपने पाँवके अँगूठेसे दो गढ़े बनाकर निपुणमतीसे कहा—आप तैल और चूर्णके लिए बरतन चाहती हैं। अच्छी बात है, ये (गढ़ेकी ओर इशारा करके) बरतन हैं। आप इनमें तैल और चूर्ण रख दीजिए। मैं थोड़ी ही देर बाद स्नान करके आपकी मालकिनकी आज्ञाका पालन करूँगा। निपुणमती श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर दंग रह गई। वह फिर श्रेणिकके कहे अनुसार तैल और चूर्णको रखकर चली गई।

अभयमतीने श्रेणिकको जिस रास्तेसे बुलाया था, उसमें उसने कोई घुटने घुटने तक कीचड़ करवा दिया था। और कीचड़ बाहर होनेके स्थान पर बाँसकी एक छोटीसी पतली छोई (कमची) और बहुत ही थोड़ासा जल रख दिया था। इसलिए कि श्रेणिक अपने पाँवोंको साफ कर भीतर आये।

श्रेणिकने घर पहुंच कर देखा तो भीतर जानेके रास्तेमें बहुत कीचड़ हो रहा है। वह कीचड़में होकर यदि जाये तो उसके पांव भरते हैं और दूसरी ओरसे भीतर जानेका रास्ता उसे मालूम नहीं है। यदि वह मालूम भी करे तो उससे कुछ लाभ नहीं। अभयमतीने उसे इसी रास्ते बुलाया है। वह फिर कीचड़हीमें होकर गया। बाहर होते ही उसे पांव धोनेके लिए थोड़ा जल रखा हुआ मिला। वह बड़े आश्चर्यमें आगया कि कीचड़से ऐसे लथपथ भरे पांवोंको मैं इस थोड़ेसे पानीसे कैसे धो सकूँगा। पर इसके सिवा उसके पास और कुछ उपाय भी न था। तब उसने पानीके पास ही रखी हुई उस छोईको उठाकर पहले उससे पांवोंका कीचड़ साफ कर लिया और फिर उस थोड़ेसे जलसे धोकर एक कपड़ेसे उन्हें पोंछ लिया। इन सब परीक्षाओंमें पास होकर जब श्रेणिक अभयमतीके सामने आया तब अभयमतीने उसके सामने एक ऐसा मूँगेका दाना रक्खा कि जिसमें हजारों बांके-सीधे छेद थे। यह पता नहीं पड़ पाता था कि किस छेदमें सूतका धागा पिरोनेसे उसमें पिरोया जा सकेगा और साधारण लोगोंके लिए यह बड़ा कठिन भी था। पर श्रेणिकने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे उस मूँगेमें बहुत जल्दी धागा पिरो दिया। श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर

अभयमती दंग रह गई। उसने तब मनही मन संकल्प किया कि
मैं अपना ब्याह इसीके साथ करूँगी। इसके बाद उसने श्रेणिकका
बड़ी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया, खूब आनन्दके साथ उसे
अपने ही घर पर जिमाया और कुछ दिनोंके लिए उसे वहीं ठहरा
भी लिया। अभयमतीकी मंशा उसकी सखी द्वारा जानकर उसके
माता--पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। घर बैठे उन्हें ऐसा योग्य जँवाई
मिल गया, इससे बढ़कर और प्रसन्नता की बात उनके लिए हो भी
क्या सकती थी। कुछ दिनों बाद श्रेणिकके साथ अभयमतीका
ब्याह भी हो गया। दोनोंने नए जीवन में प्रवेश किया। श्रेणिकके
कष्ट भी बहुत कम हो गए। वह अब अपनी प्रियाके साथ सुखसे
दिन बिताने लगा।

सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण एक अटवीमें जिनदत्त मुनि
के पास दीक्षा लेकर संन्यासमें मरा था। उसका उल्लेख अभिषेक-
विधिसे प्रेम करने वाले जिनदत्त और वसुमित्रकी १०२ वीं कथामें
आचुका है। यह सोमशर्मा यहांसे मर कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।
जब इसकी स्वर्गायु पूरी हुई तब यह कांचीपुरमें हमारे इस कथा-
नायक श्रेणिकके अभयकुमार नामका पुत्र हुआ। अभयकुमार बड़ा
वीर और गुणवान् था और सच भी है जो कर्मोंका नाशकर मोक्ष
जाने वाला है, उसकी वीरताका क्या पूछना?

काञ्ची के राजा वसुपाल एक बार दिग्विजय करने को
निकले। एक जगह उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमंदिर
देखा। उसमें विशेषता यह थी कि वह एक ही खम्भेके ऊपर
बनाया गया था—उसका आधार एक ही खम्भा था। वसुपाल उसे

देखकर बहुत खुश हुए। उनकी इच्छा हुई कि ऐसा मन्दिर कांचीमें
भी बनवाया जाय। उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित सोमशर्माको
एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि—"अपने यहां एक ऐसा सुन्दर
जिन मंदिर तैयार करवाना, जिसकी इमारत भव्य और बड़ी
मनोहर हो। सिवा इसके उसमें यह विशेषता भी हो कि मंदिर की
सारी इमारत एक ही खम्भे पर खड़ी की जाए। मैं जब तक आऊँ
तब तक मंदिर तैयार हो जाना चाहिए।" सोमशर्मा पत्र पढ़कर
बड़ी चिन्ता में पड़ गया। वह इस विषयमें कुछ जानता न था,
इसलिए वह क्या करे? कैसा मंदिर बनवावे? इसकी उसे कुछ
सूझ न पड़ती थी। चिन्ता उसके मुँह पर सदा छाई रहती थी
उसे इस प्रकार उदास देखकर श्रेणिकने उससे उसकी उदासी का
कारण पूछा। सोमशर्माने तब वह पत्र श्रेणिक के हाथ में देक
कहा—यही पत्र मेरी चिन्ता का मुख्य कारण है। मुझे इस विष
का किंचित् भी ज्ञान नहीं तब मैं मन्दिर बनवाऊँ भी तो कैसा
इसीसे मैं चिन्तामग्न रहता हूँ। श्रेणिकने तब सोमशर्मासे कहा-
आप इस विषयकी चिन्ता छोड़ कर इसका सारा भार मुझे
दीजिए। फिर देखिए, मैं थोड़े ही समय में महाराजके लिखे अनुस
मंदिर बनवाए देता हूं। सोमशर्मा को श्रेणिकके इस साहस
आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसे श्रेणिककी बुद्धिमानीका परि
पहलेही से मिल चुका था; इसलिए उसने कुछ सोच-विचार न
सब काम श्रेणिकके हाथ सौंप दिया। श्रेणिकने पहले मन्दि
एक नक्शा तैयार किया। जब नक्शा उसके मनके माफिक
गया तब उसने हजारों अच्छे अच्छे कारीगरोंको लगाकर

ही समयमें मन्दिरकी विशाल और भव्य इमारत तैयार करवाली। श्रेणिककी इस बुद्धिमानी को जो देखता वही उसकी शतमुखसे तारीफ करता। और वास्तवमें श्रेणिकने यह कार्य प्रशंसाके लायक किया भी था। सच है, उत्तम ज्ञान, कला-चतुराई ये सब बातें बिना पुण्यके प्राप्त नहीं होती।

जब वसुपाल लौटकर काञ्ची आये और उन्होंने मन्दिरकी उस भव्य इमारतको देखा तो वे बड़े खुश हुए। श्रेणिक पर उनकी अत्यन्त प्रीति हो गई। उन्होंने तब अपनी कुमारी वसुमित्रा का उसके साथ ब्याह भी कर दिया। श्रेणिक राजजमाई बनकर सुखके साथ रहने लगा।

अब राजगृहकी कथा लिखी जाती है—

उपश्रेणिकने श्रेणिकको, उसकी रक्षा हो इसके लिए, देश बाहर कर दिया। इसके बाद कुछ दिनोंतक उन्होंने और राज्य किया। फिर कोई कारण मिल जानेसे उन्हें संसार-विषय-भोगादि से बड़ा वैराग्य हो गया। इसलिए वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चिलातपुत्रको सब राज्यभार सौंपकर दीक्षा ले योगी हो गये। राज्यसिंहासनको अब चिलातपुत्रने अलंकृत किया।

प्रायः यह देखा जाता है कि एक छोटी जातिके या विषयोंके कीड़े, स्वार्थी, अभिमानी, मनुष्यको कोई बड़ा अधिकार या खूब मनमानी दौलत मिल जाती है तो फिर उसका सिर आसमानमें चढ़ जाता है, आँखें उसकी अभिमानके मारे नीची देखती ही नहीं। ऐसा मनुष्य संसारमें फिर सब कुछ अपनेको ही समझने लगता है। दूसरोंकी इज्जत-आबरूकी वह कुछ परवा न कर उनका कौड़ी

के भाव भी मोल नहीं समझता। चिलातपुत्र भी ऐसे ही मनुष्योंमें था। बिना परिश्रम या बिना हाथ पाँव हिलाये उसे एक विशाल राज्य मिल गया और मजा यह कि अच्छे शूरवीर और गुणवान् भाइयोंके बैठे रहते! तब उसे क्यों न राजलक्ष्मीका अभिमान हो? क्यों न वह गरीब प्रजाको पैरों नीचे कुचल कर इस अभिमान का उपयोग करे? उसकी माँ भीलकी लड़की, जिसका कि काम दिन-रात लूट-खसोट करने, और लोगोंको मारने-काटनेका रहा, उसके विचार गन्दे, उसकी वासनाएँ नीचातिनीच; तब वह अपनी जाति, अपने विचार और अपनी वासनाके अनुसार यदि काम करे तो इसमें नई बात क्या? कुछ लोग ऐसा कहें कि यह सब कुछ होने पर भी अब वह राजा है—प्रजा का प्रतिपालक है, तब उसे तो अच्छा होना ही चाहिए। इसका यह उत्तर है कि ऐसा होना आवश्यक है और एक ऐसे मनुष्यको, जिसका कि अधिकार बहुत बड़ा है—हजारों लाखों अच्छे अच्छे इज्जत-आबरूदार, धनी, गरीब, दीन, दुखी जिसकी कृपाकी चाह करते हैं, विशेष कर शिष्ट और सबका हितैषी होना ही चाहिए। हाँ ये सब बातें उसमें हो सकती हैं, जिसमें दयालुता, परोपकारता, कुलीनता, निरभिमानता, सरलता, सज्जनता आदि गुण कुल-परम्परासे चले आते हों। और जहाँ इनका मूलमें ही कुछ ठिकाना नहीं वहां इन गुणोंका होना असंभव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। आप एक कौएको मोरके पींखोंसे खूब सजाकर सुन्दर बना दीजिए, पर रहेगा वह कौआका कौआ ही। ठीक इसी तरह चिलातपुत्र आज एक विशाल राज्यका मालिक जरूर बन गया, पर उसमें जो भील-जातिका अंश है वह

अपने चिर संस्कारके कारण इसमें पवित्र गुणोंकी दाल गलने नहीं देता। और यही कारण हुआ कि राज्याधिकार प्राप्त होते ही उसकी प्रवृत्ति अच्छी ओर न होकर अन्यायकी ओर हुई। प्रजाको उसने हर तरह तंग करना शुरू किया। कोई दुर्व्यसन, कोई कुकर्म उससे न छूट पाया। अच्छे अच्छे घरानेकी कुलशील सतियों की इज्जत ली जाने लगी। लोगोंका धन-माल जबरन लूटा-खोसा जाने लगा। उसकी कुछ पुकार नहीं, सुनवाई नहीं, जिसे रक्षक जानकर नियत किया वही जब भक्षक बन बैठा तब उसकी पुकार, की भी कहां जाये ? प्रजा अपनी आंखोंसे घोरसे घोर अन्याय देखती, पर कुछ करने-धरनेको समर्थ न होकर वह मन मसोस कर रह जाती। जब चिलात बहुत ही अन्याय करने लगा तब उसकी खबर बड़ी दूरतक फैल गई। जिसके मुँहसे सुनो यही एक चिलात के अन्याय की बात सुन पड़ने लगी। श्रेणिक को भी प्रजा द्वारा यह हाल मालूम हुआ। उसे अपने पिताकी निरीह प्रजा पर चिलातका यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उसने तब अपने श्वसुर वसुपालसे कुछ सहायता लेकर चिलात पर चढ़ाई करदी। प्रजाको जब श्रेणिक की चढ़ाईका हाल मालूम हुआ तो उसने बड़ी खुशी मनाई, और हृदयसे उसका स्वागत किया। श्रेणिकने प्रजाकी सहायतासे चिलात को सिंहासनसे उतार देश बाहर किया और प्रजाकी अनुमतिसे फिर आप ही सिंहासन पर बैठा। सच है, राज्यशासन वही कर सकता है और वही पात्र भी है जो बुद्धिवान् हो, समर्थ हो और न्यायप्रिय हो। दुर्बुद्धि, दुराचारी, कायर और अकर्मण्य पुरुष उसके योग्य नहीं।

इधर कई दिनोंसे अपने पिता को न देखकर अभयकुमारने अपनी मातासे एक दिन पूछा—माँ, बहुत दिनोंसे पिताजी देख नहीं पड़ते, सो वे कहाँ हैं। अभयमतीने उत्तरमें कहा—बेटा, वे जाते समय कह गये थे कि राजगृहमें 'पाण्डुकुटि' नामका महल है। प्रायः मैं वहीं रहता हूँ। सो मैं जब समाचार दूँ तब वहीं आजाना। तबसे अभी तक उनका कोई पत्र न आया। जान पड़ता है राज्यके कामों से उन्हें स्मरण न रहा। माता द्वारा पिताका पता पा अभयकुमार अकेलाही राजगृहको रवाना हुआ। कुछ दिनोंमें वह नन्दगांवमें पहुँचा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि जब श्रेणिकको उसके पिता उपश्रेणिकने देश बाहर हो जानेकी आज्ञा दी थी और श्रेणिक उसके अनुसार राजगृहसे निकल गया था तब उसे सबसे पहले रास्तेमें यही नन्दगांव पड़ा था। पर यहाँके लोगोंने राजद्रोहके भयसे श्रेणिकको गाँवमें आने नहीं दिया था। श्रेणिक इससे उन लोगों पर बड़ा नाराज हुआ था। इस समय उन्हें उनकी उस असहानुभूतिकी सजा देनेके अभिप्रायसे श्रेणिकने उन पर एक हुक्मनामा भेजा और उसमें लिखा कि "आपके गांवमें एक मीठे पानीका कुआ है। उसे बहुत जल्दी मेरे यहां भेजो, अन्यथा इस आज्ञाका पालन न होनेसे तुम्हें सजा दी जायगी।" बेचारे गांवके रहनेवाले स्वभावसे डरपौंक ब्राह्मण राजाके इस विलक्षण हुक्म नामेको सुनकर बड़े घबराये। जो ले जानेकी चीज होती है वही ले-जाई जाती है, पर कुआ एक स्थानसे अन्य स्थान पर कैसे ले-जाया जाय? वह कोई ऐसी छोटी मोटी वस्तु नहीं जो यहांसे उठाकर वहां रखदी जाय। तब वे बड़ी चिन्तामें पड़े। क्या करें, और क्या न करें, यह उन्हें बिलकुल न सूझ पड़ा, न वे राजाके पास ही जाकर कह सकते हैं कि—महा-

राज, यह असंभव बात कैसे हो सकती है ! कारण गांवके लोगोंमें इतनी हिम्मत कहां ? सारे गांवमें यही एक चर्चा होने लगी। सबके मुँह पर मुर्दनी छागई। और बात भी ऐसी ही थी। राजाज्ञा न पालने पर उन्हें दण्ड भोगना चाहिये। यह चर्चा घरों घर हो रही थी कि इसी समय अभयकुमार यहां आ पहुँचा, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है। उसने इस चर्चाका आदि अन्त मालूम कर गांव के सब लोगोंको इकट्ठा कर कहा—इस साधारण बातके लिये आप लोग ऐसी चिन्तामें पड़ गये। घबराने करनेकी कोई बात नहीं। मैं जैसा कहूँ वैसा कीजिये। आपका राजा उससे खुश होगा। तब उन लोगों ने अभयकुमारकी सलाहसे श्रेणिककी सेवामें एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि—"राजराजेश्वर, आपकी आज्ञाको सिर पर चढ़ाकर हमने कुएसे बहुत बहुत प्रार्थनायें कर कहा कि—महाराज तुझ पर प्रसन्न हैं। इसलिये वे तुझे अपने शहरमें बुलाते हैं, तू राजगृह जा! पर महाराज, उसने हमारी एक भी प्रार्थना न सुनी और उलटा रूठकर गांव बाहर चल दिया। सो हमारे कहने सुननेसे तो वह आता नहीं देख पड़ता। पर हां उसके लेजानेका एक उपाय है और उसे यदि आप करें तो संभव है वह रास्ते पर आ जाये। वह उपाय यह है कि पुरुष स्त्रियोंका गुलाम होता है—स्त्रियों द्वारा वह जल्दी वश हो जाता है। इसलिये आप अपने शहरकी उदुंबर नामकी कुईको इसे लेनेको भेजें तो अच्छा हो। बहुत विश्वास है कि उसे देखते ही हमारा कुआ उसके पीछे पीछे हो जायगा।" श्रेणिक पत्र पढ़कर चुप रह गये। उनसे उसका कुछ उत्तर न बन पड़ा। सच है, जब जैसेको तैसा मिलता है तब अकल ठिकाने पर आती है। और धूर्तों

को सहजमें काबूमें लेलेना कोई हँसी खेल थोड़े ही है ?

कुछ दिनों बाद श्रेणिकने उनके पास एक हाथी भेजा और लिखा कि इसका ठीक ठीक तोल कर जल्दी खबर दो कि यह वजन में कितना है ? अभयकुमार उन्हें बुद्धि सुझानेवाला था ही, सो उस के कहे अनुसार उन लोगोंने नावमें एक ओर तो हाथीको चढ़ा दिया और दूसरी ओर खूब पत्थर रखना शुरू किया। जब देखा कि दोनों ओरका वजन समतोल हो गया तब उन्होंने उन सब पत्थरोंको अलग तोलकर श्रेणिकको लिख भेजा कि हाथीका तोल इतना है। श्रेणिकको अब भी चुप रह जाना पड़ा।

तीसरी बार तब श्रेणिकने लिख भेजा कि "आपका कुआ गांवके पूर्वमें है, उसे पश्चिमकी ओर कर देना। मैं बहुत जल्दी उसे देखनेको आऊंगा।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें युक्ति सुझाकर गांवको ही पूर्वकी ओर बसा दिया। इससे कुआ सुतरां पश्चिममें हो गया।

चौथी बार श्रेणिकने एक मेंढ़ा भेजा कि "यह मेंढ़ा न दुर्बल हो, न बढ़ जाय और न इसके खाने पिलानेमें किसी तरहकी असावधानी की जाय। मतलब यह कि जिस स्थितिमें यह अब है इसी स्थितिमें बना रहे। मैं कुछ दिनों बाद इसे वापिस मंगा लूंगा।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें यह युक्ति बताई कि मेंढ़ेको खूब खिला-पिला कर घण्टा दो घंटाके लिये उसे सिंहके सामने बांध दिया करिए, ऐसा करनेसे न यह बढ़ेगा और न घटेगा ही। वैसा ही किया गया। मेंढ़ा जैसा था वैसा ही रहा। श्रेणिकको इस युक्तिमें भी सफलता प्राप्त न हुई।

पांचवी बार श्रेणिकने उनसे घड़ेमें रखा एक कोला (कद्दू) मंगाया। इसके लिये अभयकुमारने बेल पर लगे हुये एक छोटे कोलेको घड़ेमें रखकर बढ़ाना शुरू किया और जब उससे घड़ा भर गया तब उस घड़ेको श्रेणिकके पास पहुँचा दिया।

छठी बार श्रेणिकने उन्हें लिख भेजा कि "मुझे बालूरेतेकी रस्सीकी दरकार है, सो तुम जल्दी बनाकर भेजो।" अभयकुमारने इसके उत्तरमें यह लिखवा भेजा कि "महाराज, जैसी रस्सी आप तैयार करवाना चाहते हैं कृपा कर उसका नमूना भिजवा दीजिये। हम वैसी ही रस्सी फिर तैयार कर सेवामें भेज देंगे।" इत्यादि कई बातें श्रेणिकने उनसे करवाई। सबका उत्तर उन्हें बराबर मिला। उत्तर ही न मिला किन्तु श्रेणिकको कुछ हतप्रभ भी होना पड़ा। इस लिये कि वे उन ब्राह्मणोंको इस बातकी सजा देना चाहते थे कि उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति क्यों न बतलाई? पर वे सजा दे नहीं पाये। श्रेणिकको जब यह मालूम हुआ कि कोई एक विदेशी नन्द गाँवमें है। वही गाँवके लोगोंको ये सब बातें सुझाया करता है। उन्हें उस विदेशीकी बुद्धि देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी हुआ। श्रेणिककी उत्कण्ठा तब उसके देखनेके लिये बढ़ी। उन्होंने एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि "आपके यहाँ जो एक विदेशी आकर रहा है, उसे मेरे पास भेजिये। पर साथमें उसे इतना और समझा देना कि वह न तो रातमें आये, और न दिनमें, न सीधे रास्तेसे आये और न टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे।

अभयकुमारको पहले तो कुछ जरा विचारमें पड़ना पड़ा, पर फिर उसे इसके लिये भी युक्ति सूझ गई और अच्छी सूझी। वह

शामके वक्त गाड़ीके एक कोनेमें बैठकर श्रेणिकके दरबारमें पहुंचा। वहाँ वह देखता है तो सिंहासन पर एक साधारण पुरुष बैठा है— उस पर श्रेणिक नहीं है। वह बड़ा आश्चर्यमें पड़ गया। उसे ज्ञात हो गया कि यहाँ भी कुछ न कुछ चाल खेली गई है। बात यह थी कि श्रेणिक अंगरक्षक पुरुषोंके साथ बैठ गये थे। उनकी इच्छा थी कि अभयकुमार मुझे न पहचान कर लज्जित हो। इसके बाद ही अभयकुमारने एक बार अपनी दृष्टि राजसभा पर डाली। उसे कुछ गहरी निगाहसे देखने पर जान पड़ा कि राजसभामें बैठे हुए लोगोंकी नजर बार बार एक पुरुष पर पड़ रही है। और वह लोगोंकी अपेक्षा सुन्दर और तेजस्वी है। पर आश्चर्य यह कि वह राजाके अंगरक्षक लोगोंमें बैठा है। अभयकुमारको उसी पर कुछ सन्देह गया। तब उसके कुछ चिन्होंको देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि यही मेरे पूज्य पिता श्रेणिक हैं। तब उसने जाकर उनके पाँवोंमें अपना सिर रख लिया। श्रेणिकने उठाकर झट उसे छातीसे लगा लिया। वर्षों बाद पिता पुत्रका मिलाप हुआ। दोनोंको ही बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद श्रेणिकने पुत्र-प्रवेशके उपलक्ष्यमें प्रजाको उत्सव मनानेकी आज्ञा की। खूब आनन्द-उत्सव मनाया गया। दुखी, अनाथोंको दान किया गया। पूजा-प्रभावना की गई। सच है, कुलदीपक पुत्रके लिये कौन खुशी नहीं मनाता? इसके बाद ही श्रेणिकने अपने कुछ आदमियोंको भेजकर कांचीसे अभयमती और वसुमित्रा इन दोनों प्रियाओंको भी बुलवा लिया। इसप्रकार प्रिया-पुत्र सहित श्रेणिक सुखसे राज्य करने लगे। अब इसके आगेकी कथा लिखी जाती है—

सिन्धुदेशकी विशाला नगरीके राजा चेटक थे। वे बड़े बुद्धि

मान, धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे। जिन भगवान् पर उनकी बड़ी भक्ति थी। उनकी रानीका नाम सुभद्रा था। सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और सुन्दरी थी। इसके सात लड़कियाँ थीं। इनमें पहली लड़की प्रियकारिणी थी। इसके पुण्यका क्या कहना, जो इसका पुत्र संसारका महान् नेता तीर्थंकर हुआ। दूसरी मृगावती, तीसरी सुप्रभा, चौथी प्रभावती, पाँचवीं चेलिनी, छठी ज्येष्ठा और सातवीं चन्दना थी। इनमें अन्तकी चन्दनाको बड़ा उपसर्ग सहना पड़ा। उस समय इसने बड़ी वीरतासे अपने सतीधर्मकी रक्षा की।

चेटक महाराजका अपनी इन पुत्रियों पर बड़ा प्रेम था। इससे उन्होंने इन सबकी एक ही साथ तस्वीर बनवाई। चित्रकार बड़ा हुशियार था, सो उसने उन सबका बड़ा ही सुन्दर चित्र बनाया। चित्रपटको चेटक महाराज बड़ी बारीकीके साथ देख रहे थे। देखते हुए उनकी नजर चेलिनीकी जांघ पर जा पड़ी, चेलिनीकी जांघ पर जैसा तिलका चिन्ह था, चित्रकारने चित्रमें भी वैसा ही तिलका चिन्ह बना दिया था। सो चेटक महाराजने ज्यों ही उस तिलको देखा उन्हें चित्रकार पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उसी समय उसे बुलाकर पूछा कि—तुझे इस तिलका हाल कैसे जान पड़ा। महाराजकी क्रोध भरी आंखें देखकर वह बड़ा घबराया। उसने हाथ जोड़कर कहा—राजाधिराज, इस तिलको मैंने कोई छह सात बार मिटाया, पर मैं ज्यों ही चित्रके पास लिखनेको कलम ले जाता त्यों ही उसमेंसे रंगकी बूंद इसी जगह पड़ जाती। तब मेरे मनमें दृढ़ विश्वास हो गया कि ऐसा चिन्ह राजकुमारी चेलिनीके होना ही चाहिये और यही कारण है कि मैंने फिर उसे न मिटाया। यह सुन-

कर चेटक महाराज बड़े खुश हुए। उन्होंने फिर चित्रकारको बहुत पारितोषिक दिया। सच है बड़े पुरुषोंका खुश होना निष्फल नहीं जाता।

अबसे चेटक महाराज भगवान्की पूजन करते समय पहले इस चित्रपटको खोलकर भगवान्की प्रतिमाके पास ही रख लेते हैं और फिर बड़ी भक्तिके साथ जिनपूजा करते रहते हैं। जिन पूजा सब सुखोंकी देनेवाली और भव्यजनोंके मनको आनन्दित करने वाली है।

एक बार चेटक महाराज किसी खास कारण वश अपनी सेनाको साथ लिये राजगृह आये। वे शहर बाहर बगीचेमें ठहरे। प्रातःकाल शौच मुख मार्जनादि आवश्यक क्रियाओंसे निबट उन्होंने स्नान किया और निर्मल वस्त्र पहर भगवान्की विधिपूर्वक पूजा की। रोजके माफिक आज भी चेटक महाराजने अपनी राजकुमारियोंके उस चित्रपटको पूजन करते समय अपने पास रख लिया था और पूजनके अन्तमें उस पर फूल वगैरह डाल दिये थे।

इसी समय श्रेणिक महाराज भगवान्के दर्शन करनेको आये। उन्होंने इस चित्रपटको देखकर पास खड़े हुए लोगोंसे पूछा—यह किनका चित्रपट है? उन लोगोंने उत्तर दिया—राजराजेश्वर, ये जो विशालाके चेटक महाराज आये हैं, उनकी लड़कियोंका यह चित्रपट है। इनमें चार लड़कियोंका तो ब्याह हो चुका है और चेलिनी तथा ज्येष्ठा ये दो लड़कियाँ ब्याह योग्य हैं। सातवीं चन्दना अभी बिलकुल बालिका है। ये तीनों ही इस समय विशालामें हैं। यह सुन श्रेणिक महाराज चेलिनी और ज्येष्ठा पर मोहित हो गये।

इन्होंने महल पर आकर अपने मनकी बात मंत्रियोंसे कही। मंत्रियोंने अभयकुमारसे कहा—आपके पिताजीने चेटक महाराजसे इनकी दो सुन्दर लड़कियोंके लिये मँगनी की थी, पर उन्होंने अपने महाराजकी अधिक उमर देख उन्हें अपनी राजकुमारियोंके देनेसे इन्कार कर दिया। अब तुम बतलाओ कि क्या उपाय किया जाये जिससे यह काम पूरा पड़ ही जाय।

बुद्धिमान् अभयकुमार मंत्रियोंके वचन सुनकर बोला—आप इस विषयकी कुछ चिन्ता न करें जबतक कि सब कामोंको करनेवाला मैं मौजूद हूं। यह कहकर अभयकुमारने अपने पिताका एक बहुत सुन्दर चित्र तैयार किया और उसे लेकर साहूकारके वेषमें आप विशाला पहुँचा। किसी उपायसे उसने वह चित्रपट दोनों राजकुमारियोंको दिखलाया। वह इतना बढ़िया बना था कि उसे यदि एक बार देवाङ्गनाएँ देख पातीं तो उनसे भी अपने आपेमें न रहा जाता तब ये दोनों कुमारियाँ उसे देखकर मुग्ध ही जायँ, इसमें आश्चर्य क्या। उन दोनोंको श्रेणिक महाराज पर मुग्ध देख अभयकुमार उन्हें सुरंगके रास्तेसे राजगृह ले-जाने लगा। चेलिनी बड़ी धूर्त थी। उसे स्वयं तो जाना पसन्द था, पर वह ज्येष्ठा को लेजाना न चाहती थी। सो जब ये थोड़ी ही दूर आई होंगी कि चेलिनीने ज्येष्ठासे कहा—हाँ, बहिन मैं तो अपने सब गहने-दागीने महलहीमें छोड़ आई हूँ, तू जाकर उन्हें ले-आ न? तबतक मैं यहीं खड़ी हूँ। बेचारी भोली-भाली ज्येष्ठा इसके झाँसेमें आकर चली गई। वह आँखोंकी ओट हुई होगी कि चेलिनी वहाँसे रवाना होकर अभयकुमारके साथ राजगृह आगई। फिर बड़े

उत्सवके साथ यहां इसका श्रेणिक महाराजके साथ ब्याह हो गया। पुण्यके उदयसे श्रेणिककी सब रानियोंमें चेलिनीके ही भाग्यका सितारा चमका—पट्टरानी वही हुई।

यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है—श्रेणिक एक संन्यासी के उपदेशसे वैष्णवधर्मी हो गये थे और तबसे वे इसी धर्म को पालते थे। महारानी चेलिनी जैनी थी। जिनधर्म पर जन्मसे ही उसकी श्रद्धा थी। इन दो धर्मोंको पालनेवाले पति-पत्नीका अपने अपने धर्मकी उच्चता बाबत रोज रोज थोड़ा बहुत वार्त्तालाप हुआ करता था। पर वह बड़ी शान्तिसे। एक दिन श्रेणिकने चेलिनीसे कहा—प्रिये, उच्च घरानेकी सुशील स्त्रियोंका देव पूछो तो पति है तब तुम्हें मैं जो कहूं वह करना चाहिए। मेरी इच्छा है कि एक बार तुम इन विष्णुभक्त सच्चे गुरुओंको भोजन दो। सुनकर महारानी चेलिनीने बड़ी नम्रताके साथ कहा—अच्छा नाथ, दूँगी।

इसके कुछ दिनों बाद चेलिनीने कुछ भागवत साधुओंका निमंत्रण किया और बड़े गौरवके साथ उन्हें अपने यहां बुलाया। आकर वे लोग अपना ढोंग दिखलानेके लिये कपट, मायाचारीसे ईश्वराराधन करनेको बैठे। उस समय चेलिनीने उनसे पूछा—आप लोग क्या करते हैं? उत्तरमें उन्होंने कहा—देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओंसे भरे इस शरीरको छोड़कर अपने आत्मा को विष्णु अवस्थामें प्राप्त कर स्वानुभवका सुख भोगते हैं।

सुनकर चेलिनीने उस मंडपमें, जिसमें कि सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवादी। आग लगते ही वे सब

भाग खड़े हुए। यह देख श्रेणिकने बड़े क्रोधके साथ चेलिनी से कहा—आज तुमने साधुओंके साथ बड़ा अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उन पर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हें जानसे ही मार डालना? बतलाओ उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवन की ही प्यासी हो उठी?

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिए सुखका कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं, तब उन्होंने मुझे कहा कि—हम अपवित्र शरीरको छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपदको प्राप्त करते हैं। तब मैंने सोचा कि—ओहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे यह और उत्तम होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु ही बने रहें। संसारमें बार बार आने जाने का इनके पीछे पचड़ा क्यों? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमें रह कर सुख भोगें इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मंडपमें आग लगवादी। तब आप ही विचार कर बतलाइए कि इसमें मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया? और सुनिए, मेरे वचनों पर आपको विश्वास हो, इसके लिए मैं एक कथा आपको सुनादूँ।

"जिस समयकी यह कथा है, उस समय वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्यशासन नीतिके साथ करते हुए सुखसे समय बिताते थे। कोशाम्बीमें दो सेठ रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठों

में परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम सदा ऐसा ही दृढ़ बना रहे, इसके लिए उन्होंने परस्परमें एक शर्त की। वह यह कि—"मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़कीका ब्याह उसके साथ कर देना पड़ेगा।"

दोनोंने उक्त शर्त स्वीकार की। इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्तके घर पुत्रजन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र रक्खा। पर उसमें एक बड़े आश्चर्यकी बात थी। वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई। उसका नाम रक्खा गया नागदत्ता। वह बड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी। उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह वसुमित्रके साथ कर दिया। सच है—

नैव वाचा चलत्वं स्यात्सतां कष्टशतैरपि।

सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्रका ब्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिनमें तो सर्प बनकर एक पिटारेमें रहता और रातमें एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोपभोग करता। सचमुच संसारकी विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसे कई दिन बीत गये। एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्थामें पदार्पण करती और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली—हाय! दैवकी कैसी विडम्बना

है, जो कहाँ तो देवकुमारी सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प ! उसकी दुःख भरी आहको नागदत्तने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी मांसे बोली—मां, इसके लिए आप क्यों दुःख करती हैं। मेरा जब भाग्य ही ऐसा है, तब उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है। और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ताने अपनी मां को स्वामीके उद्धारके सम्बन्धकी बात समझा दी।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्प-शरीर छोड़कर मनुष्य रूपमें आया और अपने शय्या-भवनमें पहुँचा। इधर समुद्रदत्ता छुपे हुए आकर वसुदत्तके पिटारेको वहाँसे उठा ले-आई और उसी समय उसने उसे जला डाला। तबसे वसुमित्र मनुष्य रूपमें ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्दसे बिताने लगा।" नाथ, उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोक में रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी; इसलिए मैंने वैसा किया था। महारानी चेलनीकी कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उस पर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोध को उस समय दबा गये।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिए गये हुए थे। उन्होंने वनमें यशोधर मुनिराजको देखा। वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे। श्रेणिकने उन्हें शिकारके लिए विघ्नरूप समझ कर मारनेका विचार किया और बड़े गुस्सेमें आकर अपने क्रूर शिकारी

कुत्तोंको उन पर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयताके साथ मुनिके खानेको झपटे। पर मुनिराजकी तपस्याके प्रभावसे वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पांवोंके पास खड़े रह गये। यह देख श्रेणिकको और भी क्रोध आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर मुनि पर बाण चलाना आरम्भ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो बाणोंके द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानो किसीने उन पर फूलोंकी वर्षा की है। सच बात यह है कि तपस्वियोंका प्रभाव कौन कह सकता है। श्रेणिकने उन मुनिहिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरक की आयु का बन्ध किया, जिसकी स्थिति तेतीस सागर की है।

इन सब अलौकिक घटनाओंको देखकर श्रेणिकका पत्थरके समान कठोर हृदय फूल सा कोमल हो गया—उनके हृदयकी सब दुष्टता निकल कर उसमें मुनिके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया। वे मुनिराजके पास गये और भक्तिसे उन्होंने मुनिके चरणों को नमस्कार किया। यशोधर मुनिराजने श्रेणिकके हितके लिए इस समय को उपयुक्त समझ उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासन का उपदेश दिया। उसका श्रेणिकके हृदय पर बहुत असर पड़ा। उनके परिणामोंमें विलक्षण परिवर्तन हो गया। उन्हें अपने कृत कर्म पर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। मुनिराजके उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसके प्रभावसे, उन्होंने जो सातवें नर्ककी आयु का बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरक का रह गया। यहाँ की स्थिति चौरासी हजार वर्षों की है।

ठीक है सम्यग्दर्शन के प्रभावसे भव्यपुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता।

इसके बाद श्रेणिकने श्रीचित्रगुप्त मुनिराजके पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् वर्धमान स्वामीके द्वारा शुद्ध क्षायिकसम्यक्त्व, जो कि मोक्षका कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थंकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे।

इसलिए भव्यजनोंको इस स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले तथा संसारका हित करनेवाले सम्यग्दर्शन रूप रत्नद्वारा अपनेको भूषित करना चाहिए। यह सम्यग्दर्शन रूप रत्न इन्द्र, चक्रवर्ती आदिके सुखका देनेवाला, दुखोंका नाश करनेवाला और मोक्षका प्राप्त करानेवाला है। विद्वज्जन आत्म हितके लिए इसीको धारण करते हैं। उस सम्यग्दर्शनका स्वरूप श्रुतसागर आदि मुनिराजोंने कहा है—जिनभगवान्के कहे हुए तत्वोंका श्रद्धान करना—ऐसा विश्वास करना कि भगवान्ने जैसा कहा वही सत्यार्थ है। तब आप लोग भी इस सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर आत्म-हित करें, यह मेरी भावना है।

१०८—रात्रिभोजन-त्याग-कथा।

जिन भगवान्, जिनवाणी और गुरुओंको नमस्कार कर रात्रिभोजनका त्याग करनेसे जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है।

जो लोग धर्मरक्षाके लिए रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, वे दोनों लोकों में सुखी होते हैं, यशस्वी होते हैं, दीर्घायु होते हैं, कान्तिमान होते हैं और उन्हें सब सम्पदाएँ तथा शान्ति मिलती है, और जो लोग रात में भोजन करने वाले हैं, वे दरिद्री होते हैं, जन्मान्ध होते हैं अनेक रोग और व्याधियाँ उन्हें सदा सताए रहती हैं, उनके संतान नहीं होती। रातमें भोजन करनेसे छोटे जीव जन्तु नहीं दिखाई पड़ते। वे खानेमें आ जाते हैं। उससे बड़ा पापबन्ध होता है। जीवहिंसा का पाप लगता है। माँस का दोष लगता है। इसलिए रात्रि भोजनका छोड़ना सबके लिए हितकारी है। और खासकर उन लोगों को तो छोड़ना ही चाहिए जो माँस नहीं खाते। ऐसे धर्मात्मा श्रावकों को दिन निकले दो घड़ी बाद सवेरे और दो घड़ी दिन बाकी रहे तब शाम को भोजन वगैरहसे निवृत्त हो जाना चाहिए। समन्तभद्र स्वामीका भी ऐसा ही मत है—"रात्रि भोजन का त्याग करनेवालेको सवेरे और शाम को आरम्भ और अन्तमें दो दो घड़ी छोड़कर भोजन करना चाहिए।" जो नैष्ठिक श्रावक नहीं है उनके लिए पान, सुपारी, इलायची, जल और पवित्र औषधि आदिक विशेष दोषके कारण नहीं हैं। इन्हें छोड़कर और अन्नकी चीजें या मिठाई, फलादिक ये सब कष्ट पड़ने पर भी कभी न खाना

चाहिए। जो भव्य जीवन भरके लिए चारों प्रकारके आहार का रात में त्याग कर देते हैं उन्हें वर्षभरमें छह माहके उपवासका फल होता है। रात्रिभोजन को त्याग करने से प्रीतिंकर कुमारको फल प्राप्त हुआ था, उसकी विस्तृत कथा अन्य ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। यहाँ उसका सार लिखा जाता है।

मगध में सुप्रतिष्ठपुर अच्छा प्रसिद्ध शहर था। अपनी सम्पत्ति और सुन्दरतासे वह स्वर्गसे टक्कर लेता था। जिनधर्म का वहां विशेष प्रचार था। जिस समय की यह कथा है, उस समय उसके राजा जयसेन थे। जयसेन धर्मज्ञ, नीतिपरायण और प्रजाहितैषी थे।

यहां धनमित्र नामका एक सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था। दोनोंही की जैनधर्म पर अखण्ड प्रीति थी। एक दिन सागरसेन नामके अवधिज्ञानीमुनिको आहार देकर इन्होंने उनसे पूछा—प्रभो! हमें पुत्रसुख होगा या नहीं? यदि न हो तो हम व्यर्थकी आशासे अपने दुर्लभ मनुष्य-जीवनको संसारक मोह-मायामें फँसा रखकर, उसका क्यों दुरुपयोग करें? फिर क्यों न हम पापोंके नाश करनेवाली पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्महित करें? मुनिने इनके प्रश्नके उत्तरमें कहा—हां अभी तुम्हारी दीक्षाका समय नहीं आया। कुछ दिन गृहवासमें तुम्हें अभी और ठहरना पड़ेगा। तुम्हें एक महाभाग और कुलभूषण पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। वह बड़ा तेजस्वी होगा। उसके द्वारा अनेक प्राणियोंका उद्धार होगा और वह इसी भवसे मोक्ष जाएगा। अवधिज्ञानी मुनिकी यह भविष्यवाणी सुनकर दोनों को अपार हर्ष हुआ। सच है, गुरुओंके

वचनामृतका पान कर किसे हर्ष नहीं होता।

अबसे ये सेठ सेठानी अपना समय जिनपूजा, अभिषेक, पात्रदान आदि पुण्य कर्मोंमें अधिक देने लगे। कारण इनका यह पूर्ण विश्वास था कि सुखका कारण धर्म ही है। इसप्रकार आनन्द उत्सवके साथ कुछ दिन बीतने पर धनमित्राने एक प्रतापी पुत्र प्रसव किया। मुनिकी भविष्यवाणी सच हुई। पुत्र जन्मके उपलक्षमें सेठने बहुत उत्सव किया, दान दिया, पूजा प्रभावना की। बन्धु-बाँधवोंको बड़ा आनन्द हुआ। इस नवजात शिशुको देखकर सबको अत्यन्त प्रीति हुई। इसलिये इसका नाम भी प्रीतिंकर रख दिया गया। दूजके चांदकी तरह यह दिनों दिन बढ़ने लगा। सुन्दरतामें यह कामदेवसे कहीं बढ़कर था, बड़ा भाग्यवान् था और इसके बल के सम्बन्धमें तो कहना ही क्या, जब कि यह चरम शरीरका धारी—इसी भवसे मोक्ष जानेवाला है। जब प्रीतिंकर पाँच वर्षका हो गया तब इसके पिताने इसे पढ़ानेके लिये गुरु को सौंप दिया। इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और फिर इस पर गुरुकी कृपा हो गई। इससे यह थोड़े ही वर्षोंमें पढ़ लिखकर योग्य विद्वान् बन गया। कई शास्त्रों में इसकी अबाध गति हो गई। गुरु सेवा रूपी नाव द्वारा इसने शास्त्ररूपी समुद्रका प्राय: अधिकांश पार कर लिया। विद्वान और धनी होकर भी इसे अभिमान छू तक न गया था। यह सदा लोगों को धर्मका उपदेश दिया करता और पढ़ाता लिखाता था। इसमें आलस्य, ईर्ष्या मत्सरता आदि दुर्गुणोंका नाम निशान भी न था। यह सबसे प्रेम करता था। सबके दु:ख सुखमें सहानुभूति रखता।

यही कारण था कि इसे सब ही छोटे बड़े हृदयसे चाहते थे। जयसेन इसकी ऐसी सज्जनता और परोपकार बुद्धि देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने स्वयं इसका वस्त्राभूषणोंसे आदर सत्कार किया—इसकी इज्जत बढ़ाई।

यद्यपि प्रीतिंकरको धन दौलतकी कोई कमी नहीं थी परन्तु तब भी एक दिन बैठे बैठे इसके मनमें आया कि अपनेको भी कमाई करनी चाहिये। कर्त्तव्यशीलोंका यह काम नहीं कि वे बैठे बैठे अपने बाप दादोंकी सम्पत्ति पर मजा-मौज उड़ाकर आलसी और कर्त्तव्य-हीन बनें। और न सपूतोंका यह काम ही है। इसलिये मुझे धन कमानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह विचार कर उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं स्वयं कुछ न कमा लूँगा तब तक ब्याह न करूंगा। प्रतिज्ञाके साथ ही वह विदेशके लिये रवाना हो गया। कुछ वर्षों तक विदेशमें ही रहकर इसने बहुत धन कमाया। खूब कीर्ति अर्जित की। इसे अपने घरसे गए कई वर्ष बीत गये थे, इसलिये अब इसे अपने माता पिताकी याद आने लगी। फिर यह बहुत दिनों बाहर न रहकर अपना सब माल असबाब लेकर घर लौट आया। सच है पुण्यवानोंको लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्नसे मिल जाती है। प्रीतिं-कर अपने माता-पितासे मिला। सबहीको बहुत आनन्द हुआ। जय-सेनका प्रीतिंकरकी पुण्यवानी और प्रसिद्धि सुनकर उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया। उन्होंने तब अपनी कुमारी पृथिवीसुन्दरी, और एक दूसरे देशसे आई हुई वसुन्धरा तथा और भी कई सुन्दर सुन्दर राजकुमारियोंका ब्याह इस महाभागके साथ बड़े ठाट-बाटसे कर दिया। इसके साथ जयसेनने अपना आधा राज्य भी इसे दे दिया।

प्रीतिंकरके राज्य प्राप्ति आदिके सम्बन्धकी विशेष कथा यदि जानना हो तो महापुराणका स्वाध्याय करना चाहिये।

प्रीतिंकरको पुण्योदयसे जो राज्यविभूति प्राप्त हुई उसे वह सुखपूर्वक भोगने लगा। उसके दिन आनन्द-उत्सवके साथ बीतने लगे। इससे यह न समझना चाहिये कि प्रीतिंकर सदा विषयोंमें ही फँसा रहता है। वह धर्मात्मा भी सच्चा था। क्योंकि वह निरंतर जिन भगवानकी अभिषेक-पूजा करता, जो कि स्वर्ग या मोक्षका सुख देनेवाली और बुरे भावों या पापकर्मोंका नाश करनेवाली है। वह श्रद्धा, भक्ति आदि गुणोंसे युक्त हो पात्रोंको दान देता, जो दान महान् सुखका कारण है। वह जिनमन्दिरों, तीर्थक्षेत्रों, जिनप्रतिमाओं आदि सप्त क्षेत्रोंकी, जो कि शान्तिरूपी धनके प्राप्त करानेके कारण हैं, जरूरतोंको अपने धनरूपी जल-वर्षासे पूरी करता, परोपकार करना उसके जीवनका एक मात्र उद्देश्य था। वह स्वभावका बड़ा सरल था। विद्वानोंसे उसे प्रेम था। इसप्रकार इस लोक सम्बन्धी और पारमार्थिक कार्योंमें सदा तत्पर रहकर वह अपनी प्रजाका पालन करता रहता था। प्रीतिंकरका समय इस प्रकार बहुत सुखसे बीतता था। एक बार सुप्रतिष्ठ पुरके सुन्दर बगीचेमें सागरसेन नाम के मुनि आकर ठहरे थे। उनका वहीं स्वर्गवास हो गया था। उनके बाद फिर इस बगीचेमें आज चारणऋद्धि धारी ऋजुमति और विपुलमति मुनि आये। प्रीतिंकर तब बड़े वैभवके साथ भव्यजनोंको लिये उनके दर्शनोंको गया। मुनिराजके चरणोंकी आठ द्रव्योंसे उसने पूजा की और नमस्कार कर बड़े विनयके साथ धर्मका स्वरूप

पूछा। तब ऋजमति मुनिने उसे इसप्रकार संक्षेपमें धर्मका स्वरूप कहा—

प्रीतिंकर, धर्म उसे कहते हैं जो संसारके दुःखोंसे रक्षाकर उत्तम सुख प्राप्त करा सके। ऐसे धर्मके दो भेद हैं। एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थधर्म। मुनियोंका धर्म सर्व त्याग रूप होता है। सांसारिक माया-ममतासे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। और वह उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव-आदि दस आत्मिक शक्तियोंसे युक्त होता है। गृहस्थधर्ममें संसारके साथ लगाव रहता है। घरमें रहते हुए धर्मका पालन करना पड़ता है। मुनिधर्म उन लोगोंके लिये है जिनका आत्मा पूर्ण बलवान् है, जिनमें कष्टोंके सहनेकी पूरी शक्ति है और गृहस्थ धर्म मुनिधर्मके प्राप्त करनेकी सीढ़ी है। जिस प्रकार एक साथ सौ-पचास सीढ़ियाँ नहीं चढ़ी जा सकती उसी प्रकार साधारण लोगोंमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वे एकदम मुनिधर्म ग्रहण कर सकें। उसके अभ्यासके लिये वे क्रम क्रमसे आगे बढ़ते जायँ, इसलिये पहले उन्हें गृहस्थधर्मका पालन करना पड़ता है। मुनिधर्म और गृहस्थधर्ममें सबसे बड़ा भेद यह है कि, पहला साक्षात् मोक्षका कारण है और दूसरा परम्परासे। श्रावकधर्मका मूल कारण है—सम्यग्दर्शनका पालन। यही मोक्ष-सुखका बीज है। बिना इसके प्राप्त किये ज्ञान, चारित्र वगैरहकी कुछ कीमत नहीं। इस सम्यग्दर्शनको आठ अंगों सहित पालना चाहिये। सम्यक्त्व पालनेके पहले मिथ्यात्व छोड़ा जाता है। क्योंकि मिथ्यात्व ही आत्माका एक ऐसा प्रबल शत्रु है जो संसारमें इसे अनन्त कालतक भटकाये रहता है और कुगतियोंके असह दुःखोंको प्राप्त कराता

है। मिथ्यात्वका संक्षिप्त लक्षण है—जिन भगवान्‌के उपदेश किये तत्व या धर्मसे उलटा चलना और यही धर्मसे उलटापन दुःखका कारण है। इसलिये उन पुरुषोंको, जो सुख चाहते हैं, मिथ्यात्वके परित्याग पूर्वक शास्त्राभ्यास द्वारा अपनी बुद्धिको काचके समान निर्मल बनानी चाहिये। इसके सिवा श्रावकोंको मद्य, मांस और मधु (शहद) का त्याग करना चाहिये। क्योंकि इनके खानेसे जीवोंको नरकादि दुर्गतियोंमें दुःख भोगना पड़ते हैं। श्रावकोंके पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रत हैं, उन्हें धारण करना चाहिए। रातके भोजनका, चमड़ेमें रखे हुये हींग, जल, घी, तैल आदिका तथा कन्दमूल, आचार और मक्खनका श्रावकोंको खाना उचित नहीं। इनके खानेसे मांस-त्याग-व्रतमें दोष आता है। जूआ खेलना, चोरी करना, पर स्त्री सेवन, वेश्या सेवन, शिकार करना, मांस खाना, मदिरा पीना, ये सात व्यसन—दुःखोंकी देनेवाली आदतें हैं। कुल, जाति, धन, जन, शरीर सुख, कीर्त्ति, मान-मर्यादा आदिकी नाश करनेवाली हैं। श्रावकोंको इन सबका दूरसे ही काला मुँह कर देना चाहिये। इसके सिवा जलका छानना, पात्रोंको भक्ति पूर्वक दान देना श्रावकोंका कर्त्तव्य होना चाहिए। ऋषियोंने पात्र तीन प्रकार बतलाये हैं। उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र—व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अविरत-सम्यग्दृष्टि। इनके सिवा कुछ लोग और ऐसे हैं, जो दानपात्र होते हैं—दुखी, अनाथ, अपाहिज आदि, जिन्हें कि दयाबुद्धिसे दान देना चाहिये। पात्रोंको जो थोड़ा भी दान देते हैं उन्हें उस दानका फल बटबीजकी तरह अनन्त गुणा मिलता है। श्रावकोंके और भी आवश्यक कर्म हैं, जैसे—स्वर्ग मोक्ष

के सुखकी कारण जिन भगवान्‌की जलादि द्रव्यों द्वारा पूजा करना, दूध, दही, घी, सांठेका रस आदिसे अभिषेक करना, जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा करना, आदि। ये सब सुखके कारण और दुर्गतिके दुःखोंके नाश करनेवाले हैं। इस प्रकार धार्मिक जीवन बना कर अन्तमें भगवान्‌का स्मरण-चिंतन पूर्वक संन्यास लेना चाहिये। यही जीवनके सफलताका सीधा और सच्चा मार्ग है। इसप्रकार मुनि राज द्वारा धर्मका उपदेश सुनकर बहुतेरे सज्जनोंने व्रत, नियमादि को ग्रहण किया। जैनधर्म पर उनकी गाढ़ श्रद्धा हो गई। प्रीतिंकरने मुनिराजको नमस्कार कर पुनः प्रार्थना की—हे करुणाके समुद्र योगिराज कृपाकर मुझे मेरे पूर्व भवका हाल सुनाइए। मुनिराजने तब यों कहना शुरू किया—

"प्रीतिंकर, इसी बगीचेमें पहले तपस्वी सागरसेन मुनि आकर ठहरे थे। उनके दर्शनोंके लिये राजा वगैरह प्रायः सब ही नगर निवासी बड़े गाजे-बाजे और आनन्द उत्सवके साथ आये थे। वे मुनिराजकी पूजा-स्तुति कर वापिस शहरमें चले गये। इसी समय एक सियारने इनके गाने-बाजेके शब्दोंको सुनकर यह समझा कि ये लोग किसी मुर्देको डालकर गये हैं। सो वह उसे खानेके लिए आया। उसे आता देख मुनिने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह मुर्देको खानेके अभिप्रायसे इधर आ रहा है। पर यह है भव्य और व्रतोंको धारण कर मोक्ष जायगा। इसलिये इसे सुलटाना आवश्यक है। यह विचार कर मुनिराजने उसे समझाया—अज्ञानी पशु, तुझे मालूम नहीं कि पापका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। देख, पाप के ही फलसे तुझे आज इस पर्यायमें आना पड़ा और फिर भी तू

पाप करनेसे मुँह न मोड़कर मुर्देको खानेके लिए इतना व्यग्र हो रहा है, यह कितने आश्चर्यकी बात है। तेरी इस इच्छाको धिक्कार है। प्रिय, जब तक कि तू नरकोंमें न गिरे इसके पहले ही तुझे यह महा पाप छोड़ देना चाहिए। तूने जिनधर्मको न ग्रहण कर आजतक दुःख उठाया, पर अब तेरे लिए बहुत अच्छा समय उपस्थित है। इसलिए तू इस पुण्य-पथ पर चलना सीख। सियारका होनहार अच्छा था या उसकी काललब्धि आ गई थी। यही कारण था कि मुनिके उपदेशको सुनकर वह बहुत शान्त हो गया। उसने जान लिया कि मुनिराज मेरे हृदयकी वासनाको जान गए। उसे इसप्रकार शान्त देखकर मुनि फिर बोले-प्रिय, तू और और व्रतोंको धारण नहीं कर सकता, इसलिए सिर्फ रातमें खाना-पीना ही छोड़ दे। यह व्रत सर्व व्रतोंका मूल है, सुखका देनेवाला है और चित्तका प्रसन्न करने वाला है। सियारने उपकारी मुनिराजके वचनोंको मानकर रात्रि-भोजन-त्याग-व्रत ले लिया। कुछ दिनोंतक तो इसने केवल इसी व्रतको पाला। इसके बाद इसने माँस वगैरह भी छोड़ दिया। इसे जो कुछ थोड़ा बहुत पवित्र खाना मिल जाता, यह उसीको खाकर रह जाता। इस वृत्तिसे इसे सन्तोष बहुत हो गया था। बस यह इसी प्रकार समय बिताता और मुनिराजके चरणोंका स्मरण किया करता।

इसप्रकार कभी खानेको मिलने और कभी न मिलनेसे यह सियार बहुत ही दुबला हो गया। ऐसी दशामें एक दिन इसे केवल सूखा भोजन खानेको मिला। समय गर्मीका था। इसे बड़े जोरकी प्यास लगी। इसके प्राण छट-पटाने लगे। यह

एक कुए पर पानी पीनेको गया। भाग्यसे कुएका पानी बहुत नीचा था। जब यह कुएमें उतरा तो इसे अँधेरा ही अँधेरा दीखने लगा। कारण सूर्यका प्रकाश भीतर नहीं पहुँच पाता था। इसलिए सियार ने समझा कि रात हो गई, सो वह बिना पानी पीए ही कुएके बाहर आ गया। बाहर आकर जब उसने दिन देखा तो फिर वह भीतर उतरा और भीतर पहलेसा अँधेरा देखकर रातके भ्रमसे फिर लौट आया। इसप्रकार वह कितनी ही बार आया-गया, पर जल नहीं पी पाया। अन्तमें वह इतना अशक्त हो गया कि उससे कुएसे बाहर नहीं आया गया। उसने तब उस घोर अँधेरेको देखकर सूरज को अस्त हुआ समझ लिया और वहीं वह संसार समुद्रसे पार करनेवाले अपने गुरु मुनिराजका स्मरण-चिन्तन करने लगा। तृषा रूपी आग उसे जलाए डालती थी, तब भी वह अपने व्रतमें बड़ा दृढ़ रहा। उसके परिणाम क्लेशरूप या आकुल-व्याकुल न होकर बड़े शान्त रहे। उसी दशामें वह मरकर कुबेरदत्त और उसकी स्त्री धनमित्राके तू प्रीतिंकर पुत्र हुआ है। तेरा यही अन्तिम शरीर है। अब तू कर्मोंका नाशकर मोक्ष जायगा। इसलिए सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि वे कष्ट समयमें व्रतोंकी दृढ़तासे रक्षा करें।" मुनिराज द्वारा प्रीतिंकरका यह पूर्व जन्मका हाल सुन उपस्थित मंडलीकी जिन धर्म पर अचल श्रद्धा हो गई। प्रीतिंकरको अपने इस वृत्तान्तसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की और अन्त में उन स्वपरोपकारके करनेवाले मुनिराजोंको भक्तिसे नमस्कार कर व्रतोंके प्रभावको हृदयमें विचारता हुआ वह घर पर आया।

मुनिराजके उपदेशका उस पर बहुत गहरा असर पड़ा। उसे अब संसार अथिर, विषयभोग दुःखोंके देनेवाले, शरीर अपवित्र वस्तुओंसे भरा, महा घिनौना और नाश होनेवाला, धन-दौलत बिजलीकी तरह चंचल और केवल बाहरसे सुन्दर देख पड़नेवाली तथा स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि, ये सब अपने आत्मासे पृथक जान पड़ने लगे। उसने तब इस मोहजालको, जो केवल फँसाकर संसारमें भटकानेवाला है, तोड़ देना ही उचित समझा। इस शुभ संकल्पके दृढ़ होते ही पहले प्रीतिंकरने अभिषेक पूर्वक भगवान्‌की सब सुखों की देनेवाली पूजा की, खूब दान किया और दुखी, अनाथ, अपाहिजोंकी सहायता की। अन्तमें वह अपने प्रियंकर पुत्रको राज्य देकर अपने बन्धु, बान्धवोंकी सम्मतिसे योग लेनेके लिए विपुलाचल पर भगवान् वर्द्धमानके समवशरणमें गया और उन त्रिलोक पूज्य भगवान्‌के पवित्र दर्शन कर उसने भगवान्‌के द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण करली। इसके बाद प्रीतिंकर मुनिने खूब दुःसह तपस्या की और अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अब वे लोकालोकके सब पदार्थोंको हाथकी रेखाओंके समान साफ साफ जानने देखने लग गये। उन्हें केवलज्ञान प्राप्त किया सुन विद्याधर, चक्रवर्ती, स्वर्गके देव, आदि बड़े बड़े महापुरुष उनके दर्शन-पूजनको आने लगे। प्रीतिंकर भगवानने तब संसार-तापको नाश करनेवाले परम पवित्र उपदेशामृतसे अनेक जीवोंको दुःखोंसे छुटाकर सुखी बनाये। अन्तमें अघातिया कर्मोंका नाश कर वे परम धाम—मोक्ष सिधार गये। आठ कर्मोंका नाश कर आठ आत्मिक महान् शक्तियोंको उन्होंने प्राप्त किया। अब वे संसारमें

न आकर अनन्त काल तक वहीं रहेंगे। वे प्रीतिंकर स्वामी मुझे शांति प्रदान करें। प्रीतिंकरका यह पवित्र और कल्याण करनेवाला चरित आप भव्यजनोंको और मुझे सम्यग्ज्ञानके लाभका कारण हो। यह मेरी पवित्र भावना है।

एक अत्यन्त अज्ञानी पशुयोनिमें जन्मे सियारने भगवान्के पवित्र धर्मका थोड़ा सा आश्रय पा अर्थात् केवल रात्रि-भोजन-त्याग व्रत स्वीकार कर मनुष्य जन्म लिया और उसमें खूब सुख भोगकर अन्तमें अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की। तब आप लोग भी क्यों न इस अनन्त सुखकी प्राप्तिके लिए पवित्र जैनधर्ममें अपने विश्वास को दृढ करें।

१०९—दान करनेवालोंकी कथा।

जगद्गुरु तीर्थंकर भगवान्को नमस्कार कर पात्र दानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

जिन भगवान्के मुखरूपी चन्द्रमासे जन्मी पवित्र जिनवाणी ज्ञानरूपी महा समुद्रसे पार करनेके लिए मुझे सहायता दे—मुझे ज्ञान-दान दे।

उन साधु रत्नोंको मैं भक्तिसे नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारक हैं, परिग्रह कनक-कामिनी आदिसे रहित वीतरागी हैं और सांसारिक सुख तथा मोक्ष सुखकी प्राप्तिके कारण हैं।

पूर्वाचार्योंने दानको चार हिस्सोंमें बाँटा है, जैसे आहार-दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। और ये ही दान पवित्र हैं। योग्य पात्रोंको यदि ये दान दिये जायँ तो इनका फल अच्छी जमीनमें बोये हुए बड़के बीजकी तरह अनन्त गुणा होकर फलता है। जैसे एक ही बावड़ीका पानी अनेक वृक्षोंमें जाकर नाना रूपमें परिणत होता है उसी तरह पात्रोंके भेदसे दानके फलमें भी भेद हो जाता है। इसलिए जहाँतक बने अच्छे सुपात्रोंको दान देना चाहिए। सब पात्रोंमें जैनधर्मका आश्रय लेनेवालेको अच्छा पात्र समझना चाहिए, औरोंको नहीं। क्योंकि जब एक कल्पवृक्ष हाथ लग गया फिर औरोंसे क्या लाभ? जैनधर्ममें पात्र तीन बतलाये गये हैं। उत्तम पात्र मुनि, मध्यम पात्र—व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अव्रतसम्यग्दृष्टि। इन तीन प्रकारके पात्रोंको दान देकर भव्य पुरुष जो सुख लाभ करते हैं उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जा सकता। परन्तु संक्षेपमें यह समझ लीजिए कि धन-दौलत, स्त्री पुत्र, खान-पान, भोग-उपभोग आदि जितनी उत्तम उत्तम सुख-सामग्री है वह, तथा इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महा पुरुषोंकी पदवियाँ, अच्छे सत्पुरुषोंकी संगति, दिनों दिन ऐश्वर्यादिकी बढ़वारी, ये सब पात्रदानके फलसे प्राप्त होते हैं। न यही, किन्तु इस पात्रदानके फलसे मोक्ष प्राप्ति भी सुलभ है। राजा श्रेयांसने दानके ही फलसे मुक्ति लाभ किया था। इस प्रकार पात्रदानका अचिन्त्य फल जानकर बुद्धिमानोंको इस ओर अवश्य अपने ध्यानको खींचना चाहिए। जिन जिन सत्पुरुषोंने पात्रदानका आजतक फल पाया है, उन सबके नाम मात्रका उल्लेख भी जिन

भगवान्‌के बिना और कोई नहीं कर सकता, तब उनके सम्बन्धमें कुछ कहना या लिखना मुझसे मतिहीन मनुष्योंके लिए तो असंभव ही है। आचार्योंने ऐसे दानियोंमें सिर्फ चार जनोंका उल्लेख शास्त्रों में किया है। इस कथामें उन्हींका संक्षिप्त चरित मैं पुराने शास्त्रोंके अनुसार लिखूँगा। उन दानियोंके नाम हैं - श्रीषेण, वृषभसेना, कौण्डेश और एक पशु वराह—सूअर। इनमें श्रीषेणने आहारदान, वृषभसेनाने औषधिदान, कौंडेशने शास्त्रदान और सूअरने अभयदान दिया था। उनकी क्रमसे कथा लिखी जाती है।

प्राचीन कालमें श्रीषेण राजाने आहारदान दिया। उसके फलसे वे शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। श्रीशान्तिनाथ भगवान् जय लाभ करें, जो सब प्रकारका सुख देकर अन्तमें मोक्ष सुखके देनेवाले हैं। और जिनका पवित्र चरितका सुनना परम शान्ति का कारण है। ऐसे परोपकारी भगवान्‌का परम पवित्र और जीवमात्र का हित करनेवाला चरित आप लोग भी सुनें, जिसे सुनकर आप सुखलाभ करेंगे।

प्राचीन कालमें इसी भारतवर्षमें मलय नामका एक अति प्रसिद्ध देश था। रत्नसंचयपुर इसीकी राजधानी थी। जैनधर्मका इस सारे देशमें खूब प्रचार था। उस समय इसके राजा श्रीषेण थे। श्रीषेण धर्मज्ञ, उदारमना, न्यायप्रिय, प्रजाहितैषी, दानी और बड़े विचारशील थे। पुण्यसे प्रायः अच्छे अच्छे सभी गुण उन्हें प्राप्त थे। उनका प्रतिद्वंद्वी या शत्रु कोई न था। वे राज्य निर्विघ्न किया करते थे। सदाचारमें उस समय उनका नाम सबसे ऊँचा

था। उनकी दो रानियाँ थीं। उनके नाम थे सिंहनन्दिता और अनन्दिता। दोनों ही अपनी अपनी सुन्दरतामें अद्वितीय थीं, विदुषी और सती थीं। इन दोनोंके दो पुत्र हुए। उनके नाम इन्द्रसेन और उपेन्द्रसेन थे। दोनों ही भाई सुन्दर थे, गुणी थे, शूरवीर थे और हृदयके बड़े शुद्ध थे। इस प्रकार श्रीषेण धन-सम्पत्ति, राज्य-विभव, कुटुम्ब-परिवार आदिसे पूरे सुखी थे। प्रजाका नीतिके साथ पालन करते हुए वे अपने समय को बड़े आनन्द के साथ बिताते थे।

यहाँ एक सात्यकि ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम जंघा था। इसके सत्यभामा नामकी एक लड़की थी। रत्नसंचय पुरके पास बल नामका एक गाँव बसा हुआ था। उसमें धरणीजट नामका ब्राह्मण वेदोंका अच्छा विद्वान् था। अग्नीला इसकी स्त्री थी। अग्निलासे दो लड़के हुए। उनके नाम इन्द्रभूति और अग्निभूति थे। इसके यहां एक दासी-पुत्र (शूद्र) का लड़का रहता था। उसका नाम कपिल था। धरणीजट जब अपने लड़कोंको वेदादिक पढ़ाया करता, उस समय कपिल भी बड़े ध्यानसे उस पाठको चुपचाप छुपे हुए सुन लिया करता था। भाग्यसे कपिलकी बुद्धि बड़ी तेज थी। सो वह अच्छा विद्वान् हो गया। एक दासी-पुत्र भी पढ़-लिख कर महा विद्वान् बन गया, इसका धरणीजटको बड़ा आश्चर्य हुआ। पर सच तो यह है कि बेचारा मनुष्य करे भी क्या, बुद्धि तो कर्मोंके अनुसार होती है न ? जब सर्व साधारणमें कपिलके विद्वान् हो जानेकी चर्चा उठी तब धरणीजट पर ब्राह्मण लोग बड़े बिगड़े और उसे डराने लगे कि तूने यह बड़ा भारी अन्याय किया जो दासी-

पुत्रको पढ़ाया। इसका फल तुझे बहुत बुरा भोगना पड़ेगा। अपने पर अपने जातीय भाइयोंको इस प्रकार क्रोध उगलते देख धरणीजट बड़ा घबराया। तब डरसे उसने कपिलको अपने घरसे निकाल दिया। कपिल उस गाँवसे निकल रास्तेमें ब्राह्मण बन गया और इसी रूपमें वह रत्न संचयपुर आगया। कपिल विद्वान् और सुन्दर था। इसे उस सात्यकि ब्राह्मणने देखा, जिसका कि ऊपर जिकर आचुका है। इसके गुण रूपको देखकर सात्यकि बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मन पर यह बहुत चढ़ गया। तब सात्यकिने इसे ब्राह्मण ही समझ अपनी लड़की सत्यभामाका इसके साथ ब्याह कर दिया। कपिल अनायास इस स्त्री-रत्नको प्राप्त कर सुखसे रहने लगा। राजाने इसके पाण्डित्यकी तारीफ सुन इसे अपने यहाँ पुराण कहनेको रख लिया। इस तरह कुछ वर्ष बीते। एकबार सत्यभामा ऋतुमती हुई। सो उस समय भी कपिलने उससे संसर्ग करना चाहा। उसके इस दुराचारको देखकर सत्यभामाको इसके विषयमें सन्देह हो गया। उसने इस पापीको ब्राह्मण न समझ इससे प्रेम करना छोड़ दिया। वह इससे अलग रह दुःखके साथ अपनी जिन्दगी बिताने लगी।

इधर धरणीजटके कोई ऐसा पापका उदय आया कि जिससे उसकी सब धन-दौलत बरबाद हो गई। वह भिखारीसा हो गया। उसे मालूम हुआ कि कपिल रत्नसंचयपुरमें अच्छी हालतमें है। राजा द्वारा उसे धन-मान खूब प्राप्त है। वह तब उसी समय सीधा कपिलके पास आया। उसे दूरहीसे देखकर कपिल मन ही मन धरणीजट पर बड़ा गुस्सा हुआ। अपनी बढ़ी हुई मान-मर्यादा

के समय इसका अचानक आजाना कपिलको बहुत खटका। पर वह कर क्या सकता था। उसे साथ ही इस बातका बड़ा भय हुआ कि कहीं वह मेरे सम्बन्धमें लोगोंको भड़का न दे। यही सब विचार कर वह उठा और बड़ी प्रसन्नतासे सामने जाकर धरणीजटको इसने नमस्कार किया और बड़े मानसे लाकर उसे ऊँचे आसन पर बैठाया। इसके बाद उसने—पिताजी, मेरी माँ, भाई आदि सब सुखसे तो हैं न ? इस प्रकार कुशल समाचार पूछ कर धरणीजटको स्नान, भोजन कराया और उसका वस्त्रादिसे खूब सत्कार किया। फिर सबसे आगे एक खास मानकी जगह बैठाकर कपिलने सब लोगोंको धरणीजटका परिचय कराया कि ये ही मेरे पिताजी हैं। बड़े विद्वान और आचार-विचारवान् हैं। कपिलने यह सब मायाचार इसीलिए किया था कि कहीं उसकी माताका सब भेद खुल न जाय। धरणीजट दरिद्री हो रहा था। धनकी उसे चाह थी ही, सो उसने उसे अपना पुत्र मानलेनेमें कुछ भी आनाकानी न की। धनके लोभसे उसे यह पाप स्वीकार कर लेना पड़ा। ऐसे लोभको धिक्कार है, जिसके वश हो मनुष्य हर एक पापकर्म कर डालता है। तब धरणीजट वहीं रहने लग गया। यहाँ रहते इसे कई दिन हो चुके। सबके साथ इसका थोड़ा बहुत परिचय भी हो गया। एक दिन मौका पाकर सत्यभामाने इसे कुछ थोड़ा बहुत द्रव्य देकर एकान्तमें पूछा— महाराज, आप ब्राह्मण हैं और मेरा विश्वास है कि ब्राह्मण देव कभी झूठ नहीं बोलते। इसलिए कृपाकर मेरे सन्देहको दूर कीजिए। मुझे आपके इन कपिलजीका दुराचार देख यह विश्वास नहीं होता कि ये आप सरीखे पवित्र ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न हुए हों, तब क्या

वास्तवमें ये ब्राह्मण ही हैं या कुछ गोलमाल है। धरणीजटको कपिल से इसलिए द्वेष हो ही रहा था कि भरी सभामें कपिलने उसे अपना पिता बता उसका अपमान किया था। और दूसरे उसे धनकी चाह थी, सो उसके मनके माफिक धन सत्यभामाने उसे पहले ही दे दिया था। तब वह कपिलकी सच्ची हालत क्यों छिपायेगा? जो हो, धरणीजट सत्यभामाको सब हाल कहकर और प्राप्त धन लेकर रत्नसंचय पुरसे चल दिया। सुनकर कपिल पर सत्यभामाकी घृणा पहलेसे कोई सौ गुणी बढ़ गई। उसने तब उससे बोलना-चालना तक छोड़कर एकन्तावास स्वीकार कर लिया, पर अपने कुलाचारकी मान-मर्यादाको न छोड़ा। सत्यभामाको इस प्रकार अपनेसे घृणा करते देख कपिल उससे बलात्कार करने पर उतारू हो गया। तब सत्यभामा घरसे भागकर श्रीषेण महाराजकी शरण आगई और उसने सब हाल उनसे कह दिया। श्रीषेणने तब उस पर दयाकर उसे अपनी लड़कीकी तरह अपने यहीं रख लिया। कपिल सत्यभामा के अन्यायकी पुकार लेकर श्रीषेणके पास पहुँचा। उसके व्यभिचार की हालत उन्हें पहले ही मालूम हो चुकी थी, इसलिए उसकी कुछ न सुनकर श्रीषेणने उस लम्पटी और कपटी ब्राह्मणको अपने देशहीसे निकाल दिया। सो ठीक ही है राजोंको सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंको सजा करनी ही चाहिए। ऐसा न करने पर वे अपने कर्त्तव्यसे च्युत होते हैं और प्रजाके धनहारी हैं।

एक दिन श्रीषेणके यहां आदित्यगति और अरिंजय नामके दो चारणऋद्धिके धारी मुनिराज पृथिवीको अपने पांवोंसे पवित्र

करते हुए आहारके लिये आये। श्रीषेणने बड़ी भक्तिसे उनका आह्वान कर उन्हें पवित्र आहार कराया। इस पात्रदानसे उनके यहाँ स्वर्गके देवोंने रत्नोंकी वर्षा की, कल्पवृक्षोंके सुन्दर और सुगन्धित फूल बरसाये, दुंदुभी बाजे बजे, मन्द-सुगन्ध वायु बहा और जय जयकार हुआ—खूब बधाइयाँ मिलीं। और सच है, सुपात्रोंको दिये दानके फलसे क्या नहीं हो पाता। इसके बाद श्रीषेणने और बहुत वर्षोंतक राज्य-सुख भोगा। अन्तमें मरकर वे धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वभागकी उत्तर-कुरु भोग भूमिमें उत्पन्न हुए। सच है, साधुओंकी संगतिसे जब मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है तब कौन ऐसी उससे भी बढ़कर वस्तु होगी जो प्राप्त न हो। श्रीषेणकी दोनों रानियाँ तथा सत्यभामा भी इसी उत्तरकुरु भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुईं। ये सब इस भोगभूमिमें दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे मिलनेवाले सुखोंको भोगते हैं और आनन्दसे रहते हैं। यहाँ इन्हें कोई खाने-कमानेकी चिन्ता नहीं करना पड़ती है। पुण्योदयसे प्राप्त हुए भोगोंको निराकुलतासे ये आयु पूर्ण होने तक भोगेंगे। यहाँकी स्थिति बड़ी अच्छी है। यहाँके निवासियोंको कोई प्रकारकी बीमारी, शोक, चिन्ता, दरिद्रता आदिसे होनेवाले कष्ट नहीं सता पाते। इनकी कोई प्रकारके अपघातसे मौत नहीं होती। यहाँ किसीके साथ शत्रुता नहीं होती। यहाँ न अधिक जाड़ा पड़ता और न अधिक गर्मी होती है; किन्तु सदा एकसी सुन्दर ऋतु रहती है। यहाँ न किसीकी सेवा करनी पड़ती है और न किसीके द्वारा अपमान सहना पड़ता है। न यहाँ युद्ध है और न कोई किसीका बैरी ही है। यहाँके लोगोंके भाव सदा पवित्र रहते हैं। आयु पूरी होनेतक ये इसी तरह सुखसे रहते हैं। अन्तमें अपने स्वाभाविक

सरल भावोंसे मृत्यु लाभ कर ये दानी महात्मा कुछ बाकी बचे पुण्य फलसे स्वर्गमें जाते हैं। श्रीषेणने भी भोगभूमिका खूब सुख भोगा। अन्तमें वे स्वर्गमें गये। स्वर्गमें भी मनचाहा दिव्य सुख भोगकर अन्तमें वे मनुष्य हुए। इस जन्ममें ये कई बार अच्छे अच्छे राजघरानेमें उत्पन्न हुए। पुण्यसे फिर स्वर्ग गये। वहाँकी आयु पूरी कर अबकी बार भारतवर्षके सुप्रसिद्ध शहर हस्तिनापुरके राजा विश्वसेनकी रानी ऐराके यहाँ इन्होंने अवतार लिया। यही सोलहवें श्रीशान्तिनाथ तीर्थंकरके नामसे संसारमें प्रख्यात हुए। इनके जन्म समयमें स्वर्गके देवोंने आकर बड़ा उत्सव किया था, इन्हें सुमेरु पर्वत पर लेजाकर क्षीरसमुद्रके स्फटिकसे पवित्र और निर्मल जलसे इनका अभिषेक किया था। भगवान् शान्तिनाथने अपना जीवन बड़ी ही पवित्रताके साथ बिताया। उनका जीवन संसारका आदर्श जीवन है। अन्तमें योगी हो इन्होंने धर्मका पवित्र उपदेश देकर अनेक जनोंको संसारसे पार किया—दुःखोंसे उनकी रक्षा कर उन्हें सुखी किया। अपना संसारके प्रति जो कर्त्तव्य था उसे पूरा कर इन्होंने निर्वाण लाभ किया। यह सब पात्रदानका फल है। इसलिये जो लोग पात्रोंको भक्तिसे दान देंगे वे भी नियमसे ऐसा ही उच्च सुख लाभ करेंगे। यह बात ध्यानमें रखकर सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है, कि वे प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करें। यही दान स्वर्ग और मोक्षके सुखका देने वाला है।

मूलसंघमें कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुये। वे रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारी थे। इन्हीं गुरु महाराजकी कृपासे मुझ अल्पबुद्धि नेमिदत्त

ब्रह्मचारीने पात्रदानके सम्बन्धमें श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌की पवित्र कथा लिखी है। यह कथा मेरे परम शान्तिकी कारण हो।

११०—औषधिदानकी कथा।

जिन भगवान्, जिनवानी और जैन साधुओंके चरणोंको नमस्कार कर औषधिदानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

निरोगी होना, चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहना, धनादि विभूतिका मिलना, ऐश्वर्यका प्राप्त होना, सुन्दर होना, तेजस्वी और बलवान् होना, और अन्तमें स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करना ये सब औषधिदानके फल हैं। इसलिये जो सुखी होना चाहते हैं उन्हें निर्दोष औषधिदान करना उचित है। इस औषधिदानके द्वारा अनेक सज्जनोंने फल प्राप्त किया है, उन सबके सम्बंधमें लिखना औरोंके लिये नहीं तो मुझ अल्प बुद्धिके लिये तो अवश्य असंभव है। उनमें से एक वृषभसेनाका पवित्र चरित यहाँ संक्षिप्तमें लिखा जाता है। आचार्योंने जहाँ औषधिदान देनेवालेका उल्लेख किया है वहाँ वृषभसेनाका ही प्रायः कथन आता है। उन्हींका अनुकरण मैं भी करता हूँ।

भगवान्‌के जन्मसे पवित्र इस भारतवर्षके जनपद नामके देशमें नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम सम्पत्तिसे भरा अतएव अपनी सुन्दरतासे स्वर्गकी शोभाको नीची करनेवाला कावेरी नामका नगर है। जिस समयकी यह कथा है, उस समय कावेरी नगरके राजा

उग्रसेन थे । उग्रसेन प्रजाके सच्चे हितैषी और राजनीतिके अच्छे पंडित थे ।

यहां धनपति नामका एक अच्छा सद्गृहस्थ सेठ रहता था। जिन भगवान्‌की पूजा-प्रभावनादिसे उसे अत्यन्त प्रेम था। इसकी स्त्री धनश्री इसके घरकी मानों दूसरी लक्ष्मी थी। धनश्री सती और बड़े सरल मनकी थी। पूर्व पुण्यसे इसके वृषभसेना नामकी एक देव-कुमारीसी सुन्दरी और सौभाग्यवती लड़की हुई। सच है, पुण्यके उदयसे क्या प्राप्त नहीं होता। वृषभसेनाकी धाय रूपवती इसे सदा नहाया-धुलाया करती थी। इसके नहानेका पानी बह बह कर एक गढ़ेमें जमा हो गया था। एक दिनकी बात है कि रूपमती वृषभसेनाको निल्हा रही थी। इसी समय एक महारोगी कुत्ता उस गढ़ेमें, जिसमें कि वृषभसेनाके नहानेका पानी इकट्ठा हो रहा था, गिर पड़ा। क्या आश्चर्यकी बात है कि जब वह उस पानीमेंसे निकला तो बिलकुल नीरोग देख पड़ा। रूपवती उसे देखकर चकित हो रही। उसने सोचा—केवल साधारण जलसे इसप्रकार रोग नहीं जा सकता। पर यह वृषभसेनाके नहानेका पानी है। इसमें इसके पुण्यका कुछ भाग जरूर होना चाहिये। जान पड़ता है वृषभसेना कोई बड़ी भाग्यशालिनी लड़की है। ताज्जुब नहीं कि यह मनुष्य रूपिणी कोई देवी हो। नहीं तो इसके नहानेके जलमें ऐसी चकित करनेवाली करामात हो ही नहीं सकती। इस पानीकी और परीक्षा कर देखलूँ, जिससे और भी दृढ़ विश्वास हो जायगा कि यह पानी सचमुच ही क्या रोगनाशक है? तब रूपवती थोड़ेसे उस पानीको लेकर अपनी माँके पास आई। इसकी माँकी आंखें कोई बारह वर्षोंसे खराब हो

रही थीं। इससे वह बड़ी दुःखमें थी। आंखोंको रूपवतीने इस जलसे धोकर साफ किया और देखा तो उनका रोग बिलकुल जाता रहा। वे पहलेसी बड़ी सुन्दर हो गईं। रूपवतीको वृषभसेनाके महा पुण्यवती होनेमें अब कोई सन्देह न रह गया। इस रोग नाश करनेवाले जलके प्रभावसे रूपवतीकी चारों और बड़ी प्रसिद्धि हो गई। बड़ी बड़ी दूरके रोगी अपने रोगका इलाज करानेको आने लगे। क्या आँखोंके रोगको, क्या पेटके रोगको, क्या सिर सम्बन्धी पीड़ाओंको और क्या कोढ़ वगैरह रोगोंको, यही नहीं किन्तु जहर सम्बन्धी असाध्यसे असाध्य रोगोंको भी रूपवती केवल एक इसी पानीसे आराम करने लगी। रूपवती इससे बड़ी प्रसिद्ध हो गई।

उग्रसेन और मेघपिंगल राजाकी पुरानी शत्रुता चली आ रही थी। इस समय उग्रसेनने अपने मन्त्री रणपिंगलको मेघपिंगल पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। रणपिंगल सेना लेकर मेघपिंगल पर जा चढ़ा और उसके सारे देशको उसने घेर लिया। मेघपिंगलने शत्रुको युद्धमें पराजित करना कठिन समझ दूसरी ही युक्तिसे उसे देशसे निकाल बाहर करना विचारा और इसके लिये उसने यह योजना की कि शत्रुकी सेनामें जिन जिन कुए बावड़ीसे पीनेको जल आता था उन सबमें अपने चतुर जासूसों द्वारा विष घुलवा दिया। फल यह हुआ कि रणपिंगलकी बहुतसी सेना तो मर गई और बची हुई सेनाको साथ लिये वह स्वयं भी भागकर अपने देश लौट आया। उसकी सेना पर तथा उस पर जो विषका असर हुआ था, उसे रूपवतीने उसी जलसे आराम किया। गुरुओंके वचनामृतसे जैसी जीवोंको शान्ति मिलती है रणपिंगलको उसी प्रकार शान्ति रूपवतीके जल

से मिली और वह रोगमुक्त हुआ।

रणपिंगलका हाल सुनकर उग्रसेनको मेघपिंगल पर बड़ा क्रोध आया तब स्वयं उन्होंने उस पर चढ़ाई की। उग्रसेनने अबकी बार अपने जानते सावधानी रखनेमें कोई कसर न की। पर भाग्य का लेख किसी तरह नहीं मिटता। मेघपिंगलका चक्र उग्रसेन पर भी चल गया। जहर मिले जलको पीकर उनकी भी तबियत बहुत बिगड़ गई। तब जितनी जल्दी उनसे बन सका अपनी राजधानीमें उन्हें लौट आना पड़ा। उनका भी बड़ाही अपमान हुआ। रणपिंगल से उन्होंने, वह कैसे आराम हुआ था, इस बाबत पूछा। रणपिंगलने रूपवतीका जल बतलाया। उग्रसेन तब उसी समय अपने आदमियों को जल ले-आनेके लिये सेठके यहाँ भेजा। अपनी लड़कीका स्नान-जल लेनेको राजाके आदमियोंको आया देख सेठानी धनश्रीने अपने स्वामीसे कहा—क्योंजी, अपनी वृषभसेनाका स्नान-जल राजाके सिर पर छिड़का जाय यह तो उचित नहीं जान पड़ता। सेठने कहा—तुम्हारा यह कहना ठीक है, परन्तु जिसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं तब क्या किया जाय। इसमें अपने बसकी क्या बात है ? हम तो न जान-बूझकर ऐसा करते हैं और न सच्चा हाल किसीसे छुपाते ही हैं, तब इसमें अपना तो कोई अपराध नहीं हो सकता। यदि राजा साहबने पूछा तो हम सब हाल उनसे यथार्थ कह देंगे। सच है, अच्छे पुरुष प्राण जाने पर भी झूठ नहीं बोलते। दोनोंने विचार कर रूपवतीको जल देकर उग्रसेनके महल पर भेजा। रूपवतीने उस जलको राजाके सिर पर छिड़क कर उन्हें आराम कर दिया। उग्रसेन रोगमुक्त हो गये। उन्हें बहुत खुशी हुई। रूपवतीसे उन्होंने

उस जलका हाल पूछा। रूपवतीने कोई बात न छुपाकर जो बात सच्ची थी वह राजासे कह दी। सुनकर राजाने धनपति सेठको बुलाया और उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। वृषभसेनाका हाल सुनकर ही उग्रसेनकी इच्छा उसके साथ ब्याह करनेकी हो गई थी और इसीलिये उन्होंने मौका पाकर धनपतिसे अपनी इच्छा कह सुनाई। धनपतिने उसके उत्तरमें कहा—राजराजेश्वर, मुझे आपकी आज्ञा मान लेनेमें कोई रुकावट नहीं है। पर इसके साथ आपको स्वर्ग-मोक्षकी देनेवाली और जिसे इन्द्र, स्वर्गवासी देव, चक्रवर्ती, विद्याधर, राजे-महाराजे आदि महापुरुष बड़ी भक्तिके साथ करते हैं ऐसी अष्टाह्निक पूजा करनी होगी और भगवान्का खूब उत्सवके साथ अभिषेक करना होगा। सिवा इसके आपके यहां जो पशु-पक्षी पींजरोंमें बन्द हैं, उन्हें तथा कैदियोंको छोड़ना होगा। ये सब बातें आप स्वीकार करें तो मैं वृषभसेना का ब्याह आपके साथ कर सकता हूँ। उग्रसेनने धनपतिकी सब बातें स्वीकार कीं। और उसी समय उन्हें कार्यमें भी परिणत कर दिया।

वृषभसेनाका ब्याह हो गया। सब रानियोंमें पट्टरानीका सौभाग्य उसे ही मिला। राजाने अब अपना राज्यकीय कामोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध कम कर दिया। उनका प्रायः समय वृषभसेनाके साथ सुखोपभोगमें जाने लगा। वृषभसेना पुण्योदयसे राजाकी खास प्रेम-पात्र हुई। स्वर्ग सरीखे सुखोंको वह भोगने लगी। यह सब कुछ होने पर भी वह अपने धर्म-कर्मको थोड़ा भी न भूल गई थी। वह जिन भगवान्की सदा जलादि आठ द्रव्योंसे पूजा करती, उनका अभिषेक करती, साधुओंको चारों प्रकारका दान देती, अपनी शक्ति

के अनुसार व्रत, तप, शील, संयमादिका पालन करती, और धर्मात्मा सत्पुरुषोंका अत्यन्त प्रेमके साथ आदर-सत्कार करती। और सच है, पुण्योदयसे जो उन्नति हुई, उसका फल तो यही है कि साधर्मियोंसे प्रेम हो, हृदयमें उनके प्रति उच्च भाव हो। वृषभसेना अपना जो कर्तव्य था, उसे पूरा करती, भक्तिसे जिनधर्मकी जितनी बनती उतनी सेवा करती और सुखसे रहा करती थी।

राजा उग्रसेनके यहां बनारसका राजा पृथिवीचन्द्र कैद था। और वह अधिक दुष्ट था। पर उग्रसेनका तो तब भी यही कर्त्तव्य था कि वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्याहके समय उसे भी छोड़ देते। पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। यह अनुचित हुआ। अथवा यों कहिये कि जो अधिक दुष्ट होते हैं उनका भाग्य ही ऐसा होता है जो वे मौके पर भी बन्धन मुक्त नहीं हो पाते।

पृथिवीचन्द्रकी रानीका नाम नारायणदत्ता था। उसे आशा थी कि—उग्रसेन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वृषभसेनाके साथ ब्याह के समय मेरे स्वामीको अवश्य छोड़ देंगे। पर उसकी वह आशा व्यर्थ हुई। पृथिवीचन्द्र तब भी न छोड़े गये। यह देख नारायणदत्ता ने अपने मंत्रियोंसे सलाह ले पृथिवीचन्द्रको छुड़ानेके लिए एक दूसरी ही युक्ति की और उसमें उसे मनचाही सफलता भी प्राप्त हुई। उस ने अपने यहां वृषभसेनाके नामसे कई दानशालाएँ बनवाईं। कोई विदेशी या स्वदेशी हो सबको उनमें भोजन करनेको मिलता था। इन दानशालाओंमें बढ़ियासे बढ़िया छहों रसमय भोजन कराया जाता था। थोड़े ही दिनोंमें इन दानशालाओंकी प्रसिद्धि चारों ओर हो गई। जो इनमें एक बार भी भोजन कर जाता वह फिर इनकी

तारीफ करनेमें कोई कमी न करता था। बड़ी बड़ी दूरसे इनमें भोजन करनेको लोग आने लगे। कावेरीके भी बहुतसे ब्राह्मण यहां भोजन कर जाते थे। उन्होंने इन शालाओंकी बहुत तारीफ की।

रूपवतीको इन वृषभसेनाके नामसे स्थापित की गई दान-शालाओंका हाल सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही उसे वृषभसेना पर इस बातसे बड़ा गुस्सा आया कि मुझे बिना पूछे उसने बनारसमें ये शालाएँ बनवाई ही क्यों? और इसका उसने वृषभसेनाको उलाहना भी दिया। वृषभसेनाने तब कहा—मां, मुझ पर तुम व्यर्थ ही नाराज होती हो। न तो मैंने कोई दानशाला बनारसमें बनवाई और न मुझे उनका कुछ हाल ही मालूम है। हाँ यह संभव हो सकता है कि किसीने मेरे नामसे उन्हें बनाया हो। पर इसका शोध लगाना चाहिए कि किसने तो ये शालाएँ बनवाईं और क्यों बनवाईं? आशा है पता लगानेसे सब रहस्य ज्ञात हो जायगा। रूपवतीने तब कुछ जासूसोंको उन शालाओंकी सच्ची हकीकत जाननेको भेजा। उनके द्वारा रूपवतीको मालूम हुआ कि वृषभसेनाके ब्याह समय उग्रसेनने सब कैदियोंको छोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञाके अनुसार पृथिवीचन्द्रको उन्होंने न छोड़ा। यह बात वृषभसेनाको जान पड़े-उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हो इसलिए ये दान-शालाएँ उसके नामसे पृथिवीचन्द्रकी रानी नारायणदत्ताने बनवाई हैं। रूपवतीने यह सब हाल वृषभसेना से कहा। वृषभसेनाने तब उग्रसेनसे प्रार्थना कर उसी समय पृथिवी-चन्द्रको छुड़वा दिया। पृथिवीचन्द्र वृषभसेनाके इस उपकारसे बड़ा कृतज्ञ हुआ। उसने इस कृतज्ञताके वश हो उग्रसेन और वृषभसेना

का एक बहुत ही बढ़िया चित्र तैयार करवाया। उस चित्रमें इन दोनों राजारानीके पाँवोंमें सिर झुकाया हुआ अपना चित्र भी पृथिवीचन्द्रने खिचवाया। वह चित्र फिर उनकी भेंट कर उसने वृषभसेनासे कहा—मां, तुम्हारी कृपासे मेरा जन्म सफल हुआ। आपकी इस दयाका मैं जन्म जन्ममें ऋणी रहूँगा। आपने इस समय मेरा जो उपकार किया उसका बदला तो मैं क्या चुका सकूँगा पर उसकी तारीफमें कुछ कहने तकके लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। पृथिवीचन्द्रकी यह नम्रता यह विनयशीलता देखकर उग्रसेन उस पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका तब बड़ा आदर-सत्कार किया।

मेघपिङ्गल उग्रसेनका शत्रु है, इसका जिकर ऊपर आया है। जो हो, उग्रसेनसे वह भले ही बिलकुल न डरता हो, पर पृथिवीचन्द्रसे बहुत डरता है। उसका नाम सुनते ही वह काँप उठता है। उग्रसेनको यह बात मालूम थी। इस लिए अबकी बार उन्होंने पृथिवीचन्द्र को उस पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की। उनकी आज्ञा सिर पर चढ़ा पृथिवीचन्द्र अपनी राजधानीमें गया। और तुरत उसने अपनी सेनाको मेघपिङ्गल पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की। सेनाके प्रयाणका बाजा बजनेवाला ही था कि कावेरी नगरसे खबर आगई—"अब चढ़ाईकी कोई जरूरत नहीं। मेघपिङ्गल स्वयं महाराज उग्रसेनके दरबारमें उपस्थित हो गया है।" बात यह थी कि मेघपिङ्गल पृथिवीचन्द्रके साथ लड़ाईमें पहले कई बार हार चुका था। इसलिए वह उससे बहुत डरता था। यही कारण था कि उसने पृथिवीचन्द्रसे लड़ना उचित न समझा। तब अगत्या

उसे उग्रसेन की शरण आजाना पड़ा। अब वह उग्रसेन का सामन्त राजा बन गया। सच है, पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

एक दिन दरबार लगा हुआ था। उग्रसेन सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उस समय उन्होंने एक प्रतिज्ञा की—आज सामन्त-राजों द्वारा जो भेंट आयगी, वह आधी मेघपिङ्गलको और आधी श्रीमती वृषभसेनाकी भेंट होगी। इसलिए कि उग्रसेन महाराजकी अबसे मेघपिङ्गल पर पूरी कृपा हो गई थी। आज और बहुतसी धन-दौलतके सिवा दो बहु-मूल्य सुन्दर कम्बल उग्रसेनकी भेंटमें आये। उग्रसेनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भेंटका आधा हिस्सा मेघपिङ्गलके यहाँ और आधा हिस्सा वृषभसेनाके यहाँ पहुँचा दिया। धन-दौलत, वस्त्राभूषण, आयु आदि ये सब नाश होनेवाली वस्तुएँ हैं, तब इनका प्राप्त करना सफल तभी हो सकता है जब कि ये परोपकारमें लगाई जायँ—इनके द्वारा दूसरों का भला हो।

एक दिन मेघपिङ्गलकी रानी इस कम्बलको ओढ़े किसी आवश्यक कार्यके लिए वृषभसेनाके महल आई। पाठकोंको याद होगा कि ऐसा ही एक कम्बल वृषभसेनाके पास भी है। आज वस्त्रोंके उतारने और पहरनेमें भाग्यसे मेघपिङ्गलकी रानीका कम्बल वृषभसेनाके कम्बलसे बदल गया। उसे इसका कुछ खयाल न रहा और वह वृषभसेनाका कम्बल ओढ़े ही अपने महल आगई। कुछ दिनों बाद मेघपिंगलको राज-दरबारमें जानेका काम पड़ा। वह वृषभसेनाके इसी कम्बलको ओढ़े चला गया। इस कम्बलको ओढ़े मेघपिंगल

को देखते ही उग्रसेनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने वृषभसेनाके कम्बलको पहचान लिया। उनकी आँखोंसे आगकीसी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्हें काटो तो खून नहीं। महारानी वृषभसेनाका कम्बल इसके पास क्यों और कैसे गया ? इसका कोई गुप्त कारण जरूर होना ही चाहिए। बस, यह विचार उनके मनमें आते ही उनकी अजब हालत हो गई। उग्रसेनका अपने पर अकारण क्रोध देखकर मेघपिंगलकी समझमें इसका कुछ भी कारण न आया। पर ऐसी दशामें उसने अपना वहाँ रहना उचित न समझा। वह उसी समय वहाँसे भागा और एक अच्छे तेज घोड़े पर सवार हो बहुत दूर निकल गया। जैसे दुर्जनोंसे डरकर सत्पुरुष दूर जा निकलते हैं। उसे भागा देख उग्रसेनका सन्देह और बढ़ा। उन्होंने तब एक ओर तो मेघपिंगलको पकड़ लानेके लिए अपने सवारोंको दौड़ाया और दूसरी ओर क्रोधाग्निसे जलते हुए आप वृषभसेनाके महल पहुँचे। वृषभसेनासे कुछ न कह सुनकर कि तूने अमुक अपराध किया है, एक साथ उसे समुद्रमें फिकवानेका उन्होंने हुक्म दे दिया। बेचारी निर्दोष वृषभसेना राजाज्ञाके अनुसार समुद्रमें डालदी गई। उस क्रोधको धिक्कार ! उस मूर्खताको धिक्कार ! जिसके वश हो लोग योग्य और अयोग्य कार्यका भी विचार नहीं कर पाते। अज्ञान मनुष्य किसी को कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे—दुःखोंकी कसोटी पर उसे कितना ही क्यों न चढ़ावें, उसकी निरपराधताको अपनी क्रोधाग्निमें क्यों न झोंकदें, पर यदि वह कष्ट सहनेवाला मनुष्य निरपराध है—निर्दोष है, उसका हृदय पवित्रतासे सना है—रोम रोममें उसके पवित्रताका वास है तो निःसन्देह

उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्योंको कितना ही कष्ट हो, उससे उनका हृदय रत्ती भर भी विचलित न होगा। बल्कि जितना जितना वह इस परीक्षाकी कसौटी पर चढ़ता जायगा उतना उतना ही अधिक उसका हृदय बलवान और निर्भीक बनता जायगा। उग्रसेन महाराज भले ही इस बातको न समझें कि वृषभसेना निर्दोष है—उसका कोई अपराध नहीं, पर पाठकोंको अपने हृदयमें इस बातका अवश्य विश्वास है, न केवल विश्वास ही है, किन्तु बात भी वास्तवमें यही सत्य है कि वृषभसेना निरपराध है। वह सती है, निष्कलंक है। जिस कारण उग्रसेन महाराज उस पर नाराज हुए हैं, वह कारण निर्भ्रान्त नहीं है। वे यदि जरा गम खाकर कुछ शान्तिसे विचार करते तो उनकी समझमें भी वृषभसेना की निर्दोषता बहुत जल्दी आजाती। पर क्रोधने उन्हें आपेमें न रहने दिया। और इसीलिए उन्होंने एकदम क्रोधसे अन्धे हो एक निर्दोष व्यक्तिको कालके मुँहमें फैंक दिया। जो हो, वृषभसेनाकी पवित्र जीवनकी उग्रसेनने तो कुछ कीमत न समझी—उसके साथ महान् अन्याय किया, पर वृषभसेनाको अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह जानती थी कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। फिर मुझे कोई ऐसी बात नहीं देख पड़ती कि जिसके लिए मैं दुःख कर अपने आत्माको निर्बल बनाऊँ। बल्कि मुझे इस बातकी प्रसन्नता होनी चाहिए कि सत्यके लिए मेरा जीवन गया। उसने ऐसे ही और बहुतसे विचारों से अपने आत्माको खूब बलवान् और सहन-शील बना लिया। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि सत्यता और पवित्रताके सामने किसीकी नहीं चलती। बल्कि सबको उनके लिए अपना मस्तक

झुकाना पड़ता है। वृषभसेना अपनी पवित्रता पर विश्वास रखकर भगवान्के चरणोंका ध्यान करने लगी। अपने मनको उसने परमात्म-प्रेममें लीन कर लिया। उसने साथ ही प्रतिज्ञा की कि यदि इस परिक्षामें मैं पास होकर नया जीवन लाभ कर सकूँ तो अब मैं संसारकी विषयवासनामें न फँसकर अपने जीवनको तपके पवित्र प्रवाहमें बहा दूँगी, जो तप जन्म और मरणका ही नाश करनेवाला है। उस समय वृषभसेनाकी वह पवित्रता, वह दृढ़ता, वह शीलका प्रभाव, वह स्वभावसिद्ध प्रसन्नता आदि बातोंने उसे एक प्रकाशमान उज्ज्वल ज्योतिके रूपमें परिणत कर दिया था। उसके इस अलौकिक तेजके प्रकाशने स्वर्गके देवोंकी आँखों तकमें चका चौंध पैदा कर दी। उन्हें भी इस तेजस्विता-देवीको सिर झुकाना पड़ा। वे वहाँसे उसी समय आये और वृषभसेनाको एक अमूल्य सिंहासन पर अधिष्ठित कर उन्होंने उस मनुष्यरूप धारिणी पवित्रताकी मूर्तिमान देवीकी बड़े भक्ति भावोंसे पूजा की, उसका जय जयकार मनाया, बहुत सत्य है, पवित्रशीलके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है। यही शील आगकी जल, समुद्रको स्थल, शत्रुको मित्र, दुर्जनको सज्जन, और विषको अमृतके रूपमें परिणत कर देता है। शीलका प्रभाव अचिन्त्य है। इसी शीलके प्रभावसे धन-सम्पत्ति, कीर्ति, पुण्य, ऐश्वर्य, स्वर्ग-सुख आदि जितनी संसारमें उत्तम वस्तुएँ हैं वे सब अनायास—बिना परिश्रम किये प्राप्त हो जाती हैं। न यही किन्तु शीलवान् मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। इस लिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे अपने चंचल मनरूपी बन्दरको वश कर—उसे कहीं न जाने देकर पवित्र शीलव्रतकी, जिसे कि भगवान्ने

सब पापों का नाश करनेवाला बतलाया है, रक्षामें लगावें।

वृषभसेनाके शीलका माहात्म्य जब उग्रसेनको जान पड़ा तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। अपनी बे-समझी पर वे बहुत पछताये। वृषभसेनाके पास जाकर उससे उन्होंने अपने इस अज्ञानकी क्षमा कराई और महल पर चलनेके लिए उससे प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेनाने पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि इस कष्टसे छुटकारा पाते ही मैं योगिनी बनकर आत्महित करूँगी और इस पर वह दृढ़ भी वैसी ही थी; परन्तु इस समय जब कि खुद महाराज उसे लिवानेको आये तब उनका अपमान न हो; इसलिए उसने एक बार महल जाकर एक-दो दिन बाद फिर दीक्षा लेना निश्चय किया। वह बड़ी वैरागिन होकर महाराजके साथ महल आ रही थी। पर जिसके मनमें जैसी भावना होती है और वह यदि सच्चे हृदयसे उत्पन्न हुई होती है तो वह नियमसे पूरी होती ही है। वृषभसेनाके मनमें जो पवित्र भावना थी वह सच्चे संकल्पसे की गई थी। इसलिए उसे पूरी होना ही चाहिए था और वह हुई भी। रास्तेमें वृषभसेनाको एक महा तपस्वी और अवधिज्ञानी गुणधर नामके मुनिराजके पवित्र दर्शन हुए। वृषभसेनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें हाथ जोड़ सिर नवाया। इसके बाद उसने उनसे पूछा—हे दयाके समुद्र योगिराज, क्या आप कृपाकर मुझे यह बतलावेंगे कि मैंने पूर्व जन्मोंमें क्या क्या अच्छे या बुरे कर्म किये हैं, जिनका मुझे यह फल भोगना पड़ा? मुनि बोले—पुत्रि, सुन तुझे तेरे पूर्व जन्मका हाल सुनाता हूँ। तू पहले जन्ममें ब्राह्मणकी लड़की थी। तेरा नाम नागश्री था। इसी राज-घरानेमें तू बुहारी दिया करती थी। एक दिन मुनिदत्त नामके

योगिराज महलके कोटके भीतर एक वायु रहित पवित्र गढ़ेमें बैठे ध्यान कर रहे थे। समय सन्ध्याका था। इसी समय तू बुहारी देती हुई इधर आई। तूने मूर्खतासे क्रोध कर मुनिसे कहा—ओ नंगे ढौंगी, उठ यहाँसे, मुझे झाड़ने दे। आज महाराज इसी महलमें आवेंगे। इसलिए इस स्थानको मुझे साफ करना है। मुनि ध्यानमें थे, इसलिए वे उठे नहीं; और न ध्यान पूरा होने तक उठ ही सकते थे। वे वैसेके वैसे ही अडिग बैठे रहे। इससे तुझे और अधिक गुस्सा आया। तूने तब सब जगहका कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर मुनिको उससे ढक दिया। बाद तू चली गई। बेटा, तू तब मूर्ख थी—कुछ समझती न थी। पर तूने वह काम बहुत ही बुरा किया था। तू नहीं जानती थी कि साधु-सन्त तो पूजा करने योग्य होते हैं, उन्हें कष्ट देना उचित नहीं। जो कष्ट देते हैं वे बड़े मूर्ख और पापी हैं। अस्तु, सवेरे राजा आये। वे इधर होकर जा रहे थे। उनकी नजर इस गढे पर पड़ गई। मुनिके सांस लेनेसे उन परका वह कूड़ा-कचरा ऊँचा-नीचा हो रहा था। उन्हें कुछ सन्देहसा हुआ। तब उन्होंने उसी समय उस कचरेको हटाया। देखा तो उन्हें मुनि देख पड़े। राजाने उन्हें निकाल लिया। तुझे जब यह हाल मालूम हुआ और आकर तूने उन शान्तिके मन्दिर मुनिराजको पहलेसा ही शान्त पाया तब तुझे उनके गुणोंकी कीमत जान पड़ी। तू तब बहुत पछताई। अपने कर्मोंको तूने बहुत बहुत धिक्कारा। मुनिराजसे अपने अपराधकी क्षमा कराई। तब तेरी श्रद्धा उन पर बहुत ही हो गई। मुनिके उस कष्टके दूर करनेका तूने बहुत यत्न किया, उनकी औषधि की और उनकी भरपूर सेवा की। उस सेवाके फलसे तेरे पापकर्मोंकी

स्थिति बहुत कम रह गई। बहिन, उसी मुनि सेवाके फलसे तू इस जन्ममें धनपति सेठकी लड़की हुई। तूने जो मुनिको औषधिदान दिया था उससे तो तुझे वह सर्वौषधि प्राप्त हुई जो तेरे स्नानके जलसे कठिनसे कठिन रोग क्षण-भरमें नाश हो जाते हैं और मुनिको कचरेसे ढककर जो उन पर घोर उपसर्ग किया था, उससे तुझे इस जन्ममें झूठा कलंक लगा। इसलिये बहिन, साधुओंको कभी कष्ट देना उचित नहीं। किन्तु ये स्वर्ग या मोक्ष-सुखकी प्राप्तिके कारण हैं, इसलिये इनकी तो बड़ी भक्ति और श्रद्धासे सेवा-पूजा करनी चाहिये। मुनिराज द्वारा अपना पूर्वभव सुनकर वृषभसेनाका वैराग्य और बढ़ गया। उसने फिर महल पर न जाकर अपने स्वामीसे क्षमा कराई और संसारकी सब माया ममताका पेचीला जाल तोड़कर परलोक-सिद्धिके लिये इन्हीं गुणधर मुनि द्वारा योग-दीक्षा ग्रहण करली। जिस प्रकार वृषभसेनाने औषधिदान देकर उसके फलसे सर्वौषधि प्राप्त की उसी तरह और बुद्धिमानोंको भी उचित है कि वे जिसे जिस दानकी जरूरत समझें उसीके अनुसार सदा हर एककी व्यवस्था करते रहें। दान महान् पवित्र कार्य है और पुण्यका कारण है।

गुणधर मुनिके द्वारा वृषभसेनाका पवित्र और प्रसिद्ध चरित्र सुनकर बहुतसे भव्यजनोंने जैनधर्मको धारण किया—जिनको जैनधर्मके नाम तकसे चिढ़ थी वे भी उससे प्रेम करने लगे। इन भव्यजनोंको तथा मुझे सती वृषभसेना पवित्र करे—हृदयमें चिरकालसे स्थान किये हुए राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, मत्सरता

आदि दुर्गुणोंको, जो आत्म-प्राप्तिसे दूर रखनेवाले हैं, नाश कर उनकी जगह पवित्रताकी प्रकाशमान ज्योतिको जगावे।

१११–शास्त्र-दानकी कथा।

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर सुख प्राप्तिकी कारण शास्त्र दानकी कथा लिखी जाती है।

मैं उस भारती—सरस्वतीको नमस्कार करता हूं, जिसके प्रगटकर्त्ता जिन भगवान् हैं और जो आँखोंके आड़े आनेवाले–पदार्थों का ज्ञान न होने देनेवाले अज्ञान-पटलको नाश करनेवाली सलाई है। भावार्थ—नेत्ररोग दूर करनेके लिये जैसे सलाई द्वारा सुरमा लगाया जाता है या कोई सलाई ही ऐसी वस्तुओंकी बनी होती है जिसके द्वारा सब नेत्र-रोग नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह अज्ञानरूपी रोगको नष्ट करनेके लिये सरस्वती—जिनवाणी सलाईका काम देनेवाली है। इसकी सहायतासे पदार्थोंका ज्ञान बड़े सहजमें हो जाता है।

उन मुनिराजोंको मैं नमस्कार करता हूँ, जो मोहको जीतने वाले हैं, रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रसे विभूषित हैं और जिनके चरण-कमल लक्ष्मीके—सब सुखोंके स्थान हैं।

इसप्रकार देव, गुरु और शास्त्रको नमस्कार कर शास्त्रदान करनेवालेकी कथा संक्षेपमें यहाँ लिखी जाती है। इसलिये कि इसे पढ़कर सत्पुरुषोंके हृदयमें ज्ञानदानकी पवित्र भावना जाग्रत हो।

ज्ञान जीवमात्रका सर्वोत्तम नेत्र है। जिसके यह नेत्र नहीं उसके चर्म नेत्र होने पर भी वह अन्धा है, उसके जीवनका कुछ मूल्य नहीं होता। इसलिये अकिञ्चित्कर जीवनको मूल्यवान् बनानेके लिए ज्ञान-दान देना ही चाहिये। यह दान सब दानोंका राजा है। और दानों द्वारा थोड़े समय की और एक ही जीवनकी ख्वाइशें मिटेंगी, पर ज्ञान-दानसे जन्म जन्मकी ख्वाइशें मिटकर वह दाता और वह दान लेनेवाला ये दोनों ही उस अनन्त स्थानको पहुँच जाते हैं, जहाँ सिवा ज्ञानके कुछ नहीं है—ज्ञान ही जिनका आत्मा हो जाता है। यह हुई परलोककी बात। इसके सिवा ज्ञानदानसे इस लोकमें भी दाताकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल जाती है। सारा संसार उसकी शत मुखसे बड़ाई करता है। ऐसे लोग जहां जाते हैं वहीं उनका मनमाना आव-आदर होता है। इसलिये ज्ञान-दान भुक्ति और मुक्ति इन दोनोंका ही देनेवाला है। अतः भव्यजनोंको उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे स्वयं ज्ञान-दान करें और दूसरोंको भी इस पवित्र मार्गमें आगे करें। इस ज्ञान-दानके सम्बन्धमें एक बात ध्यान देनेकी यह है कि यह सम्यकपनेको लिये हुए हो अर्थात् ऐसा हो कि जिससे किसी जीवका अहित—बुरा न हो, जिसमें किसी तरहका विरोध या दोष न हो। क्योंकि कुछ लोग उसे भी ज्ञान बतलाते हैं, जिसमें जीवोंकी हिंसाको धर्म कहा गया है—धर्मके बहाने जीवोंको अकल्याणका मार्ग बतलाया जाता है और जिसमें कहीं कुछ कहा गया है और कहीं कुछ कहा गया है—जो परस्परका विरोधी है। ऐसा ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं किन्तु मिथ्याज्ञान है। इसलिए सच्चे–सम्यग्ज्ञान-दान देनेकी आवश्यकता है। जीव अनादिसे कर्मोंके वश हुआ अज्ञानी

बनकर अपने निज ज्ञानमय शुद्ध स्वरूपको भूल गया है और माया-ममताके पेंचीले जालमें फँस गया है, इसलिए प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि जिससे यह अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर सके। ऐसी दशामें इसे असुखका रास्ता बतलाना उचित नहीं। सुख प्राप्त करनेका सच्चा प्रयत्न सम्यग्ज्ञान है। इसलिये दान, मान, पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन आदिसे इस सम्यग्ज्ञानकी आराधना करना चाहिये। ज्ञान प्राप्त करनेकी पांच भावनाएँ ये हैं—उन्हें सदा उपयोगमें लाते रहना चाहिये। वे भावनाएँ हैं—वाचना-पवित्र ग्रन्थका स्वयं अध्ययन करना या दूसरे पुरुषोंको कराना, पृच्छना—किसी प्रकारके सन्देहको दूर करनेके लिए परस्परमें पूछ-ताछ करना, अनुप्रेक्षा—शास्त्रोंमें जो विषय पढ़ा हो या सुना हो उसका बार बार मनन-चिन्तन करना, आम्नाय पाठका शुद्ध पढ़ना या शुद्ध ही पढ़ाना, और धर्मोपदेश-पवित्र धर्मका भव्यजनको उपदेश करना। ये पाँचों भावनाएं ज्ञान बढ़ानेकी कारण हैं। इसलिये इनके द्वारा सदा अपने ज्ञानकी वृद्धि करते रहना चाहिये। ऐसा करते रहनेसे एक दिन वह आयगा जब कि केवलज्ञान भी प्राप्त हो जायगा। इसीलिये कहा गया कि ज्ञान सर्वोत्तम दान है। और यही संसारके जीवमात्रका हित करनेवाला है। पुरा कालमें जिन जिन भव्य जनोंने ज्ञानदान किया आज तो उनके नाम मात्रका उल्लेख करना भी असंभव है, तब उनका चरित लिखना तो दूर रहा। अस्तु, कौण्डेशका चरित ज्ञानदान करनेवालोंमें अधिक प्रसिद्ध है। इसलिए उसीका चरित संक्षेपमें लिखा जाता है।

जिनधर्मके प्रचार या उपदेशादिसे पवित्र हुए इस भारतवर्षमें कुरुमरी गाँवमें गोविन्द नामका एक ग्वाल रहता था। उसने एक बार जंगलमें एक वृक्षकी कोटरमें जैनधर्मका एक पवित्र ग्रंथ देखा। उसे वह अपने घर पर ले-आया और रोज रोज उसकी पूजा करने लगा। एक दिन पद्मनंदि नामके महात्माको गोविन्दने जाते देखा। इसने वह ग्रन्थ इन्हें मुनिकी भेंट कर दिया।

यह जान पड़ता है कि इस ग्रन्थ द्वारा पहले भी मुनियोंने यहां भव्यजनोंको उपदेश किया है, इसके पूजा महोत्सव द्वारा जिन धर्मकी प्रभावना की है और अनेक भव्यजनोंको कल्याण मार्गमें लगाकर सच्चे मार्गका प्रकाश किया है। अन्तमें वे इस ग्रन्थको इसी वृक्षकी कोटरमें रखकर विहार कर गए हैं। उनके बाद जबसे गोविन्दने इस ग्रन्थको देखा तभीसे वह इसकी भक्ति और श्रद्धासे निरंतर पूजा किया करता था। इसी समय अचानक गोविन्दकी मृत्यु हो गई। वह निदान करके इसी कुरुमरी गाँवमें गाँवके चौधरीके यहाँ लड़का हुआ। इसकी सुन्दरता देखकर लोगोंकी आंखें इस परसे हटती ही न थीं—सब इससे बड़े प्रसन्न होते थे। लोगोंके मनको प्रसन्न करना-उनकी अपने पर प्रीति होना यह सब पुण्यकी महिमा है। इसके पल्लेमें पूर्व जन्मका पुण्य था। इसलिये इसे ये सब बातें सुलभ थीं।

एक दिन इसने उन्हीं पद्मनन्दि मुनिको देखा, जिन्हें कि इसने गोविन्द ग्वालके भवमें पुस्तक भेंट की थी। उन्हें देखकर इसे जातिस्मरण-ज्ञान हो गया। मुनिको नमस्कार कर तब धर्मप्रेमसे इसने उनसे दीक्षा ग्रहण करली। इसकी प्रसन्नताका कुछ पार न

रहा। यह बड़े उत्साहसे तपस्या करने लगा। दिनों दिन इसके हृदय की पवित्रता बढ़ती ही गई। आयुके अन्तमें शान्तिसे मृत्यु लाभ कर यह पुण्यके उदयसे कौण्डेस नामका राजा हुआ। कौण्डेश बड़ा वीर था। तेजमें वह सूर्यसे टक्कर लेता था। सुन्दरता उसकी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि उसे देखकर कामदेवको भी नीचा मुँह कर लेना पड़ता था। उसकी स्वभाव-सिद्ध कान्तिको देखकर तो लज्जाके मारे बेचारे चन्द्रमाका हृदय ही काला पड़ गया। शत्रु उसका नाम सुनकर कांपते थे। वह बड़ा ऐश्वर्यवान् था, भाग्यशाली था, यशस्वी था और सच्चा धर्मज्ञ था। वह अपनी प्रजाका शासन प्रेम और नीतिके साथ करता था। अपनी सन्तानके माफिक ही उसका प्रजा पर प्रेम था। इस प्रकार बड़े ही सुख-शान्तिसे उसका समय बीतता था।

इस तरह कौण्डेशका बहुत समय बीत गया। एक दिन उसे कोई ऐसा कारण मिल गया कि जिससे उसे संसारमें बड़ा वैराग्य हो गया। वह संसारको अस्थिर, विषयभोगोंको रोगके समान, सम्पत्तिको बिजलीकी तरह चंचल—तत्काल देखते देखते नष्ट होनेवाली, शरीरको मांस, मल, रुधिर, आदि महा अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ, दुःखोंका देनेवाला घिनौना और नाश होनेवाला जानकर सब से उदासीन हो गया। इस जैनधर्मके रहस्यको जाननेवाले कौण्डेशके हृदयमें वैराग्य भावनाकी लहरें लहराने लगीं। उसे अब घरमें रहना कैद खानेके समान जान पड़ने लगा। वह राज्याधिकार पुत्रको सौंप कर जिनमन्दिर गया। वहां उसने जिन भगवान्‌की पूजा की, जो सब सुखोंकी कारण है। इसके बाद निर्ग्रन्थ गुरुको नमस्कार कर उनके पास वह दीक्षित हो गया। पूर्व जन्ममें कौण्डेशने जो दान

किया था, उसके फलसे वह थोड़े ही समयमें श्रुतकेवली हो गया। यह श्रुतकेवली होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि ज्ञान-दान तो केवलज्ञानका भी कारण है। जिस प्रकार ज्ञान-दानसे एक ग्वाल श्रुतज्ञानी हुआ उसी तरह अन्य भव्य पुरुषोंको भी ज्ञान-दान देकर अपना आत्महित करना चाहिये। जो भव्यजन संसारके हित करनेवाले इस ज्ञान-दानकी भक्ति पूर्वक पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन लिखने लिखाने, दान-मान, स्तवन-जपन आदि सम्यक्त्वके कारणों से आराधना किया करते हैं वे धन, जन, यश ऐश्वर्य, उत्तम कुल, गोत्र, दीर्घायु आदिका मनचाहा सुख प्राप्त करते हैं। अधिक क्या कहा जाय किन्तु इसी ज्ञानदान द्वारा वे स्वर्ग या मोक्षका सुख भी प्राप्त कर सकेंगे। अठारह दोष रहित जिन भगवान्‌के ज्ञानका मनन चिन्तन करना उच्च सुखका कारण है।

मैंने जो यह दानकी कथा लिखी है वह आप लोगोंको तथा मुझे केवलज्ञानके प्राप्त करनेकी सहायक हो।

मूलसंघके सरस्वती गच्छमें भट्टारक मल्लिभूषण हुए। वे रत्नत्रयसे युक्त थे। उनके प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी नेमिदत्तने यह ज्ञान-दानकी कथा लिखी है। वह निरन्तर आप लोगोंके संसारकी शान्ति करे। अर्थात् जनम, जरा, मरण मिटाकर अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्त कराये।

११२–अभयदानकी कथा ।

मोक्षकी प्राप्तिके लिये जिन भगवानके चरणोंको नमस्कार कर अभय-दान द्वारा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा जैनग्रन्थोंके अनुसार यहां संक्षेपमें लिखी जाती है ।

भव्यजनों द्वारा भक्तिसे पूजी जानेवाली सरस्वती श्रुतज्ञान रूपी महा समुद्रके पार पहुँचानेके लिये नावकी तरह मेरी सहायता करे ।

परब्रह्म स्वरूप आत्माका निरन्तर ध्यान करनेवाले उन योगियोंको शान्तिके लिए मैं सदा याद करता हूँ, जिनकी केवल भक्ति भव्यजन सन्मार्ग लाभ करते हैं—सुखी होते हैं ।

इस प्रकार मंगलमय जिन भगवान्, जिनवानी और जैन योगियोंका स्मरण कर मैं वसतिदान — अभयदानकी कथा लिखता हूँ ।

धर्म-प्रचार, धर्मोपदेश, धर्म-क्रिया आदि द्वारा पवित्रता लाभ किये हुए इस भारतवर्षमें मालवा बहुत कालसे प्रसिद्ध और सुन्दर देश है । अपनी सर्व श्रेष्ठ सम्पदा और ऐश्वर्यसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों सारे संसारकी लक्ष्मी यहीं आकर इकट्ठी हो गई है । वह सुख देनेवाले बगीचों, प्रकृति-सुन्दर पर्वतों और सरोबरोंकी शोभासे स्वर्गके देवोंको भी अत्यन्त प्यारा है । वे यहाँ आकर मनचाहा सुख लाभ करते हैं । यहांके स्त्री-पुरुष सुन्दरतामें अपनी तुलनामें किसीको न देखते थे । देशके सब लोग खूब सुखी

थे, भाग्यशाली थे और पुण्यवान् थे । मालवेके सब शहरोंमें पर्वतों में और सब वनोंमें बड़े बड़े ऊँचे विशाल और भव्य जिनमन्दिर बने हुए थे । उनके ऊँचे शिखरोंमें लगे हुए सोनेके चम ते कलश बड़े सुन्दर जान पड़ते थे । रातमें तो उनकी शोभा बड़ी ही विलक्षणता धारण करती थी । वे ऐसे जान पड़ते थे मानों स्वर्गोंके महलोंमें दीये जगमगा रहे हों । हवाके झकोरोंसे इधर उधर फड़क रही उन मन्दिरों परकी ध्वजाएँ ऐसी देख पड़ती थीं मानों वे पथिकोंको हाथोंके इशारेसे स्वर्ग जाने का रास्ता बतला रही हैं । उन पवित्र जिन मन्दिरोंके दर्शन मात्रसे पापोंका नाश होता था तब उनके सम्बन्धमें और अधिक क्या लिखें । जिनमें बैठे हुए रत्नत्रय धारी साधु-तपस्वियोंको उपदेश करते हुए देख कर यह कल्पना होती थी कि मानों वे मोक्षके रास्ते हैं ।

मालवेमें जिन भगवान्के पवित्र और सुख देनेवाले धर्मका अच्छा प्रचार है । सम्यक्त्वकी जगह जगह चर्चा है । अनेक सम्यक्त्वरत्नके धारण करनेवाले भव्यजनोंसे वह युक्त है । दान-व्रत, पूजा-प्रभावना आदि वहाँ खूब हुआ करते हैं । वहांके भव्यजनों का निर्भ्रान्त विश्वास है कि अठारह दोष रहित जिन भगवान् ही सच्चे देव हैं । वे ही केवलज्ञानी-सर्वज्ञ हैं । उनकी स्वर्गके देव तक सेवा-पूजा करते हैं । सच्चा धर्म दसलक्षण मय है और उसके प्रगटकर्ता जिनदेव हैं । गुरु परिग्रह रहित और वीतरागी हैं । तत्व वही सच्चा है जिसे जिन् भगवान्ने उपदेश किया है । वहांके भव्यजन अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंमें सदा प्रयत्नवान रहते हैं । वे भगवान् की स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाली पूजा सदा करते हैं,

पात्रोंको भक्तिसे पवित्र दान देते हैं, व्रत, उपवास, शील, संयमको पालते हैं और आयुके अन्तमें सुख-शान्तिसे मृत्यु लाभ कर सद्‌गति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मालवा उस समय धर्मका एक प्रधान केन्द्र बन रहा था, जिस समयकी कि यह कथा है।

मालवेमें तब एक घटगाँव नामका सम्पत्तिशाली शहर था। इस शहरमें देविल नामका एक धनी कुम्हार और एक धर्मिल नामका नाई रहता था। इन दोनोंने मिलकर बाहरके आनेवाले यात्रियोंको ठहरनेके लिए एक धर्मशाला बनवादी। एक दिन देविलने एक मुनिको लाकर इस धर्मशालामें ठहरा दिया। धर्मिल को जब मालूम हुआ तो उसने मुनिको हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दिया और वहाँ एक संन्यासीको लाकर ठहरा दिया। सच है, जो दुष्ट हैं, दुराचारी हैं, पापी हैं, उन्हें साधु-सन्त अच्छे नहीं लगते, जैसे उल्लूको सूर्य। धर्मिलने मुनिको निकाल दिया—उनका अपमान किया, पर मुनिने इसका कुछ बुरा न माना। वे जैसे शान्त थे वैसे ही रहे। धर्मशालासे निकल कर वे एक वृक्षके नीचे आकर ठहर गये। रात इन्होंने वहीं पूरी की। डाँस मच्छर वगैरहका इन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा। इन्होंने सब सहा और बड़ी शान्तिसे सहा। सच है, जिनका शरीरसे रत्तीभर मोह नहीं उनके लिए तो कष्ट कोई चीज ही नहीं। सवेरे जब देविल मुनिके दर्शन करनेको आया और उन्हें धर्मशालामें न देख कर एक वृक्षके नीचे बैठे देखा तो उसे धर्मिलकी इस दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया। धर्मिलका सामना होने पर उसने उसे फटकारा। देविलकी फटकार धर्मिल न सह सका और बात बहुत बढ़ गई। यहाँतक कि परस्परमें

मारामारी हो गई। दोनों ही परस्परमें लड़कर मर मिटे। क्रूर भावोंसे मरकर ये दोनों क्रमसे सूअर और व्याघ्र हुए। देविलका जीव सूअर विन्ध्य पर्वतकी गुहामें रहता था। एक दिन कर्मयोगसे गुप्त और त्रिगुप्तिगुप्त नामके दो मुनिराज अपने विहारसे पृथिवी को पवित्र करते इसी गुहामें आकर ठहरे। उन्हें देखकर इस सूअर को जातिस्मरण हो गया। इसने उपदेश करते हुए मुनिराज द्वारा धर्मका उपदेश सुन कुछ व्रत ग्रहण किये। व्रत ग्रहण कर यह बहुत सन्तुष्ट हुआ।

इसी समय मनुष्योंकी गन्ध पाकर धर्मिलका जीव व्याघ्र मुनियोंको खानेके लिए झपटा हुआ आया। सूअर उसे दूरहीसे देखकर गुहाके द्वार पर आकर डट गया। इसलिए कि वह भीतर बैठे हुए मुनियोंकी रक्षा कर सके। व्याघ्रने गुहाके भीतर घुसनेके लिए सूअर पर बड़ा जोरका आक्रमण किया। सूअर पहलेसे ही तैयार बैठा था। दोनोंके भावोंमें बड़ा अन्तर था। एकके भाव थे मुनिरक्षा करनेके और दूसरेके उनको खाजानेके। इसलिए देविल का जीव सूअर तो मुनिरक्षा रूप पवित्र भावोंसे मर कर सौधर्म स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंका धारी देव हुआ। जिसके शरीरकी चमकती हुई कान्ति गाढ़ेसे गाढ़े अन्धकारको नाश करनेवाली है, जिसकी रूप-सुन्दरता लोगोंके मनको देखने मात्रसे मोह लेती है, जो स्वर्गीय दिव्य वस्त्रों और मुकुट, कुण्डल, हार आदि बहुमूल्य भूषणोंको पहरता है, अपनी स्वभाव-सुन्दरतासे जो कल्पवृक्षोंको नीचा दिखाता है, जो अणिमादि ऋद्धि-सिद्धियोंका धारक है, अवधिज्ञानी है, पुण्यके उदयसे जिसे सब दिव्य सुख प्राप्त हैं, अनेक सुन्दर

सुन्दर देव-कन्याएँ और देवगण जिसकी सेवामें सदा उपस्थित रहते हैं, जो महा वैभवशाली है, महा सुखी है, स्वर्गोंके देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं ऐसे जिन भगवान्‌की, जिन प्रतिमाओंकी और कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिन मन्दिरोंकी जो सदा भक्ति और प्रेमसे पूजा करता है, दुर्गतिके दुःखोंको नाश करनेवाले तीर्थोंकी यात्रा करता है, महा मुनियोंकी भक्ति करता है और धर्मात्माओंके साथ वात्सल्यभाव रखता है। ऐसी उसकी सुखमय स्थिति है। जिस प्रकार यह सूअर धर्मके प्रभावसे उक्त प्रकार सुखका भोगनेवाला हुआ उसी प्रकार जो और भव्यजन इस पवित्र धर्मका पालन करेंगे वे भी उसके प्रभावसे सब सुख-सम्पत्ति लाभ करेंगे। समझिए, संसारमें जो-जो धन-दौलत, स्त्री, पुत्र, सुख, ऐश्वर्य आदि अच्छी अच्छी आनन्द-भोगकी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनका कारण एक मात्र धर्म है। इसलिए सुखकी चाह करनेवाले भव्यजनोंको जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि धर्मका निरन्तर पवित्र भावोंसे सेवन करना चाहिए।

देविल तो पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग गया और धर्मिलने मुनियोंको खाजाना चाहा था, इसलिए वह पापके फलसे मरकर नरक गया। इस प्रकार पुण्य और पापका फल जानकर भव्यजनों को उचित है कि वे पुण्यके कारण पवित्र जैन धर्ममें अपनी बुद्धिको दृढ़ करें।

इस प्रकार परम सुख—मोक्षके कारण, पापोंका नाश करनेवाले और पात्र-भेदसे विशेष आदर योग्य इस पवित्र अभयदान

की कथा अन्य जैन शास्त्रों के अनुसार संक्षेपमें यहां लिखी गई। यह सत्कथा संसारमें प्रसिद्ध होकर सबका हित करे।

११३—करकण्डु राजाकी कथा।

संसार द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर करकण्डुराजाका सुखमय पवित्र चरित लिखा जाता है।

जिसने पहले केवल एक कमलसे जिन भगवान्‌की पूजा कर जो महान फल प्राप्त किया, उसका चरित जैसा और ग्रन्थोंमें पुराने ऋषियोंने लिखा है उसे देख कर या उनकी कृपासे उसका थोड़ेमें मैं सार लिखता हूँ।

नील और महानील तेरपुरके राजा थे। तेरपुर कुन्तल देशकी राजधानी थी। यहाँ वसुमित्र नामका एक जिनभक्त सेठ रहता था। सेठानी वसुमती उसकी स्त्री थी। धर्मसे उसे बड़ा प्रेम था। इन सेठ सेठानीके यहाँ धनदत्त नामका एक ग्वाल नौकर था। वह एक दिन गोएँ चरानेको जंगलमें गया हुआ था। एक तालाबमें इसने कोई हजार पंखुरियों वाला एक बहुत सुन्दर कमल देखा। उस पर यह मुग्ध हो गया। तब तालाबमें कूदकर इसने उस कमल को तोड़ लिया। उस समय नागकुमारीने इससे कहा—धनदत्त, तूने मेरा कमल तोड़ा तो है, पर इतना तू ध्यानमें रखना कि यह उस महापुरुषकी भेंट किया जाय, जो संसारमें सबसे श्रेष्ठ हो। नागकुमारीका कहा मानकर धनदत्त कमल लिये अपने सेठके पास

गया और उनसे सब हाल इसने कहा। वसुमित्रने तब राजाके पास जाकर उनसे यह सब हाल कहा। सबसे श्रेष्ठ कौन है और यह कमल किसकी भेंट चढ़ाया जाय, यह किसीकी समझमें न आया। तब सब विचार कर चले कि इसका हाल मुनिराजसे कहें। संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, इस बातका पता वे अपनेको देंगे। यह निश्चय कर राजा, सेठ, ग्वाल तथा और भी बहुतसे लोग सहस्रकूट नामके जिन मन्दिरमें गये। वहाँ सुगुप्त मुनिराज ठहरे हुए थे। उनसे राजाने पूछा - हे करुणाके समुद्र, हे पवित्र धर्मके रहस्यको समझनेवाले, कृपाकर बतलाइए कि संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, जिन्हें यह पवित्र कमल भेंट किया जाय। उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन, सारे संसारके स्वामी, राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित जिन भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं, क्योंकि संसार उन्हींकी पूजा करता है। सुनकर सबको बड़ा सन्तोष हुआ। जिसे वे चाहते थे वह अनायास मिल गया। उसी समय वे सब भगवान्के सामने आये। धनदत्त ग्वालने तब भगवान्को नमस्कार कर कहा—हे संसारमें सबसे श्रेष्ठ गिनेजाने वाले, आपका यह कमल मैं आपकी भेंट करता हूँ। इसे आप स्वीकार कर मेरी आशाको पूरी करें। यह कहकर वह ग्वाल उस कमलको भगवान्के पाँवों पर चढ़ाकर चला गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पवित्र कर्म मूर्ख लोगोंको भी सुख देनेवाला होता है। इस कथासे सम्बन्ध रखनेवाली एक दूसरी कथा यहाँ लिखी जाती है। उसे सुनिए—

स्रावस्तीके रहनेवाले सागरदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता बड़ी पापिनी थी। उसका चाल-चलन अच्छा न था। एक सोमशर्मा

ब्राह्मणके साथ उसका अनुचित बरताव था। सच है, कोई कोई स्त्रियां तो बड़ी दुष्ट और कुल-कलंकिनी हुआ करती हैं। उन्हें अपने कुलकी मान--मर्यादाकी कुछ लाज-शरम नहीं रहती। अपने उज्ज्वल कुलरूपी मन्दिरको मलिन करनेके लिए वे काले धुएँके समान होती हैं। बेचारा सेठ सरल था और धर्मात्मा था। इसलिए अपनी स्त्रीका ऐसा दुराचार देखकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने फिर संसारका भ्रमण मिटानेवाली जिनदीक्षा ग्रहण करली। वह बहुत ही कंटाळ गया था। सागरदत्त तपस्या कर स्वर्ग गया। स्वर्गायु पूरी कर वह अंगदेशकी राजधानी चम्पा नगरीमें वसुपाल राजाकी रानी वसुमतीके दन्तिवाहन नामका राजकुमार हुआ। वसुपाल सुखसे राज करते रहे।

इधर वह सोमशर्मा मरकर पापके फलसे पहले तो बहुत समय तक दुर्गतियोंमें घूमा किया। एकसे एक दुःसह कष्ट उसे सहना पड़ा। अन्तमें वह कलिंग देशके जंगलमें नर्मदातिलक नामका हाथी हुआ। और ठीक ही है पापसे जीवोंको दुर्गतियोंके दुःख भोगना ही पड़ते हैं। कर्मसे इस हाथीको किसीने पकड़ लाकर वसुपालकी भेंट किया।

उधर इस हाथीके पूर्वभवके जीव सोमशर्माकी स्त्री नागदत्ता ने भी पापके उदयसे दुर्गतियोंमें अनेक कष्ट सहे। अन्तमें वह तामलिप्तनगरमें भी वसुदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता हुई। उस समय इसके धनवती और धनश्री नामकी दो लड़कियां हुईं। ये दोनों ही बहिनें बड़ी सुन्दर थी। स्वर्गकुमारियां इनका रूप देखकर मन ही मन बड़ी कुढ़ा करती थीं। इनमें धनवतीका ब्याह नागानन्द पुरके

रहनेवाले वनपाल नामके सेठ पुत्रके साथ हुआ और छोटी बहिन धनश्री कोशाम्बीके वसुमित्रकी स्त्री हुई। वसुमित्र जैनी था। इसलिए उसके सम्बन्धसे धनश्रीको कई बार जैनधर्मके उपदेश सुनने का मौका मिला। वह उपदेश उसे बहुत रुचिकर हुआ और फिर वह भी श्राविका हो गई। लड़कीके प्रेमसे नागदत्ता एक बार धनश्री के यहां गई। धनश्रीने अपनी मांका खूब आदर-सत्कार किया और उसे कई दिनों तक अच्छी तरह अपने यहीं रक्खा। नागदत्ता धनश्रीके यहाँ कई दिनोंतक रही, पर वह न तो कभी मन्दिर गई और न कभी उसने धर्मकी कुछ चर्चा की। धनश्री अपनी मांको धर्मसे विमुख देखकर एक दिन उसे मुनिराजके पास ले गई और समझा कर उसे मुनिराज द्वारा पांच अणुव्रत दिलवा दिये। एक बार इसी तरह नागदत्ताको अपनी बड़ी लड़की धनवतीके यहां जाना पड़ा। धनवती बुद्धधर्मको मानती थी। सो उसने इसे बुद्धधर्मकी अनुयायिनी बना लिया। इस तरह नागदत्ताने कोई तीन बार जैनधर्मको छोड़ा। अन्तमें उसने फिर जैनधर्म ग्रहण किया और अबकी बार वह उस पर रही भी बहुत दृढ़। जन्म भर फिर उसने जैनधर्मको निबाहा। आयुके अन्तमें मरकर वह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी रानी वसुमतीके लड़की हुई। पर भाग्यसे जिस दिन वह पैदा हुई, वह दिन बहुत खराब था। इसलिए राजाने उसे एक सन्दूकमें रखकर और उसके नामकी एक अँगूठी उसकी उंगलीमें पहरा कर उस सन्दूकको यमुनामें छुड़वा दिया। सन्दूक बहती हुई कुसुमपुरके एक पद्मह्रद नामके तालाबमें पहुँच गई। इस तालाबमें गंगा-यमुनाके प्रवाहका एक छोटासा नाला बहकर आता था। उसी

नालेमें पड़कर यह संदूक तालाबमें आगई। इसे किसी कुसुमदत्त नामके मालीने देखा। वह निकाल कर उसे अपने घर लिवा लाया। संदूकको खोलकर उसने देखा तो उसमेंसे यह लड़की निकली। कुसुमदत्तके कोई संतान न थी। इसलिये वह इसे पाकर बहुत खुश हुआ। अपनी स्त्रीको बुलाकर उसने इसे उसकी गोदमें रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे अपनेको यह लड़की अनायास मिल गई। इससे अपनेको बड़ी खुशी मनानी चाहिये। मुझे विश्वास है कि तुम भी इस अमूल्य संधिसे बहुत प्रसन्न होगी। प्रिये, यह मुझे पद्मह्रदमें मिली है। हम इसका नाम भी पद्मावती ही क्यों न रक्खें? क्यों, नाम तो बड़ा ही सुन्दर है! मालिन जिन्दगी भरसे अपनी खाली गोदको आज एकाएक भरी पा बहुत आनन्दित हुई। वह आनन्द इतना था कि उसके हृदयमें भी न समा सका। यही कारण था कि उसका रोम रोम पुलकित हो रहा था। उसने बड़े प्रेमसे इसे छाती लगाया।

पद्मावती इस समय कोई तेरह चौदह वर्षकी है। उसके सुकोमल, सुगन्धित, और सुन्दर यौवनरूपी फूलकी कलियां कुछ कुछ खिलने लगी हैं। ब्रह्माने उसके शरीरको लावण्य सुधा-धारासे सींचना शुरू कर दिया है। वह अब थोड़े ही दिनोंमें स्वर्गकी देव कुमारियोंसे भी अधिक सुन्दरता लाभ कर ब्रह्माको अपनी सृष्टिका अभिमानी बनावेगी। लोग स्वर्गीय सुन्दरताकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। ब्रह्माको उनकी इस थोथी तारीफसे बड़ी डाह है। इसलिये कि इससे उसकी रचना सुन्दरतामें कमी आती है और उस कमीसे इसे नीचा

देखना पड़ता है। ब्रह्माने सर्व साधारणके इस भ्रमको मिटानेके लिए कि जो कुछ सुन्दरता है वह स्वर्ग ही में है, मानो पद्मावतीको उत्पन्न किया है। इसके सिवा इन लोगोंकी झूठी प्रशंसासे जो अमरांगनाएँ अभिमानके ऊँचे पर्वत पर चढ़कर सारे संसारको अपनी सुन्दरता की तुलनामें ना-कुछ चीज समझ बैठी हैं, उनके इस गर्वको चूर चूर करना है। इन्हीं सब अभिमान, ईर्षा, मत्सर आदिके वश हो ब्रह्मा पद्मावतीको त्रिभुवन-सुन्दर बनानेमें विशेष यत्नशील है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पद्मावती कुछ दिनों बाद तो ब्रह्माकी सब तरह आशा पूरी करेगी ही। पर इस समय भी इसका रूप-सौंदर्य इतना मनोमधुर है कि उसे देखते ही रहनेकी इच्छा होती है। प्रयत्न करने पर भी आंखें उस ओरसे हटना पसन्द नहीं करती। अस्तु।

पद्मावतीकी इस अनिंद्य सुन्दरताका समाचार किसीने चम्पाके राजा दन्तिवाहनको कह दिया। दन्तिवाहन इसकी सुन्दरता की तारीफ सुनकर कुसुमपुर आये। पद्मावतीको—एक मालीकी लड़कीको इतनी सुन्दरी, इतनी तेजस्विनी देखकर उसके विषयमें उन्हें कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने तब उस मालीको बुलाकर पूछा—सच कह यह लड़की तेरी ही है क्या? और यदि तेरी नहीं तो तू इसे कहांसे और कैसे लाया? माली डर गया। उससे राजाके सवालोंका कुछ उत्तर देते न बना। सिर्फ उसने इतना ही किया कि जिस सन्दूक में पद्मावती निकली थी, उसे राजाके सामने ला रख दिया और कह दिया कि महाराज, मुझे अधिक तो कुछ मालूम नहीं, पर यह लड़की इस सन्दूकमेंसे निकली थी। मेरे कोई लड़का-बाला न होनेसे इसे

मैंने अपने यहाँ रख लिया। राजाने सन्दूक खोलकर देखा तो उसमें एक अँगूठी निकली। उस पर कुछ इबारत खुदी हुई थी। उसे पढ़कर राजाको पद्मावतीके सम्बन्धमें कोई सन्देह करनेकी जगह न रह गई। जैसे वे राजपुत्र हैं वैसे ही पद्मावती भी एक राजघरानेकी राजकन्या है। दन्तिवाहन तब उसके साथ ब्याह कर उसे चम्पामें ले आये और सुखसे अपना समय बिताने लगे।

दन्तिवाहनके पिता वसुपालने कुछ वर्षोंतक और राज्य किया। एक दिन उन्हें अपने सिर पर यमदूत सफेद केश देख पड़ा। उसे देखकर इन्हें संसार, शरीर, विषय-भोगादिसे बड़ा वैराग्य हुआ। वे अपने राज्यका सब भार दन्तिवाहनको सौंप कर जिन-मन्दिर गये। वहाँ उन्होंने भगवान्का अभिषेक किया, पूजन की, दान किया, गरीबोंको सहायता दी। उस समय उन्हें जो उचित कार्य जान पड़ा उसे उन्होंने खुले हाथों किया। बाद वे वहीं एक मुनि राज द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। उन्होंने योगदशामें खूब तपस्या की। अन्तमें समाधिसे शरीर छोड़कर वे स्वर्ग गये।

दन्तिवाहन अब राजा हुए। प्रजाका शासन ये भी अपने पिताकी भाँति प्रेमके साथ करते थे। धर्म पर इनकी भी पूरी श्रद्धा थी। पद्मावतीसी त्रिलोक-सुन्दरीको पा ये अपनेको कृतार्थ मानते थे। दोनों दम्पति सदा बड़े हँस-मुख और प्रसन्न रहते थे। सुखकी इन्हें चाह न थी, पर सुख ही इनका गुलाम बन रहा था।

एक दिन सती पद्मावतीने स्वप्नमें सिंह, हाथी और सूरज को देखा। सवेरे उठकर उसने अपने प्राणनाथसे इस स्वप्नका हाल

कहा। दन्तिवाहनने उसके फलके सम्बन्धमें कहा—प्रिये, स्वप्न तुम ने बड़ा ही सुन्दर देखा है। तुम्हें एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। सिंहका देखना जनाता है, कि वह बड़ा ही प्रतापी होगा। हाथीके देखनेसे सूचित होता है कि वह सबसे प्रधान क्षत्रिय वीर होगा और सूरज यह कहता है कि वह प्रजारूपी कमल-वनका प्रफुल्लित करने वाला होगा—उसके शासनसे प्रजा बड़ी सन्तुष्ट रहेगी। अपने स्वामी द्वारा स्वप्नका फल सुनकर पद्मावतीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। और सच है, पुत्र प्राप्तिसे किसे प्रसन्नता नहीं होती।

पाठकोंको तेरपुरके रहनेवाले धनदत्त ग्वालका स्मरण होगा, जिसने कि एक हजार पँखुरियोंका कमल भगवान्को चढ़ाकर बड़ा पुण्यबन्ध किया था। उसीकी कथा फिर लिखी जाती है। धनदत्त को तैरनेका बड़ा शौक था। वह रोज रोज जाकर एक तालाबमें तैरा करता था। एक दिन वह तैरनेको गया हुआ था। कुछ होनहार ही ऐसा था जो वह तैरता तैरता एक बार घनी काईमें बिंध गया। बहुत यत्न किया पर उससे निकलते न बना। आखिर बेचारा मर ही गया। मरकर वह जिनपूजाके पुण्यसे इसी सती पद्मावतीके गर्भमें आया।

उधर वसुमित्र सेठको जब इसके मरनेका हाल ज्ञात हुआ तो उसे बड़ा दुःख हुआ। सेठ उसी समय तालाब पर आया और धनदत्तकी लाशको निकलवा कर उसका अग्नि-संस्कार किया। संसारकी यह क्षणभंगुर दशा देखकर वसुमित्रको बड़ा वैराग्य हुआ। वह सुगुप्ति मुनिराज द्वारा योगव्रत लेकर मुनि हो गया। अन्तमें वह तपस्या कर पुण्यके उदयसे स्वर्ग गया।

पद्मावतीके गर्भमें धनदत्तके आने पर उसे दोहला उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि मेघ बरसने लगे और बिजलियाँ चमकने लगें। ऐसे समय पुरुष-वेषमें हाथमें अंकुश लिये मैं स्वयं हाथी पर सवार होऊँ और मेरे साथ स्वामी भी बैठें। फिर हम दोनों घूमने के लिये शहर बाहर निकलें। पद्मावतीने अपनी यह इच्छा दन्तिवाहनसे जाहिर की। दन्तिवाहनने उसकी इच्छाके अनुसार अपने मित्र वायुवेग विद्याधर द्वारा मायामयी कृत्रिम मेघकी काली काली घटाओं द्वारा आकाश आच्छादित करवाया। कृत्रिम बिजलियाँ भी उन मेघोंमें चमकने लगीं। राजा-रानी इस समय उस नर्मदातिलक नामके हाथी पर, जो सोमशर्माका जीव था और जिसे किसीने वसुपालकी भेंट किया था, चढ़कर बड़े ठाटबाटसे नौकर-चाकरोंको साथ लिये शहर बाहर हुए। पद्मावतीका यह दोहला सचमुच ही बड़ा ही आश्चर्यजनक था। जो हो, जब ये शहर बाहर होकर थोड़ी ही दूर गये होंगे कि कर्मयोगसे हाथी उन्मत्त हो गया। अंकुश वगैरह की वह कुछ परवाह न कर आगे चलनेवाले लोगोंकी भीड़को चीरता हुआ भाग निकला। रास्तेमें एक घने वृक्षोंकी वनीमें होकर वह भागा जा रहा था। सो दन्तिवाहनको उस समय कुछ ऐसी बुद्धि सूझ गई, कि जिससे वे एक वृक्षकी डालीको पकड़ कर लटक गये। हाथी आगे भागा ही चला गया। सच है, पुण्य कष्ट समयमें जीवोंको बचा लेता है। बेचारे दन्तिवाहन उदास मुंह और रोते रोते अपनी राजधानीमें आये। उन्हें इस बातका अत्यन्त दुःख हुआ कि गर्भिणी प्रियाकी न जाने क्या दशा हुई होगी। दन्तिवाहनकी यह दशा देखकर समझदार लोगोंने समझा बुझाकर उन्हें शान्त किया। इसमें

कोई सन्देह नहीं कि सत्पुरुषोंके वचन चन्दनसे कहीं बढ़कर शीतल होते हैं और उनके द्वारा दुखियोंके हृदयका दुःख सन्ताप बहुत जल्दी ठन्डा पड़ जाता है ।

इधर हाथी पद्मावतीको लिये भागा ही चला गया । अनेक जंगलों और गांवोंको लाँघकर वह एक तालाब पर पहुँचा । वह बहुत थक गया था । इसलिये थकावट मिटानेको वह सीधा उस तालाबमें घुस गया । पद्मावती सहित तालाबमें उसे घुसता देख जलदेवीने झटसे पद्मावतीको हाथी परसे उतार कर तालाबके किनारे पर रख दिया । आफतकी मारी बेचारी पद्मावती किनारे पर बैठी बैठी रोने लगी । वह क्या करे, कहां जाय, इस विषयमें उसका चित्त बिलकुल धीर न धरता था । सिवा रोनेके उसे कुछ न सूझता था । इसी समय एक माली इस ओर होकर अपने घर जा रहा था । उसने इसे रोते हुए देखा । इसके वेष-भूषा और चेहरेके रँग-ढंगसे इसे किसी उच्च घरानेकी समझ उसे इस पर बड़ी दया आई । उसने इसके पास आकर कहा—बहिन, जान पड़ता है तुम पर कोई भारी दुःख आकर पड़ा है । यदि तुम कोई हर्ज न समझो तो मेरे घर चलो । तुम्हें वहां कोई कष्ट न होगा । मेरा घर यहांसे थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुरमें है और मैं जातिका माली हूँ । पद्मावती उसे दयावान् देख उसके साथ होली । इसके सिवा उसके लिये दूसरी गति भी न थी । उस मालीने पद्मावतीको अपने घर लेजाकर बड़े आदर-सत्कारके साथ रक्खा । वह उसे अपनी बहिनके बराबर समझता था । इसका स्वभाव बहुत अच्छा था । ठीक है, कोई कोई साधारण पुरुष भी बड़े सज्जन होते हैं । इसे सरल और सज्जन होने पर भी इसकी स्त्री

बड़ी कर्कशा थी । उसे दूसरे आदमीका अपने घर रहना अच्छा ही न लगता था । कोई अपने घरमें पाहुना आया कि उस पर सदा मुँह चढ़ाये रहना, उससे बोलना-चालना नहीं, आदि उसके बुरे स्वभाव की खास बातें थीं । पद्मावतीके साथ भी इसका यही बर्ताव रहा । एक दिन भाग्यसे वह माली किसी कामके लिये दूसरे गाँव चला गया । पीछेसे इसकी स्त्रीकी बन पड़ी । उसने पद्मावतीको गाली-गलौज देकर और बुरा भला कह घर बाहर निकाल दिया । बेचारी पद्मावती अपने कर्मोंको कोसती यहाँसे चलदी । वह एक घोर मसानमें पहुँची । प्रसूतिके दिन आ लगे थे । इस पर चिन्ता और दुःखके मारे इसे चैन नहीं था । इसने यहीं पर एक पुण्यवान् पुत्र जना । उसके हाथ, पाँव, ललाट वगैरहमें ऐसे सब चिह्न थे, जो बड़ेसे बड़े पुरुषके होने चाहिये । जो हो, इस समय तो उसकी दशा एक भिखारीसे भी बढ़कर थी । पर भाग्य कहीं छुपा नहीं रहता । पुण्यवान् महात्मा पुरुष कहीं हो, कैसी अवस्थामें हो, पुण्य वहीं पहुँच कर उसकी सेवा करता है । पर होना चाहिये पासमें पुण्य । पुण्य बिना संसारमें जन्म निस्सार है । जिस समय पद्मावतीने पुत्र जना उसी समय पुत्रके पुण्यका भेजा हुआ एक मनुष्य चाण्डालके वेषमें मसानमें पद्मावतीके पास आया और उसे विनयसे सिर झुकाकर बोला—माँ, अब चिन्ता न करो । तुम्हारे लड़केका दास आगया है । वह इसकी सब तरह जी-जानसे रक्षा करेगा । किसी तरह का कोई कष्ट इसे न होने देगा । जहाँ इस बच्चेका पसीना गिरेगा वहाँ यह अपना खून गिरावेगा । आप मेरी मालकिन हैं । सब भार मुझ पर छोड़ आप निश्चिन्त होइये पद्मावतीने ऐसे कष्टके समय पुत्रकी

रक्षा करनेवालेको पाकर अपने भाग्यको सराहा, पर फिर भी अपना सब सन्देह दूर हो, इसलिये उससे कहा—भाई, तुमने ऐसे निराधार समयमें आकर मेरा जो उपकार करना विचारा है, तुम्हारे इस ऋणसे मैं कभी मुक्त नहीं हो सकती। मुझे तुमसे दयावानोंका अत्यन्त उपकार मानना चाहिये। अस्तु, इस समय सिवा इसके मैं और क्या अधिक कह सकती हूँ कि जैसा तुमने मेरा भला किया, वैसा भगवान् तुम्हारा भी भला करे। भाई, मेरी इच्छा तुम्हारा विशेष परिचय पानेकी है। इसलिये कि तुम्हारा पहरावा और तुम्हारे चेहरे परकी तेजस्विता देखकर मुझे बड़ा ही सन्देह हो रहा है। अतएव यदि तुम मुझसे अपना परिचय देनेमें कोई हानि न समझो तो कृपाकर कहो। वह आगत पुरुष पद्मावतीसे बोला—मां, मुझ आभागेकी कथा तुम सुनोगी। अच्छा तो सुनो, मैं सुनाता हूं। विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें विद्युत्प्रभ नामका एक शहर है। उसके राजाका नाम भी विद्युत्प्रभ है। विद्युत्प्रभकी रानीका नाम विद्युल्लेखा है। ये दोनों राजा रानीही मुझ अभागेके माता पिता हैं। मेरा नाम बालदेव है। एक दिन मैं अपनी प्रिया कनकमालाके साथ विमानमें बैठा हुआ दक्षिणकी ओर जा रहा था।

रास्तेमें मुझे रामगिरी पर्वत पड़ा। उस पर मेरा विमान अटक गया। मैंने नीचे नजर डालकर देखा तो मुझे एक मुनि देख पड़े। उन पर मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने तब कुछ आगा-पीछा न सोचकर उन मुनिको बहुत कष्ट दिया, उन पर घोर उपसर्ग किया। उनके तपके प्रभावसे जिनभक्त पद्मावती देवीका आसन हिला और वह उसी समय वहाँ आई। उसने मुनिका उपसर्ग दूर

किया। सच है, साधुओं पर किये उपद्रवको सम्यग्दृष्टि कभी नहीं सह सकते। मां, उस समय देवीने गुस्सा होकर मेरी सब विद्याएँ नष्ट करदीं। मेरा सब अभिमान चूर हुआ। मैं एक मद रहित हाथीकी तरह निःसत्व—तेज रहित हो गया। मैं अपनी इस दशा पर बहुत पछताया। मैं रोकर देवीसे बोला—प्यारी मां, मैं आपका अज्ञानी बालक हूँ। मैंने जो कुछ यह बुरा काम किया वह सब मूर्खता और अज्ञानसे न समझ कर ही किया है। आप मुझे इसके लिए क्षमा करें और मेरी विद्याएँ पीछी मुझे लौटादें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी यह दीनता भरी पुकार व्यर्थ न गई। देवीने शान्त होकर मुझे क्षमा किया और वह बोली—मैं तुझे तेरी विद्याएँ लौटा देती, पर मुझे तुझसे एक महान् काम करवाना है। इसलिए मैं कहती हूँ वह कर। समय पाकर सब विद्याएँ तुझे अपने आप सिद्ध हो जाँयगी। मैं हाथ जोड़े हुए उसके मुँहकी ओर देखने लगा। वह बोली—"हस्तिनापुरके मसानमें एक विपत्ति की मारी स्त्रीके गर्भसे एक पुण्यवान् और तेजस्वी पुत्ररत्न जन्म लेगा। उस समय पहुँचकर तू उसकी सावधानीसे रक्षा करना और अपने घर लाकर उसे पालना-पोसना। उसके राज्य समय तुझे सब विद्याएँ सिद्ध होंगी।" मां उसकी आज्ञासे मैं तभीसे यहाँ इस वेषमें रहता हूं। इसलिए कि मुझे कोई पहिचान न सके। मां, यही मुझ अभागेकी कथा है। आज मैं आपकी दयासे कृतार्थ हुआ। पद्मावती विद्याधरका हाल सुनकर दुःखी जरूर हुई, पर उसे अपने पुत्रका रक्षक मिल गया, इससे कुछ सन्तोष भी हुआ। उसने तब अपने प्रिय बच्चेको विद्याधरके हाथमें रखकर कहा—भाई,

इसकी सावधानीसे रक्षा करना। अब इसके तुम ही सब प्रकार कर्त्ताधर्त्ता हो। मुझे विश्वास है कि तुम इसे अपना ही प्यारा बच्चा समझोगे। उसने फिर पुत्रके प्रकाशमान चेहरे पर प्रेमभरी दृष्टि डालकर पुत्र वियोगसे भर आये हृदयसे कहा—मेरे लाल; तुम पुण्यवान् होकर भी उस अभागिनी मांके पुत्र हुए हो, जो जन्मते ही तुम्हें छोड़कर बिछुड़ना चाहती है। लाल, मैं तो अभागिनी थी ही, पर तुम भी ऐसे अभागे हुए जो अपनी मांके प्रेममय हृदयका कुछ भी पता न पा सके और न पाओगे ही। मुझे इस बातका बड़ा खेद रहेगा कि जिस पुत्रने अपनी प्रेम-प्रतिमा मांके पवित्र हृदय द्वारा प्रेमका पाठ न सीखा वह दूसरोंके साथ किस तरह प्रेम करेगा ? कैसे दूसरोंके साथ प्रेमका बरताव कर उनका प्रेमपात्र बनेगा। जो हो, तब भी मुझे इस बातकी खुशी है कि तुम एक दूसरी मांके पास जाते हो, और वह भी आखिर है तो मां ही। जाओ लाल जाओ, सुखसे रहना, परमात्मा तुम्हारा मंगल करे। इस प्रकार प्रेममय पवित्र आषिश देकर पद्मावती कड़ा हृदय कर चलदी। बालदेवने उस सुन्दर और तेजपुंज बच्चे को अपने घर ले आकर अपनी प्रिया कनकमालाकी गोदमें रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे मिले इस निधिको लो। कनकमाला उस बाल-चन्द्रमासे अपनी गोदको भरी देखकर फूली न समाई। वह उसे जितना ही देखने लगी उसका प्रेम क्षणक्षणमें अनन्त गुणा बढ़ता ही गया। कनकमालाका जितना प्रेम होना संभव न था, उतना इस नये बालक पर उसका प्रेम हो गया, सचमुच यह आश्चर्य है। अथवा नई वस्तु स्वभावहीसे प्रिय होती है और फिर यदि वह अपनी

हो जाय तब तो उस पर होनेवाले प्रेमके सम्बन्धमें कहना ही क्या। और वह प्रेम, कि जिसकी प्राप्तिके लिए आत्मा सदा तड़फा ही करता है। और वह पुत्र जैसी परम प्रिय वस्तु ! तब पढ़नेवाले कनकमालाके प्रेममय हृदयका एक बार अवगाहन करके देखें कि एक नई मां जिस बच्चे पर इतना प्रेम करती है तब जिसने उसे जन्म दिया उसके प्रेमका क्या कुछ अन्त है—सीमा है ! नहीं। मांका अपने बच्चे पर जो प्रेम होता है उसकी तुलना किसी दृष्टांत या उदाहरण द्वारा नहीं की जा सकती और जो करते हैं वे मांके अनन्त प्रेमको कम करनेका यत्न करते हैं। कनकमाला उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसका नाम करकण्डु रक्खा। इसलिए कि उस बच्चेके हाथमें उसे खुजली देख पड़ी थी। कनकमालाने उसका लालन-पालन करनेमें अपने खास बच्चेसे कोई कमी न की। सच है, पुण्यके उदयसे कष्ट समयमें भी जीवोंको सुख सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिए भव्यजनोंको जिन पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि पुण्यकर्मों द्वारा सदा शुभ कर्म करते रहना चाहिए।

पद्मावती तब करकण्डुसे जुदा होकर गान्धारी नामकी क्षुल्लकिनीके पास आई। उसे उसने भक्तिसे प्रणाम किया और आज्ञा पा उसीके पास वह बैठ गई। थोड़ी देर बाद पद्मावतीने उस क्षुल्लकिनीसे अपना सब हाल कहा और जिनदीक्षा लेनेकी इच्छा प्रगट की। क्षुल्लकिनी उसे तब समाधिगुप्त मुनिके पास लिवा गई। पद्मावतीने मुनिराजको नमस्कार कर उनसे भी अपनी इच्छा कह सुनाई। उत्तरमें मुनिने कहा—बहिन, तू साध्वी होना चाहती है,

तेरा यह विचार बहुत अच्छा है पर यह समय तेरी दीक्षाके लिए उपयुक्त नहीं है। कारण तूने पहले जन्ममें नागदत्ताकी पर्यायमें जिनव्रतको तीन बार ग्रहण कर तीनों बार ही छोड़ दिया था और फिर चौथी बार ग्रहण कर तू उसके फलसे राजकुमारी हुई। तूने तीन बार व्रत छोड़ा उससे तुझे तीनों बार ही दुःख उठाना पड़ा। तीसरी बारका कर्म कुछ और बचा है। वह जब शान्त हो जाय और इस बीचमें तेरे पुत्रको भी राज्य मिल जाय तब कुछ दिनों तक राज्य सुख भोग कर फिर पुत्रके साथ साथ ही तू भी साध्वी होना। मुनि द्वारा अपना भविष्य सुनकर पद्मावती उन्हें नमस्कार कर उस क्षुल्लकिनीके साथ साथ चली गई। अबसे वह पद्मावती उसीके पास रहने लगी।

इधर करकण्डु बालदेवके यहाँ दिनों दिन बढ़ने लगा। जब उसकी पढ़नेकी उमर हुई तब बालदेवने अच्छे अच्छे विद्वान् अध्यापकोंको रखकर उसे पढ़ाया। करकण्डु पुण्यके उदयसे थोड़े ही वर्षोंमें पढ़-लिख कर अच्छा होशियार हो गया। कई विषयमें उसकी अरोक गति हो गई। एक दिन बालदेव और करकण्डु हवा-खोरी करते करते शहर बाहर मसानमें आ निकले। ये दोनों एक अच्छी जगह बैठकर मसान भूमिकी लीला देखने लगे। इतने में जयभद्र मुनिराज अपने संघको लिये इसी मसानमें आकर ठहरे। यहाँ एक नर-कपाल पड़ा हुआ था। उसके मुँह और आंखोंके तीन छेदोंमें तीन बांस उग रहे थे। उसे देखकर एक मुनिने विनोदसे अपने गुरुसे पूछा—भगवन्, यह क्या कौतुक है, जो इस नर-कपालमें तीन बांस उगे हुए हैं? तपस्वी मुनिने उसके उत्तरमें

कहा—इस हस्तिनापुरका जो नया राजा होगा, इन बांसोंके उसके लिए अंकुश, छत्र, दण्ड वगैरह बनेंगे। जयभद्राचार्य द्वारा कहे गये इस भविष्यको किसी एक ब्राह्मणने सुन लिया। अतः वह धनकी आशासे इन बाँसोंको उखाड़ लाया। उसके हाथसे इन्हें करकण्डुने खरीद लिया। सच है, मुनि लोग जिसके सम्बन्धमें जो बात कह देते हैं वह फिर होकर ही रहती है।

उस समय हस्तिनापुरका राजा बलवाहन था। इसके कोई संतान न थी। इसकी मृत्यु हो गई। अब राजा किसको बनाया जाय, इस विषयकी चर्चा चली। आखिर यह निश्चय पाया कि महाराज का खास हाथी जलभरा सुवर्ण-कलश देकर छोड़ा जाय। वह जिसका अभिषेक कर राज--सिंहासन पर ला बैठादे वही इस राज्यका मालिक हो। ऐसा ही किया गया। हाथी राजाको ढूँढ़ने को निकला। चलता चलता वह करकण्डुके पास पहुँचा। वही इसे अधिक पुण्यवान् देख पड़ा। उसी समय उसने करकण्डु का अभिषेक कर उसे अपने ऊपर चढ़ा लिया और राज्यसिंहासन पर ला रख दिया। सारी प्रजाने उस तेजस्वी करकण्डुको अपना मालिक हुआ देख खूब जय जय कार मनाया और खूब आनन्द उत्सव किया। करकण्डुके भाग्यका सितारा चमका। वह राजा हुआ। सच है, जिन भगवान्की पूजाके फलसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता। करकण्डुको राजा होते ही बालदेवको उसकी नष्ट हुई विद्याएँ फिर सिद्ध हो गईं। उसे उसकी सेवाका मनचाहा फल मिल गया। इसके बाद ही बालदेव विद्याकी सहायतासे करकण्डुकी खास मां पद्मावती जहाँ थी, वहाँ गया और उसे करकण्डुके पास लाकर उसने दोनों

माता-पुत्रोंका मिलाप करवाया। पद्मावती आज कृतार्थ हुई। उसकी वर्षोंकी तपस्या समाप्त हुई। पश्चात् बालदेव इन दोनों को बड़ी नम्रतासे प्रणाम कर अपनी राजधानीमें चला गया।

करकण्डुके राजा होने पर कुछ राजे लोग उससे विरुद्ध होकर लड़नेको तैयार हुए। पर करकण्डुने अपनी बुद्धिमानी और राजनीतिकी चतुरतासे सबको अपना मित्र बनाकर देशभरमें शत्रुका नाम भी न रहने दिया। वह फिर सुखसे राज्य करने लगा। करकण्डुके दिनों दिन बढ़ते हुए प्रतापकी खबर चारों ओर फैलती फैलती दन्तिवाहनके पास पहुँची। दन्तिवाहन करकण्डुके पिता हैं। पर न तो दन्तिवाहनको यह ज्ञात था कि करकण्डु मेरा पुत्र है और न करकण्डुको इस बातका पता था कि दन्तिवाहन मेरे पिता होते हैं। यही कारण था कि दन्तिवाहनको इस नये राजाका प्रताप सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपने एक दूतको करकण्डुके पास भेजा। दूतने आकर करकण्डुसे प्रार्थना की—"राजाधिराज दन्तिवाहन मेरे द्वारा आपको आज्ञा करते हैं कि यदि राज्य आप सुखसे करना चाहते हैं तो उनकी आप आधीनता स्वीकार करें। ऐसा किये बिना किसी देशके किसी हिस्से पर आपकी सत्ता नहीं रह सकती।" करकण्डु एक तेजस्वी राजा और उस पर एक दूसरेकी सत्ता, सचमुच करकण्डुके लिए यह आश्चर्यकी बात थी। उसे दन्तिवाहन की इस धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया। उसने तेज आँखें कर दूतकी ओर देखा और उससे कहा—यदि तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो तुम यहाँसे जल्दी भाग जाओ। तुम दूसरेके नौकर हो, इसलिए तुम पर मैं दया करता हूं। नहीं तो तुम्हारी इस धृष्टताका फल तुम्हें मैं अभी

ही बता देता। जाओ, और अपने मालिकसे कहदो कि वह रण-भूमिमें आकर तैयार रहे। मुझे जो कुछ करना होगा मैं वहीं करूँगा। दूतने जैसे ही करकण्डुकी आँखें चढ़ी देखीं वह उसी समय डरकर राज्य-दरबारसे रवाना हो गया।

इधर करकण्डु अपनी सेनामें युद्धघोषणा दिलवा कर आप दन्तिवाहन पर जा चढ़ा और उनकी राजधानीको उसने सब ओरसे घेर लिया। दन्तिवाहन तो इसके लिए पहले ही से तैयार थे। वे भी सेना ले युद्धभूमिमें उतरे। दोनों ओरकी सेनामें व्यूह रचना हुई। रणवाद्य बजनेवाला ही था कि पद्मावतीको यह ज्ञात हो कि यह युद्ध शत्रुओंका न होकर खास पिता-पुत्रका है। वह तब उसी समय अपने प्राणनाथके पास गई और सब हाल उसने उनसे कह सुनाया। दन्तिवाहनको इस समय अपने प्रिया-पुत्रको प्राप्त कर जो आनन्द हुआ, उसका पता उन्हींके हृदयको है। दूसरा वह कुछ थोड़ा बहुत पा सकता है जिस पर ऐसा ही भयानक प्रसंग आकर कभी पड़ा हो। सर्व साधारण उनके उस आनन्दका, उस सुखका थाह नहीं ले सकते। दन्तिवाहन तब उसी समय हाथीसे उतर कर अपने प्रिय-पुत्रके पास आये। करकण्डुको ज्ञात होते ही वह उनके सामने दौड़ा गया और जाकर उनके पाँवोंमें गिर पड़ा। दन्तिवाहनने झटसे उसे उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। पिता-पुत्रका पुण्य मिलाप हुआ। इसके बाद दन्तिवाहनने बड़े आनन्द और ठाठबाटसे पुत्रका शहरमें प्रवेश कराया। प्रजाने अपने युवराजका अपार आनन्दके साथ स्वागत किया। घर घर आनन्द-उत्सव मनाया गया। दान दिया गया। पूजा-प्रभावना की गई। महा अभिषेक किया गया।

गरीब लोग मनचाही सहायतासे खुश किये गये। इस प्रकार पुण्य—प्रसाद से करकण्डुने राज्यसम्पत्ति के सिवा कुटुम्ब-सुख भी प्राप्त किया। वह अब स्वर्गके देवों की तरह सुख से रहने लगा।

कुछ दिनों बाद दन्तिवाहनने अपने पुत्रका विवाह समारंभ किया। उसमें उन्होंने खूब खर्च कर बड़े वैभवके साथ करकण्डुका कोई आठ हजार राजकुमारियोंके साथ ब्याह किया। ब्याहके बाद ही दन्तिवाहन राज्यका भार सब करकण्डुके जिम्मे कर आप अपनी प्रिया पद्मावतीके साथ सुखसे रहने लगे। सुख-चैन से समय बिताना उन्होंने अब अपना प्रधान कार्य रक्खा।

इधर करकण्डु राज्यशासन करने लगा। प्रजाको उसके शासनकी जैसी आशा थी, करकण्डुने उससे कहीं बढ़कर धर्मज्ञता, नीति और प्रजाप्रेम बतलाया। प्रजाको सुखी बनानेमें उसने कोई बात उठा न रक्खी। इस प्रकार वह अपने पुण्यका फल भोगने लगा। एक दिन समय देख मंत्रियोंने करकण्डुसे निवेदन किया—महाराज, चेरम, पाण्ड्य और चोल आदि राजे चिर समयसे अपने आधीन हैं। पर जान पड़ता है उन्हें इस समय कुछ अभिमानने आघेरा है। वे मानपर्वतका आश्रय पा अब स्वतंत्रसे हो रहे हैं। राज-कर वगैरह भी अब वे नहीं देते। इसलिए उन पर चढ़ाई करना बहुत आवश्यक है। इस समय ढील कर देनेसे सम्भव है थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंका जोर अधिक बढ़ जाये। इसलिए इसके लिए प्रयत्न कीजिए कि वे ज्यादा सिर न चढ़ा पावें, उसके पहले ही ठीक ठिकाने आजाँय।

मंत्रियोंकी सलाह सुन और उस पर विचार कर पहले करकण्डुने उन लोगोंके पास अपना दूत भेजा। दूत अपमानके साथ लौट आया। करकण्डुने जब सीधी तरह सफलता प्राप्त न होती देखी तब उसे युद्धके लिए तैयार होना पड़ा। वह अपनी सेना लिए युद्ध-भूमिमें जा डटा। शत्रु लोग भी चुपचाप न बैठकर उसके सामने हुए। दोनों ओरकी सेनाकी मुठभेड़ हो गई। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओरके हजारों वीर काम आये। अन्तमें करकण्डुकी सेनाके युद्धभूमिसे पाँव उखड़े। यह देख करकण्डु स्वयं युद्धभूमिमें उतरा। बड़ी वीरतासे वह शत्रुओं के साथ लड़ा। इस नई उमरमें उसकी इस प्रकार वीरता देख कर शत्रुओंको दांतों तले उँगली दबाना पड़ी। विजयश्रीने करकण्डुको ही वरा। जब शत्रुराजे आ-आकर इसके पाँव पड़ने लगे और इसकी नजर उनके मुकुटों पर पड़ी तो देखकर यह एक साथ हतप्रभ हो गया और बहुत बहुत पश्चात्ताप करने लगा कि—हाय! मुझ पापीने यह अनर्थ क्यों किया? न जाने इस पापसे मेरी क्या गति होगी? बात यह थी कि उन राजोंके मुकुटोंमें जिन भगवान्की प्रतिमाएँ खुदी हुई थीं। और वे सब राजे जैनी थे। अपने धर्मबन्धुओंको जो उसने कष्ट दिया और भगवान्का अविनय किया उसका उसे बेहद दुःख हुआ। उसने उन लोगोंको बड़े आदर-भावसे उठाकर पूछा—क्या सचमुच आप जैनधर्मी हैं? उनकी ओरसे सन्तोषजनक उत्तर पाकर उसने बड़े कोमल शब्दोंमें उनसे कहा—महानुभावो, मैंने क्रोधसे अन्धे होकर जो आपको यह व्यर्थ कष्ट दिया—आप पर उपद्रव किया, इसका मुझे अत्यन्त दुःख है। मुझे इस अपराधके लिए आप लोग क्षमा करें। इस प्रकार उनसे

क्षमा कराकर उनको साथ लिये वह अपने देशको रवाना हुआ। रास्तेमें तेरपुरके पास इनका पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलोंने आकर नम्र मस्तकसे इनसे प्रार्थना की—राजाधिराज, हमारे तेरपुरसे दो-कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटासा धाराशिव नामका गाँव बसा हुआ है। इस गाँवमें एक बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखनेको चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्यकी बात है कि वहाँ एक बाँमी है। एक हाथी रोज रोज अपनी सूँड़में थोड़ासा पानी और एक कमलका फूल लिये वहाँ आता है और उस बाँवीकी परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिनका नियम है। महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचारको लानेवाले भीलोंको उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थानको देखने गया। पहले उसने जिन मन्दिर जाकर भक्ति पूर्वक भगवान्की पूजा की, स्तुति की। सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्मके कामों में कभी प्रमाद—आलस नहीं करते। बाद वह उस बाँवीकी जगह गया। उसने वहां भीलोंके कहे माफिक हाथीको उस बांवीकी पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशुमें ऐसा भक्ति-भाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने उस बांवीको

खुदवाया। उसमेंसे एक सन्दूक निकली। उसने उसे खोलकर देखा। सन्दूकमें एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवान्की पवित्र प्रतिमा थी। उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डुको अतिशय प्रसन्नता हुई। उसने तब वहां 'अग्गलदेव' नामका एक विशाल जिन मन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सवके साथ उस प्रतिमाको विराजमान किया। प्रतिमा पर एक गांठ देखकर करकण्डुने शिल्पकारसे कहा—देखो, तो प्रतिमा पर यह गांठ कैसी है? प्रतिमाकी सब सुन्दरता इससे मारी गई। इसे सावधानीके साथ तोड़दो। यह अच्छी नहीं देख पड़ती। शिल्पकारने कहा—महाराज, यह गांठ ऐसी वैसी नहीं है जो तोड़दी जाय। ऐसी रत्नमयी दिव्य प्रतिमा पर गांठ होनेका कुछ न कुछ कारण जान पड़ता है। इसका बनानेवाला इतना कमबुद्धि न होगा जो प्रतिमा की सुन्दरता नष्ट होनेका खयाल न कर इस गांठको रहने देता। मुझे जहांतक जान पड़ता है, इस गांठका सम्बन्ध किसी भारी जल-प्रवाहसे होना चाहिए। और यह असंभव भी नहीं। संभवतः इसकी रक्षाके लिए यह प्रयत्न किया गया हो। इसलिए मेरी समझमें इसका तुड़वाना उचित नहीं। करकण्डुने उसका कहा न माना। उसे उसकी बात पर विश्वास न हुआ। उसने तब शिल्पकारसे बहुत आग्रह कर आखिर उसे तुड़वाया ही। जैसे ही वह गांठ टूटी उसमेंसे एक बड़ा भारी जल-प्रवाह बह निकला। मन्दिरमें पानी इतना भर गया कि करकण्डु वगैरहको अपने जीवन के बचनेका भी सन्देह हो गया। तब वह जिनभक्त उस प्रवाहके रोकनेके लिए संन्यास ले कुशासन पर बैठ कर परमात्माका स्मरण

चिंतन करने लगा। उसके पुण्य--प्रभावसे नागकुमारने प्रत्यक्ष आकर उससे कहा—राजन्, काल अच्छा नहीं, इस लिए प्रतिमाकी सुरक्षाके लिए मुझे यह जलपूर्ण लयण बनाना पड़ा। इसलिए आप इस जलप्रवाहके रोकनेका आग्रह न करें। इस प्रकार करकण्डुको नागकुमारने समझा कर आसन परसे उठ जानेको कहा। करकण्डु नागकुमारके कहनेसे संन्यास छोड़ उठ गया। उठकर उसने नागकुमारसे पूछा—क्योंजी, ऐसा सुन्दर यह लयण यहां किसने बनाया और किसने इस बांवीमें इस प्रतिमाको विराजमान किया? नागकुमारने कहा—सुनिए, विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें खूब सम्पत्तिशाली नभस्तिलक नामका एक नगर था। उसमें अमितवेग और सुवेग नामके दो विद्याधर राजे हो चुके हैं। दोनों धर्मज्ञ और सच्चे जिनभक्त थे। एक दिन वे दोनों भाई आर्यखण्डके जिन-मन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए आये। कई मन्दिरोंमें दर्शन पूजन कर वे मलयाचल पर्वत पर आये। यहां घूमते हुए उन्होंने पार्श्वनाथ भगवानकी इस रत्नमयी प्रतिमाको देखा। इसके दर्शन कर उन्होंने इसे एक सन्दूकमें बन्द कर दिया और सन्दूकको एक गुप्त स्थान पर रखकर वे उस समय चले गये। कुछ समय बाद वे पीछे आकर उस सन्दूकको कहीं अन्यत्र ले जानेके लिए उठाने लगे पर सन्दूक अबकी बार उनसे न उठी। तब तेरपुर जाकर उन्होंने अवधिज्ञानी मुनि-राजसे सब हाल कहकर सन्दूकके न उठनेका कारण पूछा। मुनिने कहा—"सुनिए, यह सुखकारिणी सन्दूक तो पहले लयणके ऊपर दूसरा लयण होगी। मतलब यह कि यह सुवेग आर्तध्यानसे मरकर हाथी होगा। वह इस सन्दूक की पूजा किया करेगा। कुछ समय

बाद करकण्डु राजा यहाँ आकर इस सन्दूकको निकालेगा और सुवेगका जीव हाथी तब संन्यास ग्रहण कर स्वर्ग गमन करेगा। इस प्रकार मुनि द्वारा इस प्रतिमाकी चिरकाल तक अवस्थिति जानकर उन्होंने मुनिसे फिर पूछा—तो प्रभो, इस लयणको किसने बनाया? मुनिराज बोले—इसी विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें बसे हुए रथनूपुरमें नील और महानील नामके दो राजे हो गये हैं। शत्रुओंके साथ युद्धमें उनकी विद्या, धन, राज्य वगैरह सब कुछ नष्ट हो गया। तब वे इस मलय पर्वत पर आकर बसे। यहाँ वे कई वर्षोंतक आरामसे रहे। दोनों भाई बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने यह लयण बनवाया। पुण्यसे उन्हें उनकी विद्याएँ फिर प्राप्त हो गईं। तब वे पीछे अपनी जन्मभूमि रथनूपुर चले गये। इसके बाद कुछ दिनोंतक वे दोनों और गृह-संसारमें रहे। फिर जिनदीक्षा लेकर दोनों भाई साधु हो गये। अन्तमें तपस्याके प्रभावसे वे स्वर्ग गये।" इस प्रकार सब हाल सुनकर बड़ा भाई अमितवेग तो उसी समय दीक्षा लेकर मुनि हो गया और अन्तमें समाधिसे मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। और सुवेग—अमितवेगका छोटा भाई आर्त्तध्यानसे मरकर यह हाथी हुआ। सो ब्रह्मोत्तर स्वर्गके देवने पूर्व जन्मके भ्रातृ-प्रेमके वश हो, आकर इसे धर्मोपदेश किया—समझाया। उससे इस हाथीको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। इसने तब अणुव्रत ग्रहण किये। तबहीसे यह इस प्रकार शान्त रहता है और सदा इस बाँवीकी पूजन किया करता है। तुमने बाँवी तोड़कर जबसे उसमेंसे प्रतिमा निकाल ली तबहीसे हाथी संन्यास लिये यहीं रहता है। और राजन्, आप पूर्वजन्ममें इसी तेरपुरमें ग्वाल थे।

आपने तब एक कमलके फूल द्वारा जिन भगवान्‌की पूजा की थी। उसीके फलसे इस समय आप राजा हुए हैं। राजन्, यह जिनपूजा सब पुण्यकर्मोंमें उत्तम पुण्यकर्म है यही तो कारण है कि क्षणमात्रमें इसके द्वारा उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार करकण्डुको आदिसे इति पर्यन्त सब हाल कहकर और धर्म प्रेमसे उसे नमस्कार कर नागकुमार अपने स्थान चला गया। सच है यह पुण्यहीका प्रभाव है जो देव भी मित्र हो जाते हैं।

हाथीको संन्यास लिये आज तीसरा दिन था। करकण्डुने उसके पास जाकर उसे धर्मका पवित्र उपदेश किया। हाथी अन्तमें सम्यक्त्व सहित मरकर सहस्रार स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। एक पशु धर्मका उपदेश सुन कर स्वर्गमें अनन्त सुखोंका भोगनेवाला देव हुआ, तब जो मनुष्य जन्म पाकर पवित्र भावोंसे धर्म पालन करें तो उन्हें क्या प्राप्त न हो? बात यह है कि धर्मसे बढ़कर सुख देनेवाली संसारमें कोई वस्तु है ही नहीं। इसलिए धर्मप्राप्तिके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

करकण्डुने इसके बाद इसी पर्वत पर अपने, अपनी मांके तथा बालदेवके नामसे विशाल और सुन्दर तीन जिनमन्दिर बनवाये, बड़े वैभवके साथ उनकी प्रतिष्ठा करवाई। जब करकण्डुने देखा कि मेरा सांसारिक कर्त्तव्य सब पूरा हो चुका तब राज्यका सब भार अपने पुत्र वसुपालको सौंप कर और संसार, शरीर, विषय-भोगादि से विरक्त होकर आप अपने माता-पिता तथा और भी कई राजोंके साथ जिनदीक्षा ले योगी हो गया। योगी होकर करकण्डु मुनिने

खूब तप किया, जो कि निर्दोष और संसारसमुद्रसे पार करनेवाला है। अन्तमें परमात्म-स्मरणमें लीन हो उसने भौतिक शरीर छोड़ा। तपके प्रभावसे उसे सहस्रार स्वर्गमें दिव्य देह मिली। पद्मावती दन्तिवाहन तथा अन्य राजे भी अपने अपने पुण्यके अनुसार स्वर्ग-लोक गये।

करकण्डुने ग्वालके जन्ममें केवल एक कमलके फूल द्वारा भगवान्‌की पूजा की थी। उसे उसका जो फल मिला उसे आप सुन चुके हैं। तब जो पवित्र भावपूर्वक आठ द्रव्योंसे भगवान्‌की पूजा करेंगे उनके सुखका तो फिर पूछना ही क्या? थोड़ेमें यों समझिए कि जो भव्यजन भक्तिसे भगवान्‌की प्रतिदिन पूजा किया करते हैं वे सर्वोत्तम-सुख मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, तब और सांसारिक सुखोंकी तो उनके सामने गिनती ही क्या है?

एक बे-समझ ग्वालने जिन भगवान्‌के पवित्र चरणोंकी एक कमलके फूलसे पूजा की थी, उसके फलसे वह करकण्डु राजा होकर देवों द्वारा पूज्य हुआ। इसलिए सुखकी चाह करनेवाले अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे जिन-पूजाकी ओर अपने ध्यानको आकर्षित करें। उससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा। क्योंकि भावों का पवित्र होना पुण्यका कारण है और भावोंके पवित्र करने का जिन-पूजा भी एक प्रधान कारण है।

११४–जिनपूजन-प्रभाव-कथा ।

संसार द्वारा पूजे जानेवाले जिनभगवान्‌को, सर्व श्रेष्ठ गिनी जानेवाली जिनवानीको और राग, द्वेष, मोह, माया आदि दोषोंसे रहित परम वीतरागी साधुओंको नमस्कार कर जिनपूजा द्वारा फल प्राप्त करनेवाले एक मेंढककी कथा लिखी जाती है।

शास्त्रोंमें उल्लेख किये उदाहरणों द्वारा यह बात खुलासा देखनेमें आती है कि जिन भगवान्‌की पूजा पापोंकी नाश करनेवाली और स्वर्ग-मोक्षके सुखोंकी देनेवाली है। इस लिए जो भव्यजन पवित्र भावों द्वारा धर्मवृद्धिके अर्थ जिन पूजा करते हैं वे ही सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं और मोक्ष जानेके अधिकारी हैं। इसके विपरीत पूजा की जो निन्दा करते हैं वे पापी हैं और संसारमें निन्दाके पात्र हैं। ऐसे लोग सदा दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक आदि कष्टोंको भोगते हैं और अन्तमें दुर्गतिमें जाते हैं। अतएव भव्यजनोंको उचित है कि वे जिन भगवान्‌का अभिषेक, पूजन, स्तुति, ध्यान आदि सत्कर्मोंको सदा किया करें। इसके सिवा तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार आदि द्वारा जैनधर्मकी प्रभावना करना चाहिए। इन पूजा प्रभावना आदि कारणोंसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। जिन भगवान् इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महा पुरुषों द्वारा पूज्य हैं। इसलिए उनकी पूजा तो करनी ही चाहिए। जिनपूजा द्वारा सभी उत्तम उत्तम सुख मिलते हैं। जिनपूजा करना महा पुण्यका कारण है; ऐसा शास्त्रोंमें जगह जगह लिखा मिलता है। इसलिए जिनपूजा समान दूसरा पुण्यका कारण संसारमें न तो हुआ

और न होगा। प्राचीन कालमें भरत जैसे अनेक बड़े बड़े पुरुषोंने जिनपूजा द्वारा जो फल प्राप्त किया है, किसकी शक्ति है जो उसे लिख सके। गन्धपुष्पादि आठ द्रव्योंसे पूजा करनेवाले जिनपूजा द्वारा जो फल लाभ करते हैं, उनके सम्बन्धमें हम क्या लिखें, जब कि केवल एक ना-कुछ चीज फूलसे पूजाकर एक मेंढकने स्वर्ग सुख प्राप्त किया। समन्तभद्र स्वामीने भी इस विषयमें लिखा है—राजगृहमें हर्षसे उन्मत्त हुए एक मेंढकने सत्पुरुषोंको यह स्पष्ट बतला दिया कि केवल एक फूल द्वारा भी जिन भगवान्‌की पूजा करनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है, जैसा कि मैंने प्राप्त किया।

अब मेंढककी कथा सुनिए—

यह भारतवर्ष जम्बूद्वीपके मेरुकी दक्षिण दिशामें है। इसमें अनेक तीर्थंकरोंका जन्म हुआ है। इसलिए यह महान् पवित्र है। मगध भारतवर्षमें एक प्रसिद्ध और धनशाली देश है। सारे संसार की लक्ष्मी जैसे यहीं आकर इकट्ठी हो गई हो। यहांके निवासी प्रायः धनी हैं, धर्मात्मा हैं, उदार हैं और परोपकारी हैं।

जिस समयकी यह कथा है उस समय मगधकी राजधानी राजगृह एक बहुत सुन्दर शहर था। सब प्रकारकी उत्तमसे उत्तम भोगोपभोगकी वस्तुएँ वहाँ बड़ी सुलभतासे प्राप्त थीं। विद्वानोंका उसमें निवास था। वहाँके पुरुष देवोंसे और स्त्रियाँ देवबालाओंसे कहीं बढ़कर सुन्दर थीं। स्त्री-पुरुष प्रायः सब ही सम्यक्त्व रूपी भूषणसे अपनेको सिंगारे हुए थे। और इसीलिये राजगृह उस समय मध्यलोकका स्वर्ग कहा जाता था। वहाँ जैनधर्मका ही अधिक

प्रचार था। उसे प्राप्त कर सब सुख-शान्ति लाभ करते थे।

राजगृहके राजा तब श्रेणिक थे। श्रेणिक धर्मज्ञ थे। जैन-धर्म और जैनतत्व पर उनका पूर्ण विश्वास था। भगवानकी भक्ति उन्हें उतनी ही प्रिय थी, जितनी कि भौंरेको कमलिनी। उनका प्रताप शत्रुओंके लिये मानों धधकती आग थी। सत्पुरुषोंके लिये वे शीतल चन्द्रमा थे। पिता अपनी सन्तानको जिस प्यारसे पालता है श्रेणिकका प्यार भी प्रजा पर वैसा ही था। श्रेणिककी कई रानियां थीं। चेलिनी उन सबमें उन्हें अधिक प्रिय थी। सुन्दरतामें, गुणोंमें चतुरतामें चेलिनीका आसन सबसे ऊँचा था। उसे जैनधर्मसे, भगवान्‌की पूजा-प्रभावनासे बहुत ही प्रेम था। कृत्रिम भूषणों द्वारा सिंगार करनेको महत्व न देकर उसने अपने आत्माको अनमोल सम्यग्दर्शन रूप भूषणसे भूषित किया था। जिनवानी सब प्रकारके ज्ञान-विज्ञानसे परिपूर्ण है और अतएव वह सुन्दर है, चेलिनीमें भी किसी प्रकारके ज्ञान-विज्ञानकी कमी न थी। इसलिये उसकी रूपसुन्दरताने और अधिक सौन्दर्य प्राप्त कर लिया था। 'सोनेमें सुगन्ध' की उक्ति उस पर चरितार्थ थी।

राजगृह हीमें एक नागदत्त नामका सेठ रहता था। यह जैनी न था। इसकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था। नागदत्त बड़ा मायाचारी था। सदा मायाके जालमें यह फँसा हुआ रहता था। इस मायाचार के पापसे मरकर यह अपने घर आँगनकी बावड़ीमें मेंढक हुआ। नागदत्त यदि चाहता तो कर्मोंका नाशकर मोक्ष जाता, पर पाप कर वह मनुष्य पर्यायसे पशुजन्ममें आया—एक मेंढक हुआ। इसलिये भव्य-जनोंको उचित है कि वे संकट समय भी पाप न करें।

एक दिन भवदत्ता इस बावड़ी पर जल भरनेको आई। उसे देखकर मेंढकको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह उछल कर भवदत्ताके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। भवदत्ताने डरकर उसे कपड़ों परसे झिड़क दिया। मेंढक फिर भी उछल उछलकर उसके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। उसे बार बार अपने पास आता देखकर भवदत्ता बड़ी चकित हुई और डरी भी। पर इतना उसे भी विश्वास हो गया कि इस मेंढक का और मेरा पूर्वजन्मका कुछ न :कुछ सम्बन्ध होना ही चाहिये। अन्यथा बार बार मेरे झिड़क देने पर भी यह मेरे पास आनेका साहस न करता। जो हो, मौका पाकर कभी किसी साधु-सन्तसे इसका यथार्थ कारण पूछूंगी।

भाग्यसे एक दिन अवधिज्ञानी सुव्रत मुनिराज राजगृहमें आकर ठहरे। भवदत्ताको मेंडकका हाल जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा थी। इसलिये वह तुरंत उनके पास गई। उनसे प्रार्थनाकर उसने मेंडकका हाल जाननेकी इच्छा प्रगट की। सुव्रत मुनिराजने तब उस से कहा—जिसका तू हाल पूछनेको आई है, वह दूसरा कोई न होकर तेरा पति नागदत्त है। वह बड़ा मायाचारी था, इसलिये मर कर मायाके पापसे यह मेंढक हुआ है। उन मुनिके संसार-पार करने वाले वचनोंको सुनकर भवदत्ताको सन्तोष हुआ। वह मुनिको नमस्कार कर घर पर आ गई। उसने फिर मोहवश हो उस मेंडक को भी अपने यहां ला रक्खा। मेंडक वहां आकर बहुत प्रसन्न रहा।

इसी अवसरमें वैभार पर्वत पर महावीर भगवान्‌का समवशरण आया। वनमालीने आकर श्रेणिकको खबर दी कि राजराजेश्वर, जिनके चरणोंकी इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्त्ती, विद्याधर आदि प्रायः

सभी महापुरुष पूजा-स्तुति करते हैं, वे महावीर भगवान् वैभार पर्वत पर पधारे हैं। भगवान्‌के आनेके आनन्द-समाचार सुनकर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए। भक्तिवश हो सिंहासनसे उठ कर उन्होंने भगवान्‌को परोक्ष नमस्कार किया। इसके बाद इन शुभ समाचारोंकी सारे शहरमें सबको खबर हो जाय, इसके लिये उन्होंने आनन्द घोषणा दिलवादी। बड़े भारी लाव-लश्कर और वैभवके साथ भव्यजनोंको संग लिये वे भगवान्‌के दर्शनोंको गये। वे दूरसे उन संसारका हित करनेवाले भगवान्‌के समवशरणको देखकर उतने ही खुश हुए जितने खुश मोर मेघोंको देखकर होते हैं और रासायनिक लोग अपना मन चाहा रस लाभ कर होते हैं। वे समवसरणमें पहुँचे। भगवान्‌के उन्होंने दर्शन किये और उत्तमसे उत्तम द्रव्योंसे उनकी पूजा की। अन्तमें उन्होंने भगवान्‌के गुणोंका गान किया।

हे भगवन्, हे दयाके सागर, ऋषि-महात्मा आपको 'अग्नि' कहते हैं, इसलिये कि आप कर्मरूपी ईंधनको जला कर खाक कर देनेवाले हैं। आपहीको वे 'मेघ' भी कहते हैं, इसलिये कि आप प्राणियोंको जलानेवाली दुःख, शोक, चिन्ता, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष,—आदि दावाग्निको क्षणभरमें अपने उपदेश रूपी जलसे बुझा डालते हैं। आप 'सूरज' भी हैं, इसलिये कि अपने उपदेशरूपी किरणोंसे भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित कर लोक और अलोकके प्रकाशक हैं। नाथ, आप एक सर्वोत्तम वैद्य हैं, इसलिये कि धन्वन्तरीसे वैद्योंकी दवा दारूसे भी नष्ट न होनेवाली ऐसी जन्म, जरा, मरण रूपी महान् व्याधियोंको जड़ मूलसे खो देते हैं। प्रभो, आप उत्तमोत्तम गुण रूपी जवाहरातके उत्पन्न करनेवाले पर्वत

हो, संसारके पालक हो, तीनों लोकके अनमोल भूषण हो, प्राणी मात्रके निःस्वार्थ बन्धु हो, दुःखोंके नाश करनेवाले हो और सब प्रकारके सुखोंके देनेवाले हो। जगदीश! जो सुख आपके पवित्र चरणोंकी सेवासे प्राप्त हो सकता है वह अनेक प्रकारके कठिनसे कठिन परिश्रम द्वारा भी प्राप्त नहीं होता। इसलिये हे दया-सागर, मुझ गरीबको—अनाथको अपने चरणोंकी पवित्र और मुक्तिका सुख देनेवाली भक्ति प्रदान कीजिये। जबतक कि मैं संसारसे पार न हो जाऊं। इसप्रकार बड़ी देरतक श्रेणिकने भगवान्‌का पवित्र भावोंसे गुणानुवाद किया। बाद वे गौतम गणधर आदि महर्षियोंको भक्तिसे नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गये।

भगवान्‌के दर्शनोंके लिये भवदत्ता सेठानी भी गई। आकाशमें देवोंका जय-जयकार और दुंदुभी बाजोंकी मधुर-मनोहर आवाज सुनकर उस मेंडकको जातिस्मरण हो गया। वह भी तब बावड़ीमेंसे एक कमलकी कलीको अपने मुँहमें दबाये बड़े आनन्द और उल्लासके साथ भगवान्‌की पूजाके लिये चला। रास्तेमें आता हुआ वह हाथीके पैर नीचे कुचला जाकर मर गया। पर उसके परिणाम त्रिलोक्यपूज्य महावीर भगवान्‌की पूजामें लगे हुए थे, इसलिये वह उस पूजाके प्रेमसे उत्पन्न होनेवाले पुण्यसे सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ। देखिये, कहां तो वह मेंडक और कहाँ अब स्वर्गका देव! पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। कारण-जिन भगवान्‌की पूजासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

एक अन्तर्मुहूर्तमें वह मेंडकका जीव आंखोंमें चकाचौंध लाने वाला तेजस्वी और सुन्दर युवा देव बन गया। नाना तरहके दिव्य

रत्नमयी अलंकारोंकी कान्तिसे उसका शरीर ढक रहा था बड़ी सुन्दर शोभा थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानों रत्नोंकी एक बहुत बड़ी राशि रक्खी हो या रत्नोंका पर्वत बनाया गया हो। उसके बहुमूल्य वस्त्रोंकी शोभा देखते ही बनती थी। गलेमें उसके स्वर्गीय कल्प वृक्षोंके फूलोंकी सुन्दर मालाएँ शोभा दे रही थीं। उनकी सुन्दर सुगन्धने सब दिशाओंको सुगन्धित बना दिया था। उसे अवधिज्ञान से जान पड़ा कि मुझे जो यह सब सम्पत्ति मिली है और मैं देव हुआ हूँ, यह सब भगवान्‌की पूजाकी पवित्र भावनाका फल है। इसलिये सबसे पहले मुझे जाकर पतित-पावन भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इस विचारके साथ ही वह अपने मुकुट पर मेंढक का चिह्न बनाकर महावीर भगवान्‌के समवशरणमें आया। भगवान्‌की पूजन करते हुए इस देवके मुकुट पर मेंढकके चिन्हको देखकर श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने गौतम भगवानको हाथ जोड़कर पूछा—हे संदेहरूपी अँधेरेको नाश करनेवाले सूरज, कृपाकर कहिए कि इस देवके मुकुट पर मेंडक का चिह्न क्यों है? मैंने तो आजतक किसी देवके मुकुट पर ऐसा चिह्न नहीं देखा। ज्ञानकी प्रकाशमान ज्योतिरूप गौतम भगवान्‌ने तब श्रेणिकको नागदत्तके भवसे लेकर अब तककी सब कथा कह सुनाई। उसे सुनकर श्रेणिकको तथा अन्य भव्यजनोंको बड़ा ही आनन्द हुआ। भगवान्‌की पूजा करनेमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो गई। जिनपूजनका इसप्रकार उत्कृष्ट फल जानकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे सुख देनेवाली इस जिन पूजनको सदा करते रहें। जिन पूजाके फलसे भव्यजन धन-दौलत, रूप-सौभाग्य, राज्य-वैभव, बाल-बच्चे और उत्तम कुल जाति आदि सभी श्रेष्ठ सुख-चैनकी मनचाही सामग्री लाभ करते हैं,

वे चिरकाल तक जीते हैं, दुर्गतिमें नहीं जाते और उनके जन्म जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिनपूजा सम्यग्दर्शन और मोक्षका बीज है, संसारका भ्रमण मिटानेवाली है और सदाचार, सद्विद्या तथा स्वर्ग-मोक्षके सुखकी कारण है। इसलिये आत्महितके चाहनेवाले सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे आलस छोड़कर निरन्तर जिनपूजा किया करें। इससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा।

यही जिन-पूजा सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षके सींचनेको वर्षा सरीखी है, भव्यजनोंको ज्ञान देनेवाली मानों सरस्वती है, स्वर्गकी सम्पदा प्राप्त करानेवाली दूती है, मोक्षरूपी अत्यन्त ऊंचे मन्दिर तक पहुँचानेकी मानों सीढ़ियोंकी श्रेणी है और समस्त सुखोंकी देने वाली है। यह आप भव्यजनोंकी पाप कर्मोंसे सदा रक्षा करे।

जिनके जन्मोत्सवके समय स्वर्गके इन्द्रोंने जिन्हें स्नान कराया, जिनके स्नानका स्थान सुमेरु पर्वत नियत किया गया, क्षीर समुद्र जिनके स्नानजलके लिये बावड़ी नियत की गई, देवता लोगोंने बड़े अदबके साथ जिनकी सेवा बजाई देवांगनाएं जिनके इस मंगलमय समयमें नाचीं और गन्धर्व देवोंने जिनके गुणोंको गाया जिनका यश बखान किया, ऐसे जिन भगवान् आप भव्य-जनोंको और मुझे परम शान्ति प्रदान करें।

वह भगवान्‌की पवित्र वानी जय लाभ करे—संसारमें चिर समय तक रह कर प्राणियोंको ज्ञानके पवित्र मार्ग पर लगाये, जो अपने सुन्दर वाहन मोर पर बैठी हुई अपूर्व शोभाको धारण किये है, मिथ्यात्वरूपी गाढ़े अंधेरेको नष्टकरनेके लिये जो सूरजके समान तेजस्विनी है, भव्यजनरूपी कमलोंके वनको विकसित कर आनन्दकी

बढ़ानेवाली है, जो सच्चे मार्गकी दिखानेवाली है और स्वर्गके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुष जिसे बहुत मान देते हैं।

मूलसंघके सबसे प्रधान सारस्वत नामके निर्दोष गच्छमें कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें प्रभाचन्द्र एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। वे जैनागमरूपी समुद्रके बढ़ानेके लिये चन्द्रमाकी शोभाको धारण किए थे। बड़े बड़े विद्वान् उनका आदर सत्कार करते थे। वे गुणोंके मानों जैसे खजाने थे—बड़े गुणी थे।

इसी गच्छमें कुछ समय बाद मल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे मेरे गुरु थे। वे जिनभगवान्के चरणकमलोंके मानों जैसे भौंरे थे—सदा भगवान्की पवित्र भक्तिमें लगे रहते थे। मूल संघमें इनके समयमें यही प्रधान आचार्य गिने जाते थे। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र रूप रत्नत्रयके ये धारक थे। विद्यानन्दी गुरुके पट्टरूपी कमलको प्रफुल्लित करनेको ये जैसे सूर्य थे - इनसे उनके पट्ट की बड़ी शोभा थी। ये आप सत्पुरुषोंको सुखी करें।

वे सिंहनन्दी गुरु भी आपको सुखी करें, जो जिन भगवान् की निर्दोष भक्तिमें सदा लगे रहते थे। अपने पवित्र उपदेशसे भव्य जनोंको सदा हितमार्ग दिखाते रहते थे। जो कामरूपी निर्दयी हाथी का दुर्मद नष्ट करनेको सिंह सरीखे थे—कामको जिन्होंने वश कर लिया था। वे बड़े ज्ञानी ध्यानी थे, रत्नत्रयके धारक थे और उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजय लाभ करें, जो ज्ञानके समुद्र हैं। देखिये, समुद्रमें रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शन रूपी

श्रेष्ठ रत्नको धारण किये हैं। समुद्रमें तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभंगी रूपी तरंगोंसे युक्त हैं—स्याद्वादविद्याके बड़े ही विद्वान् हैं। समुद्रकी तरंगे जैसे कूड़े-करकटको निकाल बाहर फेंक देती हैं, उसी तरह ये अपनी सप्तभंगी वाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्व रूपी कूड़े-करकटको हटा दूर करते थे—अन्य मतके बड़े बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर विजय लाभ करते थे। समुद्रमें मगरमच्छ, घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्र रूपी समुद्रमें उस से यह विशेषता थी—अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष रूपी भयानक मगरमच्छ न थे। समुद्रमें अमृत रहता है और इनमें जिन भगवानका वचनमयी अमृत समाया हुआ था। और समुद्रमें अनेक बिकने योग्य वस्तुएं रहती हैं, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रेय वस्तुको धारण किये थे। अतएव वे समुद्रकी उपमा दिये गये।

इन्हींके पवित्र चरणकमलोंकी कृपासे जैनशास्त्रोंके अनुसार मुझ नेमिदत्त ब्रह्मचारीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र और सम्यक्तपके प्राप्त करनेवालोंकी इन पवित्र पुण्यमय कथाओंको लिखा है। कल्याणकी करनेवाली ये कथाएं भव्यजनोंको धन-दौलत सुख-चैन, शान्ति-सुयश और आमोद प्रमोद आदि सभी सुख सामग्री प्राप्त करानेमें सहायक हों। यह मेरी पवित्र कामना है।

कुंकुम-व्रत कथा

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के एक सुरम्य देश में हस्तिनापुर नाम की राजधानी थी। वहां भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके मनोहरा नाम की रानी थी। उनके राज्य में सभी प्रजा सुखी थी, राज्य भर में शांति व अमन चैन था। सभी अपने धर्म व कर्तव्यों का पालन करते थे।

उसी नगरी में धनपाल नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनवती था। सभी प्रकार की सुख सम्पदाओं से युक्त होने से उनका समय बड़ा आनन्द पूर्वक व्यतीत हो रहा था, परन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था, इस एक ही चिंता से वे खिन्न और चिंतित रहा करते थे।

एक दिन श्री देशभूषण मुनि (अवधिज्ञानी) अनेक देश, व प्रांतों व नगरों में बिहार करते हुए इसी नगरके सहस्रकूट चैत्यालय में पधारे। मुनिराज का आगमन जानकर सभी नगर के निवासी अपने शक्ति प्रमाण पूजा-द्रव्य लेकर गुरु दर्शनार्थ उनके निकट चैत्यालय में गये, धनवती सेठानी भी नहा धोकर भक्ति भाव से, चैत्यालय गई वहां पर, जिनप्रतिमा का अभिषेक करके, अष्ट द्रव्यों से प्रभू की पूजन की, फिर गुरु महाराज का दर्शन करके, हाथ जोड़ कर विनम्र शब्दों से मुनिराज से बोली—हे मुनिवर, पुत्र के अभाव में मेरा यह मनुष्य जन्म व्यर्थ एवं निस्सार है, यद्यपि मुझे सर्व प्रकार की भोग उपभोग की सामग्री यथेष्ठ मिली है, फिर भी यह अटूट सम्पत्ति एक पुत्र के नहीं होने से, मुझे व मेरे मन को

पूर्ण शांति प्रदान नहीं कर सकती, हमेशा, कुल परम्परा को चलाने वाले पुत्र के अभाव से मन में महान आताप बना रहता है, प्रभो कौनसे ऐसे पापकर्म का उदय है, जिसके कारण सभी सुख सामग्री के होते हुए भी, मैं पुत्रवती नहीं हुई।

करुणासागर मुनिराज उसकी इस प्रकार विनम्रवाणीको सुनकर दयार्द्र होकर बोले—पुत्री, मनुष्य जैसे अच्छे व बुरे कार्य करता है, उसी का प्रतिफल ही उसे सुख, दुःख, रूप में मिलता है। तूने भी पूर्व भव में, एकबार, जब मुनिराज चर्या कर निकले थे, तब उनका आदर नहीं किया था, तूं गर्व से गर्वित होकर उनके प्रति उदासीन रही और यह उसी पाप का फल है, कि इस जन्म में अटूट सम्पत्ति प्राप्त होने पर भी, तूं पुत्रवती नहीं हुई, जिसके कारण से तुम्हारे हृदय में बैचेनी है, और हमेशा अशांतता बनी रहती है।

विनम्र वचनों से मधुर वाणी में धनवती सेठानी ने अपने किये हुए पापों के प्रायश्चित के लिये तत्परता दिखाते हुए मुनिराज से प्रार्थना की, प्रभो अनेक बड़े २ अपराध गुरुओं के दर्शन मात्र से शांत हो जाते हैं मुझे भी आप कोई ऐसा व्रत बताइये जिससे मेरे किये हुए अपराध दूर होवें और मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हो, और मैं अपने जीवन को सफल बना सकूं।

मुनिराज बोले, धर्म ही मनुष्य को सुख में पहुँचाता है, आत्मिक सुखों की वृद्धि भी उसी से है ऐसी कोई भी अप्राप्य वस्तु नहीं जो मनुष्य को धर्म सेवन से न प्राप्त हो। सांसारिक सुखों की तो बात ही क्या अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष सुख भी इसी धर्म की ही देन

है, पुत्री तुम भी, धर्म में दृढ़ करने वाले "सौभाग्यव्रत" को विधि युक्त पालन करो, जिसकी विधि इस प्रकार है।

अषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन स्नानादि से पवित्र होकर, जिन मंदिर जाकर, जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करके, वंदना करके, इस व्रत को ग्रहण करो, बाद में पांच पान लेकर उनमें पांच २ अक्षतपुंज रखकर, एक २ सुपारी भी रखो व श्री जिनेन्द्र भगवान की वंदना करते समय यह मंत्र पढ़ो—

आत्मज्योति, आचार्यज्योति, बन्धुज्योति, बलगज्योति, पुण्यज्योति, पुत्रज्योति, श्री पार्श्वनाथ ज्योति बेलगुं रत्नज्योति।"

इस प्रकार प्रतिदिन पांच २ सौभाग्यवती स्त्रियों के कुंकुम लगावे, तथा कुंकुम, हल्दी, रोली, तंदुल तथा राई के पांच २ ढेर लगाकर प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी के दिन, एक भुक्ति करे। इस प्रकार यह विधि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त करे। पूर्णिमा के दिन महाभिषेक कर (एक कलश से लेकर १०८ तक) पांच भक्ष्य, दूध के बना कर, २५ नैवेद्य बनाकर, उसमें से शास्त्र के ४ गुरुओं के ३ नैवेद्य चढ़ाकर पूजा करे। शास्त्र को वस्त्र चढ़ावे। गुड़ की भेली सहित चार स्त्रियों को ४ फल देवे, एक आप लेवे। मुनि आर्यिकाओं को शास्त्र व वस्त्रादि देवे। चार प्रकार के संघ को यथाशक्ति आहारादि दान देवे।

व्रत की विधि को, अत्यन्त आनंदित हृदय से, पूर्ण रूप से मनन कर, व्रत ग्रहण करने का संकल्प करके धनवती सेठानी घर आगई और उसने विधी के अनुसार इस व्रत का पालन किया

उद्यापन के उपरांत उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम देवकुमार रखा।

पुत्र व पति सहित सुख से काल व्यतीत करते हुए अंत में दीक्षा लेकर सेठानी स्वर्ग गई।

सच है, यह कुंकुमव्रत की प्रभावना है। महान पुण्य का उपार्जन इन व्रतों का ही प्रभाव है व परम्परा मोक्ष सुख भी इनसे प्राप्त होता है। भव्य जीवों को व्रत अनुष्ठान भक्ति व पूर्ण श्रद्धा के साथ करना चाहिए, जिससे धनवती की तरह सुखी होकर मनुष्य जन्म को सार्थक बना सके।

जम्बूस्वामी की विनती

राज गिरी नगरी का ओ वासी,
घर में रिद्धि अभिलासी।
सेठ अरदास जी रा कँवर जम्बूजी,
धारण करल्यो ये माता तुम ही परिवारी ॥
चार सगाई आई जी कँवर की,
सुन्दर रूप रिसाला, हाथ काम सब लिया जी।
कँवर का शुद्ध मुहरत सावो कीनो तुमही परिवारी ॥१॥
मथुरा जी में शोर उडे है, नारी तो मंगल गावे।
स्वामि सुदर्शन राज गिरि पधारा,
लोग जु बन्दना आवे ॥
बारी वो जम्बु जी वैरागी तुम ही परिवारी ॥२॥

हाथ जोड़ कर केवे जी,
जम्बु जी सुण लीज्यो मोरी माता।
रण मत करज्यो
ढील न कीज्यो खीणी पल खीणी जावे ॥
तुम्ही परिवारी ॥ बारी वो० ॥ ३ ॥

बात अपूरव की सुनीजी,
कँवर की सुण माता मुरझाई।
दिक्षा अबार मत धारो रे जाया,
बहु ये परण घर लावो ॥
तुम ही परिवारी ॥ बारी वो० जम्बूजी ॥ ४ ॥

हाथ जोड़ कर केवेजी,
जम्बूजी सुण लीज्यो ये मोरी माता।
मन, तन, में तो शील रचो है,
परणा कर काँई होस्यो राजी ॥
तुम ही परिवारी ॥ बारी वो जम्बूजी ॥ ५ ॥
माता का वचना से परण्या जम्बूजी,
बहु घर आय पांय लागी
आज्ञा लेकर महल पधारी,।
जम्बू जी कहते तुम आगी ॥ तुम ही परिवारी० ॥६॥
कोड़ निन्यानवे सैन्या घर में,
कोड़ छियाणवे मेह लाया।
महल मनोरमा रतना सु जड़िया,
फूल डारी सेज बिछाइ ॥ तुम ही परिवारी ॥ ७ ॥
चन्द्र, बदन, मृग, लोचन वाला, केर गर्व मुख लाया।
केर गर्व सु आपो, सूपो, के, हर्ष, घणी वो मुँढ बोलो
तुम ही परिवारी ॥ ८ ॥
इन्द्र धनुष ज्यों जोवन बन कर,
नेणा में काजल रण के,
मोर पतिजी थे हंस कर बोलो, गांठ हिये की खोलो।
तुम ही परिवारी ॥ ९ ॥ बारी वो जम्बू जी ॥
किण रे पीवरियो,
किण रे सासरियो पिया बिन कौन अधार।
लोग हंसे म्हारो जोबन छीजे, संसारी में कुण बोले।
तुम ही परिवारी ॥ १० ॥ बारी वो जम्बूजी।
चार कथा तो कामिनी कहिये, चार जम्बू जी कँवारा
शील रतन में परख लीयो है,

कांच ने कहो कुण मेले। संसारी में कुण राचै ॥
तुम ही परिवारी ॥ वारी वो जम्बूजी ॥ ११ ॥
काम भोग महा दुख दाई, कड़वा, विष सु कुण खावे,
मेवा मिश्री भोजन, तजकर निंबोलो यो कुण चावै ॥
तुम ही परिवारी ॥ वारी वो० जम्बूजी ॥ १२ ॥
संग जोड़ै जम्बू [illegible] लीनी, परभात हो धन जु चोरे।
पाँव न उठे जावे [illegible]म्बू जी ने पूछे ॥
तुम ही परिवारी। वारी वो जम्बू जी ॥ १३ ॥
एक विद्या तम थाने देवा थो जम्बूजी,
दोय विद्यामान दीज्यो, जम्बूजी कहवे म्हांने क्यां की,
विद्या संसारी में कुण राचै ॥
तुम ही परिवारी ॥ वारी वो जम्बूजी ॥ १४ ॥
आज न परणी चार लुगाई काँई रे तज्यो निरधारी,
कोमल काया घर में माया, काँई रे तजो भोला भाई।
तुम ही परिवारी ॥ वारी वो जम्बूजी ॥ १५ ॥
आयु तो अंजुली को पानी काया कांच की शीसी,
बिन मांगी जम्बू दिक्षा लीनी, त्याग दियो रे संसारी।
तुम ही परिवारी ॥ वारी वो जम्बू जी ॥ १६ ॥
पांच [illegible] जम्बू दिक्षा लीनी, शिवपुर डेरा डराया
चरम केवली भया हो जम्बुजी, पहुँचा रे मुक्ति रे मांहि ॥
तुम ही परिवारी,
वारी वो जम्बूजी वैरागी तुम ही परिवारी ॥१७॥

❀ समाप्त ❀